Methodology of Social Research

DSOC404

Edited by:
Dr. Sukanya Das

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY

lkekftd 'kks/k dh i)fr

METHODOLOGY OF SOCIAL RESEARCH

Edited By
Dr. Sukanya Das

Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

DLP-7770-135-METHOD SOCIAL RESEARCH (H) C—4795/012/02
Typeset at : J.R. Enterprises, Delhi Printed at : Sares Graphics (P) Ltd., Delhi

ikB;Øe (SYLLABUS)

lkekftd 'kks/k dh i)fr (Methodology of Social Research)

mís';

- इस पाठ्यक्रम योजना का उद्देश्य छात्रों को विभिन्न शोध तकनीकों एवं विधियों की मौलिक जानकारी (मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोंनों) प्रदान कराना है।
- यह विभिन्न प्रकार के शोध विषयों की बुनियादी मान्यताओं के आधार पर अलग–अलग तरीकों द्वारा थीम्स (Themes) निर्माण करने की कोशिश करता है।

Objectives

- This course plan aims to provide exposure of the students to the fundamentals of various research techniques and methods (both quantitative and qualitative).
- It tries to build upon the basic assumptions in adopting different methodologies for different kinds of research themes.

Sr. No.	Content
1	Elements of Scientific methods and various steps in social research; Objectivity/ Value Neutrality
2	Basic concepts: Concept, hypothesis, theory and facts, facts and values; Ethical Issues in Social research
3	Induction and deduction, propositions, syllogism and logical fallacies. Pure and Applied research
4	Research Design: Meaning of research design, Selecting a research design; Types of Research Design: Exploratory, descriptive; Types of Research Design: longitudinal and cross-sectional or comparative
5	Constructing an Instrument for data collection: Selecting a method for data collection, Establishing the validity and reliability of a research instrument
6	Quantitative Methods and Survey Research: Survey techniques, Sampling Design, Questionnaire and Interview schedule, Reliability and Validity, Limitations of Survey
7	Qualitative Research Techniques I: Techniques and methods of qualitative research, Participant observation, Ethnography
8	Qualitative Research Techniques II: Case study method, Content analysis, Oral history, narratives, Methodological dilemmas and issues in qualitative research, Validity and reliability in qualitative research
9	Statistics in Social Research: Methods: Meaning, characteristics of statistical method; Measures of central tendency: Mean, Median, Mode; Measures of Dispersion: Standard Deviation
10	Statistics in Social Research: Correlational Analysis: Test of significance and co-variance, Writing a Research Report

fo"k;-lph

bdkb (Units) **(CONTENTS)** **i"B l[;k (Page No.)**

1. वैज्ञानिक पद्धति के तत्व और सामाजिक शोध के चरण
   (Elements of Scientific Methods and Various Steps in Social Research) 1
   Sukanya Das, Lovely Professional University
2. वस्तुनिष्ठता/मूल्य निरपेक्षता (Objectivity/Value Neutrality) 11
   Sukanya Das, Lovely Professional University
3. मूल अवधारणाएँ : तथ्य, अवधारणा, सिद्धांत और परिकल्पना (Basic Concepts : Fact, Concept, Theory and Hypothesis) 22
   Sukanya Das, Lovely Professional University
4. सामाजिक शोध में नैतिक मुद्‌दे (Ethical Issues in Social Research) 43
   Sukanya Das, Lovely Professional University
5. आगमन एवं निगमन पद्धति, प्रस्ताव, अवयव एवं तार्किक भ्रम
   (Induction and Deduction, Propositions, Syllogism and Logical Fallacies) 51
   Sukanya Das, Lovely Professional University
6. विशुद्ध तथा व्यावहारिक शोध (Pure and Applied Research) 56
   Sukanya Das, Lovely Professional University
7. शोध प्रचना का अर्थ, शोध प्रचना का चुनाव (Meaning of Research Design, Selecting of Research Design) 61
   Sukanya Das, Lovely Professional University
8. शोध प्रचना के प्रकार : अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक शोध (Types of Research Design: Exploratory and Descriptive) 67
   Sukanya Das, Lovely Professional University
9. शोध प्रचनाओं के प्रकार : परीक्षणात्मक एवं तुलनात्मक
   (Types of Research Design: Experimental and Cross-Sectional Design) 74
   Sukanya Das, Lovely Professional University
10. तथ्यों के प्रकार एवं उनके स्रोत (Types of Data and Their Sources) 84
    Sukanya Das, Lovely Professional University
11. सर्वेक्षण तकनीक (Survey Techniques) 98
    Sukanya Das, Lovely Professional University
12. निदर्शन (Sampling) 103
    Sukanya Das, Lovely Professional University
13. प्रश्नावली संरचना, प्रेषित प्रश्नावली (Questionnaire Construction, Mailed Questionnaire) 116
    Sukanya Das, Lovely Professional University
14. साक्षात्कार (Interview) 128
    Sukanya Das, Lovely Professional University
15. अनुमापन एवं मापन (Scaling and Measurement) 138
    Sukanya Das, Lovely Professional University

16. विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता (Reliability and Validity) 149
Sukanya Das, Lovely Professional University

17. सर्वेक्षण की सीमाएँ (Limitations of Survey) 156
Sukanya Das, Lovely Professional University

18. गुणात्मक शोध की पद्धति एवं तकनीक (Techniques and Methods of Qualitative Research) 163
Sukanya Das, Lovely Professional University

19. अवलोकन विधि (Observation Method) 171
Sukanya Das, Lovely Professional University

20. प्रजाति लेखन (Ethnography) 186
Sukanya Das, Lovely Professional University

21. वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति (Case Study Method) 190
Sukanya Das, Lovely Professional University

22. अंतर्वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) 198
Sukanya Das, Lovely Professional University

23. मौखिक इतिहास, आख्यान (Oral History, Narratives) 203
Sukanya Das, Lovely Professional University

24. सामाजिक शोध में पद्धतीय दुविधाएँ एवं मुद्दे (Methodological Dilemmas and Issues in Qualitative Research) 206
Sukanya Das, Lovely Professional University

25. गुणात्मक शोध में प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता (Validity and Reliability in Qualitative Research) 217
Sukanya Das, Lovely Professional University

26. पद्धति : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ (Methods: Meaning and Characteristics of Statistical Method) 220
Sukanya Das, Lovely Professional University

27. केंद्रीय प्रवृत्ति की माप : माध्य, माध्यिका, बहुलक (Measures of Central Tendency: Mean, Median, Mode) 223
Sukanya Das, Lovely Professional University

28. विचलन की माप : मानक विचलन (Measures of Dispersion: Standard Deviation) 257
Sukanya Das, Lovely Professional University

29. सह-संबंध विश्लेषण (Correlational Analysis) 279
Sukanya Das, Lovely Professional University

30. शोध रिपोर्ट लेखन (Writing a Research Report) 284
Sukanya Das, Lovely Professional University

इकाई–1: वैज्ञानिक पद्धति के तत्व और सामाजिक शोध के चरण (Elements of Scientific Methods and Various Steps in Social Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 विज्ञान का अर्थ (Meaning of Science)

1.2 विज्ञान के प्रमुख तत्व (विशेषताएँ) (Main Elements (Characteristics) of Science)

1.3 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ (Meaning of Scientific Method)

1.4 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Scientific Method)

1.5 सामाजिक शोध के प्रमुख चरण (Major Steps in Social Research)

1.6 सारांश (Summary)

1.7 शब्दकोश (Keywords)

1.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ तथा इसके मुख्य तत्व या विशेषताओं की जानकारी।
- सामाजिक शोध के चरण क्या-क्या हैं? इसकी जानकारी देना।

प्रस्तावना (Introduction)

विज्ञान अपने आपमें कोई विषय-सामग्री नहीं होकर एक ऐसी सामग्री है जिसे वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) को काम में लेते हुए प्राप्त किया गया हो। जहाँ प्राकृतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक पद्धति का सहारा लिया जाता है, वहाँ सामाजिक विज्ञानों में भी सामाजिक घटनाओं को समझने हेतु इसी पद्धति का उपयोग किया जाता है। अत: किसी भी विषय-सामग्री या ज्ञान-भंडार को विज्ञान बनाने में इस बात का विशेष महत्त्व है कि उसे कैसे प्राप्त किया गया है, किस पद्धति को काम में लिया गया है। यदि वैज्ञानिक-पद्धति की सहायता से सामाजिक घटनाओं को समझने और विषय-सामग्री को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है तो इसे विज्ञान ही कहा जाएगा। **स्टुअर्ट चेज** ने लिखा है कि विज्ञान का संबंध पद्धति से है न कि विषय-सामग्री से। इस बात को अन्य शब्दों में व्यक्त करते हुए **प्रो. ग्रीन** ने लिखा है कि विज्ञान का अर्थ तथ्यों की खोज करने वाले तरीके से लिया जाता है। स्पष्ट है कि जिस किसी विषय में वैज्ञानिक-पद्धति का प्रयोग किया जाता है, वही विषय विज्ञान है, चाहे वह प्राकृतिक

नोट

विज्ञानों के क्षेत्र में हो या सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में। यहाँ वैज्ञानिक-पद्धति को भलीभाँति समझने के लिए विज्ञान के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

1.1 विज्ञान का अर्थ (Meaning of Science)

साधारणतया लोग 'विज्ञान' का अर्थ विशेष प्रकार की विषय-सामग्री (Subject matter) से ही लगाते हैं। इस दृष्टि से वे रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र आदि विषयों को ही विज्ञान मानते हैं। ऐसे लोग सामाजिक तथ्यों एवं प्रघटनाओं, सामाजिक समूहों, संस्थाओं, समाजों एवं सामाजिक संबंधों का अध्ययन करने वाले विषय को विज्ञान नहीं मानते। वे तो समझते हैं कि प्रोटोनों, इलैक्ट्रोनों, एटमों, मोलीक्यूलों, पिण्डों, नक्षत्रों, चट्टानों, जीवाणुओं, कंकालों एवं खोपड़ियों के अध्ययन से संबंधित विषय ही विज्ञान है। परंतु यह उनका भ्रम मात्र है। वास्तव में, विज्ञान अपने आपमें कोई विषय-सामग्री नहीं होकर वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया गया व्यवस्थित ज्ञान है। यदि किसी भी विषय से संबंधित तथ्यों को वैज्ञानिक पद्धति को काम में लेते हुए संगृहीत किया जाए तथा इस प्रकार से प्राप्त तथ्यों के आधार पर सिद्धांत बनाये जायें तो ऐसे विषय को विज्ञान ही माना जाएगा।

विज्ञान का अर्थ स्पष्ट करते हुए **स्टुअर्ट चेज** ने लिखा है, "विज्ञान का संबंध पद्धति से है न कि विषय-सामग्री से।"

कार्ल पियर्सन के अनुसार, "सभी विज्ञानों की एकता उसकी पद्धति में है न कि केवल उसकी विषय-वस्तु में।"

बीसंज तथा **बीसंज** के अनुसार, "यह एक पद्धति या उपागम है न कि विषय सामग्री जो विज्ञान की कसौटी है।"

लुंडबर्ग के अनुसार, "विज्ञान को विषय-सामग्री के रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न भ्रम ही उत्पन्न करता है।" लैंडिस की मान्यता है कि विज्ञान, विज्ञान ही है, चाहे वह भौतिकशास्त्र में हो या समाजशास्त्र में।

क्या आप जानते हैं बर्नार्ड ने विज्ञान की परिभाषा छह मुख्य प्रक्रियाओं के रूप में की है जो इस प्रकार है: परीक्षा (Testing), सत्यापन (Verification), परिभाषा (Definition), वर्गीकरण (Classification), संगठन (Organisation) तथा अभिविन्यास (Orientation); इनमें भविष्यवाणी करना या व्यवहार में लाना (Prediction and Application) भी सम्मिलित है।

फर्के ने बताया है कि हमें वैज्ञानिक ज्ञान को ऐसे ज्ञान के रूप में परिभाषित करना चाहिए जो एक विशेष मात्रा तक निश्चित, कारणयुक्त एवं सामान्य हो। इस प्रकार का व्यवस्थित ज्ञान विज्ञान है।

विद्वानों के उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट है कि **विज्ञान का संबंध किसी विशिष्ट प्रकार की विषय-सामग्री से नहीं होकर वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किए गए क्रमबद्ध व व्यवस्थित ज्ञान से है।**

1.2 विज्ञान के प्रमुख तत्व (विशेषताएँ) (Main Elements (Characteristics) of Science)

मार्टिंडेल और **मौनाचेसी** ने विज्ञान के विभिन्न तत्वों को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि विज्ञान भी विचारने का ही एक ढंग है और सभी प्रकार के विचारों की तरह समस्याओं के प्रत्युत्तर के रूप में उदित होता है। **विज्ञान के लिए निम्न तत्वों का होना आवश्यक है–**

1. **अवलोकन** (Observation)–विज्ञान में अवलोकन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **गुडे** एवं **हेट** ने लिखा

है कि विज्ञान अवलोकन से आरंभ होता है और उसकी पुष्टि (Validation) के लिए अंततः अवलोकन पर ही लौट आना पड़ता है। तब समाजशास्त्री को अपने आपको सावधानीपूर्वक अवलोकन करने में प्रशिक्षित करना चाहिए। **यंग** ने अवलोकन को 'नेत्रों द्वारा एक उद्देश्यपूर्ण अध्ययन' नाम दिया है। अनुसंधानकर्ता स्वयं घटनास्थल पर पहुँचकर घटना, विषय या तथ्यों का सूक्ष्म निरीक्षण करता है। विज्ञान में अवलोकन का विशेष महत्त्व है।

2. **सत्यापन तथा वर्गीकरण** (Verification and Classification)–विज्ञान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें अवलोकन विधि द्वारा प्राप्त तथ्यों की सत्यता की परीक्षा की जाती है। इसी को सत्यापन के नाम से पुकारा जाता है। अन्य शब्दों में सत्यापन का अर्थ किसी भी प्राप्त तथ्य या निष्कर्ष की प्रामाणिकता का पता लगाना है। सत्यापन के लिए पहली स्थिति से मिलती-जुलती किसी अन्य स्थिति को लिया जाता है और यदि दोनों स्थितियों में समानता पायी जाती है या दोनों की प्रकृति एक-सी है तो यह कहा जा सकता है कि प्राप्त तथ्य प्रामाणिक हैं।

   प्राप्त तथ्यों को समान विशेषताओं के आधार पर विभिन्न वर्गों में व्यवस्थित करना ही वर्गीकरण कहलाता है। इसमें तथ्यों को अलग-अलग वर्गों में इस प्रकार रखा जाता है कि एक वर्ग में समान तथ्य ही आयें और इस आधार पर बनने वाले विभिन्न वर्गों के बीच एक पारस्परिक संबंध बना रहे। वर्गीकरण का मुख्य उद्देश्य प्राप्त तथ्यों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है, ताकि वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जा सकें।

3. **सामान्यीकरण** (Generalisation)–विज्ञान का एक प्रमुख तत्व या विशेषता सामान्यीकरण है। सामान्यीकरण का अर्थ प्राप्त तथ्यों के आधार पर किसी सामान्य नियम या सामान्य प्रवृत्ति को ज्ञात करने से है। इसमें कुछ इकाइयों के अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों को संपूर्ण तथ्यों या पूरे समग्र (Universe) पर लागू किया जाता है। उदाहरण के रूप में, कुछ प्रतिनिधि विद्यार्थियों के अध्ययन के आधार पर कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जाते हैं जो केवल अध्ययन किए गए विद्यार्थियों पर ही नहीं, बल्कि एक संपूर्ण क्षेत्र तथा समूह के सभी विद्यार्थियों पर लागू होते हैं।

4. **भविष्यवाणी** (Prediction)–विज्ञान का एक प्रमुख तत्व उसमें भविष्यवाणी करने की क्षमता का होना है। यदि किसी भी विषय में प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर भविष्य की घटनाओं के संबंध में पहले से अनुमान लगा लिया जाए तो उस विषय को विज्ञान कहा जाएगा। सर्वेक्षण या शोध-कार्य के द्वारा प्राप्त निष्कर्ष यदि प्रामाणिक हैं, अर्थात सत्य हैं तो भविष्य में भी परिस्थितियों के समान रहने पर वे सत्य (प्रामाणिक) ही रहेंगे। इस प्रकार विज्ञान में भविष्यवाणी करने की क्षमता पायी जाती है।

5. **वैज्ञानिक प्रवृत्ति** (Scientific Attitude)–उस विषय को विज्ञान कहा जाता है जिससे संबंधित तथ्यों का संकलन अध्ययनकर्ता वैज्ञानिक प्रवृत्ति को बनाये रखते हुए करे। **गिलिन** और **गिलिन ने विज्ञान में वैज्ञानिक प्रवृत्ति को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानते हुए उसकी पाँच विशेषताओं का उल्लेख किया है–**

(*i*) **तटस्थता या वैषयिकता** (Objectivity)–इसमें अध्ययनकर्ता तटस्थ और निष्पक्ष होकर घटनाओं का अध्ययन करता है और उन्हें ठीक उसी रूप में चित्रित करता है जिस रूप में वे वास्तव में हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वह अपने अध्ययन में वैयक्तिक इच्छा, रुचि, रुझान, पूर्वाग्रह, भय आदि को तनिक भी स्थान नहीं देता है। (*ii*) **धैर्य** (Patience)–तथ्यों को एकत्रित करने, उनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने और कार्य शीघ्र समाप्त कर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए अनुसंधानकर्ता पर कई प्रकार के दबाव पड़ते हैं, परंतु उसे जल्दबाजी में न तो अवलोकन करना और न ही कोई निष्कर्ष निकालना या घोषणा करनी चाहिए। इन सबके लिए धैर्य अत्यंत आवश्यक है। (*iii*) **सख्त मेहनत या कठिन परिश्रम** (Hard Work)–प्रकृति के रहस्यों, अपने चारों ओर के संसार और विभिन्न सामाजिक घटनाओं को उनके सही रूप में समझने के लिए कठिन परिश्रम करने की बलवती इच्छा का होना अत्यंत आवश्यक हैं। (*iv*) **जिज्ञासा की प्रवृत्ति** (Attitude of Inquisitiveness)–इसका तत्पर्य यह है कि अनुसंधानकर्ता को खुले मस्तिष्क से उस समय तक खोज करते रहना या तथ्यों का पता लगाते रहना चाहिए जब तक कि विषय से संबंधित आवश्यक प्रमाण प्राप्त न हो जाएँ और उनकी परीक्षा न कर ली जाए। (*v*) **रचनात्मक विचार शक्ति**

नोट

(Creative Thinking Power)–वैज्ञानिकों के लिए केवल तथ्यों को एकत्रित कर लेना मात्र ही काफी नहीं है। उसके मस्तिष्क में तो यह बात घूमती रहनी चाहिए कि आखिर इन तथ्यों का अर्थ क्या है और इनके आधार पर क्या निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और किन सिद्धांतों का निर्माण किया जा सकता है। सिद्धांतों की खोज की दृष्टि से रचनात्मक विचार शक्ति का होना अत्यंत आवश्यक है।

अभी तक के विवेचन से स्पष्ट है कि **किसी भी विषय के विज्ञान कहलाने के लिए अग्र बातें आवश्यक हैं:**

(1) तथ्यों को एकत्रित करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया गया हो।

(2) अवलोकन विधि को काम में लिया गया हो।

(3) वास्तविक तथ्यों का यथावत् चित्रण किया गया हो, अन्य शब्दों में 'क्या है' का स्पष्टत: उल्लेख किया गया हो।

(4) कार्य-कारण संबंधों की स्पष्टत: विवेचना की गयी हो।

(5) निष्कर्ष प्रामाणिक हों अर्थात् उनकी सत्यता की जाँच की जा चुकी हो।

(6) निष्कर्ष सर्वव्यापी होने चाहिए।

(7) एकत्रित तथ्यों के आधार पर भविष्यवाणी की जा सकती हो।

1.3 वैज्ञानिक पद्धति का अर्थ (Meaning of Scientific Method)

विज्ञान के अर्थ को समझ लेने के पश्चात् अब यह जान लेना आवश्यक है कि वैज्ञानिक पद्धति किसे कहते हैं, यह क्या है, इसकी सहायता से अध्ययन कैसे किया जाता है। साधारणत: उस पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है जिसमें अध्ययनकर्ता तटस्थ या निष्पक्ष रहकर किसी विषय, समस्या या घटना का अध्ययन करता है। इस हेतु वह अवलोकन करता है, प्रश्नावली, अनुसूची या किसी अन्य प्रविधि की सहायता से तथ्य संकलित करता है, उनका वर्गीकरण एवं सारणीयन करता है, विश्लेषण एवं व्याख्या करता है, कार्य-कारण संबंधों का पता लगाता है, सामान्यीकरण करता है, वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालता और नियमों व सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है, उनका सत्यापन करता है। इससे उसकी पूर्वानुमान या भविष्यवाणी करने की क्षमता बढ़ जाती है।

वैज्ञानिक पद्धति के अर्थ के संबंध में **लुंडबर्ग** ने लिखा है, "व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक पद्धति तथ्यों के व्यवस्थित अवलोकन, वर्गीकरण तथा व्याख्या [निर्वाचन (Interpretation)] से निर्मित है।" इसे अन्य शब्दों में स्पष्ट करते हुए आपने अन्यत्र लिखा है, "समाज-वैज्ञानिकों में यह दृढ़ विश्वास पाया जाता है कि उनके सम्मुख जो समस्याएँ हैं, उनका समाधान सामाजिक घटनाओं के बुद्धिमत्तापूर्ण और व्यवस्थित अवलोकन, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण द्वारा ही संभव है। अपने यथार्थ (परिशुद्ध) स्वरूप में इसी उपागम को वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं।"

नोट्स बवुल्फ ने लिखा है, "व्यापक अर्थों में कोई भी अनुसंधान विधि जिसके द्वारा विज्ञान की रचना और विस्तार होता है, वैज्ञानिक-पद्धति कहलाती है।"

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में लिखा है, "वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है जिनकी सहायता से विज्ञानों का निर्माण होता है। व्यापक अर्थ में, अन्वेषण की कोई भी पद्धति जिसकी सहायता से वैज्ञानिक या अन्य निष्पक्ष तथा व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त किया जाता है वैज्ञानिक पद्धति कहलाती है।" स्पष्ट है कि वैज्ञानिक पद्धति का संबंध व्यवस्थित ढंग से ज्ञान के संचय से है। इस पद्धति की सहायता से संचित ज्ञान के आधार पर ही कोई विषय विज्ञान का रूप ग्रहण करता है।

1.4 वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Scientific Method)

वैज्ञानिक पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. ज्ञान का आधार वैज्ञानिक पद्धति है–मूर्त और अमूर्त सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के लिए समाज-विज्ञान विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के रूप में, ज्ञान प्राप्त करने या तथ्य एकत्रित करने हेतु समाजमिति (Sociometery), अवलोकन पद्धति, अनुसूची अथवा प्रश्नावली पद्धति, सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति, वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति, सांख्यिकीय पद्धति, साक्षात्कार पद्धति, ऐतिहासिक पद्धति आदि का प्रयोग किया जाता है। इनमें से एकाधिक पद्धतियों को काम में लेते हुए सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है।

2. अवलोकन द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया जाता है–वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत तथ्यों के संकलन हेतु अनुसंधानकर्ता प्रत्यक्ष निरीक्षण और अवलोकन करता है। इसमें काल्पनिक या दार्शनिक विचारों को कोई स्थान नहीं दिया जाता। इसमें तो अध्ययनकर्ता स्वयं घटनास्थल पर पहुँचकर घटनाओं का निरीक्षण और तथ्यों का संकलन करता है। यदि समाज-वैज्ञानिक को बाल-अपराध अथवा वेश्यावृत्ति की समस्या का अध्ययन करना है या भीड़ व्यवहार के संबंध में जानकारी प्राप्त करनी है तो वह इनसे संबंधित तथ्यों को स्वयं घटनाओं का अवलोकन करते हुए एकत्रित करेगा।

3. तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया जाता है–असंबद्ध या बिखरे हुए आंकड़ों या तथ्यों के आधार पर कोई वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है। सही निष्कर्ष निकालने के लिए यह आवश्यक है कि प्राप्त तथ्यों को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध किया जाए। इसके लिए तथ्यों को समानता के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जाता है। यह कार्य वर्गीकरण के अंतर्गत आता है। इसके पश्चात् तथ्यों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया जाता है। किसी भी विषय को विज्ञान मानने का प्रमुख कारण यह है कि उसमें सही निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए तथ्यों का वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया जाता है।

4. 'क्या है' का उल्लेख किया जाता है–वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत वास्तविक घटनाओं की विवेचना की जाती है। कोई भी विज्ञान इस बात पर विचार नहीं करता कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है अथवा क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए। वह तो घटनाओं या तथ्यों का यथार्थ चित्रण करता है। वे जिस रूप में हैं उनका ठीक वैसा ही चित्रण करता है, **'क्या है'** का ही उल्लेख करता है। उदाहरण के रूप में, विज्ञान तो संयुक्त परिवार प्रथा या जाति-व्यवस्था का प्राप्त तथ्यों के आधार पर ठीक उसी रूप में उल्लेख करता है जिस रूप में वे हैं, न कि यह बताने का प्रयत्न कि वे अच्छी हैं या बुरी।

5. कार्य-कारण संबंधों की विवेचना की जाती है–वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत घटनाओं, तथ्यों और विभिन्न समस्याओं के कार्य-कारण संबंधों को जानने का प्रयत्न किया जाता है। विज्ञान तो किसी घटना या समस्या के पीछे छिपे कारणों की खोज करता है। वह तो यह मानकर चलता है कि कोई भी घटना जादुई चमत्कार से घटित नहीं होकर कुछ विशिष्ट कारणों से घटित होती है जिनका पता लगाना वैज्ञानिक का दायित्व है। कार्ल मार्क्स का वर्ग संघर्ष का सिद्धांत एवं दुर्खीम का आत्महत्या का सिद्धांत कार्य-कारण के सह-संबंध को स्पष्ट करते हैं।

6. सिद्धांतों की स्थापना की जाती है।–वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से कार्य-कारण संबंधों की विवेचना की जाती है, तथ्यों या घटनाओं के पारस्परिक संबंध ज्ञात किए जाते हैं। वर्गीकरण या विश्लेषण किया जाता है और तत्पश्चात् सामान्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इन निष्कर्षों के आधार पर ही सिद्धांत या वैज्ञानिक नियम बनाये जाते हैं।

7. सिद्धांतों की पुनर्परीक्षा संभव है–समाज-विज्ञान भी भौतिकशास्त्र या रसायनशास्त्र के समान अपने सिद्धांतों या नियमों की परीक्षा एवं पुनर्परीक्षा करने में सक्षम है। इनमें वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से तथ्य एकत्रित किए जाते हैं और इस पद्धति से प्राप्त तथ्यों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनकी प्रामाणिकता की जाँच की जा सकती

नोट

है। समाज-विज्ञानों में सिद्धांतों की जाँच करना वास्तव में संभव है। उदाहरण के रूप में, तथ्यों के आधार पर प्राप्त इस निष्कर्ष कि टूटे परिवार बाल-अपराध के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी हैं, अलग-अलग स्थानों पर परीक्षा और पुनर्परीक्षा की जा सकती है।

8. सिद्धांत सार्वभौमिक (Universal) **हैं**—समाज-विज्ञान वैज्ञानिक पद्धति को काम में लेते हुए जिन सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं, वे सार्वभौमिक प्रकृति के होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि यदि परिस्थितियाँ समान रहें तो समाज विज्ञानों में विकसित सिद्धांत विभिन्न समाजों और कालों में खरे उतरते हैं। उदाहरण के रूप में, यह सिद्धांत सार्वभौमिक रूप से ठीक पाया गया है कि पारिवारिक विघटन सामाजिक विघटन पर आधारित है।

9. भविष्यवाणी (Prediction) **करने की क्षमता है**—कोई भी विषय इस कारण विज्ञान माना जाता है कि वह 'क्या है' के आधार पर 'क्या होगा' बताने में अर्थात् भविष्यवाणी करने में समर्थ है। अन्य शब्दों में, वैज्ञानिक पद्धति की सहायता से संचित ज्ञान-भंडार के आधार पर भविष्य की ओर संकेत करने की प्रत्येक विज्ञान की क्षमता है। उदाहरण के रूप में, समाज में वर्तमान में होने वाले परिवर्तन को ध्यान में रखकर समाजशास्त्र यह बता सकता है कि भविष्य में सामाजिक व्यवस्था का रूप क्या होगा, जाति-व्यवस्था किस रूप में रहेगी तथा परिवारों के कौन से प्रकार विशेष रूप से पाए जाएँगे। समाजशास्त्र के मौजूदा ज्ञान के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राकृतिक विज्ञानों के समान यह भी भविष्यवाणी करने में काफी सीमा तक समर्थ है।

10. तर्क (Logic) **की प्रधानता**—वैज्ञानिक पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह तर्क पर आधारित है। तर्क तथ्य और विवेक से जुड़ा हुआ है। किसी बात को बुद्धिमत्तापूर्वक, प्रमाणित या अप्रमाणित किया जा सकता है, इसके लिए तर्क देना आवश्यक होता है, साथ ही आवश्यकतानुसार तथ्य भी दिए जाते हैं। वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत सर्वप्रथम तथ्यों के संकलन के लिए ऐसी पद्धतियों एवं उपकरणों के चुनाव पर जोर दिया जाता है जो तर्कसंगत हों, तार्किकता पर आधारित हों। साथ ही इस पद्धति के अंतर्गत संकलित तथ्यों का विश्लेषण भी तार्किकता के आधार पर किया जाता है। इस पद्धति की सहायता से वैज्ञानिक निष्कर्षों के प्रस्तुतीकरण में भी तर्क का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति में यद्यपि अनुभवसिद्ध प्रमाणों या तथ्यों पर जोर दिया जाता है लेकिन तार्किकता के आधार पर जो बात मालूम पड़ती है, यथार्थ जान पड़ती है, उसे भी स्वीकार कर लिया जाता है। यदि कहा जाए कि वैज्ञानिक पद्धति का आधार ही तर्क या तार्किकता है तो इसमें किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है।

11. वस्तुनिष्ठता—वैज्ञानिक पद्धति में वस्तुनिष्ठता (objectivity) पर विशेष बल दिया जाता है। बिना वस्तुनिष्ठता के वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना किसी भी रूप में संभव नहीं है। वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य है—घटनाओं का अध्ययन ठीक उसी रूप में करना जिस रूप में वे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करते हुए अध्ययनकर्ता को प्रत्येक स्तर पर इस बात की विशेष सावधानी रखनी होती है कि उसके स्वयं के पूर्वाग्रहों, विचार, भावनाएँ, पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण अध्ययन में बाधक नहीं बन जाएँ। उसे तो पूर्णत: निष्पक्ष (वस्तुनिष्ठ) होकर तथ्यों या घटनाओं का यथार्थ चित्रण करना है, निष्कर्ष निकालने हैं, प्राक्कल्पना की सत्यता या असत्यता को प्रमाणित करना है।

टास्क वैज्ञानिक पद्धति की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

1.5 सामाजिक शोध के प्रमुख चरण (Major Steps in Social Research)

सामाजिक शोध की प्रकृति वैज्ञानिक है और इसीलिये किसी भी समस्या या घटना का अध्ययन वह वैज्ञानिक तौर पर अर्थात् वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार ही करता है। वैज्ञानिक पद्धति सामान्य रूप से समान ही होती है, इसीलिये सामाजिक शोध के प्रमुख चरण बिल्कुल वही हैं जो कि वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण हैं। वैज्ञानिक पद्धति के

नोट

प्रमुख चरणों के संबंध में अधिक विस्तार में न जाकर संक्षेप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध-कार्य आरंभ करने से पहले (1) सर्वप्रथम किसी एक **विषय का चुनाव** कर लिया जाता है जिसका कि अध्ययन करना है। विषय का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शोध-कार्य के दृष्टिकोण से वह विषय व्यावहारिक है या नहीं। यहाँ व्यावहारिकता का तात्पर्य उपयोगिता से नहीं है बल्कि यह है कि जिस विषय का हम चुनाव कर रहे हैं उसके संबंध में उपलब्ध वैज्ञानिक विधियों की सहायता से अध्ययन करना संभव है या नहीं है। साथ ही इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि जिस विषय को अध्ययन के लिये चुना गया है उसका क्षेत्र कहीं इतना अधिक विस्तृत न हो कि उसके संबंध में अध्ययन करना ही आगे चलकर असंभव प्रतीत हो अथवा जो कुछ अध्ययन किया जाये वह इतना बिखरा हुआ हो कि उससे कोई यथार्थ निष्कर्ष ही संभव न हो। नये शोधकर्ता प्रायः यही गलती कर बैठते हैं कि वह एक विस्तृत क्षेत्र वाले विषय को चुनकर किसी 'महान्' अन्वेषण के द्वारा अमर हो जाने का या कम-से कम रातों-रात ख्याति प्राप्त करने के लोभ को संभाल नहीं पाते हैं। पर आगे चलकर एक ऐसे अथाह समुद्र में जा गिरते हैं कि जहाँ से लौटना उनके लिये कठिन भले ही न हो, पर दूसरों की दृष्टि में हास्यास्पद अवश्य बन जाता है। अतः सामाजिक शोध का यह प्रारंभिक चरण शोध-कार्य का सबसे कठिन भाग होता है। **श्री नॉर्थरोप** (Northrop) ने लिखा है कि अपने अनुसंधान के बाद के स्तरों पर शोधकर्ता सर्वाधिक कठिन पद्धतियों का प्रयोग कर सकता है, पर यदि शोध-कार्य का आरंभ गलत या आडंबरपूर्ण ढंग से किया गया है तो आगे चलकर केवल कठिन पद्धतियाँ हीं परिस्थिति को कदापि सुधार नहीं पाएँगी। शोध-कार्य उस जहाज की भाँति है जो कि एक अति दूर के गंतव्य स्थल की ओर जाने के लिये एक बंदरगाह से चलता है, पर यदि आरंभ में ही दिशा-निर्धारण के संबंध में थोड़ी-सी भूल हो जाये तो उसके भटक जाने की संभावना अत्यधिक होती है, चाहे वह जहाज कितनी ही कुशलता से क्यों न बनाया गया हो और उसका कप्तान कितना ही योग्य क्यों न हो। इसीलिये यह आवश्यक है कि विषय का चुनाव इस भाँति किया जाये कि उसका क्षेत्र सीमित हो। **श्रीमती यंग** ने लिखा है कि अध्ययन को (क) शोधकर्ता के लक्ष्यों तथा रुचियों, (ख) शोध-कार्य के लिए आवश्यक उपलब्ध सामग्री की मात्रा, (ग) अध्ययन के विषय में निर्मित सैद्धांतिक मान्यताओं की जटिलता और (घ) अध्ययन-विषय से संबद्ध उससे पहले किए गए अन्य शोध-कार्य के आधार पर सीमित किया जा सकता है। **श्री ऑगबर्न** (Ogburn) ने हमें चेतावनी दी है कि शोध-कार्य के लिए ऐसा विषय कदापि नहीं चुनना चाहिए जिसके संबंध में प्रमाणसिद्ध तथ्य उपलब्ध नहीं हों और जो कि पद्धतिशास्त्र के दृष्टिकोण से अत्यधिक कठिन हो।

(2) विषय का चुनाव कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक है कि हम उस विषय से संबद्ध अन्य शोध पुस्तकों (Research books) का अध्ययन करें और अपने को अन्य शोधकर्ताओं के विचारों, निष्कर्षों तथा पद्धतियों से परिचित कर लें। ऐसा कर लेने पर, **श्रीमती यंग** के अनुसार (अ) अध्ययन-विषय के संबंध में एक अंतर्दृष्टि तथा सामान्य ज्ञान प्राप्त करने, (ब) शोध-कार्य में उपयोगी सिद्ध होने वाली पद्धतियों के प्रयोग के संबंध में, (स) प्राक्कल्पना के निर्माण में और (द) एक ही शोध-कार्य को फिर से दोहराने की गलती से बचने तथा विषय से संबद्ध उन पक्षों पर, जिस पर कि दूसरे शोधकर्ताओं ने ध्यान नहीं दिया है, ध्यान देने के विषय में हमें सहायता मिल सकती है। सामान्यतया शोध-विषय से संबद्ध अन्य कृतियों तथा विशेषज्ञों के विचार से परिचित होने पर आरंभ में अस्पष्ट और जटिल प्रतीत होने वाले शोध-कार्य के लक्ष्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है और साथ ही हमें इस बात का भी पता चल जाता है कि आवश्यक तथ्यों व सामग्री का संकलन विश्वसनीय रूप में किन स्रोतों से किया जा सकता है।

(3) इस दिशा में तीसरा चरण अध्ययन से संबद्ध इकाइयों को परिभाषित करना है। प्रायः शोधकर्ता को अपने अध्ययन-कार्य में अत्यधिक कठिनाई इस कारण होती है कि आरंभ में ही इकाइयों का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। समस्त इकाइयों का अर्थ स्पष्ट हो जाने का तात्पर्य अध्ययन का लक्ष्य व क्षेत्र का भी स्पष्टीकरण है। मकान, बेरोजगारी, तनाव आदि बहुत सरल प्रतीत हो सकते हैं, पर यदि आरंभ में ही इनको स्पष्ट रूप से परिभाषित न कर दिया गया तो आगे चलकर यह देखा जाएगा कि विभिन्न सूचनादाता इन शब्दों का अलग-अलग अर्थ लगाकर अपने-अपने ढंग से इस प्रकार की सूचनाएँ प्रदान करेंगे जो कि आगे चलकर अनुसंधान-कार्य में सहायक सिद्ध होने के बजाय उसे केवल अस्पष्ट ही बनाता है।

(4) सामाजिक शोध का चौथा चरण **प्राक्कल्पना** (hypothesis) **का निर्माण है।** अपने शोध-विषय के संबंध में प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् शोधकर्ता अपने विचार से एक ऐसा सिद्धांत या निष्कर्ष बना लेता है जिसके

नोट

संबंध में वह यह कल्पना करता है कि वह सिद्धांत संभवत: उसके अध्ययन का आधार सिद्ध हो सकता है। पर उस निष्कर्ष या सिद्धांत को ही वह सच नहीं मान लेता है जब तक कि उसका पुष्टीकरण वास्तविक तथ्यों द्वारा न हो जाये। अत: जैसा कि **श्री जार्ज कसवेल** (George Caswell) ने लिखा है, प्राक्कल्पना अध्ययन-विषय से संबद्ध वह काल्पनिक व अस्थायी (अल्पकालिक) (Temporary) निष्कर्ष है जिसके सत्यता को केवल वास्तविक तथ्य ही दर्शा सकते हैं। **श्री डुनहम** (Dunham) ने लिखा है कि प्राक्कल्पना शोधकर्ता के कार्यों को दिशा प्रदान करती है और उसे यह बताती है कि क्या ग्रहण करना है और क्या त्यागना है। प्राक्कल्पना के बन जाने पर शोध-कार्य का क्षेत्र निश्चित हो जाता है और शोधकर्ता को अपने अध्ययन-कार्य में आगे बढ़ने में मद्द मिलती है। पर स्मरण रहे कि प्राक्कल्पना केवल एक 'आकस्मिक' निष्कर्ष होता है, न कि अंतिम और न ही शोधकर्ता की सफलता इसी बात पर निर्भर है कि उसकी प्राक्कल्पना किस सीमा तक सत्य प्रमाणित हुई। प्राक्कल्पना सच प्रमाणित हो या झूठ, दोनों ही अवस्थाओं में शोध-कार्य ज्ञान की वृद्धि में सहायक होता है।

(5) प्राक्कल्पना का निर्माण कर लेने के पश्चात् **सूचना के स्रोत** (Sources of Information) **तथा अध्ययन के लिये उपयोगी पद्धतियों का निर्धारण** आवश्यक होता है। प्राक्कल्पना सच है अथवा नहीं, इसके लिये तथ्यों का संकलन आवश्यक है। यह तथ्य स्वयं 'बोलते हैं' कि क्या ठीक है और क्या गलत है।

(6) पद्धतियों व प्रविधियों का चुनाव हो जाने के पश्चात् वास्तविक शोध-कार्य उस समय आरंभ होता है जबकि **तथ्यों का निरीक्षण व संकलन** का काम शुरू किया जाता है। निरीक्षण के साथ-साथ आलेखन (recording) भी चलता रहता है जिससे कि तथ्यों की प्रकृति अपरिवर्तित रहे।

(7) तथ्यों का संकलन कर लेने के पश्चात् उनको शोध-कार्य के लिए वास्तव में उपयोगी बनाने के लिये निश्चित क्रमों तथा श्रेणियों में **वर्गीकरण करना** होता है। वर्गीकरण विषय से संबद्ध अनेक अस्पष्ट पक्षों को स्पष्ट करता है क्योंकि इसके द्वारा बिखरे हुए असंबद्ध तथ्यों का ढ़ेर न केवल कम हो जाता है, अपितु निश्चित क्रमों से सज जाने के फलस्वरूप उन्हें एक वैज्ञानिक स्वरूप प्राप्त हो जाता है। तथ्यों का पारस्परिक संबंध भी वर्गीकरण के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है।

(8) **निष्कर्षीकरण एवं नियमों का प्रतिपादन** सामाजिक शोध का अंतिम चरण है जो कि तथ्यों के वर्गीकरण व विश्लेषण के पश्चात् संभव होता है। इस स्तर पर यह निश्चित रूप से मालूम हो जाता है कि प्राक्कल्पना सही है अथवा गलत हो कुछ भी, पर उससे ज्ञान की वृद्धि व विज्ञान की समृद्धि संभव है।

मोटे तौर पर सामाजिक शोध के उपर्युक्त आठ चरण होते हैं। पर पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर **डब्लू० सी० स्क्लूटर** (W.C. Schluter) ने इन चरणों को और भी विस्तृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

(1) शोध के क्षेत्र अथवा विषय का चुनाव (Selecting the field topic or subject for research)।

(2) शोध की समस्या को समझने के लिये क्षेत्र का सर्वेक्षण
(Surveying the field to apprehend the research problem) ।

(3) एक पुस्तक-सूची का निर्माण (Developing a bibliography) ।

(4) समस्या को परिभाषित करना (Formulating or defining the problem) ।

(5) समस्या के तत्वों का विभाजन तथा रूपरेखा का निर्माण
(Differentiating and outlining the elements in the problem) ।

(6) समस्या के तत्वों का, आँकड़ों अथवा प्रमाणों के साथ उनके संबंधों (प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष) के आधार पर वर्गीकरण करना [Classifying the elements in the problem according to their relation (direct or indirect to the data or evidence)] ।

(7) समस्या के तत्वों के आधार पर उन आँकड़ों तथा प्रमाणों का निर्धारण जिनकी आवश्यकता होगी (Determining the data or evidence required on the basis of the elements in the problem)।

(8) आवश्यक आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धि का अनुमान लगाना
(Ascertaining the availability of the data or evidence required) ।

(9) समस्या के हल होने की संभावना की जाँच (Testing the solvability of the problem)।

(10) आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन (Collecting the data and information)।

(11) विश्लेषण के लिए आँकड़ों को नियमित व व्यवस्थित करना।
(Systematising and arranging the data preparatory to their analysis)।

(12) आँकड़ों व प्रमाणों का विश्लेषण व निर्वाचन।
(Analysis and interpreting the data and evidences)।

(13) प्रस्तुतीकरण के हेतु आँकड़ों को व्यवस्थित करना (Arranging the data for presentation)।

(14) विशिष्ट-कथनों, संदर्भों तथा पादटिप्पणियों का चुनाव व उपयोग करना
(Selecting and using citations, references and foot-notes)।

(15) शोध-विवरण प्रस्तुत करने के हेतु स्वरूप व शैली को विकसित करना
(Developing the form and style of the research exposition)।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. किसी विषय पर अध्ययन किया जाए वह इतना विखरा हुआ हो कि उससे कोई .... निष्कर्ष ही संभव न हो।
2. सामाजिक शोध का यह प्रारंभिक चरण .... का सबसे कठिन भाग होता है।
3. अपने शोध-विषय के संबंध में प्राथमिक ज्ञान प्राप्त के पश्चात् .... अपने विचार से एक ऐसा सिद्धांत बना लेता है, जिसका वह कल्पना करता है।

1.6 सारांश (Summary)

- वैज्ञानिक पद्धति के अंतर्गत मुख्य रूप से अवलोकन द्वारा तथ्यों को एकत्रित किया जाता है, सिद्धांतों की स्थापना की जाती है तथा वस्तुनिष्ठता को महत्त्व दिया जाता है।
- सामाजिक शोध आरंभ करने के पहले निम्न चरणों से गुजरना पड़ता है–(*a*) विषय का चुनाव (*b*) विषय से संबद्ध पुस्तकों का अध्ययन (*c*) इकाइयों को परिभाषित करना। (*d*) प्राक्कल्पना का निर्माण (*e*) सूचना के स्रोत तथा अध्ययन के लिए उपयोगी पद्धतियों का निर्धारण (*f*) तथ्यों का निरीक्षण एवं संकलन (*g*) वर्गीकरण (*h*) निष्कर्षीकरण एवं नियमों का प्रतिपादन।

1.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक शोध (Social Research) :** सामाजिक घटनाओं या विद्यमान सिद्धांतों के संबंध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाई गई वैज्ञानिक विधि सामाजिक शोध है।
2. **वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Methods) :** वैज्ञानिक पद्धति एक सामूहिक शब्द है जो उन अनेक प्रक्रियाओं को व्यक्त करता है जिसकी सहायता से विज्ञानों का निर्माण होता है।

1.8 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वैज्ञानिक पद्धति से आप क्या समझते हैं?
2. सामाजिक शोध के चरणों को बताएँ।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. यथार्थ 2. शोध-कार्य 3. शोधकर्त्ता।

1.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. समाजशास्त्र–गुप्ता, शर्मा।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।

नोट

इकाई–2: वस्तुनिष्ठता/मूल्य निरपेक्षता (Objectivity/Value Neutrality)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
2.1 विषय-वस्तु : वस्तुनिष्ठता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Characteristics of Objectivity)
2.2 वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता : वस्तुनिष्ठता का महत्त्व (Need of Scientific Study : Importance of Objectivity)
2.3 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Achieving Objectivity)
2.4 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन एवं विधियाँ (Means and Methods for Achieving Objectivity)
2.5 सारांश (Summary)
2.6 शब्दकोश (Keywords)
2.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
2.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वस्तुनिष्ठता के अर्थ की जानकारी।
- वस्तुनिष्ठता का महत्त्व समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक विज्ञान का, चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान हो या सामाजिक विज्ञान, प्रमुख उद्देश्य यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है वास्तविकता का पता लगाना है, सत्य तक पहुँचना है। इसके लिए आवश्यक है कि तथ्यों का उसी रूप में पता लगाया जाए जिस रूप में वे वास्तव में हैं। कोई घटना जिस रूप में घटित होती है, ठीक उसी रूप में उसे ग्रहण करना ही वस्तुनिष्ठ अध्ययन (Objective Study) है। इसके विपरीत, जहाँ अध्ययनकर्ता किसी घटना को अपने विचारों, भावनाओं, पूर्वाग्रहों, कल्पना, व्यक्तिगत पक्षपात आदि से प्रभावित होकर उन्हीं के अनुरूप ग्रहण करता है, वहाँ उसे व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन (Subjective Study) कहते हैं। इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते क्योंकि वैज्ञानिक निष्कर्ष तो वस्तुनिष्ठ या यथार्थ तथ्यों व घटनाओं पर आधारित होते हैं। वैज्ञानिक या वस्तुनिष्ठ अध्ययन व्यक्ति-प्रधान नहीं होकर तथ्य-प्रधान होते हैं। ये तथ्य वास्तविक अवलोकन,

नोट

परीक्षण एवं विश्लेषण पर निर्भर करते हैं। विज्ञान चूँकि सत्य की खोज का एक माध्यम है, अत: वह सदैव वस्तुनिष्ठ अध्ययनों पर ही जोर देता है। अत: सत्य तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति अत्यंत आवश्यक है।

2.1 विषय-वस्तु : वस्तुनिष्ठता का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Characteristics of Objectivity)

तथ्यों का उनके वास्तविक रूप में अवलोकन, संकलन एवं विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है। सामाजिक घटना को यथार्थ रूप मे देखना और उसी रूप में व्यक्त कर देना ही वस्तुनिष्ठता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ अध्ययनकर्ता स्वयं के विचारों, भावनाओं, अभिवृत्तियों, मूल्यों, पूर्वाग्रहों आदि से मुक्त रहकर घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन करता है, तथ्य संकलित करता है और उनके आधार पर निष्कर्ष निकालता है तो हम कह सकते हैं कि अध्ययन में वस्तुनिष्ठता है। चाहे अध्ययन के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष अच्छे हों या बुरे, उचित हों या अनुचित, मन को प्रसन्नता देने वाले हों या कष्ट पहुँचाने वाले, परंतु अनुसंधानकर्ता उन्हें उसी रूप में प्रस्तुत कर देता है जिस रूप में वे हैं। वह उनमें न तो अपनी ओर से कुछ जोड़ता है, न कुछ घटाता है और न ही कुछ छिपाता है। वह तो सत्य की खोज करता है और उसे सत्य रूप में ही प्रकट कर देता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि वस्तुनिष्ठता सत्य की खोज से संबंधित है और घटनाओं को उनके वास्तविक रूप में प्रकट करना ही वस्तुनिष्ठता है।

वस्तुनिष्ठता का अर्थ स्पष्ट करते हुए **प्रो. ग्रीन** ने लिखा है, "प्रमाणों या तथ्यों का निष्पक्ष रूप से परीक्षण करने की इच्छा और योग्यता ही वस्तुनिष्ठता है।" इस परिभाषा में दो बातों पर जोर दिया गया है, एक तो निष्पक्ष अध्ययन की इच्छा पर और दूसरा योग्यता पर। इसका तात्पर्य यह है कि घटनाओं को उनके यथार्थ रूप में देखने और व्यक्त करने की अनुसंधानकर्ता में दृढ़ इच्छा होनी चाहिए। योग्यता का तात्पर्य तटस्थ दृष्टिकोण अपनाकर यानि स्वयं के विचारों, भावनाओं, मूल्यों, संस्कारों, पूर्व-धारणाओं आदि से पूर्णत: मुक्त होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाये रखते हुए अध्ययन करने से है।

लावेल जे. कार ने लिखा है, "वस्तुनिष्ठता का अर्थ है कि विभिन्न प्रकार की घटनाओं से युक्त संसार किसी व्यक्ति के विश्वासों, आशाओं अथवा भयों से स्वतंत्र एक वास्तविकता है जिसका सब कुछ हम अंतर्दृष्टि एवं कल्पना से नहीं, बल्कि वास्तविक अवलोकन के द्वारा ही समझ सकते हैं।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि घटनामय संसार का अध्ययन निष्पक्ष अवलोकन द्वारा ही संभव है जिसमें अध्ययनकर्ता के स्वयं के विचारों, मूल्यों, विश्वासों, आशाओं, इच्छाओं व कल्पनाओं का कोई महत्त्व नहीं है।

फेयरचाइल्ड के अनुसार, "वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य एक ऐसी योग्यता से है जिसके द्वारा अध्ययनकर्ता या अनुसंधानकर्ता अपने को उन स्थितियों से अलग रख सके जिनका वह स्वयं एक भाग है एवं किसी भी प्रकार की प्रतिबद्धता (लगाव) या भावना के बजाय निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रहों से स्वतंत्र होकर तर्कों के आधार पर विभिन्न तथ्यों को उनके स्वाभाविक रूप में अवलोकित कर सके।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम सकते हैं कि निष्पक्ष रहकर घटनाओं को उनके यथार्थ रूप में देखना और ठीक उसी रूप में उनका चित्रण कर देना ही वस्तुनिष्ठता (Objectivity) है। अध्ययनकर्ता को पक्षपात-रहित दृष्टिकोण, यथार्थ अवलोकन एवं तथ्यों का उनके स्वाभाविक रूप में विश्लेषण एवं प्रस्तुतीकरण वस्तुनिष्ठता के मूल आधार हैं।

2.2 वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता : वस्तुनिष्ठता का महत्त्व (Need of Scientific Study : Importance of Objectivity)

अध्ययन या अनुसंधान का मुख्य उद्देश्य प्रामाणिक निष्कर्षों अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति है। यह उसी समय संभव है जब अध्ययन पूर्णत: वैषयिक या वस्तुनिष्ठ हो। यदि निष्पक्ष रूप से अवलोकन नहीं किया गया है, तथ्यों का संकलन

सही रूप में नहीं किया गया है, यदि उन तथ्यों के विश्लेषण में कहीं भी व्यक्तिगत अभिनति या पक्षपात आ गया है तो ऐसी स्थिति में जो निष्कर्ष निकाले जाएँगे, वे वैज्ञानिक, प्रामाणिक या वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते। जब निष्कर्षों में वस्तुनिष्ठता का अभाव होगा तो यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकेगा, सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकेगा। अतः घटनाओं की सहायता का पता लगाने के लिए अध्ययनों में, विशेषकर सामाजिक अनुसंधानों में वस्तुनिष्ठता का होना अत्यंत आवश्यक है। वस्तुनिष्ठता का महत्त्व एवं वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता निम्नलिखित विवेचना से स्वतः ही स्पष्ट हो जाएगी–

1. **समाजशास्त्रीय अध्ययनों को वैज्ञानिक बनाने हेतु** (To make Sociological Studies Scientific)–कुछ लोगों का मानना है कि समाजशास्त्रीय अध्ययन वैज्ञानिक नहीं होते एवं समाजशास्त्र विज्ञान नहीं है। उनकी इस प्रकार की मान्यता का प्रमुख कारण सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति एवं अध्ययनकर्ता का व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना कठिन अवश्य है क्योंकि अध्ययनकर्ता के व्यक्तिगत विचार, पूर्वाग्रह, अभिवृत्तियाँ एवं पसंद-नापसंद अध्ययन की यथार्थता या वैज्ञानिकता को समाप्त कर देते हैं। लेकिन यदि अनुसंधानकर्ता में वस्तुनिष्ठता बनाये रखने का दृढ़ संकल्प हो तो सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ तरीके से अध्ययन किया जा सकता है। यदि अध्ययनकर्ता में सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं को खोज निकालने की बलवती इच्छा है और वह निरंतर इस दिशा में प्रयत्नशील है तो समाजशास्त्रीय अध्ययनों को वैज्ञानिक बनाया जा सकता है। इस हेतु आवश्यक है कि तथ्यों का यथार्थ चित्रण किया जाए, वैज्ञानिक पद्धति व नियमों का पूर्णतः पालन किया जाए। यदि अध्ययन में तटस्थ भाव को बनाये रखते हुए घटनाओं का सही चित्रण किया जाए तो किसी भी अध्ययन को वैज्ञानिक बनाया जा सकता है।

2. **वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग हेतु** (For Successful use of Scientific Method)–सत्य तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग आवश्यक है। परंतु केवल इस पद्धति के प्रयोग से ही प्रामाणिक या वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त नहीं किए जा सकते हैं। यदि वस्तुनिष्ठता के साथ इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है तो यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और अध्ययन में वैज्ञानिकता लायी जा सकती है। वास्तव में देखा जाए तो वैज्ञानिक पद्धति और वस्तुनिष्ठता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वैज्ञानिक पद्धति में सामाजिक घटनाओं का अवलोकन, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा सत्यापन आता है, परंतु यदि इनमें से किसी भी स्तर पर वस्तुनिष्ठता की कमी है तो वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकेंगे, अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति के सफल प्रयोग के लिए वस्तुनिष्ठता अत्यंत आवश्यक है।

3. **प्रतिनिधित्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त करने हेतु** (To get Adequate Representative Data)–सामाजिक घटनाओं के संबंध में प्रतिनिधि तथ्य प्राप्त करने के लिए निदर्शन प्रणाली (Sampling Method) की सहायता से अध्ययन हेतु इकाइयों का चुनाव किया जाता है। यह चुनाव पक्षपात-रहित होना चाहिए, पूर्ण वस्तुनिष्ठता के साथ होना चाहिए, अन्यथा समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाली इकाइयों का चुनाव नहीं किया जा सकेगा। इसके अलावा, ऐसे तथ्यों का संकलन किया जाना चाहिए जो समग्र (Universe) की सभी विशेषताओं का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करते हों। तथ्य संकलन हेतु प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, अवलोकन, वैयक्तिक अध्ययन-पद्धति आदि में से किसी एक का चुनाव कर प्रतिनिधि तथ्यों को एकत्रित किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि तथ्य-संकलन की प्रविधियों का चुनाव एवं प्रयोग सुविधानुसार नहीं बल्कि वस्तुनिष्ठता के साथ किया जाए अन्यथा प्रतिनिधि तथ्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा।

4. **तथ्यों के सत्यापन हेतु** (For getting Data Verified)–पुनः परीक्षा या सत्यापनशीलता वैज्ञानिकता की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी है और इस कसौटी पर कोई भी अध्ययन तभी खरा उतरता है जब अनुसंधान के प्रत्येक चरण पर वस्तुनिष्ठता का सहारा लिया गया हो। अध्ययन में वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य यही है कि वह पूर्णतः तथ्यों पर आधारित है, न कि अध्ययनकर्ता के स्वयं के पक्षपातपूर्ण विचारों, भावनाओं या पूर्व-धारणाओं पर। जहाँ किसी अध्ययन में इन बातों का समावेश हो जाता है, वहाँ उस अध्ययन के निष्कर्ष वैज्ञानिक या प्रामाणिक नहीं रह जाते।

नोट

ऐसे निष्कर्षों की पुन: परीक्षा और सत्यापन नहीं किया जा सकता। अत: तथ्यों के सत्यापन एवं वैज्ञानिक निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु वस्तुनिष्ठता अत्यंत आवश्यक है।

5. **निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु** (To get Unprejudiced Conclusions)–सामाजिक अनुसंधान की सार्थकता इसी बात में है कि प्राप्त निष्कर्ष निर्भर-योग्य हों। यदि अनुसंधान के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष प्रामाणिक नहीं हैं, यदि उनकी सत्यता की जाँच नहीं की जा सकती है, यदि उनके आधार पर नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता है तो ऐसे अनुसंधान की कोई उपयोगिता नहीं है। किसी अध्ययन या अनुसंधान के माध्यम से प्रामाणिक एवं निष्पक्ष निष्कर्षों की प्राप्ति हेतु प्रारंभ से अंत तक वस्तुनिष्ठता को बनाये रखना आवश्यक है। इसके अभाव में अनुसंधान निरर्थक हो जाएगा। अत: अध्ययनकर्ता वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर ही निष्पक्ष निष्कर्ष प्राप्त कर सकता है और ऐसे निष्कर्ष ही किसी विषय को विज्ञान की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं।

6. **वास्तविक ज्ञान की वृद्धि हेतु** (To enrich Real Knowledge)–अज्ञानता रूपी अंधकार को दूर करना विज्ञान का प्रमुख काम है और यह काम उसी समय उत्तमता के साथ पूरा किया जा सकता है जब वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर सामाजिक घटनाओं के संबंध में अधिक से अधिक मात्रा में यथार्थ जानकारी प्राप्त की जाए। जब इस प्रकार की जानकारी बढ़ेगी तो परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन के संबंध में हमारे ज्ञान में दिनोंदिन वृद्धि होती जाएगी। इससे लोगों को कुरीतियों एवं भ्रांत धारणाओं से छुटकारा मिल सकेगा। अत: वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति हेतु अध्ययनकर्ता को सजग रहते हुए अपने स्वयं के विचारों और पूर्व-धारणाओं पर नियंत्रण रखना होगा। इसके लिए उसे वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना होगा।

7. **अनुसंधान के नये क्षेत्रों का पता लगाने हेतु** (To explore New Fields of Investigation)–जब कोई अध्ययनकर्ता वैज्ञानिक अध्ययन की दिशा में आगे बढ़ता है तो तथ्यों का पता लगाने या सामाजिक घटनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उसे वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना होता है। जब अध्ययनकर्ता निष्पक्ष होकर किसी घटना या समस्या का अध्ययन करता है तो उसके संबंध में अनेक अज्ञात तथ्यों का पता चलता है, उससे संबंधित कई रहस्यों की जानकारी मिलती है, कई नवीन पक्ष प्रकाश में आते हैं जिनके संबंध में अनुसंधानकर्ता ने पहले कभी सोचा भी नहीं था। सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के संबंध में नवीन पक्षों की जानकारी अनुसंधान के नये क्षेत्रों को विकसित करने में योग देती है।

नोट्स भविष्य में अध्ययनकर्ता इन नवीन पक्षों को लेकर अनुसंधान की नयी योजनाएँ बना सकता है। यह सब कुछ उसी समय संभव है जब अध्ययन पूर्णत: वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक हो।

8. **अनुसंधानकर्ता पर नियंत्रण बनाये रखने हेतु** (To maintain Control over the Investigator)–अनुसंधानकर्ता जिस समाज, समूह, सामाजिक घटना या समस्या का अध्ययन करता है, उससे किसी न किसी रूप में सामान्यत: संबंधित होता है। ऐसी स्थिति में उसके स्वयं के विचार, भावनाएँ, अभिवृत्तियाँ, पूर्वाग्रह आदि अध्ययन में बाधक बन सकते हैं। इस स्थिति से छुटकारा प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन में सर्वत्र वैज्ञानिकता बनाये रखी जाए। यह वैज्ञानिकता ही अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण रखकर उसे वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाकर अध्ययन-कार्य करने के लिए प्रेरित कर सकती है। वस्तुनिष्ठता के आधार पर ही वह सत्य का पता लगा सकता और वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त कर सकता है।

9. **भ्रांतियों की समाप्ति हेतु** (To get Rid of Fallacies)–भ्रांत धारणाएँ अनेक व्यक्तियों व समूहों के बीच कई बार तनाव एवं संघर्ष उत्पन्न कर देती हैं। इस प्रकार की धारणाएँ जाति, प्रजाति, धर्म, भाषा, संप्रदाय, संस्कृति, प्रांत या क्षेत्र आदि से संबंधित होती हैं। सामान्य ज्ञान के आधार पर व्यक्ति भ्रांत धारणाओं को सही मान बैठता है क्योंकि उसके पास सत्यता को जानने का कोई आधार नहीं होता। वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों

नोट

की सहायता से ही भ्रांत धारणाओं को दूर किया जा सकता है। विश्व में काफी लंबे समय तक एक भ्रांत धारणा यह प्रचलित रही है कि श्वेत प्रजाति ही सर्वश्रेष्ठ प्रजाति है तथा लोगों को सभ्य बनाने और उन पर शासन करने का उसी प्रजाति को अधिकार है। अब वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि कोई भी प्रजाति अन्य की तुलना में श्रेष्ठ या हीन नहीं है। अत: भ्रांत धारणाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है।

10. **सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु** (To get Social Problems Solved)–आज के आधुनिक जटिल समाजों में अनेक सामाजिक समस्याएँ व्याप्त हैं। ये समाजरूपी शरीर में रोग के समान हैं। जब तक इनसे छुटकारा प्राप्त नहीं किया जाता, तब तक समाज को स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता, उसे प्रगति की ओर आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। विभिन्न प्रकार की समस्याओं की यथार्थ जानकारी वैज्ञानिक अध्ययनों की सहायता से ही प्राप्त हो सकती है। ऐसे अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता का होना नितांत आवश्यक है।

टास्क वास्तुनिष्ठता का क्या महत्त्व है? संक्षिप्त वर्णन करें।

2.3 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Achieving Objectivity)

यहाँ हम वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर विचार करेंगे जो निम्न प्रकार हैं–

1. **भावात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव** (Effect of Emotional Attitudes)–प्रत्येक व्यक्ति के अपने कुछ सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य होते हैं, नैतिकता संबंधी धारणाएँ होती हैं। वह प्रारंभ से ही कुछ बातों को अच्छा और कुछ को बुरा मानने लग जाता है। व्यक्तित्व-निर्माण की प्रक्रिया के दौरान उसकी जो भावात्मक प्रवृत्तियाँ बन जाती हैं, वे उसके व्यवहार-प्रतिमानों को प्रभावित करती हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई अध्ययनकर्ता संयुक्त परिवार, जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता, वेश्यावृत्ति, छात्रों में अनुशासनहीनता आदि का अध्ययन करता है तो उसकी भावात्मक प्रवृत्तियाँ उसके वस्तुनिष्ठ तरीके से अध्ययन करने में कठिनाई उत्पन्न करती हैं।

2. **असत्य प्रतिमाएँ** (False Idols)–फ्रांसिस बेकन का कहना है कि अनुसंधानकर्ता कई असत्य प्रतिमाओं से प्रभावित होकर अध्ययन के दौरान कुछ त्रुटियाँ कर बैठता है। आपने ऐसी चार प्रतिमाओं का उल्लेख किया है– गुफा की प्रतिमाएँ, न्यायालय की प्रतिमाएँ, बाजार की प्रतिमाएँ एवं जनजाति की प्रतिमाएँ। गुफा की प्रतिमाओं के अंतर्गत उन त्रुटियों को लिया गया है जो अनुसंधानकर्ता अपने संकीर्ण या एकाकी विचारों के कारण किसी वस्तु या घटना को समझने के संबंध में कर बैठता है। न्यायालयों की प्रतिमाओं के अंतर्गत वे गलतियाँ आती हैं जो एक अनुसंधानकर्ता केवल शब्दों पर बहुत अधिक भरोसा करने के कारण कर बैठता है। बाजार की प्रतिमाओं में वे त्रुटियाँ आती हैं जो एक अनुसंधानकर्ता प्रथा, परंपरा, रूढ़ि आदि पर जरूरत से ज्यादा जोर देने एवं उन्हीं के आधार पर निष्कर्ष निकालने के कारण कर बैठता है। जनजाति की प्रतिमाओं के अंतर्गत वे त्रुटियाँ आती हैं जो एक अनुसंधानकर्ता अपने विशेष प्रकार से सोचने-विचारने एवं देखने के तरीके के कारण कर बैठता है। इन सब परिस्थितियों में अपने एकाकी दृष्टिकोण एवं सीमित ज्ञान के क्षेत्र से बाहर निकलकर वस्तुनिष्ठता के साथ कुछ निष्कर्ष निकालना अनुसंधानकर्ता के लिए कठिन हो जाता है।

असत्य प्रतिमाओं के अलावा समाज में प्रचलित कुछ ऐसी धारणाएँ भी होती हैं जिनका कोई तार्किक आधार तो नहीं होता, परंतु जो अनुसंधानकर्ता के अध्ययन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है।

नोट

नोट्स यदि अनुसंधानकर्ता इस धारणा पर विश्वास करके आगे बढ़ता है कि अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों का बौद्धिक-स्तर निम्न होता है तो इसके फलस्वरूप उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में वस्तुनिष्ठता की निश्चित रूप से कमी पायी जाएगी।

3. **सामान्य ज्ञान का प्रभाव** (Influence of General Knowledge)–हार्ट का यह कथन पूर्णत: सही है कि वस्तुनिष्ठता का संबंध वास्तविक ज्ञान से है, न कि सामान्य ज्ञान से। लेकिन कई बार अनुसंधानकर्ता सामान्य ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान समझने की गलती कर बैठता है। ऐसी स्थिति में अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ सकती। उदाहरण के रूप में, यदि कोई अनुसंधानकर्ता अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर कोई प्राक्कल्पना बना लेता है तो परिणामस्वरूप वह जाने-अनजाने ऐसे तथ्यों के संकलन पर जोर देता है जो उसकी प्राक्कल्पना को ही प्रमाणित करने में योग दें और वह अन्य तथ्यों को जान-बूझकर छोड़ देता है। ऐसी स्थिति में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत कठिन है।

4. **विशिष्टतामूलक भ्रांति** (Particularistic Fallacy)–अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की कमी का एक मुख्य कारण विशिष्टतामूलक भ्रांति है। इसका तात्पर्य यह है कि अध्ययनकर्ता किसी सामाजिक घटना के एक पक्ष या कारक को ही महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक मानकर उसी पर जोर देता है। यही विशिष्टतामूलक भ्रांति है। इसके परिणामस्वरूप, अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ सकती और उसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक नहीं हो सकते। उदाहरण के रूप में, यदि अनुसंधानकर्ता यह कहे कि 'बाल-अपराध के लिए बुरी संगति ही उत्तरदायी है, अथवा यह कहे कि धर्म-परिवर्तन का एकमात्र कारण निर्धनता है' तो ऐसी स्थिति में वह अन्य पक्षों या कारकों की अवहेलना करेगा, परिणामस्वरूप अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ पाएगी।

5. **अध्ययन में अति जल्दबाजी** (Overhurry in Research Work)–जल्दबाजी में सफलतापूर्वक अनुसंधान कार्य संपन्न करना तो दूर रहा, सामान्य कार्य भी बिगड़ जाता है। सामाजिक घटनाओं की प्रकृति ही कुछ ऐसी होती है कि उनका धैर्यपूर्वक लंबे समय तक अध्ययन करना होता है, तभी कहीं प्रामाणिक तथ्य प्राप्त किए और सही निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इसके विपरीत, जहाँ किसी अनुसंधान को इसलिए जल्दबाजी में पूरा किया जाता है कि अनुसंधानकर्ता के पास समय की कमी है या अध्ययन के निष्कर्ष शीघ्र ही किसी सरकारी या गैर-सरकारी एजेंसी के सम्मुख प्रस्तुत करने हैं, वहाँ ऐसी दशा में अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ पाती। यही कारण है कि अनेक विकास-कार्यक्रमों का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ तरीके से नहीं हो पाता।

6. **अनुसंधानकर्ता का व्यक्तिगत स्वार्थ** (Vested Interest of the Researcher)–व्यक्तिगत स्वार्थ व्यक्ति को अंधा बना देता है। यह स्वार्थ ही वस्तुनिष्ठता का सबसे बड़ा शत्रु है। स्वार्थ के आगे व्यक्ति असत्य को भी आँख मूँदकर स्वीकार कर लेता है। ऐसी स्थिति में अनुसंधानकर्ता तटस्थ होकर न तो तथ्यों का संकलन कर सकता और न ही वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाल सकता है। वह या तो ऐसे तथ्यों का संकलन करता है जो उसके स्वार्थों के अनुरूप हों या वह तथ्यों को इस प्रकार से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करता है कि उनसे ऐसे निष्कर्ष निकल सकें जो उसके स्वार्थों की पूर्ति में सहायक हों। ये दोनों ही स्थितियाँ वस्तुनिष्ठता के मार्ग में बाधक है।

क्या आप जानते हैं जब अनुसंधानकर्ता अध्ययन में अपने स्वार्थ को सर्वोपरि मान बैठता है तो वह वस्तुनिष्ठ ढंग से अध्ययन कर ही नहीं सकता।

7. **स्वार्थ-समूहों का दबाव** (Pressure of Interest Groups)–स्वार्थ-समूहों का दबाव या हस्तक्षेप भी वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में कठिनाई पैदा करता है। स्वार्थ-समूहों के अंतर्गत प्रथम, आर्थिक दृष्टि से संपन्न व्यक्ति

नोट

और द्वितीय, सत्ताधारी या राजनीतिक-रूप से शक्तिशाली व्यक्ति आते हैं। यदि किसी अनुसंधान के निष्कर्षों से इनके हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो तो ये लोग अनुसंधानकर्ता पर दबाव डालकर या तो निष्कर्षों को बदलवा देने में समर्थ हो जाते हैं या ऐसे निष्कर्षों को प्रकाश में ही नहीं आने देते। कभी-कभी अनुसंधानकर्ता ऐसे संपन्न लोगों के दबाव में आकर तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि उनके हितों को किसी प्रकार की कोई चोट नहीं पहुँचे। श्रमिकों से संबंधित अध्ययनों में स्वार्थ-समूहों के दबाव के कारण ही वस्तुनिष्ठता नहीं आ पाती।

8. **सजातिवाद** (Ethnocentrism)–इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति अपने समूह, समाज, जाति, प्रजाति, भाषा, क्षेत्र, धर्म, संस्कृति आदि को सर्वश्रेष्ठ मानकर चलता है। इसी धारणा के वशीभूत होकर जब अनुसंधानकर्ता कोई अध्ययन करता है तो वह अपने समाज की परंपराओं, मूल्यों, आदर्शों, संस्थाओं, धर्म, संस्कृति आदि को सर्वोत्तम प्रमाणित करने का और अन्य लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को अपने से नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के प्रयत्न का तात्पर्य यही है कि अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ पायेगी, अनुसंधानकर्ता निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाकर अध्ययन नहीं कर सकेगा। किसी एक राजनीतिक विचारधारा से प्रतिबद्धता और उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानने की भूल वस्तुनिष्ठता के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। ऐसा अध्ययनकर्ता विषय का पक्षपातरहित होकर अध्ययन नहीं कर सकता। स्पष्ट है कि सजातिवाद वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधक है।

9. **सामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति** (Complex Nature of Social Phenomena)–साामाजिक घटनाओं की जटिल प्रकृति के कारण सामाजिक अनुसंधान में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति कई बार कठिन हो जाती है। सामाजिक घटनाएँ परिवर्तनशील हैं। इनमें समय के साथ-साथ परिवर्तन आते रहते हैं। इसका कारण यह है कि सामाजिक घटनाओं से संबंधित विभिन्न व्यक्तियों में अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं; उनके व्यक्तित्व, विचार, भावनाएँ, मूल्य, परिस्थितियाँ एवं भूमिकाएँ आदि भिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में विभिन्न व्यक्तियों के बीच पनपने वाले सामाजिक संबंध भी जटिल हो जाते हैं। ऐसी दशा में अध्ययनकर्ता कई बार स्वयं के विचारों, विश्वासों, भावनाओं एवं मूल्यों के आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में निष्कर्ष निकालता है। परिणामस्वरूप अध्ययन में वस्तुनिष्ठता नहीं आ पाती।

10. **प्रशिक्षण का अभाव** (Lack of Training)–अनुसंधानकर्ता के लिए संपूर्ण अनुसंधान प्रक्रिया से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक है, अन्यथा अनुसंधान में किसी भी स्तर पर अभिनति आ सकती है, अध्ययन की वस्तुनिष्ठता समाप्त हो सकती है। अत: अनुसंधानकर्ता के लिए पूर्णत: प्रशिक्षित होना आवश्यक है। उसे इस दृष्टि से प्रशिक्षित होना चाहिए कि समग्र का निर्धारण कैसे किया जाए, इकाइयों को कैसे चुना जाए, तथ्य-संकलन हेतु कौन-सी प्रविधि अपनायी जाए, प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण कैसे किया जाए, विभिन्न तथ्यों में सह-संबंध कैसे बताया जाए। साधारणत: देखा यह जाता है कि अधिकांश अनुसंधानों में कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता, फलस्वरूप अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता नहीं आ पाती।

11. **नैतिक आदर्श व मूल्य** (Moral Ideals and Values)–अनुसंधान-कार्य में अनुसंधानकर्ता के स्वयं के नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं होना चाहिए अन्यथा वह तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत कर सकता है और ऐसी स्थिति में अध्ययन की वस्तुनिष्ठता समाप्त हो सकती है। लुण्डबर्ग ने इस स्थिति के संबंध में लिखा है कि अध्ययन में गलतियों का एक अधिक सामान्य और कम सचेत स्रोत वैज्ञानिक की, और विशेषकर समाज-वैज्ञानिकों की, यह प्रवृत्ति है कि वे समुदाय की प्रचलित नैतिक संहिता (Code of Morals) या नैतिकता संबंधी स्वयं के विचारों को तथ्यों के संकलन एवं उन्हें तोड़-मरोड़कर रखने हेतु प्रभावित होने की छूट दे देते हैं। स्पष्ट है कि अनुसंधानकर्ता के स्वयं के नैतिक आदर्श एवं मूल्य वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधक हैं।

12. **मिथ्या-झुकाव (अभिनति) एवं पूर्वाग्रह** (Bias and Prejudices)–लुण्डबर्ग ने लिखा है कि मिथ्या-झुकाव (अभिनति) तथा पूर्वाग्रह सभी विज्ञानों में जटिलता पैदा करने वाले कारक हैं, लेकिन सामाजिक विज्ञानों की तुलना में भौतिक विज्ञानों में उनका महत्त्व काफी कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि भौतिक विज्ञानों की विषय-वस्तु सामान्य उद्वेगात्मक भाव-ग्रंथियों (Common Emotional Complexes) के प्रभाव से काफी मुक्त होती है

नोट

जबकि सामाजिक घटनाएँ प्राय: इससे प्रभावित होती हैं और इसी कारण सामान्य इंद्रियों द्वारा भौतिक तथ्यों का प्रत्यक्ष ज्ञान बहुत कुछ एक-समान या समरूप होता है। लुण्डबर्ग के इस कथन से स्पष्ट है कि सामाजिक विज्ञानों में भौतिक विज्ञानों की तुलना में मिथ्या-झुकाव एवं पूर्वाग्रहों का प्रभाव काफी अधिक होता है और इसी वजह से सामाजिक अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत कठिन है। भौतिक घटनाओं का अध्ययन बिना किसी प्रकार के मिथ्या-झुकाव व पूर्वाग्रहों के सुगमता से किया जा सकता है क्योंकि इनके साथ अध्ययनकर्ता का न तो कोई भावात्मक लगाव या राग-द्वेष होता है और न ही ऐसे अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष अध्ययनकर्ता के विचारों, भावनाओं, मूल्यों, परंपराओं, धर्म, संस्कृति आदि को किसी भी रूप में ठेस पहुँचाते हैं। इसके विपरीत, सामाजिक घटनाओं से अध्ययनकर्ता भी संबंधित होता है। अपने मिथ्या-झुकाव के कारण या तो वह कुछ सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के पक्ष में हो सकता है या विपक्ष में। परिणामस्वरूप वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। पूर्वाग्रहों का तात्पर्य यह है कि अध्ययनकर्ता किसी घटना, विषय-वस्तु, व्यक्ति, समस्या आदि के संबंध में पहले से ही किसी पूर्व-धारणा से ग्रसित होता है। पूर्व-धारणाएँ उसे निष्पक्ष रूप से अध्ययन करने, सोचने-विचारने और निष्कर्ष निकालने में बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि एक अनुसंधानकर्ता संयुक्त परिवार को अच्छा समझता है तो संयुक्त परिवार के अध्ययन के दौरान अपने इस पूर्वाग्रह या पूर्व-धारणा के आधार पर वह ऐसे तथ्यों की अवहेलना कर सकता है जिनसे ऐसे निष्कर्ष निकलते हों कि संयुक्त परिवार की बजाय एकाकी परिवार अधिक अच्छे हैं। यहाँ वह तटस्थ होकर या वस्तुनिष्ठता के साथ अपने पूर्वाग्रहों के कारण अध्ययन नहीं कर पाता है।

मिथ्या-झुकाव या पक्षपात में उद्वेगों या भावनाओं का काफी प्रभाव होता है और इसी कारण किसी के भी पक्ष या विपक्ष में बिना सोचे-विचारे राय व्यक्त कर दी जाती है जिसमें तार्किकता का अभाव होता है। दूसरी ओर जब किसी व्यक्ति, वस्तु, समस्या, घटना, सिद्धांत, आदि के संबंध में हम अपने मन में पहले से ही कोई धारणा बना लेते हैं और उसी के परिप्रेक्ष्य में तथ्यों का मूल्यांकन करते हैं तो इसे पूर्वाग्रह (Prejudice) के नाम से पुकारते हैं। मिथ्या-झुकाव तथा पूर्वाग्रह दोनों के अर्थ से स्पष्ट है कि ये वस्तुनिष्ठ अध्ययन के मार्ग में बाधक हैं। इसके प्रभाव से व्यक्ति खुले दिल और दिमाग से काम नहीं कर सकता। यहाँ हमें यह भी विचार करना है कि मिथ्या-झुकाव (पक्षपात) एवं पूर्वाग्रहों के आधार क्या हैं, इनके स्रोत कहाँ हैं? ये स्रोत निम्नलिखित हैं–

1. **अनुसंधानकर्ता का मिथ्या-झुकाव** (Bias of Researcher)–कई बार स्वयं अनुसंधानकर्ता अभिनति का स्रोत बन जाता है। उसकी पूर्व-धारणाएँ या पक्षपातपूर्ण विचार उसके वस्तुनिष्ठ तरीके से सोचने-विचारने और निष्कर्ष प्रस्तुत करने में बाधक बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों को छोड़ देता है और अपने विचारों एवं भावनाओं के अनुरूप निष्कर्ष निकाल लेता है। अध्ययनकर्ता की स्वयं की रुचि-अरुचि, विषय से जरूरत से ज्यादा भावात्मक लगाव, उसकी नैतिक धारणाएँ, आदर्श, मूल्य, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएँ आदि उसमें मिथ्या-झुकाव का स्रोत बन जाते हैं।

2. **सूचनादाताओं के पूर्वाग्रह** (Prejudices of Informants)–अनुसंधानकर्ता तथ्य-संकलन के लिए केवल अवलोकन का सहारा नहीं ले सकता। उसे सूचनादाताओं से मिलकर उनके प्रश्न पूछकर भी कई सूचनाएँ या तथ्य एकत्रित करने होते हैं। सूचनादाता भी सामाजिक प्राणी ही होते हैं। उनके भी हित-अहित, रुचि-अरुचि, राग-द्वेष, विचार, अनुभव, मूल्य, परंपराएँ, पूर्वाग्रह आदि होते हैं। ऐसी स्थिति में अध्ययन से संबंधित सूचना प्राप्ति हेतु उनसे जो कुछ पूछा जाता है, उसका उत्तर वे पूर्णत: सही ही देंगे, यह आवश्यक नहीं है। वे ऐसी सूचनाएँ भी दे सकते हैं जो पूर्णत: सत्य नहीं हों, जिनमें सच या झूठ का मिश्रण हो या जिन्हें बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत किया गया हो। ऐसी स्थिति में इस प्रकार की सूचनाओं पर आधारित निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकते। पिडिंगटन ने निम्न बातों के आधार पर यह समझाने का प्रयत्न किया है कि सूचनादाता स्वयं मिथ्या-झुकाव या अभिनति का स्रोत कैसे होते हैं : (अ) सूचनादाता जिन बातों को नहीं बताना चाहते, उनके संबंध में या तो वे झूठ बोल सकते हैं या यह बहाना बना सकते हैं कि इस संबंध में वे कुछ भी नहीं जानते। (ब) कभी-कभी अपने किसी स्वार्थ के कारण सूचनादाता कुछ तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत कर सकते हैं या कुछ बातों को जान-बूझकर छिपा सकते हैं। (स) कई बार शिष्टाचार के कारण सूचनादाता ऐसी सूचनाएँ ही देते हैं जो अनुसंधानकर्ता की रुचि के अनुकूल हों। (द) कभी-कभी

अनुसंधानकर्ता की मजाक उड़ाने के उद्देश्य से भी सूचनादाता कुछ बातों को नहीं जानते हुए भी यह प्रदर्शित करने के लिए कि वह सब कुछ जानता है, गलत सूचनाएँ भी देता है। (य) कई उत्तरदाता संकोच या लज्जा के कारण कुछ प्रश्नों का उत्तर जानते हुए भी नहीं देते हैं।

2.4 वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के साधन एवं विधियाँ (Means and Methods for Achieving Objectivity)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक घटनाओं से संबंधित अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता बनाये रखना काफी कठिन है। परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि वस्तुनिष्ठता प्राप्त करना असंभव है। इसके लिए सर्वाधिक आवश्यक यह है कि अनुसंधानकर्ता स्वयं पर नियंत्रण रखे, अपने को पूर्वाग्रहों से मुक्त रखे और वैज्ञानिक दृष्टिकोण सर्वत्र बनाये रखे।

आज अनुभव व अनुसंधान के आधार पर ऐसी विधियों व साधनों का विकास हो चुका है जो सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में योग देते हैं। यहाँ हम उन्हीं का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

1. पारिभाषिक शब्दों एवं अवधारणाओं का मानकीकरण (Standardisation of Terms and Concepts)–समाजशास्त्र में सामान्यत: बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनका कई बार समान अर्थ नहीं लगाया जाता है। परिणामस्वरूप समाजशास्त्रीय अध्ययनों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष में स्पष्टता का अभाव पाया जाता है। इस स्थिति से बचने के लिए यह आवश्यक है कि समाजशास्त्र में जिन पारिभाषिक शब्दों एवं अवधारणाओं का प्रयोग किया जाए, उनका मानकीकरण किया जाए, उनका सभी लोगों के द्वारा सभी स्थानों पर समान अर्थों में प्रयोग किया जाए। इससे सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आ सकेगी।

2. दैव निदर्शन के उपयोग की प्रधानता (Priority to the use of Random Sampling)–अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने की दृष्टि से आवश्यक है कि समग्र में से इकाइयों का चुनाव दैव निदर्शन विधि द्वारा किया जाए ताकि प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान संभावना रहे। दैव निदर्शन विधि द्वारा इकाइयों का चुनाव करने से अध्ययनकर्ता के पक्षपात या मिथ्या-झुकाव के अध्ययन में सम्मिलित होने की संभावना समाप्त हो जाती है और साथ ही प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव हो जाता है।

3. क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं पर कम से कम निर्भरता (Minimum Dependency on Field Investigators)–जहाँ वैयक्तिक अनुसंधान-कार्यों में स्वयं अनुसंधानकर्ता द्वारा तथ्यों का संकलन किया जाता है, वहाँ वह अपने को नियंत्रित करके पूर्वाग्रहों व मिथ्या-झुकाव से बच सकता है। लेकिन जहाँ अनुसंधान-कार्य हेतु तथ्यों का संकलन अनेक क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं द्वारा एक-साथ किया जाता है, वहाँ अभिनति या पक्षपात से बचने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें किसी भी प्रकार की वैयक्तिक स्वतंत्रता नहीं दी जाए और उन पर पूरा नियंत्रण रखा जाए।

4. प्रश्नावली व अनुसूची का प्रयोग (Use of Questionnaire and Schedule)–प्रश्नावली व अनुसूची में निर्धारित प्रश्न होते हैं, मानक शब्दावली का इनमें प्रयोग किया जाता है। परिणामस्वरूप सभी सूचनादाता प्रश्नों के समान अर्थ लगाते हैं और उनके द्वारा प्राप्त उत्तर भी प्रमापीकृत होते हैं। इनके प्रयोग का लाभ यह है कि स्वयं अनुसंधानकर्ता पर भी नियंत्रण रहता है, वह मनमाने ढंग से प्रश्न नहीं पूछ पाता है। इससे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता बनी रहती है।

5. यांत्रिक साधनों का प्रयोग (Application of Mechanical Devices)–तथ्यों के संकलन, सारणीयन एवं विश्लेषण हेतु यांत्रिक साधनों का उपयोग अध्ययन में वस्तुनिष्ठता को बढ़ाने में योग देता है। तथ्यों के संकलन में फोटोग्राफ व टेप-रिकार्डर काफी सहायक हैं। तथ्यों के सारणीयन एवं विश्लेषण में पंचिग मशीन, सार्टर, कैल्क्यूलेटर व कम्प्यूटर, आदि का विशेष उपयोग होता है। इन यांत्रिक साधनों के प्रयोग का सबसे बड़ा लाभ यह है कि अध्ययन में तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अत: अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण बना रहता है और अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आ जाती है।

नोट

6. प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग (Use of Experimental Method)—सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठता लाने के उद्देश्य से प्रयोगात्मक पद्धति का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। जहाँ इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है, वहाँ दो समान समूहों का चुनाव कर लिया जाता है। इनमें से एक को नियंत्रित समूह और दूसरे को प्रयोगात्मक समूह के रूप में रखा जाता है। नियंत्रित समूह में किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं लाया जाता जबकि प्रयोगात्मक समूह में किसी एक कारक के द्वारा परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। यहाँ प्रयोगात्मक समूह में एक कारक के प्रभाव को देखा जाता है। तत्पश्चात् नियंत्रित व प्रयोगात्मक समूहों की एक-दूसरे से तुलना की जाती है। यदि तुलना के आधार पर प्रयोगात्मक समूह में कोई अंतर पाया जाता है तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह परिवर्तन अमुक कारक का प्रभाव है। स्पष्ट है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता लाने में प्रयोगात्मक पद्धति का काफी योग है।

7. सांख्यिकीय अनुमापों का प्रयोग (Use of Statistical Measurements)—यदि अध्ययन के निष्कर्षों को सामान्य विवरण के रूप में ही प्रस्तुत किया जाए तो अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आ सकती है क्योंकि इसमें अध्ययनकर्ता तथ्यों को तोड़-मरोड़कर अपनी इच्छानुसार प्रस्तुत कर सकता है। इस कमी को सांख्यिकीय गणनाओं एवं सांख्यिकीय अनुमापों द्वारा दूर किया जा सकता है। सांख्यिकीय अनुमापों की सुगमता से जाँच भी की जा सकती है। इसी वजह से सामाजिक गणनाओं व सांख्यिकीय अनुमापों का प्रयोग सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है।

8. समूह अनुसंधान पद्धति का प्रयोग (Use of Group Research Method)—पक्षपात, मिथ्या-झुकाव व व्यक्तिनिष्ठता को कम करने या समाप्त करने की दृष्टि से सामूहिक अनुसंधान पद्धति का विशेष महत्त्व है। इस पद्धति का प्रयोग दो रूपों में किया जा सकता है। **प्रथम,** एक सामूहिक घटना का अध्ययन अलग-अलग रूप में तथा अलग-अलग समय पर दो या अधिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा एक ही पद्धति को काम में लेते हुए किया जाता है। फिर सब अनुसंधानकर्ता मिलकर निष्कर्ष निकालते हैं। **द्वितीय,** एक ही अध्ययनकर्ता दो समान क्षेत्रों में एक ही घटना का अध्ययन समान पद्धति को काम में लेता हुआ करता है। फिर वह प्राप्त निष्कर्षों की तुलना करता है तथा यथार्थ स्थिति का पता लगाता है। इससे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता आने की संभावना अधिक रहती है।

9. अंतर-वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग (Application of Interdisciplinary Method)—विभिन्न विज्ञानों के सहयोग पर आधारित अध्ययन को ही अंतर-वैज्ञानिक अध्ययन कहते हैं और समाज-विज्ञानों में वर्तमान में इस प्रकार के अध्ययनों का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। आजकल यह स्पष्टतः महसूस किया जाने लगा है कि किसी भी घटना के लिए कोई एक ही कारक उत्तरदायी नहीं है। उदाहरणार्थ, अपराध, निर्धनता या भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारक उत्तरदायी हैं। जब तक इन कारकों को भली-भांति नहीं समझ लिया जाता, तब तक किसी समस्या, घटना या विषय का यथार्थ व वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता।

क्या आप जानत हैं विभिन्न विज्ञापनों के बीच दिनोंदिन सहयोग बढ़ता ही जा रहा है। परिणामस्वरूप सामाजिक घटनाओं संबंधी अध्ययन अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ एवं यथार्थ होते जा रहे हैं।

10. मिश्रित सांस्कृतिक उपागम का उपयोग (Use of Cross-Cultural Approach)—जब किसी सांस्कृतिक क्षेत्र से संबंधित किसी घटना या समस्या का अध्ययन विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों से संबंधित लोग (विशेषज्ञ) करते हैं तो वे यह कार्य अधिक निष्पक्षता एवं वस्तुनिष्ठता के साथ कर सकते हैं। अध्ययन किए जाने वाले सांस्कृतिक क्षेत्र से संबंधित अनुसंधानकर्ता में पक्षपात व मिथ्या-झुकाव हो सकता है, लेकिन जब अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों से संबंधित अनुसंधानकर्ता अध्ययन-कार्य करते हैं तो वस्तुनिष्ठता की पूरी-पूरी संभावना रहती है। यही मिश्रित सांस्कृतिक उपागम कहलाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. परंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि .... प्राप्त करना असंभव है।
2. अनुसंधान के आधार पर ऐसी विधियों व साधनों का .... हो चुका है जो सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में योग देते हैं।
3. .... में सामान्यत: बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनका कई बार समान अर्थ नहीं लगाया जाता है।

2.5 सारांश (Summary)

- ग्रीन के अनुसार "प्रमाणों या तथ्यों का निष्पक्ष रूप से परीक्षण करने की इच्छा और योग्यता ही वस्तुनिष्ठता है।"
- वस्तुनिष्ठता का महत्त्व वैज्ञानिक पद्धति को सफल प्रयोग हेतु, तथ्यों के सत्यापन हेतु, अनुसंधान के नए क्षेत्रों का पता लगाने हेतु मुख्य रूप से है।

2.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity)**–वस्तुपरक घटनाओं के अध्ययन का एक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार एक व्यक्ति घटना से संबंधित तथ्यों को पूर्वाग्रह अथवा भावनाओं की अपेक्षा साक्ष्य एवं तर्क के आधार पर निष्पक्ष, तटस्थ एवं पूर्व धारणाओं से मुक्त होकर देखता, परखता है।
2. **विशिष्टामूलक भ्रांति (Particularistic Fallacy)**–अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की कमी का एक मुख्य कारण विशिष्टामूलक भ्रांति है।

2.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वस्तुनिष्ठता का क्या अर्थ है?
2. वस्तुनिष्ठता के महत्त्व को बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. वस्तुनिष्ठता   2. विकास   3. समाजशास्त्र।

2.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।
2. समाजशास्त्र–गुप्ता, शर्मा।

Sukanya Das, Lovely Professional University

नोट

इकाई–3: मूल अवधारणाएँ : तथ्य, अवधारणा, सिद्धांत और परिकल्पना (Basic Concepts : Fact, Concept, Theory and Hypothesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 तथ्य (Fact)

3.2 तथ्य की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Fact)

3.3 सामाजिक तथ्य (Social Fact)

3.4 अवधारणा (Concept)

3.5 अवधारणा की विशेषताएँ (Characteristics of Concept)

3.6 अवधारणा का महत्त्व (Importance of Concept)

3.7 सिद्धांत (Theory)

3.8 सिद्धांत क्या है? (What is Theory?)

3.9 सिद्धांत के मूल तत्व (The Elements of Theory)

3.10 परिकल्पना का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Hypothesis)

3.11 एक अच्छी परिकल्पना की विशेषताएँ (Qualities of a Good Hypothesis)

3.12 परिकल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis)

3.13 परिकल्पना का महत्त्व (Importance of Hypothesis)

3.14 परिकल्पना की सीमाएँ (Limitation of Hypothesis)

3.15 परिकल्पना निर्माण में प्रमुख कठिनाइयाँ (Main Difficulties in Formulation of Hypothesis)

3.16 सारांश (Summary)

3.17 शब्दकोश (Keywords)

3.18 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

3.19 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तथ्य की परिभाषा एवं अर्थ को समझना।
- अवधारणा क्या है? इसकी जानकारी प्राप्त करना।

नोट

- सिद्धांत का अर्थ जानना।
- परिकल्पना अथवा प्राक्कल्पना के निर्माण के उद्देश्य की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था (Scientific System) के तीन प्रमुख खंड होते हैं जिन्हे क्रमश: तथ्य, अवधारणा और सिद्धांत कहते हैं। बिना इनके कोई वैज्ञानिक बात कही तो जा सकती है, परंतु वैज्ञानिक व्यवस्था को जन्म नहीं दिया जा सकता है। तथ्य, अवधारणा और सिद्धांत तीनों को पृथक् एवं स्वतंत्र इकाई के रूप में भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि, कब, तथ्य, अवधारणा का रूप ले लेते हैं और कब अवधारणाओं से सिद्धांत-निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती है, यह कहना कठिन है। किंतु यह सत्य है कि तथ्य, अवधारणा और सिद्धांत इन तीनों का स्वतंत्र विश्लेषण किया जा सकता है।

इस अध्याय के अंतर्गत हमारा उद्देश्य तथ्य, अवधारणा और सिद्धांत की विस्तार से विवेचना करना नहीं है। समाजशास्त्रीय सिद्धांत को समझने-समझाने के क्रम में यह जानना जरूरी है कि इसके निर्माण की प्रक्रिया क्या है? इस निमित्त तथ्य, अवधारणा और सिद्धांत से हमें परिचित होना चाहिये।

किसी भी अनुसंधान और सर्वेक्षण की समस्या के चुनाव के बाद अनुसंधानकर्ता समस्या के बारे में 'कार्य-कारण संबंधी (Cause and effect relationship) का पूर्वानुमान लगा लेता है या पूर्व चिंतन कर लेता है। यह पूर्व चिंतन या पूर्वानुमान ही प्राक्कल्पना, परिकल्पना या उपकल्पना (Hypothesis) कहलाती है। उदाहरण के लिए, हम 'भारत में बढ़ती हुई अपराध-प्रवृत्ति' नामक समस्या का अध्ययन करना चाहते हैं। इस समस्या के कार्य-कारण संबंधों के बारे में हम सामान्य ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर अनुमान लगाते हैं कि "निर्धनता ही बढ़ती हुई अपराध-प्रवृति के लिए प्रमुख कारण है।" हमारा यह कथन ही हमारे अध्ययन विषय की प्राक्कल्पना कहलाएगी।

3.1 तथ्य (Fact)

तथ्य क्या हैं? (What are Facts?)

अंग्रेजी भाषा में 'तथ्य' हेतु दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो वस्तुत: पर्यायवाची नहीं हैं। एक शब्द है 'फैक्ट' (Fact) तथा दूसरा शब्द 'डेटा' (Data) है। इन दोनों शब्दों के लिए हिंदी में हम 'तथ्य' शब्द का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में ये दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची इसलिए नहीं हैं, क्योंकि, अनुसंधान की प्रक्रिया में इन दोनों शब्दों का प्रयोग किन्हीं निश्चित स्तरों पर किया जाता है। सामाजिक अनुसंधान में जब विभिन्न स्रोतों से हम तथ्यों का संकलन कर लेते हैं, इस स्तर तक तथ्य के पर्यायवाची के रूप में डेटा (Data) शब्द का प्रयोग करते हैं। लेकिन जब इन तथ्यों की विश्वसनीयता इस सीमा तक पहुँच जाती है कि से व्यवस्थात्मक प्रतीक (Systemic Symbol) का रूप ले लें, तभी इन तथ्यों को हम 'फैक्ट' (Fact) की संज्ञा देते हैं।

> *नोट्स* 'डेटा' (Data) से 'फैक्ट' (Fact) तक पहुँचने के लिए एक निश्चित प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। यद्यपि 'डेटा' (Data) ही 'फैक्ट' (Fact) बन जाता है। संभवत: इसीलिये हम हिंदी में इन दोनों शब्दों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग करते हैं। यह अंतर हमें समझ लेना चाहिये ताकि यदि हम 'तथ्य' शब्द का प्रयोग करते हैं तो निश्चित अनुशासन के अंतर्गत करें।

औपचारिक रूप से तथ्य को परिभाषित करने के पूर्व एक बात की ओर संकेत करना आवश्यक है, क्योंकि इसका सीधा संबंध सामाजिक तथ्य (Social Data) से है। यहाँ हम आधुनिक समाजशास्त्रीय अनुसंधान को एक निश्चित परंपरा देने वाले फ्रेन्च समाजशास्त्री इमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) का उल्लेख करेंगे।

नोट

दुर्खीम के अनुसार, "सामाजिक तथ्य, व्यवहार का वह पक्ष है जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप में संभव है और जो विशेष ढंग से व्यवहार करने को बाध्य करता है।" इस प्रकार तथ्य के अनेक आयाम हैं और संदर्भ के अनुसार, हम उनके अलग-अलग विश्लेषण करते हैं। 'सामाजिक तथ्य' के अनुसंधान में इसकी पहचान के जो संकेत दुर्खीम ने दिये हैं, वे हैं इसकी बाह्यता (Exteriority) और बाध्यता (Constraint)। इसी संदर्भ में हम तथ्य को परिभाषित करेंगे। सामाजिक अनुसंधान में हम वैज्ञानिक प्रक्रिया एवं अनुशासन से बद्ध हैं। अत: किन्हीं निश्चित सीमाओं के अंतर्गत ही हम तथ्य को वास्तविक तथ्य कह सकेंगे।

3.2 तथ्य की परिभाषा एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Fact)

तथ्य की परिभाषा प्रस्तुत करने में दो दृष्टिकोण अपनाये जा सकते हैं। पहले दृष्टिकोण के अंतर्गत हमारे समक्ष वे परिभाषाएँ आती हैं जिन्होंने संदर्भ रूप में एक विस्तृत क्षेत्र को चुना है। इसके अंतर्गत भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान तीनों आते हैं। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में जो परिभाषाएँ दी गई हैं उनमें पॉलिन यंग (Pauline V. Young), गुडे एवं हॉट (W.J. Goode & P.K. Hatt) तथा ब्रॉडबेक (May Brodbeck) आदि हैं।

पॉलिन यंग के अनुसार–"तथ्यों को ऐसे भौतिक या शारीरिक, मानसिक या उद्वेगात्मक घटनाओं के रूप में देखा जाना चाहिए जिनकी निश्चयपूर्वक पुष्टि की जा सकती है एवं जिन्हें 'भाष्य की दुनिया' (World of discours) में सच कहकर स्वीकार किया जाता है।" परंतु उपरोक्त उद्धरण वस्तुत: परिभाषा की ओर संकेत कम करता है, उसके पद्धतिशास्त्रीय आधार की ओर अधिक। इसे परिभाषित करते समय पॉलिन यंग ने तथ्य को केवल मूर्त चीजों तक ही सीमित नहीं रखा। उनके अनुसार विचार, अनुभव एवं भावनाएँ भी तथ्य हैं। विशेषकर सामाजिक विज्ञान के संदर्भ में।

गुडे एवं हॉट ने संक्षेप में तथ्य को एक अनुभव सिद्ध सत्यापनीय निरीक्षण माना है।

मे ब्राडबेक के अनुसार–तथ्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए ब्राडबेक ने लिखा है कि यह एक विशेष संबोधन (Thing) की ओर संकेत करता है (जैसे) कोई घटना या घटना के प्रकार या किसी स्थान में गृह स्वामियों का अनुपात आदि। उनके अनुसार किसी तथ्य को प्रस्तुत करने का अर्थ यह है कि हमारी अवधारणाओं को पुष्ट करने के लिये उदाहरण मिलते हैं।

तथ्य को परिभाषित करने में दूसरा प्रमुख दृष्टिकोण उन विचारकों का है जो तथ्य को केवल सामाजिक परिवेश में प्रस्तुत करना चाहते हैं। इनका तर्क यह है कि वस्तुत: सामाजिक अनुसंधान में हमारा सीधा संबंध सामाजिक तथ्यों से ही है। इसी दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये प्रारंभ में दुर्खीम द्वारा दी गई परिभाषा की चर्चा की गई है।

इन दृष्टिकोणों को अपने समक्ष रखकर हम फेयर चाइल्ड द्वारा दी गई तथ्य की परिभाषा पर विचार कर सकते हैं। जिसमें एक सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

फेयर चाइल्ड के अनुसार–"तथ्य कोई प्रदर्शित की गई या प्रकाशित की जा सकने योग्य वास्तविकता का मद, पद या विषय है। तथ्य एक घटना है जिसके निरीक्षणों एवं मापों के विषय में सभी में बहुत अधिक सहमति पाई जाती है।"

समाजशास्त्र विश्वकोश के अनुसार–तथ्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है : "एक तथ्य यथार्थता की कोई प्रामाण्य घटना है जिसकी प्रामाणिकता की पुष्टि आनुभविक आधार पर संभव होती है। विज्ञान के तथ्य प्रेक्षण-परीक्षण की उपज होते हैं। घटनाओं के संबंध में ऐसे कथन ही तथ्य की श्रेणी में आते हैं जिनका आनुभविक आधार पर परीक्षण किया जा सके।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर तथ्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नांकित रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं:

(1) सामाजिक अनुसंधान के परिप्रेक्ष्य में हम 'तथ्य' उसी को मानेंगे जिसका निरीक्षण वैषयिक रूप में संभव हो, अर्थात् जिसकी वैषयिकता स्वयंसिद्ध हो।

(2) तथ्य एकांगी नहीं होते, अर्थात् किसी तथ्य का संबंध अनेक तथ्यों से हो सकता है। अत: ये अंत: संबंधित होते हैं। जैसी हमारी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार और उसी संदर्भ में हम इसकी व्याख्या कर देते हैं।

(3) तथ्य घटना के रूप में वह सत्य है जो वास्तविक रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं अथवा था। अत: यह प्राय: प्रत्यक्षदर्शी (Emperical) है।

नोट

(4) कोई तथ्य मूर्त या अमूर्त दोनों ही हो सकता है अर्थात् उसका प्रत्यक्ष दर्शन भौतिक या शारीरिक रूप में तथा मानसिक या भावनात्मक रूप में भी संभव है। अत: तथ्य ज्ञानेन्द्रिय ग्राह्य (Senses perception) भी है और अतिन्द्रिय ग्राह्य (extra senses perception) भी है।

(5) तथ्य एकांत अनुभव से भी प्राप्त हो सकते हैं लेकिन जब उनकी विश्वसनीयता अन्य के द्वारा भी परीक्षण योग्य हो सके तभी ही हम उसे वास्तविक तथ्य (pertinent facts) के रूप में स्वीकार करेंगे। अत: यह परीक्षण योग्य होता है।

(6) तथ्य किसी अवधारणा की सृष्टि में सहायक भी होते हैं तथा उसकी पुष्टि भी करते हैं। अत: यह बहुउन्मेशी (multi-oriented) भी होते हैं। यही नहीं, बल्कि ये ही तथ्य सिद्धांत-निर्माण की प्रक्रिया (process of theory building) में कड़ी का कार्य करते हैं।

तथ्य की उपर्युक्त विशेषताओं में हम इस बात से तो आश्वस्त हो ही जाते हैं कि इनका अध्ययन, संकलन या प्रतिवेदन वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है। तथ्य की विशेषताओं पर लिखते हुए प्राय: सभी विचारकों ने इसके एक विशेष पक्ष को गौण रखा है या उसकी चर्चा ही नहीं की है। इस ओर ज्योंबर्ग एवं रोजर नेट (Gideon Sjoberg and Roger Nett) ने संकेत किया है। तथ्य स्वीकारात्मक (Positive) और नकारात्मक (Negative) दोनों होते हैं और दोनों का सामाजिक क्रिया में उतना ही महत्त्व होता है। सामाजिक अनुसंधान में हम पहले कोटि के तथ्यों पर अधिक महत्त्व देते हैं, जबकि, सत्य यह है कि नकारात्मक तथ्य भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। समाज वैज्ञानिक इन नकारात्मक तथ्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। अक्रिया (Non-action) स्वयं ही एक क्रिया (action) के रूप में तथ्य है, जैसे राष्ट्रीय गान के समय उठकर खड़ा नहीं होना अक्रिया है लेकिन यह स्वयं एक तथ्य है और महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

3.3 सामाजिक तथ्य (Social Fact)

सामान्यतया कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्य एक अत्यंत जटिल विचार है, जिसमें बाह्यता, बाध्यता और अपरिहार्यता के गुण विद्यमान होते हैं।

क्या आप जानते हैं दुर्खीम के मतानुसार समाजशास्त्र सभी मानवीय क्रियाओं का अध्ययन नहीं करता है, अपितु, सामाजिक तथ्य ही समाजशास्त्र के अध्ययन की विषय-वस्तु हैं।

सामाजिक तथ्यों को दुर्खीम वस्तुओं के रूप में देखता है। दुर्खीम ने अपनी पुस्तक (The Rules of Sociological Method) के अंतर्गत 'वस्तु' शब्द का प्रयोग चार अलग-अलग संदर्भों में किया है, जो निम्नलिखित हैं:

1. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसमें कुछ विशिष्ट गुण होते हैं। इन विशिष्ट गुणों को ऊपरी तौर पर देखा जा सकता है।
2. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसे अनुभव के माध्यम से ही जाना जा सकता है।
3. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व मनुष्य पर नहीं अपितु समाज पर निर्भर करता है।
4. सामाजिक तथ्य एक ऐसी वस्तु है जिसे बाहरी स्तर पर देखकर जाना जा सकता है।

दुर्खीम के मतानुसार सामाजिक तथ्य वास्तव में सामूहिक चेतना को व्यक्त करते हैं। इसीलिए सामाजिक तथ्य सामाजिक घटनाओं का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: सामाजिक तथ्यों के अध्ययन के माध्यम से सामाजिक घटनाओं की मुख्य विशिष्टताओं का आसानी से पता लागाया जा सकता है। चूँकि 'वस्तु' के रूप में सामाजिक तथ्यों का वस्तुनिष्ठ निरीक्षण किया जा सकता है, इसलिए सामाजिक तथ्यों को सामाजिक घटनाओं का बोध करने के

नोट

वैज्ञानिक आधार के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। क्योंकि, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इसका वस्तुनिष्ठ रूप में (Objectively) निरीक्षण किया जा सकता है। वस्तु के रूप में सामाजिक तथ्य को स्वीकार करने का आशय यही है कि सामाजिक तथ्य कोई काल्पनिक धारणा, विश्वास अथवा विचार नहीं होता है, अपितु इसका अस्तित्व यथार्थ पर आधारित होता है। इस यथार्थ धरातल पर सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक बोध आसान हो जाएगा।

एक सामाजिक तथ्य व्यवहार (सोचने-समझने, अनुभव करने या क्रिया संपादित करने) का एक भाग है जो प्रेक्षक की दृष्टि में वस्तुपरक है तथा जिसकी प्रकृति बाध्यतामूलक होती है।

अत: सामाजिक जीवन से संबंधित ऐसे व्यवहार या विचार, अनुभव या क्रिया को सामाजिक तथ्य कहा जाएगा जिनका निरीक्षण-परीक्षण हो सकता हो। इस कथन के अनुसार 'भगवान' सामाजिक तथ्य नहीं है क्योंकि, उसका निरीक्षण संभव नहीं है, जबकि उसी भगवान की सामूहिक प्रार्थना करना सामाजिक तथ्य है, क्योंकि इसका निरीक्षण संभव है।

सामाजिक तथ्य को परिभाषित करते हुए दुर्खीम ने लिखा है "एक सामाजिक तथ्य कार्य करने का वह प्रत्येक तरीका है, चाहे निश्चित हो या नहीं, जो कि व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालने की क्षमता रखता हो।

सामाजिक तथ्य को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है–"तथ्यों में, कार्य करने, सोचने, अनुभव करने के वे तरीके सम्मिलित हैं जो व्यक्ति हेतु बाहरी होते हैं तथा जो अपनी दबाव-शक्ति के माध्यम से व्यक्ति को नियंत्रित करते हैं।"

सामाजिक तथ्य को दूसरे शब्दों में परिभाषित करते हुए दुर्खीम लिखते हैं "ये कार्य करने, सोचने या अनुभव करने के वे तरीके हैं जिनमें व्यक्तिगत चेतना से बाहर भी अस्तित्व को बनाए रखने की उल्लेखनीय विशिष्टता होती है।"

अत: स्पष्ट होता है कि प्रत्येक समाज में कुछ विशिष्ट तथ्य होते हैं अथवा सोचने, कार्य करने एवं अनुभव करने के ऐसे तरीके होते हैं जो व्यक्ति पर बाध्यकारी प्रभाव डालते हैं जिन्हें प्राणिशास्त्रीय या मनोवैज्ञानिक तथ्य के रूप में न स्वीकार करके अपितु सामाजिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना ही तर्कसंगत होता है। इस कड़ी में दुर्खीम का कथन है कि विचार करने के ऐसे तरीकों को प्राणिशास्त्रीय घटनाओं के अंतर्गत स्वीकार नहीं करना चाहिए; क्योंकि उनमें क्रियाएँ तथा प्रतिनिधित्व सम्मिलित हैं। इसे मनोवैज्ञानिक घटनाओं से भी मिलाया नहीं जा सकता है। जिसका अस्तित्व वैयक्तिक चेतना और उसके माध्यम से ही होता है। इस प्रकार वे एक ढंग की घटनाएँ निर्मित करते हैं और मात्र इसी के लिये "सामाजिक" शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिये।"

उक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक तथ्य को स्पष्ट करने हेतु दुर्खीम ने मुख्य रूप से निम्नलिखित दो शब्दों पर विशेष बल दिया है जिसे हम सामाजिक तथ्यों की विशेषता भी कह सकते हैं :

1. बाह्यता (Exteriority)–इसका आशय यह है कि सामाजिक घटनाओं या सामाजिक तथ्यों का निर्माण समाज के सदस्यों के माध्यम से ही होता है, जबकि सामाजिक तथ्य एक बार विकसित हो जाने के बाद पुन: व्यक्ति विशेष का नहीं रहता अपितु एक स्वतंत्र वास्तविकता के रूप में उसकी अनुभूति की जाती है।

2. बाध्यता (Constraint)–समाज के अनेक सदस्यों के योगदान से सामाजिक तथ्यों का निर्माण होता है। इसी कारण से ये बहुत शक्तिशाली होते हैं। इसीलिए ये व्यक्ति की रुचि के अनुरूप नहीं होते अपितु ये न सिर्फ व्यक्ति पर बाध्यकारी होते हैं वरन् व्यक्ति के व्यवहार तथा रुचियों को निर्देशित तथा नियंत्रित भी करते हैं। सामाजिक तथ्यों में सामाजिक बाध्यता या दबाव स्पष्ट करने हेतु दुर्खीम ने कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए हैं यथा–समाज में प्रचलित अनेक सामाजिक तथ्य जैसे नैतिक नियम, धार्मिक विश्वास, वित्तीय व्यवस्थाएँ आदि मनुष्य के व्यवहार या कार्य-प्रणाली को प्रभावित करते हैं।

3.4 अवधारणा (Concept)

अवधारणा क्या है?

अवधारणा को सामान्यतया प्रत्यय अथवा संबोध भी कहा जाता है। वैज्ञानिक शोध में अवधारणा का प्रयोग यथार्थ

के प्रत्यक्षीकरण, वर्गीकरण तथा बोध के लिये किया जाता है। सिद्धांत-रचना में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सिद्धांत-रचना के प्रथम स्तर पर मूर्त घटनाओं का अवधारणाओं के रूप में अमूर्तिकरण किया जाता है। तत्पश्चात् इन्हें तर्कसंगत आधार पर व्यवस्थित कर सिद्धांत में परिणित किया जाता है। अवधारणाएँ स्थिर नहीं होती हैं, अपितु इनके अर्थ में निरंतर संशोधन व परिमार्जन होता रहता है।

किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था की एक विशेष शब्दावली (Particular set of terminology) होती है। इसके अंतर्गत शब्द तो प्राय: अधिकांश वही होते हैं जिनका उपयोग हम दिन-प्रतिदिन की भाषा में करते हैं परंतु, वैज्ञानिक व्यवस्था में इनके विशेष अर्थ होते हैं। ऐसे बहुत से शब्द खासकर सामाजिक विज्ञान में जिन्हें हम अपनी वैज्ञानिक शब्दावली के अंतर्गत भी मानते हैं तथा इनका सामान्य भाषा में भी प्रयोग होता है। उदाहरण के तौर पर हम देख सकते हैं कि समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र के अंतर्गत 'समाज', 'समिति' 'संस्कृति', 'संस्था आदि शब्दों के प्रयोग कुछ खास अर्थ में किये जाते हैं और इन्हें हम अपनी वैज्ञानिक शब्दावली के अंतर्गत भी स्थान देते हैं जबकि इन शब्दों का अर्थ सामान्य भाषा में भी किया जा सकता है। तथापि इन दोनों में इनका अर्थ एक समान नहीं होता है। सामान्य भाषा में हम असांस्कृतिक (uncultured) का प्रयोग खुले आम करते हैं। परंतु, मानवशास्त्र में यह प्रयोग अवैज्ञानिक तथा अव्यावहारिक माना जाता है। सामाजिक भाषा में गँवार को असंस्कृत कहते हैं।, परंतु मानवशास्त्रीय शब्दावली में मनुष्य की बिना संस्कृति के कल्पना ही नहीं की जा सकती। इस प्रकार चाहे कोई गँवार हो, बर्बर हो अथवा जंगली संस्कृति से पुष्ट होता है।

अवधारणा की जब हम व्याख्या करते हैं, तो कभी-कभी यह कहना कठिन हो जाता है कि शब्द मात्र शब्दावली का अंश है अथवा किसी अवधारणा को व्यक्त करता है। उपरोक्त शब्द समाज, संस्कृति आदि अवधारणाएँ भी हैं। प्रश्न यह उठता है कि हम इन्हें किस नाम से पुकारें इसी संदर्भ में हम अवधारणाओं के स्वरूप पर विचार करेंगे।

सर्वप्रथम हम यह मानकर चलते हैं कि किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था की शब्दावली में प्रयोग किए जाने वाले शब्द जब मानकीकृत (Standardised) हो जाते हैं तो उनका स्वरूप अवधारणा का हो जाता है। नये-नये शब्दों का चयन हम वैज्ञानिक शब्दावली के अंतर्गत करते रहते हैं। उनका उपयोग हम विश्लेषण में भी करने लगते हैं, फिर एक समान अर्थ में ही सभी के द्वारा प्रयोग किये जाने लगते हैं, तब धीरे-धीरे उनका स्वरूप अवधारणा का होने लगता है। लेकिन इसके अतिरिक्त जो मूल अंतर अवधारणा और शब्द में है वह अर्थ संप्रेषण के आयाम (Dimension of meaning communication) का है। उदाहरणार्थ, कोई शब्द मात्र एक अर्थ बतला सकता लेकिन, अवधारणा केवल शाब्दिक अर्थ तक सीमित नहीं होती अपितु एक विशेष अर्थ आयाम (Meaning dimension) का संकेत करती है।

वैज्ञानिक व्यवस्था के अंतर्गत तथ्यों के किसी वर्ग या समूह या संकुल (Complex) को प्रदर्शित करने के लिये हम संक्षिप्त रूप में किसी एक शब्द अथवा कम से कम शब्दों का प्रयोग करते हैं उसे अवधारणा कहेंगे। इसमें दो बातें आवश्यक हैं। प्रथम, कोई अवधारणा जिन तथ्यों, वर्ग संकुलों का संकेत करती है वह स्थायी रूप से उन्हीं तथ्यों या संकुलों तक सीमित रहेगी। ऐसा नहीं है कि हम अपनी सुविधानुसार किसी अवधारणा का अर्थ आयाम बढ़ाते-घटाते रहें। द्वितीय, अवधारणा का कुल संप्रेषित अर्थ न केवल उसकी अपनी प्रकृति को बतलाता है, बल्कि, अवधारणा का कुल सम्प्रेषित अर्थ आयाम से स्पष्टत: भिन्न भी कर लेता है। उदाहरणस्वरूप सांस्कृतिक मानवशास्त्र में संस्कृत और सभ्यता दोनों अवधारणाएँ न केवल अपने अर्थ आयाम को स्पष्ट करती हैं बल्कि एक से दूसरे को अलग भी करती हैं। अवधारणाओं की सृष्टि के लिये इन बातों पर अनुसंधानकर्ता का ध्यान अवश्य होना चाहिए।

टास्क अवधारणा क्या है? उल्लेख करें।

अवधारणा की परिभाषा :

समाजशास्त्र विश्वकोश के अनुसार–"किसी वस्तु, घटना अथवा प्रक्रिया के वैज्ञानिक प्रेषण एवं बोध के आधार पर निर्मित सामान्य विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए जिन विशिष्ट शब्द-संकेतों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें वैज्ञानिक शब्दावली में अवधारणा, प्रत्यय या संबोध कहते हैं। एक अवधारणा, वस्तुओं, घटनाओं, व्यक्तियों, संबंधों,

नोट

प्रक्रियाओं आदि व विशिष्ट वर्ग अथवा समूह को दिया गया एक विशिष्ट नाम अथवा संकेतात्मक पद हैं।"

सामाजिक अनुसंधान में अनुभवजन्यात्मक तथ्यों के आधार पर हम अवधारणाओं की सृष्टि करते हैं जो किसी निश्चित अर्थ या प्रक्रिया की ओर संकेत करती हैं। **पालिन यंग** ने अवधारणा को मात्र शब्द संकेत (Word Indicator) न मानकर प्रक्रिया संकेत (process indicator) माना है। अतः कोई अवधारणा न केवल तथ्यों के किसी वर्ग को या उसकी विशेषताओं को या विलक्षणताओं को कम से कम शब्दों के द्वारा संकेत करती है बल्कि तथ्यों की प्रकृति, परिवर्तन अथवा उनकी प्रक्रिया के एक व्यवस्थित एवं तार्किक रूप में आधार की ओर भी संकेत करती है। ये (अवधारणाएँ) सभी परिवर्तनों, प्रक्रियाओं अथवा स्थिति विशेष जिनका व्यवस्थित एवं तार्किक प्रक्रिया से अध्ययन हुआ है, उनका सामान्यीकरण (generalisations) करती हैं। संक्षेप में पालिन यंग ने अवधारणा को परिभाषित करते हुए लिखा है, "अवधारणा तथ्यों के एक वर्ग या समूह की एक संक्षिप्त परिभाषा है।"

क्या आप जानते हैं

एकॉफ (Russell L. Ackoff) ने अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए इसके प्रकार्यात्मक पक्षों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। एकॉफ का मत है कि अवधारणाओं की आवश्यकता किसी समस्या के निर्माण और उसके समाधान के लिये प्ररचना तैयार करने में होती है। इस प्रकार अवधारणा की परिभाषा के अंतर्गत इसके शाब्दिक एवं प्रकार्यात्मक अर्थ का समावेश होता है।

3.5 अवधारणा की विशेषताएँ (Characteristics of Concept)

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम अवधारणाओं की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं–

(1) अवधारणाओं के एक समूह की एक ऐसी संक्षिप्त परिभाषा होती है जिसे एक दो शब्दों में व्यक्त किया जाता है।

(2) अवधारणा किसी व्यवहार प्रतिमान की संपूर्ण व्याख्या नहीं होती उसका संकेत मात्र होती है।

(3) अवधारणा का निर्माण वैज्ञानिक चिंतन के आधार पर होता है।

(4) अवधारणा का एक तार्किक आधार होता है और उसका निर्माण प्रत्यक्ष ज्ञान, वास्तविक निरीक्षण व यथार्थ अनुभव के बल पर होता है।

(5) अवधारणा सिद्धांत का संक्षिप्त रूप नहीं होती वरन् तथ्यों के एक वर्ग की विशेषताओं को संक्षेप में बताने वाला तथ्य होता है।

(6) अवधारणा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होता रहता है।

(7) अवधारणा किसी विशेष व्यवहार प्रतिमान को अभिव्यक्त करने वाला एक संक्षिप्त और व्यवस्थित वक्तव्य है।

(8) अवधारणा की प्रकृति परिवर्तनशील होती है क्योंकि समय, स्थान एवं उपकरणों के परिवर्तन तथा नए तथ्यों की प्राप्ति के साथ इसमें अक्सर परिवर्तन करना आवश्यक हो जाता है।

(9) अवधारणा केवल एक सारांश नहीं है बल्कि यह तथ्यों के किसी एक वर्ग को संक्षेप में स्पष्ट करने वाला प्रतीक है।

(10) अवधारणाएँ ही वह मुख्य आधार हैं जिनकी सहायता से उपयोगी परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

3.6 अवधारणा का महत्त्व (Importance of Concept)

वैज्ञानिक अन्वेषण का अंतिम उद्देश्य सामान्य सिद्धांतों का निर्माण करना होता है जो वास्तव में एक उच्च-स्तरीय अमूर्तता की अवधारणात्मक योजना होती है। कोई न कोई अनुसंधानकर्ता जो अनुभवजन्य अवलोकन करना चाहता है तथा अपने अवलोकन का विश्लेषण करना चाहता है तो उसे अवधारणात्मक संरचना का सहारा लेना पड़ता है। समाजशास्त्र जिसमें कि कई अवधारणात्मक शब्दों को सामान्य बोलचाल की भाषा से लिया गया है, जैसे–परिवार, विवाह, जाति, वर्ग, नातेदारी आदि उनका अर्थ समाजशास्त्र में सामान्य अर्थों से भिन्न है इसलिए अवधारणाएँ सुस्पष्ट होनी चाहिए।

मर्टन का कथन है कि सिद्धांत अवधारणाओं से बनते हैं। अवधारणाएँ स्वयं में सिद्धांत नहीं होतीं; जब विभिन्न अवधारणाएँ परस्पर तार्किक रूप से जुड़कर उपकल्पनाओं का निर्माण करती हैं तो घटना की व्याख्या एवं विश्लेषण करने में सक्षम होने पर सिद्धांतों का निर्माण होता है।

अवधारणाएँ किसी भी प्रघटना, स्थिति एवं अनुभव का संक्षिप्तीकरण करके एक शब्द अथवा शब्द-समूह के माध्यम से अभिव्यक्त करने का तरीका है।

नोट्स हम व्यक्तित्व, भीड़ एवं समूह की विभिन्न विशेषताओं को इन अवधारणाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं, अत: अवधारणाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति संभव होती है।

अनुसंधान में अवधारणाओं के माध्यम से प्रघटनाओं को समझने में सहायता मिलती है।

अवधारणाएँ सिद्धांत निर्माण में प्रमुख भूमिकाएँ निभाती हैं। अवधारणा का प्रत्येक शब्द सामाजिक जगत के एक विशेष पक्ष को व्यक्त करता है जिसे किसी विशिष्ट लक्ष्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

अवधारणाएँ विषय की विशिष्ट भाषा का निर्माण करती हैं जिसके माध्यम से संचार संभव हो जाता है। अवधारणाओं का प्रयोग करने वाले एक अवधारणा का अर्थ समान अर्थ में ही समझते हैं। इसी संदर्भ में गुडे तथा हाट ने लिखा है, किसी भी विज्ञान से संबंधित अवधारणाओं को अत्यधिक विशिष्ट अर्थ में संप्रेषण योग्य होना चाहिए। उन्हें किसी भी प्रकार से अस्पष्ट अथवा संदेहपूर्ण नहीं होना चाहिए। बल्कि उनकी रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनका निर्माण करने वाली सभी इकाइयों को समझा जा सके।"

इसी अवधारणा के वास्तविक अर्थ के संप्रेषण पर ही उसकी उपयोगिता और सफलता निर्भर है।

सिद्धांत निर्माण की दृष्टि से अवधारणाओं का अमूर्तिकरण आवश्यक है। अमूर्त अवधारणाओं के माध्यम से ही सिद्धांत निर्मित कर विशिष्ट आनुभाविक प्रघटनाओं के घटित होने को दर्शाया जा सकता है।

अवधारणाओं का महत्त्व दर्शाते हुए गुडे एवं हाट ने लिखा है कि अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया अनुभवजनित ज्ञान को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है। तथ्यों के एक वर्ग या समूह के गुणों का समझना, उनका अध्ययन करना, उन्हें व्यवस्थित और पृथक् करना अवधारणाओं के माध्यम से संभव होता है। अवधारणाएँ हमारे विचारों को पनपाने की दृष्टि से आवश्यक हैं।

एक अनुसंधानकर्ता जब नवीन तथ्य संकलित करता है तो वह यह अनुभव करने लगता है कि तथ्यों के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट किए बिना उनका समुचित संचार संभव नहीं है और यह कार्य केवल अवधारणाओं के विकास से ही हो सकता है। इस प्रकार से अवधारणाएँ वैज्ञानिक पद्धति का ही एक अंग हैं जिनके समुचित प्रयोग के बिना सामाजिक शोध को वस्तुनिष्ठ रूप नहीं दिया जा सकता। अंत में हम मर्टन के शब्दों में कह सकते हैं कि " हमारा अवलोकन तथा एकत्रित तथ्य कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों किंतु अवधारणाओं के अभाव में किसी भी शोध का कोई महत्त्व नहीं है।"

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. वैज्ञानिक अन्वेषण का अंतिम उद्देश्य सामान्य ·············· का निर्माण करना होता है।
2. परिवार, विवाह, नातेदारी आदि का अर्थ ·············· में सामान्य अर्थों से भिन्न है।
3. अवधारणा को विकसित करने की प्रक्रिया ·············· ज्ञान को प्राप्त करने व उससे निष्कर्ष निकालने में सहायक सिद्ध होती है।

3.7 सिद्धांत (Theory)

सामाजिक विज्ञानों में 'सिद्धांत' शब्द का प्रयोग हम प्राय: देखते हैं। समाज वैज्ञानिकों ने भी इसकी उपयोगिता पर विस्तार से प्रकाश डाला है। परंतु, जब कभी हम यह समझना चाहते हैं कि सामाजिक विज्ञानों में सिद्धांत का क्या अर्थ है तो इसके उत्तर में सिद्धांत से संबंधित अनेक परिभाषाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जो न केवल परस्पर विरोधी होती हैं, बल्कि अस्पष्ट एवं संदिग्ध भी होती हैं। सिद्धांत (Theory), 'सैद्धांतिक उन्मेष' (theoretical orientation), 'सैद्धांतिक संदर्भ' (theoretical frame of reference), सैद्धांतिक विस्तार' (theoretical sketch), 'मॉडल' (model) ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका प्रयोग सामाजिक विज्ञानों में कहीं तो एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में किया गया है और कहीं-कहीं इन शब्दों में अंतर स्थापित किया गया है।

'सिद्धांत अवधारणाओं के माध्यम से व्यक्त किये गये सामान्यीकरण (generalisation) हैं। 'सैद्धांतिक उन्मेष' का अर्थ किसी अन्य सिद्धांत या सिद्धांत समूहों की ओर विशेष रूप से प्रभावित होता है जैसे मार्क्सवादियों (Marxists) के विचारों का उद्‌गम मार्क्स का साहित्य है। 'सैद्धांतिक संदर्भ' किसी भी ऐसे कथन का सूचक है जो कि किसी अन्य सिद्धांत पर आधारित होते हैं जैसे, ज्योतिषशास्त्र में बहुत सारे सैद्धांतिक संदर्भ नक्षत्र विज्ञान के सिद्धांतों से जुड़े होते हैं। इसी प्रकार 'सैद्धांतिक विस्तार किसी सिद्धांत पर आधारित उसका विस्तृतीकरण होता है। प्राय: सभी सिद्धांत अवधारणाओं की एक विशिष्ट कड़ी के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। इसमें हमारी सीमाएँ अंकित होती हैं। अनुसंधान प्रचनाएँ (research designs) सिद्धांत के इस पक्ष से सीधा संबंध रखती हैं। 'मॉडल' सिद्धांत का समानार्थी शब्द नहीं है। लेकिन, कहीं-कहीं लोग छोटे-मोटे अनुसंधान मॉडलों को भी सिद्धांत की कोटि में रखने लगे हैं। प्राय: इन सभी मॉडलों का उन्मेष किसी न किसी सैद्धांतिक समूह की ओर होता है।

परसी कोहेन (Percy S. Cohen) ने भी अपनी पुस्तक 'मॉडर्न सोशल थ्योरी' में सिद्धांत के बारे में प्रकाश डाला है जिससे सिद्धांत से संबंधित हमारे सामान्य भ्रम दूर होते हैं और सिद्धांत का महत्त्व स्पष्ट होता है। उनका कहना है कि सिद्धांत शब्द एक खुले चेक के समान है जिसका संभावित मूल्य उसके उपयोग करने वाले और उसके उपयोग तरीके पर निर्भर करता है। कोहेन का मत है कि जब हम किसी कथन को सिद्धांत की संज्ञा देते हैं तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि उसका मूल्य 'मात्र तथ्यों' (mere facts) से अधिक है। सिद्धांत का महत्त्व इसीलिए स्वीकार किया जाता है कि वे तथ्यों से आगे निकल जाते हैं। यदि सिद्धांत तथ्यों से आगे नहीं निकलें तो उनका कोई मूल्य या महत्त्व नहीं रह जायेगा। तथ्य केवल उन कथनों (statements) को कहा जाता है जिनके बारे में हमारा विश्वास है कि वे किन्हीं विशिष्ट घटनाओं के बारे में जो घटित हुई हैं, सच हैं। कभी-कभी हम भ्रमवश सिद्धांत का संबंध कुछ विशिष्ट घटनाओं से लगाते हैं। परंतु कोहेन ने इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए कहा है कि तथ्यों का संबंध घटनाओं की संपूर्ण शृंखला से होता है। इस बात को उसने एक उदाहरण द्वारा और स्पष्ट किया है। कोहेन के ही शब्दों में, "यदि कोई यह कहता है कि उसने एक पत्ते को झड़ते हुए देखा है तो उसने एक तथ्य कहा है। परंतु, वह यह कहता है कि उसने प्राय: पत्तों को झड़ते देखा है, तो वह मात्र अनिर्दिष्ट विशिष्ट घटनाओं से संबंधित अनेक कथनों को एक साथ जोड़ता है, जो कि एक जटिल तथ्य है। परंतु यदि वह यह कहता है कि सभी पत्तों को अनिवार्य रूप से झड़ जाना है तो वह किसी तथ्य को न कहकर एक सिद्धांत को प्रस्तुत करता है; क्योंकि, जो कुछ उसने सभी पत्तों के बारे में कहा है वह वही नहीं है जो उसने देखा है; कोई भी व्यक्ति सभी पत्तों का निरीक्षण नहीं कर सकता, क्योंकि, झड़ने वाले पत्तों की संख्या अनंत हो सकती है।

कभी ऐसा कहा जाता है कि सिद्धांत या कुछ सिद्धांत केवल सामान्य तथ्य (general facts) मात्र हैं, परंतु यह

सत्य नहीं है। सभी सिद्धांत निश्चित रूप से तथ्यों से आगे निकल जाते हैं। इसी प्रकार जब तथ्यों के बारे में कोई कथन (statement) कहा जाता है तो उसका तात्पर्य यह होता है कि सभी कथन भी तथ्यों से आगे निकल जाते हैं। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि सभी सिद्धांत तो तथ्यों से आगे निकल जाते हैं परंतु सभी कथनों को जो तथ्यों से आगे निकल जाते हैं, उन्हें सिद्धांत की कोटि में नहीं रखा जा सकता। अनुसंधान में, तथ्यों के आधार पर अनुसंधान से संबंधित समस्या के बारे में अनुमान (guess) लगाया जाता है और यही अनुमान अनुसंधानकर्ता की उपकल्पना (hypothesis) होती है। उपकल्पना स्वयं में कोई सिद्धांत नहीं है। यह केवल विशिष्ट घटनाओं या घटनाओं के विशिष्ट संकुलों (particular events or particular complexes of events) के बारे में अनुसंधानकर्ता का अनुमान है जिसकी सत्यता का परीक्षण होना बाकी है। उपकल्पना की सत्यता का परीक्षण हम निरीक्षण या किसी अन्य पद्धति द्वारा करते हैं और परीक्षण के उपरांत अनुसंधान से संबंधित आवश्यक अवधारणाओं को विकसित किया जाता है जिससे सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया में सहायता मिलती है।

3.8 सिद्धांत क्या है? (What is Theory?)

जब से मानव जाति ने श्रृंखलाबद्ध चिंतन प्रक्रिया (linked reflective thought process) का प्रारंभ किया है तब से ऐसे संकेत देखने को मिलते हैं कि ये जाति अपने सतत निरीक्षण एवं अनुभव के आधार पर सिद्धांतों का निर्माण करती रही है। किसी जाति, प्रजाति, समूह अथवा राष्ट्र को अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु अपने अनुभवों को योजनाबद्ध रूप में आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित करना होता है। इतना निश्चित रहा है कि आदिकाल से ही जब से मनुष्य ने अपने समाज का संगठन किया है जातिगत संस्कृति की रक्षा हेतु लोगों ने आने वाली पीढ़ियों को अपना अनुभव हस्तांतरित किया है। ये सिद्धांत कोई आवश्यक रूप में दार्शनिक ही नहीं होते बल्कि खेती, गृहस्थी से भी संबंधित हो सकते हैं। भारतवर्ष में मौसम तथा कृषि से संबंधित सिद्धांत व्यावहारिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होते रहे हैं। अकाल के लक्षण, उपज, मौसम आदि सभी विषयों से संबंधित सामूहिक सिद्धांत अत्यंत ही लोकप्रिय रहे हैं। परंतु इन सिद्धांतों की लोकप्रियता का कारण कोई सांस्कृतिक या भावनात्मक रूढ़िवादिता नहीं है। बल्कि अनुभवजन्यात्मक अन्वेषण (emperical investigation) है। एक निश्चित सीमा के अंतर्गत एक निश्चित प्रक्रिया से अनुबद्ध किसी भी सिद्धांत का निरंतर परीक्षण किया जा सकता है। वस्तुत: आधार रूप में जो मतांतर सिद्धांत के संबंध में हैं, वही दृष्टिकोण अंतराल (attitudinal gap) है। उदाहरणस्वरूप, बुद्धिजीवियों का एक वर्ग यह मानता रहता है कि सिद्धांत परीक्षण योग्य या परीक्षण प्रस्तुत हों, यह आवश्यक नहीं है। इसके अंतर्गत प्राय: अतिन्द्रिय जगत के अनुभव, धार्मिक सिद्धांत आदि आते हैं। अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सिद्धांत न केवल बोधगम्य होता है, अर्थात् जिसका अर्थ सर्वसुलभ हो, बल्कि उसका परीक्षण भी सर्वसुलभ हो सके। इस दृष्टिकोण में अनेक विचारक आते हैं। अनुभवजन्यात्मक अनुसंधान (emperical research) के साधक भी इस दृष्टिकोण को अपनाते हैं। वास्तव में भौतिक विज्ञान में भी सिद्धांत के ये दो पक्ष सर्वमान्य हैं। किसी सिद्धांत के पीछे हजारों वर्षों के अनुभव हो सकते हैं और होते भी हैं, और हजारों वर्षों का यही अंतराल उनकी क्षमता का परिचायक होता है। इस प्रकार सिद्धांत की सृष्टि देश और काल से बिल्कुल आबद्ध नहीं है। जब हमारे अनुभव, बार-बार के अनुभव, परीक्षित अनुभव, पुन:परीक्षित अनुभव एक व्यवस्थात्मक प्रतीक का रूप ले लेते हैं तो सिद्धांत की सृष्टि हो जाती है। इस पूरी सृष्टि की प्रक्रिया में निरंतर, बार-बार ऐसे शब्दों का चयन किया जाता है जिनसे कुछ प्रकार के विचारों को अर्थ या संकेत मिल जाता है। इन्हें ही अवधारणाएँ कहते हैं। विचार अमर बेल की तरह होता है जिसकी जड़ें नहीं होतीं और जो किसी वृक्ष के सहारे ही जीता है, जो प्राय: स्वयं नहीं मरता, भले ही वृक्ष मर जाये। यही वृक्ष शब्द है। अत: किसी भी विचार को किसी न किसी शब्द पर आश्रित होना पड़ता ही है। जैसे-जैसे हम विचार करते हैं, हमारे समक्ष निश्चित रूप से ये शब्द भी तैरते रहते हैं। लिखित रूप में अथवा मौखिक रूप में, इन्हीं के द्वारा विचारों का संप्रेषण भी होता रहता है। जब हम ऐसे कुछ निश्चित तथा विश्वसनीय शब्दों को खोज लेते हैं जो विचारों के वाहक के रूप में काम आते हैं और जब अनुभव व्यवस्थात्मक प्रतीक का रूप लेने लगते हैं तो सिद्धांत का जन्म हो जाता है। जो शब्द किसी अकेले अर्थ का द्योतक होता है उसे अंग्रेजी में शब्दावली (terminology) कहा जाता है जो शब्द अनुभवजन्यात्मक व्यवस्थात्मक प्रतीकों के अर्थ बतलाते हैं, वे अवधारणा बन जाते हैं, और इन्हीं सृष्टिगत एवं परीक्षित शब्दों और अवधारणाओं पर सिद्धांत का निर्माण होता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. कृषि से संबंधित सिद्धांत व्यावहारिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में .... होते रहते हैं।
5. किसी सिद्धांत के पीछे हजारों वर्षों के अनुभव हो सकते हैं और होते भी है, और हजारों वर्षों का यही अंतराल उनकी .... का परिचायक होता है।
6. सृष्टिगत एवं परिक्षित शब्दों और अवधारणाओं पर .... का निर्माण होता है।

3.9 सिद्धांत के मूल तत्व (The Elements of Theory)

जे० एच० टर्नर ने सिद्धांतों के चार मूल तत्वों की चर्चा की है, जो निम्नलिखित हैं–

(1) अवधारणाएँ (Concepts)

(2) परिवर्त्य अथवा चर (Variables)

(3) कथन (Statements)

(4) आकार (Formats)

सिद्धांत के उक्त चारों मूल तत्वों की व्याख्या करते हुए टर्नर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इन्हीं के माध्यम से सिद्धांतों का निर्माण होता है; टर्नर की इस व्याख्या को निम्नलिखित बिंदुओं पर विवेचित किया जा रहा है–

(I) अवधारणा (Concept)–अवधारणाएँ घटनाओं को प्रदर्शित करती हैं। समस्त यथार्थ में से आवश्यकतानुसार, जितने अंश को हम अलग करके समझते हैं, उसे अवधारणा कहते हैं। अवधारणा वह प्रतीक या शब्द (या शब्द-समूह) है जिसके द्वारा किसी यथार्थ का बोध होता है। जैसे, समूह की अवधारणा से दो या दो से अधिक व्यक्ति, नेतृत्व, शक्ति, सामूहिक उद्देश्य आदि यथार्थ समझे जाते हैं। समाजीकरण की अवधारणा से हम यह समझते हैं कि व्यक्ति भूमिका कैसे ग्रहण करता है। अपराध की अवधारणा से हम उस व्यवहार को समझते हैं जिससे सामाजिक, सांस्कृतिक या विधिक हानि पहुँचती है। सामाजिक भूमिका से हम यह समझते हैं कि व्यक्ति क्या करता है। यथार्थ को सीमित करके, प्रतीक या शब्दों से यथार्थ को समझना, अवधारणा का उद्देश्य है। अवधारणा की उपयोगिता निम्नलिखित है–

(1) अवधारणाओं की रचना परिभाषा द्वारा की जाती है। परिभाषित पद का जब अवधारणा के रूप में प्रयोग किया जाता है तो, उसके माध्यम से, वैज्ञानिक घटनाओं का अवलोकन कर लिया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अवधारणा से उसी यथार्थ को समझता है जिसे अवधारणा द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। जैसे, जब हम **'**संघर्ष**'** की अवधारणा का प्रयोग करते हैं तो समझते हैं कि दो पक्षों में से, एक पक्ष, दूसरे पक्ष की लक्ष्य-पूर्ति में, बाधा डाल रहा है।

(2) अवधारणा से समान अर्थ-बोध (common meaning) का संचार होता है। वैज्ञानिक समुदाय का प्रत्येक सदस्य एक अवधारणा का एक ही अर्थ लगाता है। शब्दबद्ध होने के कारण अवधारणाएँ बिल्कुल तटस्थ (neutral) नहीं होतीं। गणित में जिस प्रकार प्रतीकों का (अंक चिह्न) तटस्थ बोध कराता है, उस प्रकार सामाजिक विज्ञानों की अवधारणाएँ तटस्थ नहीं होतीं। इस कारण कुछ समाज वैज्ञानिक अवधारणा के स्थान पर इकाई (unit) का प्रयोग करने लगे हैं।

(3) अवधारणाओं द्वारा यथार्थ को वर्गीकृत किया जाता है। वर्गों में बाँट देने से विश्लेषण में सहायता मिलती हैं।

(4) यथार्थ का आमूर्त रूप (abstraction) अवधारणाओं द्वारा प्रकट होता है। अवधारणाएँ दो प्रकार की होती हैं।

(अ) वास्तविक अवधारणाएँ (Referent Concepts)–अवधारणाओं से ठोस, वास्तविक एवं तथ्यगत घटनाओं का बोध होता है। जैसे, अपराध, संघर्ष, हिंसा, परिवर्तन, विघटन आदि।

(ब) अवास्तविक अवधारणाएँ (Non-Referent Concepts)–जिन अवधारणाओं से ऐसे गुण या वस्तु का बोध होता है जो वास्तविक जगत में दिखाई नहीं पड़ती, परंतु सिद्धांत निर्माण या यथार्थ की व्याख्या करने में उनका प्रयोग किया जाता है। जैसे, ईश्वर, स्वर्ग-नरक, सामाजिक संतुलन, विश्वआत्मा आदि का ठोस अस्तित्व तो नहीं होता किंतु इनसे सामाजिक घटनाओं की समझ अवश्य होती है। गणित के सभी अंक और चिह्न मात्र प्रतीक स्वरूप होते हैं, परंतु उनसे यथार्थ की रचना, यथार्थ की मात्रा या वर्गीकरण निर्धारित होता है।

अवधारणाओं के आमूर्त चरित्र से एक समस्या उठ खड़ी होती है। हर क्षण बदलने वाले जगत के विषय में अवधारणाएँ किस प्रकार आवश्यक ज्ञान दे सकती हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये कार्यकारी परिभाषा (Operational definition) या अवधारणा का निर्माण किया जाता है। अपनी आवश्यकतानुसार घटनाओं की कार्यकारी परिभाषा वैज्ञानिक बना लेता है। उसके अध्ययन में किसी अवधारणा से केवल वही और उतना ही समझा जायेगा, जितना कि कार्यकारी परिभाषा में वह रखना चाहता है। जैसे, किसी अध्ययन में अपराधी की कार्यकारी परिभाषा देते हुए कहा गया हो "व्यक्ति जो अदालत से सजा पाता है, अपराधी है।" "मरीज वह है जो अस्पताल में रोगी की हैसियत से पंजीकृत किया गया है।" "ग्रामीण नेता वह है जो निर्वाचन द्वारा किसी स्थानीय निकाय का पदाधिकारी चुना गया है।"

अवधारणाओं से यथार्थ परिभाषित और वर्गीकृत होता है। यथार्थ को व्यवस्थित रूप देने के लिये अवधारणाओं का प्रयोग किया जाता है।

(II) परिवर्त्य अथवा चर (Variables)–यह भी अवधारणा है। अवधारणाएँ दो तथ्य प्रगट करती हैं। पहला, घटनाओं का केवल नामकरण करती है। दूसरा, घटनाओं में अंशों का अंतर प्रगट करती हैं। जैसे 5 से 10 वर्ष के बालक, 11 से 15 वर्ष के बालक, अधिक संयुक्तता वाले संयुक्त परिवार, कम संयुक्तता वाले संयुक्त परिवार। इस प्रकार की अवधारणाओं को परिवर्त्य अथवा चर भिन्नता है। टॉलकट पारसन्स सिद्धांत-निर्माण की प्रक्रिया (Process of theory building) पर जोर देते हुए सिद्धांत की व्याख्या करता है, वहीं मर्टन सिद्धांत सूत्र की परिभाषा प्रस्तुत करता है। दोनों समाजशास्त्री यह स्वीकार करते हैं कि सिद्धांत की सृष्टि तथ्यों से ही होती है। पारसंस द्वारा दी गई परिभाषा में इन्हीं ज्ञात तथ्यों पर बल दिया गया है। अर्थात् दूसरी प्रक्रिया की ओर संकेत किया गया है। इन्हीं ज्ञात तथ्यों से अवधारणाओं की भी सृष्टि होती है। जब अवधारणाएँ योजनाबद्ध रूप में अंतर्सम्बन्धित होकर किसी सत्य का उद्घाटन करती हैं तो सिद्धांत का जन्म हो जाता है। इस प्रकार इन दोनों परिभाषाओं में तथ्यगत अंतर देखने को नहीं मिलता।

मर्टन दारा दी गई सिद्धांत की परिभाषा को लूमिस (P. Loomis) ने भी स्वीकार किया है।

लूमिस के अनुसार–"तर्कसंगत रूप में अंत: संबंधित ऐसी अवधारणाएँ जिन्हें निरीक्षणों द्वारा सुझाये गये प्रस्तावों में संयुक्त किया गया हो, एक सिद्धांत का निर्माण करती हैं।" इस प्रकार मर्टन के समान लूमिस भी सिद्धांत को अवधारणाओं का योजनाबद्ध संयुक्तीकरण मानते हैं।

उपरोक्त परिभाषाओं से मूलत: तीन महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं–(1) सिद्धांत एवं अवधारणाएँ केवल उन्हीं तथ्यों पर आधारित होते हैं जिनकी विश्वसनीयता सिद्ध है। (2) सिद्धांत अवधारणाओं का योजनाबद्ध प्रस्तुतीकरण है। (3) सिद्धांत हमारे विस्तृत निरीक्षणों को योजनाबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिये सुलभ कड़ी है।

ज्योंबर्ग एवं **रोजरनेट** ने वैज्ञानिक सिद्धांत की परिभाषा देते हुए इसे विस्तृत निरीक्षणों की कड़ी (link) के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ऐसे सभी निरीक्षण जिन्हें सिद्धांत अर्थपूर्ण रूप में जोड़ता है, अनुभवजन्यात्मक अर्थपूर्णता के भी द्योतक होते हैं। इसी आधार पर ज्योंबर्ग एवं रोजरनेट ने विज्ञान में सिद्धांत के तीन मुख्य आयामों (dimensions) की चर्चा की है–(1) एक विस्तृत तर्कयुक्त संरचना अथवा स्वरूप, (2) वे सामान्यीकरण या प्रस्ताव जो अनुभवजन्यात्मक तथ्यों को एक प्रतिमान देते हैं तथा (3) वे अनुमान (assumptions) जो वैज्ञानिक पद्धति एवं तथ्यों की प्रकृति से संबंधित होते हैं।

सिद्धांत से संबंधित टॉलकट पारसन्स ने जिन्हें सिद्धांत के आवश्यक तत्व कहा है, उन्हीं को ज्योंबर्ग और नेट आयाम कहते हैं। इसी को सूत्ररूप में पारसन्स ने कहा है, "एक सैद्धान्तिक व्यवस्था अनुभवजन्यात्मक संदर्भ के तर्कसंगत रूप में अंत: निर्भरशील (logically interdependent) सामान्यीकृत अवधारणाओं का एक समूह है।" इस सूत्र में पारसन्स ने अवधारणाओं पर भी एक अंकुश लगा दिया है, अर्थात् अवधारणाओं को अंतत: योजनाबद्ध किस प्रकार

नोट

किया जा सकता है या किन अवधारणाओं को योजनाबद्ध किया जा सकता है, इसके लिये पारसन्स ने एक आधार प्रस्तुत किया है। इसका अर्थ यह है कि अवधारणाएँ तर्कसंगत रूप में अंत: निर्भरशील होनी चाहिए। इस प्रकार सभी अवधारणाएँ जिनका संदर्भ हम सिद्धांत निर्माण में लेते हैं वे एक दूसरे को भी स्वत: सिद्ध करती रहती हैं।

पारसन्स द्वारा दी गई परिभाषा का अधिक सुगम रूप समकालीन पद्धतिशास्त्रियों (contemporary methodologist) ने प्रस्तुत किया है। उदाहरणस्वरूप ज्योंबर्ग तथा रोजरनेट ने लिखा है, "वैज्ञानिक सिद्धांत विस्तृत निरीक्षणों की एक कड़ी है। अधिक विशिष्ट एवं तार्किक दृष्टि से सिद्धांत अंत: संबंधित प्रस्तावों (propositions) या कथनों (statements) का समूह (set) है। जो अनुभवजन्यात्मक रूप में अर्थपूर्ण होते हैं तथा साथ ही वे उन अनुमानों (assumptions) के लिये भी अर्थपूर्ण होते हैं जिसे अनुसंधानकर्ता अनुसंधान में अपनाई गई पद्धति एवं आंकड़ों के लिए चुनता है।"

उपर्युक्त परिभाषा में वैज्ञानिक सिद्धांत के निर्माण की प्रक्रिया के अतिरिक्त दूसरी व्यावहारिक उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे, सिद्धांत अनुभवजन्यात्मक रूप में तो अर्थपूर्ण होते ही हैं, साथ ही उन अनुमानों के लिये भी महत्त्वपूर्ण हैं जिनका हम निर्माण, परीक्षण तथा पुन: परीक्षण अनुसंधान में करते रहते हैं।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि सिद्धांत हमारे उन अनुभवों पर आधारित होते हैं जो तर्कयुक्त होते हैं और अंत: निर्भरशील भी होते हैं। लेकिन ऐसे सभी अनुभव बार-बार परीक्षित हो गए हों ताकि वे अवधारणाओं का रूप ले सकें। इन्हीं अवधारणाओं को जब हम तर्कसंगत रूप में योजनाबद्ध करते हैं, तो सिद्धांत कहते हैं।

जे० एच० टर्नर के अनुसार–"सिद्धांत, एक मानसिक क्रिया है। यह विचारों के विकास की प्रक्रिया है जिसके माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि कोई घटना क्यों और कैसे घटती है।"

माइकल हेरालॉम्बस के अनुसार–"सिद्धांत ऐसे विचारों का समुच्चय है, जो इस बात का दावा करते हैं कि कोई चीज किस प्रकार से कार्य करती है।"

समाजशास्त्र विश्वकोश के अनुसार–"विभिन्न परिवर्त्यों या चर (Variables) के मध्य कारणात्मक संबंधों को प्रदर्शित करने वाले प्रस्थापनाओं के एक समूह को सिद्धांत कहते हैं। यह एक ऐसा सामान्यीकरण है जिसे तथ्यों के एक बृहद समूह के प्रमाणीकरण के बाद प्राप्त किया जाता है। सिद्धांत किसी घटना के संबंध में 'क्यों'? और 'कैसे'? के प्रश्नों के उत्तर देने का एक तरीका है।"

3.10 परिकल्पना का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Hypothesis)

परिकल्पना सिद्धांत के क्षेत्रों में पाये जाने वाले ऐसे कथनों को कहते हैं जिन्हें परीक्षण की कसौटी पर कसा जा सकता है। एक परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों (variables) के बीच पाये जाने वाले संबंधों का अनुभवात्मक रूप से परीक्षण करने योग्य कथन है। परिकल्पना एक तीक्ष्ण अनुमान है जिसका प्रतिपादन तथा अस्थायी स्वीकृति अवलोकित तथ्यों अथवा दशाओं की व्याख्या करने और अनुसंधान का आगे मार्गदर्शन करने के लिए किया जाता है। सामाजिक घटनाओं के अध्ययनों को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने में परिकल्पना का निर्माण अति आवश्यक है। यह सफल अनुसंधान की एक आवश्यक शर्त है। विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर हम परिकल्पना को और भी अधिक उत्तमता से समझ सकते हैं।

विभिन्न विद्वानों ने प्राक्कल्पना को निम्न प्रकार परिभाषित किया है–

'वेबस्टर न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी आफ दी इंगलिश लेंग्वेज' के अनुसार, "प्राक्कल्पना एक विचार, दशा या सिद्धांत होती है जोकि संभवत: बिना किसी विश्वास के मान ली जाती है जिससे कि उससे तार्किक परिणाम निकाले जा सकें और ज्ञात या निर्धारित किये जाने वाले तथ्यों की सहायता से इस विचार की सत्यता की जाँच की जा सके।"

लुण्डबर्ग के अनुसार, "एक प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ सामान्यीकरण है, जिसकी सत्यता की परीक्षा अभी बाकी है।"

गुडे एवं हाट के अनुसार, "प्राक्कल्पना एक ऐसी मान्यता होती है जिसकी सत्यता सिद्ध करने के लिए उसका परीक्षण किया जा सकता है।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "एक कार्यवाहक विचार जो उपयोगी खोज का आधार बनता है, कार्यवाहक प्राक्कल्पना माना जाता है।"

बोगार्डस के अनुसार, "एक प्राक्कल्पना एक प्रस्थापना (Proposition) है जिसका परीक्षण किया जाना है।"

पीटर एच. मन्न के शब्दों में, "प्राक्कल्पना एक कामचलाऊ अनुमान है।"

टाउन सैण्ड के अनुसार, "प्राक्कल्पना अनुसंधान की समस्या के लिए सुझाया गया उत्तर है।"

एम. एच. गोपाल के अनुसार, "यह ज्ञात व प्राप्त तथ्यों के सामान्य अवलोकन पर आधारित एक कार्यकारी अस्थायी उपचार अथवा हल होती है जो कि कुछ विशेष घटनाओं को समझने व अन्य खोज में मार्गदर्शन के लिए अपनायी जाती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **प्राक्कल्पना एक ऐसा पूर्व विचार, निष्कर्ष, कथन, सामान्यीकरण, अमूर्तीकरण, अनुमान या प्रस्थापना है जिसे अनुसंधानकर्ता अपनी शोध की समस्या हेतु निर्मित करता है और उसकी सत्यता की जाँच करने के लिए आवश्यक सूचनाओं का संकलन करता है। एक प्राक्कल्पना विभिन्न चरों** (variables) **के बीच संबंधों को स्थापित करती है। प्राक्कल्पना सामाजिक अनुसंधान और खोज को आधार प्रदान करती है**, नवीन ज्ञान प्राप्ति की प्रेरणा प्रेरणा प्रदान करती है। प्राक्कल्पना की तुलना हम ध्रुव तारे या कुतुबनुमा से कर सकते हैं जो अध्ययनकर्ता का मार्गदर्शन करती है और उसे सही दिशा बताती है। प्राक्कल्पना के अभाव में अनुसंधान के क्षेत्र में हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते।

3.11 एक अच्छी परिकल्पना की विशेषताएँ (Qualities of a Good Hypothesis)

परिकल्पना केवल ख्याली पुलाव तथा मीठे सपने नहीं होने चाहिए वरन् ऐसी होनी चाहिए जिनका प्रयोग हम अनुसंधान में कर सकें। एक उत्तम और उपयोगी परिकल्पना में निम्नांकित विशेषताएँ अथवा गुण होने चाहिए–

(i) **स्पष्टता (Clarity)**–परिकल्पनाएँ दो दृष्टि से स्पष्ट होनी चाहिए, एक भाषा की दृष्टि से तथा दूसरी अवधारणा की दृष्टि से। परिकल्पना में प्रयुक्त शब्द और उनके कार्य तथ विचार स्पष्ट तथा भ्रमरहित होने चाहिए। जहाँ संभव हो विशिष्ट शब्दों की परिभाषा और व्याख्या भी दी जानी चाहिए। परिकल्पना में प्रयुक्त शब्द ऐसे हों कि दूसरे लोग भी उनका सही अर्थ समझ सकें। परिकल्पना की स्पष्टता अनुसंधानकर्ता की सूझबूझ और अनुभव पर भी निर्भर करती है।

(ii) **प्रयोगसिद्धता (Empirical Referents)**–परिकल्पनाओं में इस प्रकार की अवधारणाओं का उपयोग होना चाहिए जिनकी सत्यता की जाँच वास्तविक तथ्यों के आधार पर की जा सके। परिकल्पना में किसी नैतिकता अथवा आदर्श को प्रस्तुत करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए अर्थात् उसमें 'अच्छे' और 'बुरे' जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। परिकल्पना वास्तविक तथा वैज्ञानिक आधार पर जाँच करने योग्य होनी चाहिए। इस प्रकार की आदर्शात्मक परिकल्पनाएँ जैसे दहेज हिंदू समाज पर एक कलंक है, संयुक्त परिवार वर्तमान परिस्थितियों में अनुपयोगी हैं, जीव हत्या पाप है, दान देना अच्छी बात है आदि शोध की दृष्टि से अनुपयुक्त मानी जाती हैं।

(iii) **विशिष्टता (Specificity)**–एक प्राक्कल्पना को अध्ययन विषय के किसी विशिष्ट पहलू से संबंधित होना चाहिए। सामान्य शब्दों में व्यक्त की गयी प्राक्कल्पना का परीक्षण करना कठिन होता है एवं उसका क्षेत्र भी विस्तृत एवं अनिश्चित होता है। ऐसी प्राक्कल्पनाएँ तथ्य संकलन की दृष्टि से अनुपयोगी होती हैं। अत: यह आवश्यक है कि उपयोगी अध्ययन के लिए हम विशिष्ट और छोटी-छोटी प्राक्कल्पनाएँ बनाएँ जो हमें तथ्यों के संकलन में, शोध को व्यवस्थित करने में एवं निष्कर्ष निकालने में सहायता प्रदान कर सकें।

(iv) **उपलब्ध-प्रविधियों से संबद्ध (Related to Available Techniques)**–प्राक्कल्पना का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसकी सत्यता की परख उपलब्ध प्रविधियों के द्वारा हो सके। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि अनुसंधानकर्ता को उपलब्ध प्रविधियों की जानकारी हो। ऐसी प्राक्कल्पनाएँ अनुसंधान की दृष्टि से व्यर्थ मानी जाती हैं जिनके परीक्षण के लिए हमारे पास प्रविधियाँ उपलब्ध न हों।

नोट

क्या आप जानते हैं गुडे एवं हाट लिखते हैं कि "जो सिद्धांतकार यह नहीं जानता है कि उसकी प्राक्कल्पना की जाँच के लिए कौन-कौन सी प्रविधियाँ उपलब्ध हैं, वह उपयोगी प्रश्नों के निर्माण में असफल रहता है।"

अत: स्पष्ट है कि प्राक्कल्पनाएँ प्रचलित प्रविधियों की पहुँच में हों, किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम प्राक्कल्पनाओं की जाँच के लिए नवीन प्रविधियों का निर्माण नहीं कर सकते। वर्तमान में विभिन्न समस्याओं एवं प्राक्कल्पनाओं के अध्ययन हेतु वैज्ञानिकों ने अनेक नवीन प्रविधियों को विकसित किया है।

(*v*) सिद्धांत-समूह से संबंधित (Related to By of Theory)–गुडे एवं हाट कहते हैं कि सामाजिक अनुसंधान के नौसिखिये विद्यार्थी इस नियम की अक्सर अवहेलना कर जाते हैं कि उनकी प्राक्कल्पना किसी सिद्धांत से संबद्ध नहीं होती। सामान्यत: वे ऐसे विषय का चयन करते हैं जो उन्हें रुचिकर तथा आकर्षक प्रतीत होता है। वे इस बात का भी ध्यान नहीं रखते कि उनका अनुसंधान कार्य पूर्व प्रचलित किसी सिद्धांत को गलत प्रमाणित करने अथवा उसकी पुष्टि करने या उसे संशोधित करने में सहायक होगा या नहीं। वे लिखते हैं, "एक विज्ञान तभी संचयी बन सकता है यदि वह उपलब्ध तथ्यों तथा सिद्धांत समूह पर पूर्णतया लागू होता है। यदि प्रत्येक अध्ययन एक पृथक् सर्वेक्षण के रूप में होगा तो विज्ञान का विकास नहीं हो सकता।" प्राक्कल्पनाएँ और सिद्धांत एक-दूसरे पर निर्भर हैं और विज्ञान के विकास के लिए प्राक्कल्पनाओं का निर्माण सिद्धांतों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए।

(*vi*) सरलता (Simplicity)–एक उत्तम प्राक्कल्पना में सरलता का गुण भी होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि उसमें अनावश्यक रूप से अधिक कारकों को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में प्राक्कल्पना जटिल एवं परीक्षण के अयोग्य हो जाती है। **श्रीमती यंग** का मत है कि जो अनुसंधानकर्ता अपनी समस्या से पूरी तरह परिचित है एवं सूझबूझ रखता है, वह प्राक्कल्पना का निर्माण आसानी से कर सकता है। वे लिखती हैं, "सरलता एक तेज धार वाला यंत्र है जो व्यर्थ की प्राक्कल्पनाओं तथा विवेचनाओं को काट भी सकता है, अत: इसे विलियम ओकम का उस्तरा (Occam's razor) कहा गया है।' सरलता का यह अर्थ नहीं है कि प्राक्कल्पनाएँ सामान्य जन के लिए भी बोधगम्य हों। बहुत अधिक सरल प्राक्कल्पनाएँ घातक भी सिद्ध हो सकती हैं।

3.12 परिकल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis)

समाजशास्त्र एवं समाज-विज्ञानों में अनेक प्रकार की प्राक्कल्पनाओं का प्रचलन है। सामाजिक तथ्यों, घटनाओं एवं समस्याओं की प्रकृति, अनुसंधान के उद्देश्य एवं तथ्यों के प्रकार के आधार पर प्राक्कल्पनाएँ भी कई प्रकार की हो सकती हैं। विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की प्राक्कल्पनाओं का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ का हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

गुडे तथा हाट ने निम्नांकित तीन प्रकार की प्राक्कल्पनाओं का उल्लेख किया है–

1. अनुभवात्मक समानताओं से संबंधित (Related to empirical uniformities)–ये प्राक्कल्पनाएँ मानव के सामान्य ज्ञान, तर्क वाक्य, दैनिक जीवन के अनुभवों, मान्यताओं, लोकोक्तियों, कहावतों, वक्तव्यों, वार्ताओं तथा विश्वासों पर आधारित होती हैं। उदाहरण के लिए, सामान्यत: ऐसी कहावतें प्रचलित हैं कि गंजा व्यक्ति धनवान होता है, पशुओं में सियार, पक्षियों में कौआ, मनुष्यों में नाई तथा स्त्रियों में मालिन चतुर होते हैं। ऐसी प्राक्कल्पना में समान तथ्यों की जाँच करना ही अध्ययन का मुख्य बिन्दु होता है।

2. जटिल आदर्श-प्रारूपों से संबंधित (Concerned with Complex ideal types)–इस प्रकार की प्राक्कल्पनाओं में प्राय: एक सामान्य तथ्य अथवा निष्कर्ष को पूर्वाधार मानकर अन्य तथ्यों की तर्कपूर्ण रूप से परीक्षा की जाती है। ऐसी प्राक्कल्पनाएँ अल्पसंख्यक समूहों तथा पारिस्थितिकी दशाओं (ecological conditions) से संबंधित होती हैं। उदाहरण के लिए, **बर्गेस** ने अपने अध्ययन में यह प्राक्कल्पना की थी कि "केंद्रीभूत गोलाकार

नगर विकास की प्रकृति के लक्षण होते हैं।" इस प्रकार की प्राक्कल्पनाओं का उद्देश्य आनुभविक एकरूपताओं में तार्किक रूप से निकाले गए संबंधों की उपस्थिति का परीक्षण करना होता है। ऐसी प्राक्कल्पनाओं में विभिन्न कारकों के बीच तार्किक अंतर्संबंधों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं, इसलिए इन्हें संबंधात्मक प्राक्कल्पनाएँ (Relational Hypothesis) भी कहते हैं। चूँकि ये प्राक्कल्पनाएँ तार्किक निष्कर्षों पर आधारित होती हैं, अतः ये सिद्धांत निर्माण में भी सहायक होती हैं। दुर्खीम ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'आत्महत्या' में निम्नांकित संबंधात्मक प्राक्कल्पनाओं को विकसित किया था:

(*i*) गाँवों की अपेक्षा नगरों में आत्महत्या की दर अधिक पायी जाती है।

(*ii*) स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक आत्महत्या करते हैं।

3. **विश्लेषणात्मक चरों से संबंधित** (Related to Analytical Variables)–कुछ प्राक्कल्पनाएँ विश्लेषणात्मक चरों के संबंध से संबंधित होती हैं। कोई भी सामाजिक घटना अनेक कारकों का परिणाम होती है, फिर भी इनमें से कोई एक कारक ही प्रमुख कारक होता है और अन्य कारक सहायक कारक होते हैं। उदाहरण के लिए, बाल-अपराध के लिए मनोविश्लेषणवादी सिद्धांतकार मानसिक विकृति और दुर्बलता को, तो वंशानुक्रमणवादी 'बुरे वंशानुक्रम' को उत्तरदायी मानते हैं। इस प्रकार की प्राक्कल्पना को कारणात्मक प्राक्कल्पना (Causal Hypothesis) भी कहते हैं। इसमें यह ज्ञात किया जाता है कि यदि किसी एक चर (कारक) में परिवर्तन होता है तो वह किस सीमा तक दूसरे चर (कारक) को प्रभावित करता है।

टास्क उत्तम फसल, उत्तम खाद, बीज, भूमि, पर्यावरण एवं पानी की पर्याप्त मात्रा पर निर्भर करती है। यदि इनमें से किसी एक कारक में परिवर्तन कर दिया जाता है तो फसल पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह जानने का प्रयत्न करना कारणात्मक परिकल्पना है।

कुछ अन्य प्रकार की प्राक्कल्पनाएँ (Some other Types of Hypothesis)

1. **सकारात्मक कथनों से संबंधित** (Related to Positive Statements)–कुछ प्राक्कल्पनाओं का संबंध सकारात्मक कथनों से होता है जैसे–पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक दयालु होती हैं। गरीबों की अपेक्षा धनवान अधिक अपराध करते हैं।

2. **नकारात्मक कथनों से संबंधित** (Related to Negative Statements)–इस प्रकार की प्राक्कल्पना में कथनों को नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जैसे पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक दयालु नहीं होतीं, गरीबों की अपेक्षा धनवान अधिक अपराध नहीं करते।

3. **शून्य कथनों से संबंधित** (Related to Null Statements)–इस प्रकार की प्राक्कल्पना में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों संभावनाओं को व्यक्त किया जाता है और परीक्षण द्वारा उन्हें स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है, जैसे–पुरुषों और स्त्रियों की दयालुता में कोई अंतर नहीं होता, गरीब एवं धनवान की अपराध प्रवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं होता।

4. **कामचलाऊ प्राक्कल्पना** (Working Hypothesis)–श्रीमती पी.वी.यंग ने ऐसे पैने अनुमान व अस्थायी महत्त्वपूर्ण विचारों को जो किसी अनुसंधान का आधार बन सकते हैं, कामचलाऊ प्राक्कल्पना कहा है। कामचलाऊ प्राक्कल्पना किसी भी अध्ययन को प्रारंभ करने का एक प्रारंभिक विचार होता है। ज्यों-ज्यों अध्ययनकर्ता को अनुभव होता जाता है, वह उसमें परिवर्तन एवं संशोधन करता जाता है। यह भी हो सकता है कि वह प्रारंभिक विचार को पूरी तरह त्याग कर उसके स्थान पर नई प्राक्कल्पना बना ले। चूँकि यह विचार एक अस्थायी, कार्यवाहक और कामचलाऊ महत्त्व का होता है, इसलिए इसे काम चलाऊ या कार्यवाहक प्राक्कल्पना कहते हैं। उदाहरण के लिए,

नोट

प्रारंभ में भौतिक वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि परमाणु अविभाज्य है, किंतु बाद में अध्ययन के आधार पर उन्हें यह प्राक्कल्पना बदलनी पड़ी, जब यह ज्ञात हुआ कि परमाणु का और अधिक विभाजन संभव है।

3.13 परिकल्पना का महत्त्व (Importance of Hypothesis)

अनुसंधान में प्राक्कल्पना के महत्त्व को अनेक प्रकार से दर्शाया गया है। विद्वान इसकी तुलना ध्रुव तारे एवं कुतुबनुमा से करते हैं तो कुछ समुद्र में जहाजों को रास्ता दिखलाने वाले प्रकाश स्तंभ (Light house) से जो अनुसंधानकर्ताओं और वैज्ञानिकों को भटकने से बचाते हैं। **मैक्स वेबर** का मत है कि प्राक्कल्पना से प्रत्येक वैज्ञानिक गवेषणा में नए प्रश्नों को प्रोत्साहन मिलता है। गुडे एवं हाट का मत है कि "एक प्राक्कल्पना यह बताती है कि हम किसकी खोज कर रहे हैं।" उन्होंने आगे फिर लिखा है, "अच्छे अनुसंधान में प्राक्कल्पना का निर्माण एक केंद्रीय चरण है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी भी अनुसंधान में प्राक्कल्पना के अभाव में निश्चयात्मक निष्कर्ष प्राप्त करना कठिन है। इसके अभाव में अध्ययनकर्ता अपने मार्ग से भटक सकता है। इसी के द्वारा वह सत्य और असत्य की पुष्टि करता है एवं विषय से संबंधित वास्तविकता का पता लगाता है। प्राक्कल्पना के अभाव में अनुसंधान पतवारविहीन जहाज की भांति होता है।

प्राक्कल्पना के महत्त्व की विवेचना हम निम्न प्रकार कर सकते हैं:

1. **अध्ययन के उद्देश्य का निर्धारण** (Determination of the Goal of the Study)–प्राक्कल्पना हमारे अध्ययन के उद्देश्य को निर्धारित करती है कि हमें किसकी खोज करनी है। अध्ययन के उद्देश्य को स्पष्ट करके ही हम उससे संबंधित तथ्यों की गवेषणा करते हैं। प्राक्कल्पनाएँ हमें यह बताती हैं कि हमें किन तथ्यों का संकलन करना है और किन का नहीं, कौन-से तथ्य हमारे उद्देश्य के अनुरूप और सार्थक हैं तथा कौन से निरर्थक। कोहेन एवं नागेल लिखते हैं, "प्राक्कल्पना के अभाव में अनुसंधान एक अनिश्चित तथा विचारहीन भटकाव की भांति है। उसके निष्कर्षों को स्पष्ट अर्थ वाले तथ्यों के रूप में प्रकट नहीं किया जा सकता है।" अध्ययन के उद्देश्य हमारे संकलन स्रोतों का भी निर्धारण करते हैं।

2. **उचित दिशा प्रदान करना** (Providing Suitable Direction)–प्राक्कल्पना अनुसंधानकर्ता के लिए पथ-प्रदर्शक का कार्य करती है, उसे इधर-उधर भटकने से रोकती है। इससे अध्ययनकर्ता का ध्यान मुख्य विषय पर ही टिका रहता है, प्राक्कल्पना उसे विभिन्न मार्गों में से केवल उचित और सही मार्ग पर ही ले जाती है। वान डलेन प्राक्कल्पना को ऐसे शक्तिशाली आकाशदीप के रूप में मानते हैं जो अनुसंधानकर्ता का मार्ग प्रशस्त करता है। पी.वी.यंग लिखती हैं, "इस प्रकार प्राक्कल्पना का प्रयोग एक दृष्टिहीन खोज तथा अंधाधुंध तथ्य-संकलन से रक्षा करता है जो बाद में अध्ययन-समस्या के लिए अप्रासंगिक और अनुपयुक्त हो सकते हैं।"

3. **अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना** (Restricting the Field of Study)–लुंडबर्ग के अनुसार प्राक्कल्पना के आधार पर, "हम जान-बूझकर अपनी विचार शक्तियों को स्वीकार करते हैं और अपने अनुसंधान के क्षेत्र को सीमित करके त्रुटियों की संभावना को कम करने का प्रयास करते हैं।" प्राक्कल्पना अनुसंधान कार्य की सीमा निर्धारित करके अध्ययनकर्ता का ध्यान अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू अथवा तथ्यों पर ही केंद्रित करती है। दूसरे शब्दों में प्राक्कल्पना अध्ययन को एक निश्चित सीमा में बाँध देती है। अध्ययनकर्ता के लिए यह संभव नहीं है कि वह एक विषय से संबंधित सभी पक्षों का एक साथ अध्ययन करे। अत: यह आवश्यक है कि अध्ययन को विशिष्ट, यथार्थ और वैज्ञानिक बनाने के लिए उसे सीमित किया जाए।

4. **अध्ययन में निश्चितता लाना** (Bringing Definiteness in the Study)–प्राक्कल्पना के द्वारा अध्ययन को सुनिश्चित बनाया जा सकता है। इससे अध्ययनकर्ता को यह ध्यान रहता है कि उसे कब, कहाँ और कौन-सी सूचनाएँ संकलित करनी हैं। इससे अनियमितता एवं अव्यवस्था की संभावना नहीं रहती।

5. तथ्यों के संकलन में सहायक (Helpful in Collection of Facts)–प्राक्कल्पना अनुसंधानकर्ता को समस्या से संबंधित उपयुक्त तथ्यों को संकलित करने को प्रेरित करती है। प्रारंभ में ऐसा भी हो सकता है कि वैचारिक अस्पष्टता के कारण हम तथ्यों के एक जंगल को एकत्रित कर लें। किंतु बाद में उनमें से हमें कुछ विशिष्ट तथ्यों का ही चुनाव करना पड़ता है। इस कार्य में प्राक्कल्पना सहायक होती है। एम.एच. गोपाल ने लिखा है, "प्राक्कल्पना के बिना अध्ययनकर्ता अनावश्यक यहाँ तक कि व्यर्थ सामग्री भी एकत्रित कर सकता है और वास्तव में महत्त्वपूर्ण तथा लाभकारी तथ्य उसकी दृष्टि से छूट सकते हैं।"

6. निष्कर्ष निकालने में सहायक (Helpful in Drawing Conclusions)–प्राक्कल्पनाओं के आधार पर तथ्यों का संकलन किया जाता है और तथ्यों के आधार पर ही यह ज्ञात किया जाता है कि हमारी प्राक्कल्पनाएँ सत्य हैं अथवा असत्य। दोनों ही स्थितियों में हमें सत्यान्वेषण करना होता है जो कि इसके अभाव में नहीं हो सकता। नॉर्थ्राप (Northrop) का मत है कि "किसी प्राक्कल्पना में विद्यमान तथ्य समस्या के सामधान भी हो सकते हैं, क्या वे वास्तव में समाधान हैं, यह जाँच का कार्य है।"

7. सिद्धांतों के निर्माण में सहायक (Helpful in Formulation of Theories)–पीटर एच. मन्न का मत है कि प्राक्कल्पना तथ्यों व सिद्धांतों के बीच की कड़ी है। एम.एच. गोपाल के शब्दों में, "एक सिद्धांत तथा एक प्राक्कल्पना के बीच का अंतर प्रकार की अपेक्षा मात्रा का अधिक है, क्योंकि जब प्राक्कल्पना सत्य सिद्ध हो जाती है तथा स्थापित हो जाती है तो वह एक सिद्धांत का भाग बन जाती है। एक प्रकार से ये एक-दूसरे से विकसित होते हैं।"

विलियम जॉर्ज ने लिखा है, "व्यावहारिक रूप से एक सिद्धांत एक विस्तृत प्राक्कल्पना है, यह एक सरल प्राक्कल्पना की अपेक्षा अधिक प्रकारों के तथ्यों से संबंधित होती है।" किसी भी सामाजिक अनुसंधान का प्रारंभ हम प्राक्कल्पनाओं के आधार पर करते हैं। जब तथ्यों के आधार पर ये प्राक्कल्पनाएँ सत्य सिद्ध हो जाती हैं तो वे सिद्धांतों का रूप ले लेती हैं।

डा. सुरेंद्र सिंह ने प्राक्कल्पना के निम्नांकित कार्यों (महत्त्व) का उल्लेख किया है:

(*i*) अनुसंधान से संबंधित विभिन्न प्रश्नों को स्पष्ट करना,

(*ii*) अनुसंधान को उत्तेजना प्रदान करना,

(*iii*) अनुसंधान की विधितन्त्रीय व्यवस्था को आधार प्रदान करते हुए निर्देशित करना,

(*iv*) प्रयोगात्मक प्रविधियों के मूल्यांकन की कसौटियाँ प्रदान करना,

(*v*) सिद्धांत के निर्माण के लिए कार्यकारी उपकरण के रूप में कार्य करना, तथा

(*vi*) निगमन पद्धति का प्रयोग करते हुए निष्कर्ष निकालने में सहायता पहुँचाना।

3.14 परिकल्पना की सीमाएँ (Limitations of Hypothesis)

प्राक्कल्पनाएँ सामाजिक अनुसंधान में मार्गदर्शन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं फिर भी यदि इनका प्रयोग सावधानी से नहीं किया जाता है तो ये अध्ययन के लिए खतरा भी पैदा कर सकती हैं। इनके दोष या सीमाएँ निम्नांकित हैं:

1. प्राक्कल्पना में अटूट विश्वास (Full Confidence in Hypothesis)–कई बार अध्ययनकर्ता प्राक्कल्पना को अपने अध्ययन का मार्गदर्शक न मानकर उसे सिद्ध करने के पक्ष में ही तथ्यों का संकलन करता है। ऐसी स्थिति में अध्ययन की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है। इसलिए ही **पी.वी. यंग** ने लिखा है, "एक अनुसंधानकर्ता को अपनी प्राक्कल्पना की शुद्धता को स्थापित करने के उद्देश्य से अध्ययन का प्रारंभ नहीं करना चाहिए।"

2. प्राक्कल्पना पर आधारित तथ्य (Hypothesis based Facts)–प्रारंभ में अध्ययनकर्ता प्राक्कल्पना के आधार पर ही तथ्यों का संकलन करता है, किंतु उसे चाहिए कि वास्तविक तथ्यों के आधार पर अपनी प्राक्कल्पना

नोट

में संशोधन एवं परिवर्तन कर ले। ऐसा न करने पर संकलित तथ्य हानिप्रद एवं व्यर्थ सिद्ध होते हैं। इस संदर्भ में फ्राई (Fry) ने लिखा है, "मात्र विशिष्ट प्रश्नों के संदर्भ में ही तथ्यों का संकलन नहीं करना चाहिए वरन् एक संस्था अथवा परिस्थिति की गवेषणा में प्रश्नों को सदैव सुझाव के रूप में समझना चाहिए।"

3. **विशिष्ट अभिरुचियों तथा संवेगों का प्रभाव** (Influence of Specific Interests and Emotions)–कई बार अनुसंधानकर्ता अपनी किसी विशिष्ट रुचि और संवेग के कारण एक विशेष अध्ययन-विषय का चुनाव करता है और उसके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है, तब उसके द्वारा किया जाने वाला अध्ययन अवैज्ञानिक हो जाता है।

4. **अध्ययनकर्ता का प्रतिष्ठा बिंदु** (Prestige Point of the Investigator)–कई बार अध्ययनकर्ता अपनी प्राक्कल्पना को श्रेष्ठ व सही मान लेता है और उसके साथ अपने सम्मान को जोड़ लेता है। ऐसी स्थिति में वह प्राक्कल्पना के विपरीत यथार्थ तथ्यों को भी स्वीकार नहीं करना चाहता। यह स्थिति वैज्ञानिक सत्य तक पहुँचने में बाधक है।

स्पष्ट है कि यद्यपि प्राक्कल्पनाएँ अनुसंधान के लिए उपयोगी होती हैं, फिर भी उनके प्रयोग में सावधानी बरतनी चाहिए। इस संदर्भ में वेस्टावे (Westaway) ने उचित ही लिखा है, "प्राक्कल्पनाएँ वे लोरियाँ हैं जो कि असावधान को गाना गाकर सुला देती हैं।" पी.वी यंग लिखती हैं, "यदि अध्ययनकर्ता वास्तविक वैज्ञानिक भावना के आधार पर किसी विशेष परिस्थिति में तथ्यों को सिद्ध करने की ओर नहीं वरन् सीखने और समझने की ओर बढ़ता है, तब उसकी प्राक्कल्पना कोई निहित स्वार्थ नहीं बनेगी और यदि नवीन तथ्य उसकी प्राक्कल्पना को असत्य सिद्ध करते हैं तो उसकी ख्याति तथा प्रतिष्ठा को कोई आघात नहीं पहुँचेगा।"

3.15 परिकल्पना निर्माण में प्रमुख कठिनाइयाँ (Main Difficulties in Formulation of Hypothesis)

प्राक्कल्पना का निर्माण करना कोई सरल कार्य नहीं है। **गुडे** व **हाट** के अनुसार इसके अंतर्गत दो प्रकार की कठिनाइयाँ आ सकती हैं–सैद्धांतिक ढाँचे से संबंधित तथा अध्ययन प्रणालियों से संबंधित।

I. सैद्धांतिक ढांचे से संबंधित (Related to Theoretical Frame-Work)–प्राक्कल्पना के निर्माण में सैद्धांतिक ढांचे से संबंधित निम्नांकित कठिनाइयाँ आ सकती हैं:

1. **स्पष्ट ढांचे की अनुपस्थिति** (Absence of definite frame-work)–कई बार ऐसी स्थिति भी होती है कि अनुसंधानकर्ता को विषय से संबंधित सिद्धांतों का ही ज्ञान नहीं होता है तब वह उपयुक्त प्राक्कल्पनाओं का निर्माण नहीं कर पाता। नवीन विज्ञानों के संदर्भ में यह बात अधिक खरी उतरती है।
2. **ढांचे के तार्किक एवं कुशल प्रयोग का अभाव** (Lack of logical and efficient use of frame)–यदि सैद्धांतिक ढांचा उपलब्ध है, किंतु प्राक्कल्पना निर्माण में उसका प्रयोग तार्किक एवं कुशलतापूर्वक करने में अध्ययनकर्ता अक्षम है, तब भी सही प्राक्कल्पना का निर्माण नहीं किया जा सकता।

II. अध्ययन प्रणालियों से संबंधित (Related to Research Techniques)–वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान एवं अनुसंधान की प्रणालियों में बहुत अधिक वृद्धि है जिनके बारे में सभी को जानकारी होना आवश्यक नहीं है। आज सामाजिक संबंधों का अध्ययन एवं अभिव्यक्ति गणितीय सूत्रों में की जाने लगी है। कंप्यूटर द्वारा अध्ययन में मदद ली जाती है। अत: यह आवश्यक है कि प्राक्कल्पनाओं के निर्माण में अध्ययनकर्ता अध्ययन-प्रणालियों को भी ध्यान में रखे ताकि अध्ययन में समय, श्रम और धन की बचत की जा सके।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य कठिनाइयाँ इस प्रकार हैं–

1. **घटना की परिवर्तनशीलता**–सामाजिक घटनाओं की यह विशेषता है कि वे परिवर्तनशील हैं। जो स्थिति आज है, वह कल नहीं रहेगी। मानव के विचार, विश्वास, भावनाएँ और मनोवृत्तियाँ बदलती रहती हैं, अत: उनके बारे

नोट

में अनुमान लगाना कठिन है। मानव संबंधों को प्रभावित करने वाले कारक एवं उनके पारस्परिक संबंध भी बदलते रहते हैं, अत: उनके बारे में परिकल्पना का निर्माण करना एक कठिन कार्य है।

2. **अध्ययनकर्ता का पक्षपात**–प्राक्कल्पना निर्माण में एक कठिनाई अध्ययनकर्ता की अभिनति या पक्षपात भी है। यदि वह किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित है या किसी घटना के प्रति भावात्मक लगाव रखता है तो उसके द्वारा निर्मित प्राक्कल्पना के दोषपूर्ण एवं अवैज्ञानिक होने की संभावना रहती है।

3. **सजातिवाद या समूह केंद्रितता** (Ethnocentrism)–दूसरों की तुलना में अपने समूह, जाति, प्रजाति के प्रति व्यक्ति के मन में संवेदनशीलता और भावात्मक लगाव होता है, जिसे सजातिवाद या समूह केंद्रितता कहते हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति अन्य समाजों, समूहों एवं संस्कृतियों की तुलना में अपने समाज, समूह और संस्कृति को श्रेष्ठ समझता है। ऐसी स्थिति में प्राक्कल्पना निर्माण में व्यक्ति का स्वयं का पक्षपात आना स्वाभाविक ही है। पी.वी. यंग ने प्राक्कल्पना के निर्माण के समय अध्ययनकर्ता को तीन बातों का ध्यान रखने का सुझाव दिया है: (अ) अनुसंधानकर्ता की तीक्ष्ण दृष्टि, (ब) नियंत्रित कल्पना शक्ति तथा रचनात्मक चिंतन, (स) सैद्धांतिक ढांचे की उपलब्धता तथा उसका ज्ञान।

अंत में हम कोहेन के शब्दों में कह सकते हैं कि "जो लोग विषय के पूर्व ज्ञान के अभाव में कोरे मस्तिष्क से अनुसंधान कार्य आरंभ करते हैं, उन्हें वैज्ञानिक उपलब्धियाँ बड़ी कठिनता से प्राप्त होती हैं। कुछ प्राप्त करने के लिए हमें विषय की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए। किसी पूर्ण ज्ञान के अभाव में हम नहीं जान पाते कि किन तथ्यों को खोजना है तथा जाँच हेतु क्या प्रासंगिक है?" प्राक्कल्पना का निर्माण करते समय उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है।

3.16 सारांश (Summary)

- तथ्य किसी अवधारणा की सृष्टि में सहायक भी होते हैं तथा उसकी पुष्टि भी करते हैं। अत: यह बहुउन्मेशी (Multi-Oriented) भी होते हैं।
- अवधारणाएँ ही वह मुख्य आधार हैं जिनकी सहायता से उपयोगी परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।
- टर्नर के अनुसार सिद्धांत के चार मूल तत्व हैं–(*a*) अवधारणाएँ, (*b*) परिवर्त्य अथवा चर, (*c*) कथन, (*d*) आकार।
- परिकल्पना निर्माण का उद्देश्य विषय से संबंधित तथ्यों को संकलित करना और शोधकर्ता का मार्गदर्शन करना होता है।

3.17 शब्दकोश (Keywords)

1. **सिद्धांत (Theory) :** सिद्धांत, किसी विषय क्षेत्र की विषय-वस्तु से संबंधित अवधारणाओं की तार्किक प्रणाली है जो तथ्यों के बीच सहसंबंधों का बोध करते हैं तथा जीवन से संबंधित समस्याओं के निराकरण में नीतिगत एवं कारगर दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं।
2. **तथ्य (Fact) :** एक सामाजिक तथ्य व्यवहार (सोचने-समझने, अनुभव करने या क्रिया संपादित करने) का एक भाग है जो प्रेक्षक की दृष्टि से वस्तुपरक है तथा जिसकी प्रकृति बाध्यतामूलक होती है।

3.18 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक तथ्य की परिभाषा एवं विशेषतओं को बताएँ।
2. अवधारणा की विशेषता एवं महत्व को बताएँ।

नोट

3. सिद्धांत के मूल तत्त्व क्या हैं?
4. एक अच्छी परिकल्पना का निर्माण कैसे किया जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. सिद्धांतों	2. समाजशास्त्र	3. अनुभवजनित
4. हस्तांतरित	5. क्षमता	6. सिद्धांत।

3.19 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. सामाजिक शोध व सांख्यिकी—डॉ. रविद्रनाथ मुखर्जी।
2. समाजशास्त्र विश्वकोश—हरिकृष्ण रावत।

इकाई–4: सामाजिक शोध में नैतिक मुद्दे (Ethical Issues in Social Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
4.1 शारीरिक व व्यक्तिगत गुण (Physical and Personal Qualities)
4.2 बौद्धिक गुण (Intellectual Qualities)
4.3 व्यवहार संबंधी गुण (Behavioural Qualities)
4.4 अध्ययन-विषय से संबंधित गुण (Qualities Related to Subject of Study)
4.5 अध्ययन-स्थल में किए जाने वाले क्रिया संबंधी गुण (Qualities Related to Field Work)
4.6 वैज्ञानिक भावना संबंधी गुण (Qualities Related to Scientific Spirit)
4.7 सारांश (Summary)
4.8 शब्दकोश (Keywords)
4.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
4.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शोधकर्ता के व्यक्तिगत गुणों से अवगत कराना।
- शोधकर्ता के नैतिक गुण या मुद्दे।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक अनुसंधान या शोधकार्य कोई सरल व सीधा कार्य नहीं है और इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति इसे कर भी नहीं सकता। केवल कुछ पुस्तकीय ज्ञान ही शोधकार्य के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए अन्य अनेक बाह्य तथा आंतरिक गुणों का होना परमावश्यक है। इसका कारण भी स्पष्ट है। सामाजिक अनुसंधान या शोध सामाजिक घटनाओं से संबंधित होता है और सामाजिक घटनाएँ अमूर्त, परिवर्तनशील, जटिल तथा व्यक्ति-प्रधान होती हैं। इसीलिए इनका अध्ययन प्राकृतिक घटनाओं के अध्ययन से कहीं अधिक कठिन होता है।

विषय-वस्तु–सामाजिक घटनाओं के अध्ययन का तात्पर्य वास्तव में मानव द्वारा मानव के ही विषय में अध्ययन है। इसका सरल अर्थ यही हुआ कि जिस समस्या या विषय के संबंध में शोधकर्ता अनुसंधान करता है उस समस्या या विषय का वह स्वयं एक अंग होता है। अत: उसके लिए पूर्णतया निष्पक्ष, तटस्थ, व उदासीन रहकर अध्ययन करना अत्यंत कठिन होता है। प्रत्येक पग पर उसके अपने ही विचार, विश्वास, पूर्वधारणा, आदर्श आदि उसका रास्ता रोकते

नोट

रहते हैं या उसे विपथगामी कर देते हैं। इसीलिए अनुसंधान के निष्कर्षों में त्रुटियों की संभावना सदा ही बनी रहती है। इन समस्त परिस्थितियों या कारकों के प्रभाव से अपने को विमुक्त रखते हुए हुए अनुसंधानकर्ता को शोधकार्य को यथार्थता (exactness) की स्थिति तक पहुँचाने के लिए विशेष योग्यता तथा ज्ञान की आवश्यकता होती है। उत्तम अनुसंधानकर्ता या शोधकर्ता के गुणों की योग्यताओं की निश्चित सूची तो नहीं बनाई जा सकती परंतु कुछ सामान्य बातों का उल्लेख अवश्य ही किया जा सकता है। इस अध्याय में हम उन्हीं के विषय में विवेचना करेंगे।

4.1 शारीरिक व व्यक्तिगत गुण (Physical and Personal Qualities)

सामाजिक शोध एक शिक्षा-संबंधी कार्य है, इसलिए इसका कोई भी संबंध शोधकर्ता की शारीरिक विशेषताओं से नहीं होता—यह विश्वास अनेक लोगों का है। पर यह गलत है। अनुसंधान-कार्य की सफलता में शारीरिक गुणों का भी अपना महत्त्व होता है जैसा कि निम्नलिखित विवेचना से स्पष्ट होगा—

1. **आकर्षक व्यक्तित्व** (Attractive Personality)—हँसमुख चेहरा, अच्छी आदतें तथा आकर्षक व्यवहार-प्रतिमान रखने वाला व्यक्ति किसी भी सूचना-दाता से सत्य और विश्वसनीय तथ्य प्राप्त करने में सफल हो सकता है। आकर्षक व्यक्तित्व का एक स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर पड़ता ही है और इसका शोधकर्ता के द्वारा पूरा-पूरा फायदा उठाने का अर्थ होगा अधिक सत्य, ठोस तथा महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सरलतापूर्वक संकलन। एक शोधकार्य की सफलता सत्य व यथार्थ तथ्यों, सूचनाओं या आँकड़ों पर कितनी अधिक निर्भर है, यह समझाने की शायद आवश्यकता नहीं है।

2. **स्वास्थ्य** (Health)—एक सफल शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसका स्वास्थ्य उत्तम हो। शोधकार्य आरामकुर्सी पर बैठकर नहीं हो जाता। इसके लिए कठोर परिश्रम व दौड़-धूप करने की आवश्यकता होती है जो कि एक उत्तम स्वास्थ्य वाला व्यक्ति ही कर सकता है। दुर्बल या रोगग्रस्त व्यक्ति का सारा समय तो अपनी ही स्वास्थ्य का उपचार करने में लग जाता है, वह शोधकार्य भला कब और कैसे करेगा? भारतवर्ष में यातायात व संचार के साधनों की अपर्याप्तता, जन-शिक्षा का स्तर अत्यधिक निम्न होना, शोध संबंधी अन्य सुविधाओं की कमी आदि कारणों से यहाँ तो शोधकर्ता को और भी कठोर परिश्रम करना पड़ता है। अत: उत्तम स्वास्थ्य का होना जरूरी है। इसके अतिरिक्त उत्तम स्वास्थ्य स्वयं ही आकर्षक व्यक्तित्व का एक अंग बनकर तथ्यों को एकत्रित करने में सहायक सिद्ध होता है।

3. **अध्यवसाय** (Persistence)—एक सफल शोधकर्ता को अध्यवसायी अर्थात् साधनाशील होना चाहिए। वह किसी भी अवस्था में हिम्मत न हारे—यह उसके लिए आवश्यक है। शोधकार्य के दौरान असंख्य ऊँची-नीची परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, अनेक निराशाजनक अवस्थाओं से परिचय होता है और कितनी ही अस्वाभाविक घटनाएँ बाधा उत्पन्न करती हैं। इस सब के बीच शोधकर्ता का अपना अध्यवसाय या साधनाशीलता उसे मार्ग दिखाकर आगे ले जाती है। शोधकार्य के दौरान यह देखा जाता है कि एक ही सूचनादाता के पास एकाधिक बार जाने के उपरांत भी या तो वह मिल नहीं पाता यह अपने निजी कार्य में व्यस्त होने के कारण प्रश्नों का उत्तर देने के समय नहीं दे पाता है। यदि समय देता भी है तो प्रश्नों के उत्तर को किसी प्रकार से समाप्त करके शोधकर्ता को टालने का प्रयत्न करता है। इन सब परिस्थितियों के बीच भी धैर्य को बनाए रखना अत्यंत कठिन होता है। अत: स्पष्ट है कि शोधकर्ता के लिए साधनाशील होना अत्यंत आवश्यक है।

4. **सहनशीलता** (Tolerance)—एक उत्तम शोधकर्ता में सहनशीलता का गुण भी आवश्यक है। प्रत्येक प्रकार के कष्टों को झेलने के लिए तत्पर रहकर ही शोधकार्य में सफल होने की आशा की जा सकती है। अनुसंधान के दौरान कई सूचनादाता शोधकर्ता के प्रति अति कटु व्यवहार करते हैं, उसे नाना प्रकार की टीका-टिप्पणियाँ सुनाते हैं तथा स्पष्ट भाषा में किसी भी प्रकार का सहायोग न देने की घोषणा कर बैठते हैं। इन व्यवहारों को सहन करने की शक्ति यदि शोधकर्ता में नहीं है तो उसे अपना कार्य बीच में ही रोककर घर बैठना पड़ेगा।

नोट

टास्क शारीरिक व व्यक्तिगत गुण क्या हैं? संक्षिप्त व्याख्या करें।

4.2 बौद्धिक गुण (Intellectual Qualities)

केवल उपरोक्त शारीरिक व व्यक्तिगत गुणों का होना ही उत्तम अनुसंधानकर्ता या शोधकर्ता के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक कि वह कुछ बौद्धिक गुणों का भी अधिकारी नहीं है। ये बौद्धिक गुण इस प्रकार के हैं–

1. **रचनात्मक कल्पनाशक्ति** (Creative Imagination)–शोधकर्ता की कल्पनाशक्ति अत्यंत प्रबल होनी चाहिए। वह बुद्धिमान हो, केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि एक अनुसंधान-कार्य में अंतर्निहित समस्त संभावित परिस्थितियों के विषय में पहले से ही कल्पना कर लेने की शक्ति उसमें नहीं है। इस प्रकार की पूर्वकल्पना के बिना शोधकार्य का सफल आयोजन करना शोधकर्ता के लिए कदापि संभव नहीं हो सकता। साथ ही प्रखर कल्पनाशक्ति के बिना शोधकर्ता सामाजिक समस्याओं में न तो गहरा पैठ सकता है और न ही अपने अध्ययन-कार्य में व्यावहारिकता ला सकता है। अत: दूरदर्शिता व अंतर्दृष्टि दोनों का ही होना आवश्यक है।

2. **शीघ्र निर्णय लेने की योग्यता** (Ability to take Prompt Decision)–शोधकर्ता के लिए इस योग्यता का होना अति आवश्यक है कि वह प्रत्येक समस्या व परिस्थितियों में अपने निर्णय का शीघ्र निर्माण कर सके। शोधकर्ता को अपरिचित स्थितियों में काम करना पड़ता है, इसीलिए यदि उन परिस्थितियों में आवश्यकतानुसार लाभप्रद निर्णय करने की योग्यता उसमें नहीं है तो वह सफल शोधकर्ता नहीं बन सकता। अत: कोई भी विषम परिस्थिति सामने आ जाने पर बिना असमंजस में पड़े निर्णय लेने की क्षमता अत्यावश्यक है।

3. **सांख्यिकीय योग्यता** (Statistical Ability)–सामाजिक शोधकर्ता को तथ्यों के वर्गीकरण, सारणीयन तथा ग्राफ (Graph) आदि बनाने में संख्याओं से खेलना पड़ता है। यह बहुत नीरस काम है, पर साथ ही इसके बिना शोधकार्य में यथार्थता आ नहीं सकती। अत: शोधकर्ता में सांख्यिकीय योग्यता होना परमावश्यक है।

नोट्स स्पार तथा स्वेंसन (Spahr and Swenson) ने तो परिशुद्धता कायम रखने की शक्ति को शोधकर्ता का परमावश्यक गुण माना है। इस गुण का विकास सांख्यिकीय योग्यता पर ही निर्भर है।

4. **विचारों की स्पष्टता** (Clarity of thinking)–शोधकर्ता के लिए बुद्धिमान तथा विचारशील होना परमावश्यक है। उसमें यह योग्यता होनी चाहिए कि वह जटिल परिस्थितियों तथा तथ्यों को समझकर उनके संबंध में अपने विचारों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर सके। इस योग्यता के बिना न तो वह तथ्यों की विश्लेषणात्मक विवेचना स्पष्ट रूप में कर सकता है और न ही अपनी रिपोर्ट में समस्या या उसके समाधानों के संबंध में स्पष्ट विचारों को प्रस्तुत कर सकता है। विचारों की स्पष्टता विषय के संबंध में गहन अध्ययन के पश्चात् ही प्राय: विकसित हो सकती है।

5. **तर्कशक्ति** (Arguing Power)–सामाजिक शोध में अलग-अलग विचारों के तथा विभिन्न मानसिक स्थितियों के लोगों से सूचना प्राप्त करनी पड़ती है। इसलिए यह आवश्यक है कि शोधकर्ता में पर्याप्त तर्कशक्ति हो ताकि इन विभिन्न सूचनाओं को तार्किक ढंग से जोड़कर वह कुछ सामान्य निष्कर्षों को निकाल सके। अध्ययन-क्षेत्र में सूचनादाता प्राय: शोधकर्ता के अनेक टेढ़े-मेढ़े प्रश्न पूछ बैठते हैं। यदि तार्किक ढंग से इन सब प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर शोधकर्ता देने में असफल होता है तो उसे एक हास्यास्पद परिस्थिति का सामना करना पड़ता है और तथ्यों का संकलन ठीक से नहीं हो पाता। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए भी शोधकर्ता में तर्कशक्ति होना आवश्यक है।

नोट

6. **बौद्धिक ईमानदारी** (Intellectual Honesty)–शोधकर्ता के लिए बौद्धिक ईमानदारी अति आवश्यक है। इसका सर्वप्रमुख कारण यह है कि शोधकर्ता जिन सामाजिक घटनाओं का अनुसंधान करता है उसका वह भी एक अंग होता है। और इसीलिए उन घटनाओं के संबंध में जो विचार वह व्यक्त करता है या जो कुछ वह निरीक्षण करता है वह उसकी अपनी व्यक्तिगत भावनाओं, आदर्शों तथा मूल्यों के द्वारा कुछ–न–कुछ रंग जाने की संभावना सदा ही बनी रहती है। ऐसी स्थिति में यदि शोधकर्ता में बौद्धिक ईमानदारी का अभाव है तो उसका शोधकार्य कदापि परिशुद्ध नहीं हो सकता है। बौद्धिक ईमानदारी न होने पर वह उन्हीं घटनाओं को देखेगा जो कि उसकी भावनाओं के अनुकूल हैं तथा ऐसे ही विचारों को व्यक्त करेगा जिन्हें कि अधिकतर लोग पसंद करेंगे। इसके विपरीत बौद्धिक ईमानदारी होने पर समाज में प्रचलित धारणाओं के विरुद्ध भी घटना–विशेष की वास्तविकताओं को प्रस्तुत करने में और उनके विषय में अपनी स्वतंत्र राय देने में शोधकर्ता घबराएगा नहीं। बौद्धिक ईमानदारी ही शोधकर्ता के मन से राज–भय, जाति–भय तथा बदनामी का भय मिटा सकती है और उसी अवस्था में वह वास्तविक तथ्यों को तोड़–मोड़कर प्रस्तुत करने के प्रयत्नों से अपने को दूर रख सकता है।

4.3 व्यवहार संबंधी गुण (Behavioural Qualities)

शारीरिक तथा मानसिक योग्यताओं के साथ–साथ व्यवहार संबंधी कुशलताओं का भी होना एक सफल शोधकर्ता के लिए परमावश्यक है क्योंकि उसे वास्तविक व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करके, उनमें विश्वास की भावना जाग्रत करके और उन्हें अपने अध्ययन के उद्देश्यों के प्रति आकर्षित करके ही अध्ययन–विषय के संबंध में तथ्यों को एकत्रित करना पड़ता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शोधकर्ता का व्यवहार–प्रतिमान वास्तव में आकर्षक व प्रभावपूर्ण हो। यह तभी हो सकता है जबकि उसमें व्यवहार संबंधी निम्नलिखित गुण हों–

1. **परिमार्जित व्यवहार** (Refined Manners)–व्यवहार संबंधी गुणों में शिष्टाचारपूर्ण व्यवहार का स्थान सर्वप्रथम है। यदि किसी भी व्यक्ति का व्यवहार शिष्ट तथा परिमार्जित है तो वह दूसरे लोगों को सहज ही अपना मित्र बना सकता है और इस काम में सफल होने पर वह किसी भी प्रकार के तथ्यों को या सूचनाओं को उनसे प्राप्त कर सकता है। इसीलिए परिस्थिति को समझते हुए शोधकर्ता को परिमार्जित व्यवहार करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। उदाहरणार्थ ग्रामीण समाज में शोधकार्य करते हुए शोधकर्ता को तड़क–भड़कपूर्ण व औपचारिक व्यवहार को त्यागकर विनम्र व सौहार्दपूर्ण व्यवहार करना होगा।

2. **व्यवहार में अनुकूलनशीलता** (Adaptability of Behaviour)–सामाजिक शोध के दौरान शोधकर्ता को भिन्न–भिन्न प्रकार के अलग–अलग रुचियों, विचारों तथा व्यवसायों के लोगों से संपर्क स्थापित करना पड़ता है। इसीलिए एक ही प्रकार का व्यवहार सबको समान रूप से प्रभावित नहीं कर सकता। गंभीर प्रकृति के व्यक्ति को कभी भी बचपना पसंद नहीं होगा, इसके विपरीत कौतुकप्रिय व्यक्ति के लिए गंभीर व्यवहार अत्यंत अरुचिकर होगा। पर शोधकर्ता को तो दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों से सूचनाएँ एकत्रित करनी होती हैं। अतः उसके व्यवहार में ऐसा लचकपन जरूर होना चाहिए कि वह आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों के साथ अपना अनुकूलन सफलतापूर्वक कर सके और अपने व्यवहार द्वारा उन्हें बहुत–कुछ समान रूप से प्रभावित करके उनसे तथ्यों का संग्रह कर सके।

क्या आप जानते हैं कभी–कभी ऐसा होता है कि एक प्रश्न का उत्तर देने के दौरान सूचनादाता व्यर्थ की गप्पें भी हाँकने लगता है। ऐसे अवसर पर भी शोधकर्ता को अत्यंत चतुरता के साथ सूचनादाता को अप्रसन्न न करते हुए अपना कार्य निकालना होता है।

विषय के संबंध में अनुकूल व प्रतिकूल विचार रखने वाले दोनों पक्षों के लोगों के प्रति समान लगाव के साथ और

नोट

समान आदर के साथ उनके विचारों को सुनने की योग्यता जिस शोधकर्ता में है वही वास्तव में एक सफल शोधकर्ता है।

3. **संतुलित वार्तालाप** (Balanced Talk)–अनुसूची को भरवाने या साक्षात्कार करने के दौरान शोधकर्ता को सूचनादाताओं से बातचीत करनी पड़ती है। इस वार्तालाप के स्वरूप का भी प्रभाव सूचनादाताओं पर पड़ता है। यदि शोधकर्ता अहंकारपूर्ण तथा असंतुलित भाषा में बातचीत करता है और आदेशसूचक स्वर में सूचना की माँग करता है तो इससे स्वभावतः ही सूचनादाता के मन में एक विरक्ति की भावना व चिड़चिड़ाहट पनप सकती है जिसके फलस्वरूप वह या तो सूचना देने से इंकार कर सकता है या फिर वास्तविक तथ्यों को छिपाकर इधर-उधर की बातों में उसे टालने का प्रयत्न करता है। अतः संतुलित वार्तालाप बहुत जरूरी है। सूचनादाता के मन को या भावनाओं को ठेस पहुँचे ऐसा कुछ भी कहना एक शोधकर्ता के लिए बहुत महँगा पड़ सकता है।

4. **सतर्कता** (Alertness)–सामाजिक शोधकार्य के दौरान शोधकर्ता को चारों ओर से अत्यंत सतर्क तथा सावधान रहने की आवश्यकता होती है। उसे इस बात के प्रति सदैव सचेत रहना चाहिए कि शोधकार्य के किसी भी स्तर पर उसे गलत सूचना देकर कोई पथभ्रष्ट तो नहीं कर रहा है। कई बार ऐसा होता है कि कुछ व्यक्ति शोधकर्ता के अत्यंत शुभचिंतक बनने का ढोंग रचते हैं और सब कुछ असत्य बताकर उसे असफलता की ओर ढकेल देने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे व्यक्ति प्रायः प्रभावशाली स्वार्थ-समूह के सदस्य होते हैं और अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए ही सत्य को छिपाते हैं। अतः इस प्रकार के व्यक्तियों को प्रसन्न रखते हुए उनके प्रति यथासंभव सतर्कता को बरतना शोधकर्ता का एक आवश्यक गुण होना चाहिए।

5. **आत्म-नियंत्रण** (Self-control)–सामाजिक शोधकार्य में आत्मनियंत्रण शोधकर्ता की एक उल्लेखनीय विशेषता बन जाती है। इसका कारण यह है कि शोधकार्य के दौरान अनेक विपरीत परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन परिस्थितियों में यदि शोधकर्ता आत्म-नियंत्रण को खो बैठे तो संपूर्ण शोधकार्य ही छिन्न भिन्न हो जाए। हो सकता है कि सूचनादाताओं से उसे ऐसे शब्दों या अपशब्दों को सुनना पड़े जो कि उसके आंतरिक विचारों, भावनाओं तथा आदर्शों को कटु आघात करें, फिर भी उसे आत्म-नियंत्रण रखते हुए केवल सत्य की खोज में लगा रहना चाहिए। उसे किसी भी अवस्था में उत्तेजित नहीं होना चाहिए क्योंकि उत्तेजना उसे एक ही पल में वास्तविकता से दूर ले जा सकती है और साथ ही वह दूसरों के लिए आलोचना का एक विषय भी बन सकता है। ये दोनों ही स्थितियाँ सफल अनुसंधान के लिए घातक सिद्ध हो सकती हैं। अतः आत्म-नियंत्रण का गुण होना आवश्यक है।

4.4 अध्ययन-विषय से संबंधित गुण (Qualities Related to Subject of Study)

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त अनुसंधानकर्ता में अध्ययन-विषय से संबंधित कुछ गुणों का होना भी आवश्यक है। ये गुण निम्नलिखित हैं–

1. **विषय में रुचि** (Interest in the Subject)–शोधकर्ता अपने कार्य में तभी सफल हो सकता है जब कि अध्ययन-विषय में उसकी व्यक्तिगत गहरी रुचि हो। विषय में रुचि शोधकर्ता में लगन तथा अथक परिश्रम करने की प्रेरणा जुटाती है और उसे उत्साह के साथ अपने काम में लगे रहने को प्रेरित करती है। जिस विषय या समस्या में गहरी रुचि होती है उसे समझने में भी सुविधा रहती है। साथ ही यदि समस्या का अध्ययन कठिन भी होता है तो भी उसमें अपनी आंतरिक रुचि होने के कारण शोधकर्ता उसे सफल बनाने के लिए अधिक से अधिक परिश्रम करने का प्रयत्न करता तथा हर कठिनाई का साहस के साथ सामना करता है।

2. **विषय में पारंगत होना** (Mastery over the Subject)–शोध की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि विषय या समस्या का शोधकर्ता अध्ययन कर रहा है। उसके बारे में उसे पूर्ण ज्ञान हो अन्यथा उसके द्वारा संकलित तथ्य अपूर्ण, दोष-युक्त एवं अनुपयोगी हो सकते हैं। विषय के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस विषय से संबंधित उपलब्ध साहित्य का गहन अध्ययन कर लेना शोधकर्ता के लिए आवश्यक होता है। विषय के संबंध में पूर्ण

ज्ञान न होने से इस बात की संभावना रहती है कि शोधकर्ता विषय के उन पक्षों को कम महत्त्व दे सकता है जो कि वास्तव में महत्त्वपूर्ण हैं जबकि अपना अधिकांश समय, धन तथा परिश्रम कम महत्त्वपूर्ण पक्षों के अध्ययन में व्यर्थ ही व्यय कर देता है।

3. **समस्या पर एकाग्रता** (Concentration on Problem)–सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष एक-दूसरे के साथ इतने घनिष्ठ रूप से सह-संबंधित होते हैं कि निर्धारित समस्या से विचलित हो जाने की बहुत संभावना होती है। इसीलिए समस्या पर एकाग्रता का गुण शोधकर्ता में होना आवश्यक है। बहुधा ऐसा भी होता है कि शोध-कार्य के दौरान समुदाय के जीवन से संबंधित कुछ विशिष्ट, आकर्षक या रहस्यपूर्ण घटनाओं के प्रति शोधकर्ता का ध्यान अधिक आकर्षित होता है और वह उन्हीं में फँस जाता है जबकि वास्तविक विषय पर उसकी एकाग्रता टूट जाती है जिसके फलस्वरूप शोधकार्य की संतुलित प्रगति रुक जाती है। अत: मूल समस्या या विषय पर शोधकर्ता की एकाग्रता आवश्यक है।

4.5 अध्ययन-स्थल में किए जाने वाले क्रिया संबंधी गुण (Qualities Related to Field Work)

शोध में वास्तविक रूप से अध्ययन-स्थल पर जाकर तथ्यों व सूचनाओं को एकत्रित करने की आवश्यकता होती है। इस कारण इससे संबंधित भिन्न-भिन्न व्यावहारिक क्रियाओं का ज्ञान अत्यंत आवश्यक होता है। इस संबंध में अनुसंधानकर्त्ता के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया जा सकता है–

1. **अध्ययन-पद्धतियों, उपकरणों तथा प्रविधियों का ज्ञान** (Knowledge of Methods, Tools and Techniques of Research)–एक शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि उसे इस बात का पूरा-पूरा ज्ञान हो कि किस प्रकार के शोधकार्य में कौन-कौन सी पद्धतियों तथा उपकरणों से काम लेना उपयोगी होता है। उसे इस बात का भी ज्ञान होना चाहिए कि प्रत्येक पद्धति की कौन-कौन सी सीमाएँ हैं और उस पद्धति को काम में लाने से अध्ययन-कार्य में किन-किन त्रुटियों के पनपने की संभावना होती है। इस प्रकार का ज्ञान न केवल सबसे उपयुक्त पद्धतियों तथा उपकरणों का चुनाव करने में मदद करके पर्याप्त परिश्रम, धन तथा समय की बचत करने में सहायक होता है बल्कि उचित समय पर शोधकार्य में पनपने वाली संभावित त्रुटियों को सुधारने के प्रति शोधकर्ता को सजग भी रखता है। इसीलिए शोधकार्य में साक्षात्कार अनुसूची अधिक उपयुक्त होगी अथवा प्रश्नावली, प्रत्यक्ष निरीक्षण, अध्ययन निदर्शन के द्वारा किया जाएगा अथवा जनगणना-विधि संभव होगी, प्रश्नावली या अनुसूची में किन-किन प्रश्नों के रहने से अध्ययन में अधिकाधिक यथार्थता पनप सकेगी आदि सभी विषयों के संबंध में ज्ञान शोधकर्ता में अनिवार्य रूप से होना चाहिए।

2. **व्यक्ति, समय तथा स्थान का बोध** (Understanding of Person, Time and Place)–अध्ययन-स्थल में जाकर अनायास, बिना पूर्वनिर्णय के किसी भी व्यक्ति से किसी भी समय व कहीं पर भी मिलकर सूचना प्राप्त करने की चेष्टा निष्फल या संदेहयुक्त परिणामों को उत्पन्न करने वाली होती है। शोधकर्ता को इस बात का सामान्य ज्ञान होना चाहिए कि किस व्यक्ति से पूछने पर विषय से संबंधित वास्तविक तथ्यों को प्राप्त करना सुविधाजनक होगा, किस समय व किस स्थान पर उनसे मिलने पर वे उत्तर देने के लिए सहर्ष तैयार हो जाएँगे अर्थात् सूचना प्राप्त करने के संबंध में उनका पूर्ण व सक्रिय सहयोग प्राप्त होगा। शोधकर्ता को यह जानना चाहिए कि अदरक के व्यापारी से जहाज की खबर नहीं मिल सकती, सार्वजनिक उत्सव के समय सूचना-दाताओं से उनके पारिवारिक जीवन के संबंध में कुछ जाना नहीं जा सकता और थाने के पास खड़े एक चोर से उसके कारनामों के बारे में पूछना मूर्खता होगी। इसीलिए व्यक्ति, समय तथा स्थान के संबंध में बोधशक्ति का होना शोधकर्ता के लिए एक आवश्यक गुण है।

3. **प्रशिक्षण तथा अनुभव** (Training and Experience)–किसी भी व्यक्ति को अध्ययन-स्थल में सूचना

संकलन हेतु छोड़ देने मात्र से ही तथ्यों का संकलन संभव नहीं होता जब तक कि उसे अध्ययन-स्थल पर काम करने का अनुभव न हो या उसे इस कार्य के लिए वास्तविक रूप में प्रशिक्षित न किया गया हो। अपने प्रशिक्षण व अनुभव के आधार पर अध्ययन-पद्धतियों, अध्ययन-कार्य में आने वाली कठिनाइयों आदि से पूर्णतया परिचित शोधकर्ता ही शोधकार्य को सुव्यवस्थित कर अंतिम लक्ष्य तक ले जाने में सफल हो सकता है।

4. **संगठन शक्ति** (Organisational Capacity)—एक सफल व योग्य शोधकर्ता में संगठन शक्ति का होना भी परमावश्यक है। शोधकार्य कोई चलते-फिरते किए जाने योग्य कार्य नहीं है। उसके लिए सुव्यवस्थित आयोजन तथा उत्तम संगठन की आवश्यकता होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति करने की योग्यता या शक्ति शोधकर्ता में होनी चाहिए। सामाजिक अनुसंधानों में प्राय: एकाधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। इन कार्यकर्ताओं में किसे कौन सा कार्य सौंपने पर सर्वोत्तम परिणामों की प्राप्ति संभव है इस बात का ज्ञान शोधकर्ता को होना चाहिए। आधुनिक प्रवृत्ति यह है कि सामाजिक शोधकार्य में अंत: वैज्ञानिक पद्धति (Inter Disciplinary Approach) अपनायी जा रही है जिससे कि विभिन्न विज्ञानों के विशेषज्ञों की सहायता व सहयोग प्राप्त करना आवश्यक होता है। अत: शोधकर्ता को यह ज्ञान होना चाहिए कि किस प्रकार उनका अधिकाधिक सहयोग व सहायता अपने लाभ के लिए प्राप्त की जा सकती है—यह भी शोधकर्ता की संगठन शक्ति पर निर्भर करता है।

5. **साधन संपन्नता** (Resourcefullness)—आधुनिक शोधकार्य में धन के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के साधनों जैसे मानचित्र, कैमरा, टेपरिकार्डर आदि की भी आवश्यकता होती है। अत: शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि ये सभी साधन न केवल उसे उपलब्ध हैं बल्कि उनका उपयोग में लाने का सही ढंग भी उसे मालूम हो। कभी-कभी सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी विभागों के अधिकारियों से सहायता लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। अत: यह आवश्यक है कि शोधकर्ता की इन अधिकारियों तक पहुँच हो। इस प्रकार की पहुँच भी शोधकार्य में अत्यंत सहायक सिद्ध होती है और यह शोधकर्ता के साधन-संपन्न होने की द्योतक है।

4.6 वैज्ञानिक भावना संबंधी गुण (Qualities Related to Scientific Spirit)

अनुसंधानकर्ता में सफलता के लिए वैज्ञानिक भावना का होना अत्यावश्यक है। यह वैज्ञानिक भावना स्वयं ही निम्नलिखित गुणों पर आधारित है—

1. **जिज्ञासा** (Curiosity)—शोधकर्ता में इस गुण का होना अत्यंत आवश्यक इस अर्थ में है कि इसी के आधार पर कुछ जानने की इच्छा, रहस्य को उद्घाटित करने की प्रेरणा तथा नवीनता के प्रति आकर्षण की जागृति होती है और ये सभी तत्व शोधकार्य में मदद करने वाले होते हैं। शोधकार्य का एक उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति होती है और जिज्ञासा की प्रवृत्ति के बिना इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती।

2. **वैषयिक दृष्टिकोण** (Objective Point of View)—वैषयिक दृष्टिकोण का होना वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए आवश्यक है। यदि शोधकर्ता में यह गुण न हुआ तो वास्तविक घटनाओं को उनके वास्तविक रूप में देखने में अवश्य ही असफल रहेगा क्योंकि वैषयिक दृष्टिकोण के अभाव का तात्पर्य यह होगा कि शोधकार्य पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव (bias) द्वारा प्रभावित है। वैषयिक दृष्टिकोण की आवश्यकता सत्य निष्कर्ष के लिए भी पड़ती है क्योंकि इसके बिना निरीक्षण-परीक्षण की क्रिया विकृत हो जाने की संभावना होती है और सत्यता की जाँच अत्यंत कठिन हो जाती है। अत: स्पष्ट है कि वैषयिक दृष्टिकोण का होना शोधकर्ता के लिए एक महत्त्वपूर्ण गुण है क्योंकि शोधकार्य को विकृत करने वाले सभी व्यक्तियों, विचारों, आदर्शों तथा भावनाओं से निरंतर अलगाव रखते हुए सत्य की खोज करना वैषयिक दृष्टिकोण के आधार पर भी संभव है।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि एक सफल व उत्तम अनुसंधानकर्ता के लिए एकाधिक गुणों से संपन्न होना परमावश्यक है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सभी अनुसंधानकर्ता या शोधकर्ता सर्वगुणसंपन्न होते हैं और न ही आवश्यक गुणों की कोई अंतिम सूची तैयार की जाती है। पर इतना कहा जा सकता है कि शोधकार्य कोई साधारण

नोट

कार्य नहीं है। इस कारण साधारण व्यक्तियों द्वारा उसे सुसंपन्न नहीं कराया जा सकता है। उसके लिए अनुभवी, योग्य, कुशल व उद्योगी व्यक्तियों की आवश्यकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... में धन के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के साधनों जैसे मानचित्र, कैमरा, टैपरिकार्डर इत्यादि की भी आवश्यकता होती है।
2. यह आवश्यक है कि .... की इन अधिकारियों तक पहुँच हो।
3. .... दृष्टिकोण के अभाव का तात्पयर्य यह होगा कि शोध कार्य पक्षपात तथा मिथ्या-झुकाव द्वारा प्रभावित है।

4.7 सारांश (Summary)

- एक सफल अनुसंधानकर्ता में अनेक गुणों का होना अनिवार्य है, जैसे व्यक्तिगत गुण, बौद्धिक गुण तथा व्यवहार संबंधी गुण आदि।
- शोध में वास्तविक रूप से अध्ययन स्थल पर जाकर तथ्यों व सूचनाओं को एकत्र करने की आवश्यकता होती है। इस कारण इससे संबंधित भिन्न-भिन्न व्यावहारिक क्रियाओं का शोधकर्ता को ज्ञान होना आवश्यक है।

4.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक व्यवहार (Social Behaviour)**–किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों द्वारा किया गया वह व्यवहार है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार अथवा संभावित प्रतिक्रिया के फलस्वरूप किया जाता है सामाजिक व्यवहार कहलाता है।
2. **वौद्धिक गुण (Intellectual Qualities)**–परिशुद्धता कायम रखने की शक्ति को शोधकर्त्ता का परमआवश्यक गुण माना गया है। इस गुण का विकास सांख्यिकीय योग्यता पर ही निर्भर है।

4.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. उत्तम अनुसंधानकर्ता के नैतिक गुणों को बताएँ।
2. अनुसंधानकर्ता के बौद्धिक तथा व्यावहारिक गुणों को समझाएँ।
3. अध्ययन स्थल पर किए जाने वाले क्रिया संबंधी गुण क्या हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. आधुनिक शोधकार्य 2. शोधकर्त्ता 3. वैषयिक।

4.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध व सांख्यिकीय–रवींद्रनाथ मुकर्जी।
2. सामाजिक विचारधारा एवं सामाजिक विचारक–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–5: आगमन एवं निगमन पद्धति, प्रस्ताव, अवयव एवं तार्किक भ्रम (Induction and Deduction, Propositions, Syllogism and Logical Fallacies)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 विषय-वस्तु : तार्किक पद्धति (Logical Method)

5.2 निगमन पद्धति (Deductive Method)

5.3 आगमन पद्धति (Inductive Method)

5.4 सारांश (Summary)

5.5 शब्दकोश (Keywords)

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तार्किक पद्धति का उपयोग।
- आगमन पद्धति का अर्थ समझना।
- निगमन पद्धति के गुण, दोषों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी विषय के विज्ञान के रूप में विकास में अध्ययन पद्धतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रत्येक विज्ञान कुछ निश्चित अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग करके ही विश्वसनीय एवं प्रामाणिक ज्ञान का संकलन करता है। अध्ययन पद्धतियों के आधार पर ही हम सामाजिक तथ्यों की यथार्थ व्याख्या, भविष्यवाणी एवं उन पर नियंत्रण लागू कर सकते हैं। कोई भी विषय तभी विज्ञान कहला सकता है जब वह वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग करे।

मार्टिण्डेल एवं **मौनेचेसी** ने पद्धति का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, **"पद्धति से हमारा तात्पर्य उस अध्ययन विधि से है जिससे विज्ञान अनुभवसिद्ध अथवा प्रयोगसिद्ध ज्ञान** (Empirical Knowledge) **की प्राप्ति के लिए अपनी आधारभूत प्रणालियों को व्यवहार में लाता है तथा अपने उपकरणों एवं प्रविधियों का प्रयोग करता है।"**

5.1 विषय-वस्तु : तार्किक पद्धति (Logical Method)

श्री कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के मतानुसार "वैज्ञानिक पद्धति में निम्नलिखित लक्षण पाए जाते हैं (अ)

नोट

तथ्यों का सतर्क एवं शुद्ध वर्गीकरण तथा उनके सह-संबंध तथा अनुक्रम का निरीक्षण, (ब) रचनात्मक कल्पना की सहायता से वैज्ञानिक नियमों की खोज, (स) आत्म-आलोचना तथा समान दृष्टिकोण वाले सभी व्यक्तियों के लिए (अर्थात् सभी वैज्ञानिकों के लिए) समान रूप में सिद्ध अंतिम कसौटी प्रस्तुत करना।" इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक या एकाधिक प्रणालियों को अध्ययन-वस्तु की प्रकृति के अनुसार अपनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण तथा शोध की पद्धतियों को मोटे तौर पर हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं–(1) सामान्य पद्धति (General method) जो कि सभी विज्ञानों में चाहे वह प्राकृतिक विज्ञान हो अथवा सामाजिक, सामान्य अर्थात् एक-सा होता है और इस सामान्य पद्धति के अंतर्गत चार प्रमुख स्वर या चरण होते हैं–(अ) प्राक्कल्पना का निर्माण, (ब) तथ्यों का निरीक्षण, संग्रह एवं लेखन, (स) इस प्रकार प्राप्त सामग्री का श्रेणियों अथवा अनुक्रमों में वर्गीकरण, तथा (द) वैज्ञानिक निष्कर्षीकरण तथा सामान्य नियमों का प्रतिपादन। वैज्ञानिक अध्ययन में इस पद्धति का अनुसरण सभी विज्ञानों द्वारा किया जाता है, इसीलिए इसे सामान्य पद्धति कहते हैं। पर चूँकि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति कुछ विशिष्ट प्रकार की होती है इस कारण अध्ययन-विषय की प्रकृति के अनुसार (2) कुछ विशिष्ट पद्धतियों (Specific or particular methods) को भी अपनाने की आवश्यकता होती है। जैसे ऐतिहासिक पद्धति, तार्किक पद्धति, तुलनात्मक पद्धति, वैयक्तिक अध्ययन (Case study) पद्धति आदि। इनमें से कुछ पद्धतियों या अनुसंधान के आधारों के संबंध में हम यहाँ विवेचना करेंगे।

तार्किक पद्धति (Logical Method)–आरंभिक अनुसंधानकर्ताओं के द्वारा तार्किक पद्धति का प्रयोग अत्यधिक किया जाता था। तर्क के आधार पर वे 'पद्धति' शब्द को भी परिभाषित करते थे। श्री कोसा (Cossa) के अनुसार "पद्धति शब्द का अर्थ उस तर्कपूर्ण प्रक्रिया से होता है जिसका उपयोग सच्चाई को खोजने या उसे दर्शाने के लिए किया जाता है।"

तार्किक पद्धति के अंतर्गत मुख्य रूप से दो पद्धतियाँ–निगमन (Deductive) एवं आगमन (Inductive)–आती हैं। इन दोनों का विवरण इस प्रकार है–

5.2 निगमन पद्धति (Deductive Method)

अर्थ (Meaning)–इस पद्धति के अंतर्गत हम कुछ सामान्य मान्यताओं को आधार मानकर अपना अध्ययन कार्य प्रारंभ करते हैं और इन मान्यताओं के संदर्भ में तर्क (logic) का प्रयोग करके निष्कर्ष निकालते हैं। इसमें **'तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर'** होता है (The process of logic is from general to particular)।

नोट्स इस पद्धति के अंतर्गत हम सामान्य सत्य के आधार पर विशिष्ट सत्य का निरूपण करते हैं, अर्थात् सामान्य सत्य के आधार पर विशिष्ट सत्य का अनुमान लगाते हैं और तर्कों के आधार पर उसका अनुमोदन करते हैं।

इस प्रकार जो निष्कर्ष निकलते हैं, वही अध्ययन-विषय के संबंध में नियम होते हैं। इस प्रकार निगमन पद्धति के अंतर्गत मौलिक मान्यताओं और धारणाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं और इन निष्कर्षों में तर्क अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम इस सामान्य सत्य (मान्यता) को स्वीकार करें कि मनुष्य एक मरणशील प्राणी है तो हम तर्क के आधार पर यह विशिष्ट निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं कि दीनानाथ एक मरणशील प्राणी है क्योंकि वह भी एक मनुष्य है। उसी प्रकार अगर हम यह मानकर चलते हैं कि सभी मनुष्यों का व्यवहार विवेकपूर्ण (rational) होता है तो इसका अर्थ यह भी होगा कि सभी लोग अपनी संतुष्टि को अधिकतम करना चाहते हैं। इस सामान्य मान्यता के आधार पर तर्क का प्रयोग करके हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि एक विशिष्ट व्यक्ति भी अपनी संतुष्टि या लाभ को अधिकतम करेगा। अत: स्पष्ट है कि मानव स्वभाव व व्यवहार के संबंध में जो सामान्य समान्यताएँ हैं उनके आधार पर निगमन पद्धति की सहायता से हम अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों को निकाल सकते हैं।

नोट

> *क्या आप जानते हैं* प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने निगमन पद्धति को 'बौद्धिक प्रयोग की प्रणाली' (method of intellectual experiment) कहा है।

चूँकि वास्तविक संसार जटिल है, इसलिए उसका वास्तविक रूप में एकदम अध्ययन नहीं किया जा सकता। अत: पहले सरल दशाओं व मान्यताओं को लेकर चलते हैं, फिर धीरे-धीरे जटिल मान्यताओं का समावेश करते जाते हैं ताकि वास्तविकता तक पहुँच जाएँ।

पद्धति के गुण (Merits of the Method)–(1) सरलता इस पद्धति का सर्वप्रमुख गुण है क्योंकि इसके अंतर्गत आंकड़ों को एकत्रित व विश्लेषित करने इत्यादि कठिन व जटिल कार्य नहीं करने पड़ते हैं, अपितु इसमें केवल सामान्य तथा स्वयंसिद्ध मान्यता के आधार पर तर्क की सहायता से विशिष्ट निष्कर्ष निकाले जाते हैं। (2) **निश्चितता तथा स्पष्टता** इस पद्धति का दूसरा गुण है। यदि स्वयंसिद्ध तथ्य (Axioms) तथा मान्यताएँ ठीक हों, तो इस पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सामान्यत: निश्चित, यथार्थ और स्पष्ट होते हैं क्योंकि इसमें त्रुटियों को तर्क की सहायता से दूर किया जा सकता है। (3) **सार्वभौमिकता** (Universality) इस पद्धति का एक अन्य गुण है। इस पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्ष तथा नियम हर समय तथा हर देश में सत्य सिद्ध होते हैं क्योंकि वे मनुष्य की प्रकृति या स्वभाव-संबंधी सामान्य मान्यताओं पर आधारित होते हैं। (4) निष्पक्षता (Impartiality) इस पद्धति का एक उल्लेखनीय गुण है। चूँकि इस पद्धति के अंतर्गत निष्कर्षों को सामान्य सत्य के आधार पर तर्क की कसौटी पर परख कर निकाला जाता है, इस कारण अनुसंधानकर्ता निष्कर्षों को अपने विचार तथा दृष्टिकोण से प्रभावित नहीं कर सकता।

पद्धति के दोष (Demerits of the Method)–(1) यह कहा जाता है कि निगमन पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष प्राय: **वास्तविकता से दूर** होते हैं। इसका **कारण यह है कि इसमें जिन मान्यताओं को आधार माना जाता है वे सदैव सत्य या** वास्तविक नहीं होते या अंशत: ठीक होते हैं। अत: जो निष्कर्ष निकलते हैं वे यथार्थ व वैज्ञानिक न होकर केवल 'बौद्धिक खिलौने' (Intellectual toys) मात्र ही होते हैं। (2) इस पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष या नियम **सार्वभौम** (Universal) **नहीं होते।** इसका कारण यह है कि सामाजिक दशाएँ प्रत्येक समाज और समय में एक-सी नहीं होतीं, इस कारण एक समाज और समय विशेष के संबंध में तर्क द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को दूसरे समाज व समय पर लागू नहीं किया जा सकता। इसीलिए प्रो०ए०पी० लर्नर (A.P. Lerner) का कहना है कि निगमन आराम-कुर्सी विश्लेषण (Deductive arm-chair analysis) को सार्वभौमिक नहीं माना जा सकता।

5.3 आगमन पद्धति (Inductive Method)

आगमन पद्धति में अध्ययन-कार्य निगमन पद्धति के विपरीत ढंग से किया जाता है अर्थात् आगमन पद्धति के अंतर्गत हम विशिष्ट से सामान्य, सूक्ष्म से व्यापक सत्य की प्रतिस्थापना करते हैं। इसीलिए इस पद्धति में **तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर** होता है (The process of logic is from particular to general)। और भी स्पष्ट रूप में, इस पद्धति के अंतर्गत तर्क के संदर्भ में बहुत-सी विशिष्ट घटनाओं या वास्तविक तथ्यों के निरीक्षण व अध्ययन के आधार पर सामान्य सिद्धांत का निर्माण किया जाता है। इसके पश्चात् अनुभव व प्रयोग के आधार पर इस सामान्य सिद्धांत की जाँच की जाती है। उदाहरणार्थ, विभिन्न व्यक्तियों को एक न एक दिन मरते देखकर हम यह सामान्य निष्कर्ष तर्क के आधार पर निकालते हैं कि मनुष्य मरणशील है। उसी प्रकार पिता द्वारा दूसरी शादी कर लेने के कारण परिवार में सौतेली माँ आ जाने पर यदि हम यह देखते हैं कि कई बच्चे बाल-अपराधी बन गए हैं तो यह सामान्य निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि परिवार में सौतेली माँ के आ जाने से बाल अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है। यहाँ पर तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर है। स्पष्ट है कि इस पद्धति में अनुभवों के आधार पर नियम बनाए जाते हैं और इसीलिए इसे अनुभवाश्रित पद्धति (empirical method) भी कहा जाता है। कुछ

नोट

लोग तो इसे ऐतिहासिक पद्धति (historical method) भी कहते हैं क्योंकि भूतकाल की विभिन्न घटनाओं और व्यवहार के **अनुक्रम** (sequence) के अध्ययन के आधार पर सामाजिक नियम का प्रतिपादन आगमन पद्धति के अंतर्गत ही किया जाता है।

पद्धति के गुण (Merits of the method)–(1) इस पद्धति की सहायता से निकाले गए निष्कर्ष **वास्तविकता के अधिक निकट** होते हैं क्योंकि यह वास्तविक विशिष्ट घटनाओं और तथ्यों के निरीक्षण पर आधारित होता है। (2) इस पद्धति का दृष्टिकोण **अधिक गतिशील** (dynamic) होता है क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों में जो नवीन विशिष्ट तथ्य या घटनाएँ सामने आती हैं, उनका पूरा ध्यान निष्कर्ष निकालते समय रखा जाता है। (3) इस पद्धति द्वारा निकाले गए **निष्कर्षों की फिर से जाँच** या पुन:परीक्षा संभव है क्योंकि आवश्यकता होने पर निष्कर्षों को अन्य तथ्यों या परिवर्तित तथ्यों द्वारा जाँचा जा सकता है। (4) यह पद्धति **निगमन पद्धति की पूरक** (complementary) है, अर्थात् निगमन पद्धति द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की जाँच व सुधार इस पद्धति द्वारा किया जा सकता है।

पद्धति के दोष (Demerits of the method)–(1) इस पद्धति का **प्रयोग कठिन है** क्योंकि विशिष्ट घटनाओं का वैज्ञानिक निरीक्षण करना तथा उनके अनुक्रम (sequence) को ढूँढ़ निकालना सरल कार्य नहीं होता। इसके लिए आवश्यक **प्रशिक्षण** (training) की बहुत जरूरत होती है। (2) इस पद्धति द्वारा निकाले गए **निष्कर्ष यथार्थ नहीं** होते, विशेषकर उस दशा में जबकि निरीक्षण का क्षेत्र बहुत सीमित रखा गया हो और थोड़े-से आँकड़ों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाल लिया गया हो। उस अवस्था में निष्कर्षों के गलत होने की संभावना अधिक रहती है। (3) इस पद्धति के अंतर्गत **पक्षपातपूर्ण निष्कर्षों** की बहुत संभावना रहती है क्योंकि अनुसंधानकर्ता आँकड़ों को अपनी इच्छानुसार किसी भी तरफ झुका सकता है। 'आँकड़ों द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है' (statistics can prove anything) यह कथन प्राय: इस पद्धति पर लागू हो जाता है। (4) इस पद्धति में दो बातों को एक साथ देखकर उनमें से एक को कारण और दूसरे को परिणाम मान लिया जाता है जैसे यदि एक परिवार में सौतेली माँ और बाल-अपराध ये दो तथ्य मौजूद हैं तो सौतेली माँ को कारण और बाल-अपराध को परिणाम मान लिया जाता है। पर यह कार्य कारण संबंध हमेशा ही होगा यह मान लेना गलत है और गलती इस आगमन पद्धति में किया जाता है। प्रो० बोल्डिंग (Boulding) ने लिखा है कि "यदि कुछ दशाओं में दो चीजें एक साथ देखी जाती हैं तो यह मान लेना कि उनमें कार्य-कारण (अथवा कारण और परिणाम) का संबंध अवश्य है, सांख्यिकीय अनुसंधान का सबसे अधिक खतरनाक भ्रम है।"

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. आगमन पद्धति में अध्ययन-कार्य निगमन पद्धति के .... ढंग से किया जाता है।
2. अनुभव व प्रयोग के आधार पर इस .... की जाँच की जाती है।
3. .... घटनाओं का वैज्ञानिक निरीक्षण करना तथा उनके अनुक्रम को ढूँढ़ निकालना सरल काम नहीं होता।

5.4 सारांश (Summary)

- आरंभ में अनुसंधानकर्ता द्वारा तार्किक पद्धति का प्रयोग अधिक किया जाता था।
- श्री कोसा के अनुसार–"पद्धति शब्द का अर्थ उस तर्कपूर्ण प्रक्रिया से होता है जिसका उपयोग सच्चाई को खोजने या उसे दर्शाने के लिए किया जाता है।"
- निगमन पद्धति के अंतर्गत सामान्य सत्य के आधार पर विशिष्ट सत्य का अनुमान लगाते हैं और तर्कों के आधार पर उसका अनुमोदन करते हैं।
- आगमन पद्धति, निगमन पद्धति का पूरक है।

नोट

5.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **निगमन पद्धति (Deductive Method)**—तर्क का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर।
2. **आगमन पद्धति (Inductive Method)**—तर्क का क्रम विशिष्ट से सामान्य की ओर।

5.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. निगमन पद्धति के गुण-दोषों को बताएँ।
2. आगमन पद्धति के गुण-दोषों की विवेचना करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विपरीत 2. सामान्य सिद्धांत 3. विशिष्ट।

5.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सैद्धांतिक समाजशास्त्र—डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।
2. सामाजिक शोध व सांख्यिकी—रवीन्द्रनाथ मुकर्जी।

नोट

इकाई–6: विशुद्ध तथा व्यावहारिक शोध (Pure and Applied Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
6.1 विषय-वस्तु: विशुद्ध शोध (Pure Research)
6.2 व्यावहारिक शोध (Applied Research)
6.3 सारांश (Summary)
6.4 शब्दकोश (Keywords)
6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विशुद्ध शोध के अर्थ को जानना।
- व्यावहारिक शोध के गुणों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक शोध का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है और मानव समाज व जीवन का हर पक्ष इस क्षेत्र के अंतर्गत आता है। सामाजिक शोध में सामाजिक जीवन व घटनाओं के संबंध में मौलिक सिद्धांतों व नियमों का अनुसंधान किया जाता है, और इस अनुसंधान का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति तथा पुराने ज्ञान की पुन:परीक्षा द्वारा उसका शुद्धिकरण होता है।

6.1 विषय-विस्तु : विशुद्ध शोध (Pure Research)

विशुद्ध अनुसंधान (शोध) व्यावहारिक उपयोगिता को दृष्टि में रखकर नहीं किया जाता। किसी समस्या के कारणों को ढूँढ़ निकालना और उसका हल प्रस्तुत करना भी विशुद्ध शोध के अंतर्गत नहीं आता है। विशुद्ध शोध तो 'ज्ञान के लिए ज्ञान' (Knowledge for Knowledge sake) के लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ता है। जब किसी घटना की खोज ज्ञान-प्राप्ति हेतु की जाए और वह भी वैज्ञानिक तटस्थता या वस्तुनिष्ठता बनाये रखकर तो उसे विशुद्ध, मौलिक या आधारभूत शोध कहते हैं। इस प्रकार के शोध-कार्य में नीति-निर्माण या उपयोगिता का दृष्टिकोण सम्मिलित नहीं होता है। विशुद्ध शोध का लक्ष्य किसी समस्या को हल करना या किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति करना नहीं है बल्कि ज्ञान की प्राप्ति, मौजूदा ज्ञान-भंडार में वृद्धि और पुराने ज्ञान का शुद्धिकरण है। सत्य की खोज, रहस्यों को जानने की इच्छा, सामाजिक घटनाओं को समझने की लालसा ही शोध-कर्ता के प्रमुख लक्ष्य होते हैं, इसी

दृष्टि से वह निरंतर प्रयत्नशील रहता है। ज्ञान की प्राप्ति तथा मौजूदा ज्ञान के परिमार्जन एवं परिवर्द्धन के लिए वैज्ञानिक प्रविधियों को काम में लेते हुए जो शोध-कार्य किया जाता है, उसे ही विशुद्ध या मौलिक शोध कहते हैं। इस प्रकार के शोध-कार्य द्वारा सामाजिक जीवन के संबंध में मौलिक सिद्धांतों एवं नियमों की खोज की जाती है।

विशुद्ध सामाजिक शोध का उद्देश्य सामाजिक घटनाओं में कार्य-कारण संबंधों का पता लगाना होता है। साथ ही इस प्रकार के शोध-कार्य द्वारा घटनाओं में निहित या घटनाओं को संचालित करने वाले नियमों का पता लगाया जाता है। प्रत्येक घटना चाहे वह प्राकृतिक हो या सामाजिक, कुछ निश्चित नियमों के अनुसार ही घटित होती है। इन नियमों को खोज निकालना विशुद्ध शोध का प्रमुख लक्ष्य है।

नोट्स प्राकृतिक घटनाओं को संचालित करने वाले अनेक नियमों का पता प्राकृतिक वैज्ञानिकों द्वारा विशुद्ध शोध के माध्यम से ही लगाया जाता है।

समाजशास्त्र भी सामाजिक घटनाओं के पीछे छिपे नियमों को खोज निकालने की दिशा में प्रयत्नशील है। इन नियमों की खोज के लिए विशुद्ध शोध का सहारा लेना आवश्यक है।

सामाजिक जीवन एवं घटनाओं के संबंध में मौलिक सिद्धांतों एवं नियमों की खोज विशुद्ध शोध का एक प्रमुख कार्य है। इस प्रकार की शोध द्वारा न केवल नवीन ज्ञान की प्राप्ति एवं ज्ञान भंडार में वृद्धि ही की जाती है बल्कि पुराने ज्ञान का पुन: परीक्षण द्वारा शुद्धिकरण भी किया जाता है। विशुद्ध शोध के द्वारा यह पता लगाया जाता है कि परिस्थितियों के बदल जाने से पुराने सिद्धांत एवं नियम वर्तमान में ठीक हैं या नहीं, हो सकता है कि वे सही उतरें। यह भी संभव है कि वर्तमान में बदली हुई परिस्थितियों में उनमें संशोधन करना पड़े।

क्या आप जानते हैं नवीन सिद्धांतों एवं नियमों का प्रतिपादन तथा पुरानों का सत्यापन विशुद्ध शोध का एक मुख्य लक्ष्य है।

विशुद्ध शोध संबंधित विज्ञानों की प्रगति एवं विकास में काफी योग देता है। इस प्रकार के शोध-कार्यों से संबंधित विज्ञान के लिए अवधारणाओं एवं शब्दावली का विकास होता है। विशुद्ध शोध के अंतर्गत शोध-विधियों की उपयुक्तता की जाँच भी आ जाती है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि विशुद्ध शोध के निम्नलिखित पाँच उद्देश्य हैं: प्रथम, ज्ञान-प्राप्ति; द्वितीय, नियमों की खोज; तृतीय, सामाजिक संरचना की निर्णायक इकाइयों के प्रकार्यात्मक संबंधों की जानकारी; चतुर्थ, नवीन अवधारणाओं का प्रतिपादन; पंचम, शोध-विधियों की उपयुक्तता की जाँच।

विशुद्ध शोध के संबंध में कुछ लोगों का कहना है कि 'ज्ञान के लिए ज्ञान' की पिपासा आज के इस भौतिकवादी युग में निरर्थक है। लेकिन यह बात सही नहीं है। आज भी ऐसे अनेक वैज्ञानिक हैं जो सत्य की खोज में निरंतर लगे हुए हैं, उनमें अपने शोध-कार्य के प्रति लगन है, अपूर्व उत्साह है। यहाँ हमें इस बात को ध्यान में रखना है कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति एवं घटनाओं के पीछे छिपे नियमों की खोज अंतत: मानव कल्याण में सहायक ही होती है। विशुद्ध शोध द्वारा प्राप्त ज्ञान का प्रयोग व्यावहारिक शोध के अंतर्गत किया जा सकता और किया जाता है।

टास्क विशुद्ध शोध किसे कहते हैं? उल्लेख करें।

नोट

6.2 व्यावहारिक शोध (Applied Research)

फ्रेस्टिंगर तथा काज ने बताया है कि जब उपयोगितावादी दृष्टिकोण को लेकर उद्योग या प्रशासन के लिए तथ्यों का संकलन किया जाता है एवं नीति-निर्माताओं को इसकी आवश्यकता होती है तो इसे व्यावहारिक शोध के नाम से जाना जाता है। **होर्टन** तथा **हंट** ने बाताया है कि जब किसी ऐसे ज्ञान की खोज के लिए वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) का प्रयोग किया जाता है जिसकी व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में उपयोगिता है, तो इसे व्यावहारिक शोध कहा जाता है। ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष पर जोर देते हुए **श्रीमती पी.वी.** यंग ने लिखा है, "ज्ञान की खोज का लोगों की आवश्यकताओं एवं कल्याण के साथ एक निश्चित संबंध पाया जाता है। वैज्ञानिक यह मानकर चलता है कि समस्त ज्ञान मूलत: उपयोगी है, चाहे उसका उपयोग निष्कर्ष निकालने में या किसी क्रिया अथवा व्यवहार को कार्यान्वित करने में, एक सिद्धांत के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में किया जाए। सिद्धांत तथा व्यवहार अक्सर आगे चलकर एक-दूसरे में मिल जाते हैं।" श्रीमती यंग के इस कथन से व्यावहारिक शोध की महत्ता स्पष्ट हो जाती है।

व्यावहारिक शोध का संबंध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से है। इसका प्रयोग केवल सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप में समझने के लिए ही नहीं किया जाता बल्कि सामाजिक नियोजन, समाज-कल्याण, स्वास्थ्य-रक्षा, समाज-सुधार, धर्म, शिक्षा, सामाजिक अधिनियम, मनोरंजन आदि के संबंध में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। वर्तमान में तो उद्योग, व्यापार, प्रशासन, सांप्रदायिक, प्रजातीय एवं अंतर्राष्ट्रीय तनाव तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की समस्या आदि क्षेत्रों में व्यावहारिक शोध को उपयोगी माना जाता है। व्यावहारिक शोध में इन सबके संबंध में अध्ययन किया जाता है और तथ्यों की कारण सहित विवेचना की जाती है। इससे ज्ञान में वृद्धि होती है, सामाजिक समस्याओं एवं व्याधिकीय व्यवहार को समझने में मदद मिलती है। लेकिन यहाँ हमें यह ध्यान में रखना है कि व्यावहारिक-शोध के अंतर्गत समाज-सुधार, नीति-निर्धारण, सामाजिक नियोजन, सामाजिक समस्याओं का समाधान आदि नहीं आते हैं। ये सब तो समाज-सुधारकों, नेताओं, प्रशासकों, अधिकारियों आदि के क्षेत्र में आते हैं। व्यावहारिक शोधकर्ता तो सामाजिक समस्याओं, व्याधिकीय परिस्थितियों तथा सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण कर तर्कयुक्त ज्ञान के रूप में इनके कार्य में योग देता है।

व्यावहारिक शोध में भी उन्हीं प्रविधियों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनका प्रयोग विशुद्ध शोध में किया जाता है। अत: व्यावहारिक शोध द्वारा प्राप्त ज्ञान व्यावहारिक जीवन से संबंधित समस्याओं को हल करने में और सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करने में काफी योग देता है। शोध-कर्ता अपने अध्ययन के निष्कर्षों या परिणामों के रूप में कुछ ऐसे सुझाव प्रस्तुत करता है जो समस्याओं के समाधान में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

व्यावहारिक शोध की उपयोगिता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **स्टाउफर** ने लिखा है कि यदि समाज-विज्ञानों को अपना महत्त्व बढ़ाना है तो उन्हें अपने व्यावहारिक पक्ष को सफल बनाना होगा। स्टाउफर ने अन्यत्र लिखा है कि व्यावहारिक शोध सामाजिक विज्ञानों को तीन रूपों में महत्त्वपूर्ण योग देता है: (*i*) कौन-से सामाजिक तथ्य किस प्रकार समाज के लिए उपयोगी हैं–इस बारे में विश्वसनीय प्रमाणों को प्रस्तुत करके, (*ii*) ऐसी प्रविधियों (Techniques) का उपयोग एवं विकास करके जो कि विशुद्ध शोध के लिए भी उपयोगी प्रमाणित हों तथा (*iii*) ऐसे तथ्यों व विचारों को प्रस्तुत करके जो सामान्यीकरण (Generalisation) की प्रक्रिया को आगे बढ़ायें।

जहाँ विशुद्ध शोध सिद्धांत एवं नियमों को ज्ञात करता है, वहाँ व्यावहारिक शोध वास्तविक जीवन के संबंध में ज्ञान संकलित करता है। सिद्धांत एवं नियम विभिन्न समस्याओं को समझने और उनके हल खोजने में मदद करते हैं जबकि उन सिद्धांतों व नियमों की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता का पता व्यावहारिक शोध द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही होता है।

व्यावहारिक शोध का विशुद्ध शोध को काफी महत्त्वपूर्ण योगदान है। व्यावहारिक शोध के अंतर्गत प्राप्त किए गए नवीन तथ्य मौजूदा ज्ञान के संशोधन एवं परिवर्द्धन में योग देते हैं। साथ ही सिद्धांतों के परीक्षण के लिए ये अवसर प्रदान करते हैं। व्यावहारिक शोध प्रत्येक विषय से संबंधित अवधारणाओं का वास्तविक परिस्थितियों के संदर्भ में

अध्ययन कर स्पष्ट करता है कि वे अवधारणाएँ कहाँ तक उपयुक्त हैं। साथ ही व्यावहारिक शोध के अंतर्गत जिन शोध-विधियों का विकास किया गया है, उनका विशुद्ध शोध-कार्य हेतु भी उपयोग किया जा सकता है।

विशुद्ध शोध का व्यावहारिक शोध को दिया जाने वाला योगदान भी किसी भी रूप में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। विशुद्ध शोध के आधार पर प्रतिपादित सिद्धांत अनेक व्यावहारिक समस्याओं को हल करने में योग देते हैं। इससे समस्याओं की गहराई तक पहुँचने एवं समस्या के वास्तविक कारणों का पता लगाने में सहायता मिलती है। साथ ही विशुद्ध शोध किसी समस्या के हल के वैकल्पिक तरीके ढूँढ़ निकालने में भी योग देता है। आज सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं में विशुद्ध शोध के महत्त्व को स्वीकारा गया है और इसी के परिणामस्वरूप वहाँ शोध-विभाग देखने को मिलते हैं।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि विशुद्ध एवं व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के शोध एक-दूसरे के पूरक हैं, एक-दूसरे के विकास में सहायक हैं। दोनों में निरंतर अंत: क्रिया होती रहनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. व्यावहारिक शोध का .... सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से है।
2. व्यावहारिक शोध में इन सबके संबंध में .... किया जाता है।
3. व्यावहारिक शोध द्वारा प्राप्त ज्ञान व्यावहारिक जीवन से संबंधित समस्याओं को हल करने और सामाजिक घटनाओं को .... करने में काफी योग देता है।

6.3 सारांश (Summary)

- विशुद्ध शोध के पाँच उद्देश्य हैं–
  (1) ज्ञान प्राप्ति।
  (2) नियमों की खोज।
  (3) सामाजिक इकाइयों की निर्णायक इकाइयों के प्रकार्यात्मक संबंधों की जानकारी।
  (4) नवीन अवधारणाओं का प्रतिपादन।
  (5) शोध विधियों की उपयुक्तता की जाँच।
- विशुद्ध एवं व्यावहारिक शोध एक दूसरे के पूरक हैं। व्यावहारिक शोध का संबंध सामाजिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से होता है।

6.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **विशुद्ध शोध (Pure Research) :** इस प्रकार की खोज में नवीन तथ्यों एवं घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। साथ ही इस बात की जाँच की जाती है कि जो पुराने सिद्धांत व नियम हैं वे वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में ठीक हैं या नहीं।
2. **व्यावहारिक शोध (Applied Research) :** विशुद्ध एवं व्यावहारिक शोध दोनों ही समाज के लिए उपयोगी हैं। विशुद्ध शोध में सामाजिक जीवन के सैद्धांतिक पक्ष का, तो व्यावहारिक शोध में व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। ये दोनों ही प्रकार के शोध एक-दूसरे के विकास में योग देते हैं।

नोट

6.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विशुद्ध शोध से क्या अभिप्राय है?
2. व्यावहारिक शोध तथा विशुद्ध शोध किस प्रकार एक दूसरे के पूरक हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संबंध   2. अध्ययन   3. नियंत्रित।

6.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी–रवींद्र नाथ मुखर्जी।
2. शोध प्रविधि–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–7: शोध प्रचना का अर्थ, शोध प्रचना का चुनाव (Meaning of Research Design, Selecting of Research Design)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 विषय-वस्तु : शोध प्रचना का अर्थ (Meaning of Research Design)

7.2 शोध प्रचना का चुनाव (Selection of Research Design)

7.3 सारांश (Summary)

7.4 शब्दकोश (Keywords)

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शोध प्रचना के अर्थ की जानकारी मिलती है।
- शोध प्रचना का चुनाव कैसे हो? बताना।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक सामाजिक शोध के कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं और उन उद्देश्यों की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि योजनाबद्ध रूप में शोध-कार्य का आरंभ नहीं किया गया है। इसी योजना की रूपरेखा को शोध-प्रचना (research design) कहते हैं। इसका तात्पर्य यही हुआ कि एक सामाजिक शोध की समस्या या उपकल्पना जिस प्रकार की होगी, उसी के अनुसार शोध-प्रचना का निर्माण किया जाता है जिससे कि शोध-कार्य को एक निश्चित दिशा प्राप्त हो सके और शोधकर्ता इधर-उधर भटकने से बच जाए। पर इस संबंध में और कुछ लिखने से पूर्व शोध-प्रचना के अर्थ को और भी स्पष्ट रूप में समझ लेना हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

7.1 विषय-वस्तु : शोध प्रचना का अर्थ (Meaning of Research Design)

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि कोई भी सामाजिक शोध बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य के नहीं होता है। इस उद्देश्य या लक्ष्य का विकास और स्पष्टीकरण शोध-कार्य के दौरान् नहीं होता, अपितु वास्तविक अध्ययन आरंभ होने से पूर्व ही इसका निर्धारण कर लिया जाता है। शोध के उद्देश्य के आधार पर अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करने के लिए पहले से ही बनाई गई योजना की रूपरेखा को शोध प्रचनाएँ (research designs) कहते हैं। श्री ऐकॉफ (Ackoff), ने प्रचना का अर्थ समझाते हुए लिखा है कि "निर्णय क्रियान्वित करने की स्थिति आने

नोट

से पूर्व ही निर्णय निर्धारित करने की प्रक्रिया को प्ररचना कहते हैं।" इस दृष्टिकोण से, उद्देश्य की प्राप्ति के पूर्व ही उद्देश्य का निर्धारण करके शोध कार्य की जो रूपरेखा बना ली जाती है उसे शोध-प्ररचना (research design) कहते हैं। जब यह शोध-कार्य किसी सामाजिक घटना से संबद्ध होता है तो वह सामाजिक शोध की प्ररचना (design of social research) कहलाता है। अतः यह स्पष्ट है कि सामाजिक शोध-प्ररचना के अनेक प्रकार हैं और शोधकर्ता अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझकर इनमें से किसी एक प्रकार को चुन लेता है और वह कौन-सा प्रकार है यह मालूम होते ही शोध-कार्य की प्रकृति व लक्ष्य स्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमें यह ज्ञात हो जाए कि कोई शोध-प्ररचना अन्वेषणात्मक है तो स्वतः ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी सामाजिक घटना के अंतर्निहित कारणों की खोज करना ही उस शोध का उद्देश्य है। इसी प्रकार शोध-कार्य तथ्यों का विवरण मात्र होगा अथवा नवीन नियमों को प्रतिपादित किया जाएगा अथवा उस शोध-कार्य में परीक्षण व प्रयोग का अधिक महत्त्व होगा, इन सब बातों को ध्यान में रखकर शोध-कार्य आरंभ करने से पूर्व जो एक रूपरेखा बनाई जाती है उसी को शोध-प्ररचना (research design) कहते हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि शोध-कार्य के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए उसे एक निश्चित प्रकार (type) के अंतर्गत लाने के लिए तथा शोध-कार्य में उपस्थित होने वाली स्थितियों का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए शोध की जो रूपरेखा बनाई जाती है उसी को शोध-प्ररचना कहते हैं।

7.2 शोध प्ररचना का चुनाव (Selection of Research Design)

शोध प्ररचना में सोच-विचारकर निश्चित योजना बनाकर अत्यंत सतर्कतापूर्वक करने का कार्य होता है। इस योजना की रूपरेखा भी हर संभावित अच्छी-बुरी बातों का ध्यान रखते हुए बनानी होती है। यह रूपरेखा वास्तविक शोध-कार्य में पथ-प्रदर्शन का कार्य करती है। यदि विषय का चुनाव व नियोजन ठीक हुआ तो शोध की सफलता की संभावना स्वतः ही बढ़ जाती है। अतः प्रत्येक शोधकर्ता को इस चुनाव तथा नियोजन के कार्य में कुछ आवश्यक बातों को सदा ध्यान में रखना होता है जिन्हें कि हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. **शोध-विषय के संबंध में आरंभिक ज्ञान** (Preliminary Knowledge about Research Topic)–किसी शोध-कार्य में रत होने से पूर्व शोध-विषय के संबंध में आरंभिक ज्ञान होना परमावश्यक है। यह ज्ञान आरंभिक होने पर भी आगे चलकर अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

नोट्स प्रो० पार्क (R.E. Park) ने लिखा है कि शोध-विषय के संबंध में आरंभिक ज्ञान शोधकर्ता के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि एक सफल डॉक्टर के लिए रोगी की शारीरिक अवस्थाओं का परिचय।

यह आरंभिक ज्ञान इस दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है कि इसी के आधार पर हम अंतिम रूप में (finally) यह निश्चित कर सकते हैं कि उस विषय को शोध-कार्य के लिए चुनना ठीक होगा अथवा नहीं। इसी आरंभिक ज्ञान से हमें शोध-कार्य के पथ पर आने वाली संभावित एवं व्यावहारिक कठिनाइयों का भी आभास हो सकता है। यही आरंभिक ज्ञान प्राक्कल्पना के निर्माण में भी सहायक सिद्ध होता है। इस आरंभिक ज्ञान की प्राप्ति शोधकर्ता को उस विषय से संबद्ध क्षेत्र (field) में घूमने-फिरने व लोगों से ऐसे ही बातचीत करने तथा उस विषय से संबद्ध अन्य कृतियों को पढ़ने व विशेषज्ञों के विचारों का अध्ययन करने से हो सकती है।

2. **विषय के चुनाव में सावधानी** (Precautions in the Selection of the Topic)–आरंभिक ज्ञान के आधार पर विषय के चुनाव के संबंध में भी अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है क्योंकि श्री ऑगबर्न (Ogburn) के अनुसार शोधकर्ता द्वारा विषय के चुनाव में अपनाई गई सावधानी की मात्रा उस क्षेत्र में शोधकर्ता के योगदान (contribution) की संभावनाओं को निर्धारित करती है। अतः श्री ऑगबर्न ने हमें सचेत किया है कि

नोट

इस प्रकार के विषय को न चुना जाए जो बहुत ही अस्पष्ट हो या जिसके संबंध में पर्याप्त प्रमाणसिद्ध तथ्य मिलने की संभावना न हो या जो विषय शोध-कार्य की पहुँच के बाहर हो। विषय का चुनाव करते समय इस बात का भी अनुमान लगा लेना चाहिये कि शोध-कार्य में संभवत: कितनी यथार्थता आ सकेगी। उदाहरणार्थ, सतीत्व में अंतर्निहित मनोवैज्ञानिक कारणों को हम जानते हैं, पर पर्याप्त रूप से नहीं; इसी प्रकार प्रजातीय सम्मिश्रण (race mixture) के बारे में भी हमें कुछ पता है, पर वह पर्याप्त नहीं है। ऐसे विषयों को नहीं चुनना चाहिए क्योंकि ज्ञान से सम्बद्ध 'करीब-करीब ठीक' तथ्यों का संकलन पर्याप्त नहीं होता। इसी प्रकार ऐसे विषय को भी नहीं चुनना चाहिये जिसके विषय में यह संदेह हो कि उस विषय से सम्बद्ध तथ्यों पर मनोभावों (emotions) का गहरा रंग चढ़ सकता है, क्योंकि मनोभावों से रंगे हुए तथ्य हमें यथार्थ निष्कर्ष तक नहीं पहुँचा सकते। अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध, हड़ताल व तालाबंदी, राष्ट्रवाद, जातिवाद (casteism) आदि इसी प्रकार के विषय हैं जिन पर मनोभावों का अत्यधिक बोझा लदा होता है और इसीलिये ऐसे विषयों का चुनाव करने से पूर्व विश्वसनीय तथ्यों के संकलन की संभावना व पद्धतियों के विषय में खूब सोच-विचार लेना चाहिए।

क्या आप जानते हैं

हड़ताल के दौरान अगर शोधकर्ता श्रमिक नेता से हड़ताल करने वाले श्रमिकों की संख्या पूछते हैं तो वे यदि 15,000 बताते हैं तो मिल-मालिक केवल 300 ही बता सकता है। और इनमें से कौन ठीक कह रहा है यह निश्चित करना भी हड़ताल के आवेगात्मक वातावरण में अत्यंत कठिन है। अत: ऐसे विषयों के चुनाव में सावधानी आवश्यक है।

3. **शोध के क्षेत्र के निर्धारण में सतर्कता** (Precautions in Determining the Scope of Research)–शोध के आरंभिक स्तर पर अत्यधिक सावधानी तथा विवेकशीलता की आवश्यकता है। यदि शोध के क्षेत्र का निर्धारण उचित ढंग से कर लिया गया है तो उत्तम व यथार्थ अध्ययन-पद्धतियों से पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है। इसीलिए विद्वानों के अनुसार क्षेत्र के निर्धारण में सतर्कता न केवल आवश्यक है अपितु अनिवार्य भी है। यदि शोध का क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है तो शोध-कार्य का जहाज अनुसंधान के महासागर में किसी भी समय भटक सकता है। इसी प्रकार यदि शोध का क्षेत्र अस्पष्ट है तो भी उससे केवल अस्पष्ट निष्कर्षों की ही आशा की जा सकती है। उदाहरणार्थ, यदि मैं संपूर्ण 'जातिप्रथा' को शोध का क्षेत्र मान लेता हूँ तो मेरा संपूर्ण जीवन जातिप्रथा के संबंध में तथ्यों को इकट्ठा करने में बीत जाएगा और जिन कागजों पर उन तथ्यों का संकलन करूँगा उनका ढेर इतना अधिक होगा कि वह मेरे मृत शरीर को जलाने के लिए पर्याप्त से भी अधिक होगा। अर्थात् उन संकलित तथ्यों के विराट् ढेर से शरीर जल सकता है, पर शोध-निष्कर्ष स्वल्प भी नहीं निकाल सकता। अत: शोध के क्षेत्र को आरंभ में ही सीमित करने की आवश्यकता है।

4. **शोध की इकाइयों को परिभाषित करने की आवश्यकता** (Necessity for defining the Units of Research)–व्यावहारिक तौर पर शोधकर्ता को एक और विषय का ध्यान रखना चाहिए और वह यह कि जिस विषय को उसने शोध-कार्य के लिए चुना है उसको अत्यधिक स्पष्ट रूप में परिभाषित कर दे जिससे कि किसी भी स्तर पर उसके संबंध में शोधकर्ता या सूचनादाताओं के मन में कोई भ्रांत धारणा न पनप सके। उदाहरणार्थ, एक शब्द 'बाल-विवाह' को ही लीजिए। यदि हम प्रारंभ में ही यह स्पष्ट रूप से परिभाषित न कर दें कि मासिक धर्म आरंभ होने से पूर्व जितनी भी लड़कियों का विवाह होगा केवल उन्हीं को हम बाल-विवाह के अंतर्गत सम्मिलित करेंगे, तो कुछ सूचनादाता 7 वर्ष की आयु तक, कुछ 10 वर्ष की आयु तक, तो कुछ 14 वर्ष की आयु तक हुए विवाह को ही बाल-विवाह समझेंगे और इसी के अनुसार सूचना प्रदान करेंगे। इससे शोध-कार्य में यथार्थता नहीं पनप सकेगी। इसी प्रकार बेरोजगार 'व्यक्ति', 'समुदाय' 'वैवाहिक अनुकूलन' (marital adjustment) यहाँ तक कि 'बालक' आदि शब्द ऊपरी तौर पर अत्यधिक सरल व सीधे लगते हैं, पर शोध-कार्य में अस्पष्टता को पनपाने में भी उनका महत्त्वपूर्ण योग हो सकता है। अत: आरंभ में ही उन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित करने का परामर्श सभी

नोट

देते हैं। श्रीमती यंग (Young) ने भी लिखा है कि "स्पष्ट रूप से परिभाषित इकाइयाँ न केवल यथार्थ निरीक्षण के अपितु अध्ययन-कार्य के आगे बढ़ने के साथ-साथ यथार्थ नाप तथा तुलना के भी आधार बन जाती हैं। बिना यथार्थ तथा सही परिभाषाओं के हम अपने अध्ययन में केवल कूड़ा-करकट को ही इकट्ठा करते रहेंगे। अस्पष्ट तथा अप्रामाणिक इकाइयों के फलस्वरूप पर्याप्त व्यर्थ की सामग्री का संकलन अवश्यंभावी है।" श्री एम० सी० एलमर ने भी लिखा है कि जहाँ तक संभव हो, इकाइयों को समस्त विरोधी या परिवर्तनीय तत्वों (conflicting or varying elements) से स्वतंत्र रखना चाहिए। यदि हमें एक समुदाय के बालकों (boys) की संख्या जाननी हो तो हमें पहले से ही यह स्पष्ट कर लेना होगा कि किस आयु तक के पुरुष-बच्चों को हम 'बालक' की श्रेणी में रखेंगे? यदि हमने यह निश्चित किया कि नवजात शिशु से 20 वर्ष की आयु तक के पुरुष-बच्चों को हम 'बालक' कहेंगे तो हमें अन्य संभावित परिस्थितियों के संबंध में भी स्पष्ट होना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि 20 वर्ष की आयु तक बालक है, तो क्या 20 वर्ष तक की आयु के विवाहित व दो बच्चों के बाप को भी हम 'बालकों' की श्रेणी में रखेंगे? ऐसे ही हर संभावित अवस्थाओं के संबंध में हमें सचेत रहना होगा।

5. **भावी कठिनाइयों का बोध** (Understanding of Future Difficulties)–शोधकर्ता को अध्ययन-कार्य आरंभ करने से पूर्व ही उन कठिनाइयों के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए जो प्रस्तावित शोध में उसके सामने आ सकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि पहले से ही शोधकर्ता यह पता लगा लेता है कि सूचनादाता साक्षात्कार (interview) के लिए कब मिलेंगे या क्षेत्र (field) तक जाने-आने की क्या कठिनाई होगी तो वास्तविक शोध-कार्य के समय व्यर्थ ही श्रम, समय व धन की बर्बादी न होगी।

6. **पद्धति का चुनाव** (Selection of Method)–एक और अत्यंत व्यावहारिक बात, जिस पर कि अनुसंधानकर्ता को ध्यान देना चाहिए, यह है कि विषय की प्रकृति के अनुसार अध्ययन-पद्धतियों का सावधानी से चुनाव कर लिया जाए। केवल कुछ आकर्षक व कठिन पद्धतियों को अपना लेने से ही शोध-कार्य की यथार्थता की गारण्टी नहीं मिल जाती है। इसके लिए विषय की प्रकृति के अनुसार सबसे उपयुक्त पद्धति का चुनाव परम आवश्यक है। एक विषय के लिए जो पद्धति ठीक है, दूसरे के लिए वही बिल्कुल बेकार सिद्ध हो सकती है। इसीलिए चुनी हुई पद्धति या पद्धतियों का परीक्षण करके उसकी उपयोगिता का अनुमान लगाना तथा आवश्यकतानुसार सुधार कर लेना भी लाभकारी होता है। ऐसा करने से वास्तविक शोध-कार्य के दौरान एक बार अपनाई गई पद्धति को बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती और बिना किसी पद्धतिशास्त्रीय (methodological) अड़चन के शोध-कार्य अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाता है।

7. **तथ्यों के स्रोत तक पहुँचने के संबंध में अनुमान** (Idea about the Accessibility of the Sources of Data)–केवल पद्धतियों का उचित चुनाव कर लेने मात्र से ही शोध-कार्य सफल नहीं हो सकता जब तक तथ्यों के स्रोतों के संबंध में–अर्थात् कहाँ-कहाँ से विषय से सम्बद्ध आँकड़े व प्रमाण प्राप्त होंगे–इस बात का स्पष्ट अनुमान शोधकर्ता को न हो। और फिर केवल स्रोतों का पता होना ही पर्याप्त नहीं है; उन स्रोतों तक शोधकर्ता की पहुँच हो भी सकती है या नहीं, इसका अनुमान भी होना आवश्यक है। अत: तथ्यों के स्रोत तथा उन तक पहुँच के संबंध में शोधकर्ता को पहले से ही स्पष्ट अनुमान होना चाहिए। श्री वी० एम० पामर (V.M.Palmer) ने लिखा है कि कभी-कभी तथ्यों के स्रोत तक पहुँच न होने के कारण बीच में ही शोध-कार्य को काफी समय के लिए रोक देना पड़ता है अथवा विषय का कोई एक पक्ष अछूता रह जाता है अत: इस संबंध में पहले से ही सचेत रहना चाहिए।

8. **पूर्व-अध्ययन व पूर्व-परीक्षण** (Pilot Study and Pre-testing)–श्री एकॉफ (Ackoff) के अनुसार अध्ययन के समय आने वाली कठिनाइयों का अनुमान करने के लिए, निदर्शनों का सही चुनाव करने के लिए, सूचना के स्रोत की खोज करने के लिए, संभावित विकल्पों (alternative) का ज्ञान करने के लिए, विषय की प्रमुख विशेषताओं का अनुमान करने के लिए तथा अध्ययन की अवधि तथा व्यय का अनुमान करने के लिए शोध-विषय

नोट

का पूर्व-अध्ययन केवल उपयोगी ही नहीं, परम आवश्यक है। इसी प्रकार अध्ययन-पद्धतियों तथा प्रविधियों की उपयोगिता की जाँच करने तथा इनमें सुधार की आवश्यकता का पूर्व-ज्ञान करने के लिए पूर्व-परीक्षण (pre-testing) अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है।

9. **समय तथा व्यय का अनुमान** (Time Estimate and Cost Estimate)–सामाजिक शोध में धन तथा समय दोनों बहुत अधिक लगते हैं। अत: शोधकर्ता के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह इन दोनों के संबंध में पहले से ही अनुमान लगा ले। ऐसा न करने पर यह हो सकता है कि इनमें से किसी के अभाव से शोध-कार्य बीच में ही रुक जाए अथवा सदा के लिए अधूरा ही रह जाए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पहले से ही समय तथा धन का उचित वितरण न कर लेने से कुछ कम महत्त्वपूर्ण मदों (items) या विषयों पर अधिक समय तथा धन का अपव्यय कर दिया जाता है, जबकि आगे चलकर महत्त्वपूर्ण मदों या विषयों पर खर्च करने के लिए बहुत कम धन तथा समय शेष रहता है। ऐसा होने पर शोध-कार्य में संतुलित प्रगति नहीं हो पाती है। अत: शोध-कार्य के बजट तथा समय-सारणी (time schedule) का निर्माण आवश्यक है।

10. **कार्यकर्ताओं का चुनाव तथा प्रशिक्षण** (Selection and Training of Personnel)–प्राय: शोध-कार्य में अन्य अनेक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है। इनकी योग्यता तथा कार्य-कुशलता पर ही शोध-कार्य की सफलता काफी सीमा तक निर्भर होती है। अत: यह आवश्यक है कि इन कार्यकर्ताओं का चुनाव अति सावधानी से किया जाए और उन्हें क्षेत्र (field) में भेजने से पूर्व विषय की प्रकृति, लक्ष्य, पद्धति का सर्वोत्तम प्रयोग, तथ्यों का निरीक्षण व संकलन आदि विषयों में अच्छी तरह से प्रशिक्षित कर लिया जाए।

11. **शोध-प्रशासन** (Research Administration)–शोध-कार्य प्रारंभ होने से पूर्व कार्यकर्ताओं का संगठन (अर्थात् किस कार्यकर्ता को किस कार्य में लगाया जाएगा), शोध-कार्य का संचालन तथा अन्य प्रशासकीय व्यवस्था उपयुक्त रूप में कर लेनी चाहिए। ऐसा न होने पर बीच में ही गड़बड़ी की स्थिति उत्पन्न होने और शोध कार्य के अटक जाने की संभावना होती है।

12. **स्वयं को प्रस्तुत करना** (To get Oneself Ready)–अंत में, शोध कार्य के लिए अत्यंत आवश्यकता इस बात की है कि शोधकर्ता स्वयं भी अपने को तैयार करे। उसकी तैयारी उसके अपने गुणों पर निर्भर रहेगी। पर प्रत्येक दशा में यह आवश्यक होगा कि शोधकर्ता अपने में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पनपाए, जिससे कि शोध-कार्य के किसी भी स्तर पर उसका अपना पक्षपात, मिथ्या-झुकाव (bias), पूर्वधारणा, आदर्श, मूल्य, उचित-अनुचित या अच्छे-बुरे का मापदंड अध्ययन को विकृत न करे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. ज्ञान से संबद्ध 'करीब-करीब ठीक' तथ्यों का ·············· प्रयाप्त नहीं होना।
2. मनोभावों से रंगे हुए तथ्य हमें यथार्थ ·············· तक नहीं पहुँचा सकते।
3. विषयों का चुनाव करने के पूर्व ·············· तथ्यों के संकलन की संभावना व पद्धतियों के विषय में खूब सोच-विचार लेना चाहिए।

7.3 सारांश (Summary)

- "निर्णय क्रियान्वित करने की स्थिति आने से पूर्व ही निर्णय निर्धारित करने की प्रक्रिया को प्रचना कहते हैं" एकॉफ।
- शोध प्रचना का चुनाव करते समय शोध विषय के संबंध में आरंभिक ज्ञान, शोध की इकाइयों को परिभाषित करने की आवश्यकता तथा शोध के क्षेत्र निर्धारण में सतर्कता बरतनी चाहिए।।

नोट

7.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **शोध प्रचना (Research Design)**–शोध कार्य आरंभ करने के पूर्व जो एक रूपरेखा बनाई जाती है उसी को शोध प्रचना कहते हैं।
2. शोध प्रचना में विषय के चुनाव में सावधानी वर्तनी चाहिए।

7.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शोध प्रचना की अवधारणा बताएँ।
2. शोध प्रचना का चुनाव कैसे करना चाहिए?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संकलन 2. निष्कर्ष 3. विश्वसनीय।

7.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा का समाजशास्त्र–तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. व्यावहारिक शोध की विधियाँ–डॉ. जय भगवान, फ्रेंड्स पब्लिकेशन।

इकाई–8: शोध प्ररचना के प्रकार : अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक शोध (Types of Research Design : Exploratory and Descriptive)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध (Exploratory or Formulative Research)

8.2 वर्णनात्मक शोध (Descriptive Research)

8.3 सारांश (Summary)

8.4 शब्दकोश (Keywords)

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध का अर्थ जानना।
- वर्णनात्मक शोध का अर्थ और विशेषता को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक शोध-अध्ययनों में कई आधारों पर भिन्नता पायी जाती है। कुछ शोध-कार्य किसी जिज्ञासा को शांत करने के लिए, तो कुछ केवल ज्ञान-प्राप्ति के लिए किए जाते हैं, कुछ का लक्ष्य प्राक्कल्पनाओं का निर्माण तथा कुछ का किसी प्राक्कल्पना की सत्यता की जाँच करना होता है। किसी शोध का लक्ष्य किसी घटना का यथार्थ चित्रण करना, किसी का सामाजिक समस्याओं के निराकरण हेतु विकल्पों का पता लगाना तथा कुछ का सामाजिक नियोजन एवं नियोजित परिवर्तन की प्रभावकता का पता लगाना और समाज-कल्याण व विकास कार्यक्रमों के सफल संचालन में योग देना है।

विभिन्न लक्ष्यों या प्रयोजनों के आधार पर सामाजिक शोध या अनुसंधान के निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं–

8.1 विषय-विस्तु : अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध (Exploratory or Formulative Research)

जब शोधकर्ता किसी सामाजिक घटना के पीछे छिपे कारणों को ढूँढ़ निकालना चाहता है ताकि किसी समस्या के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष के संबंध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो सके, तब अध्ययन के लिए जिस शोध का सहारा लिया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक या निरूपणात्मक शोध कहते हैं। इस प्रकार की शोध का उद्देश्य किसी समस्या के संबंध में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके प्राक्कल्पना (Hypothesis) का निर्माण और अध्ययन की रूपरेखा

नोट

तैयार करना है। हंसराज नामक विद्वान ने बताया है, "अन्वेषणात्मक शोध किसी भी विशेष अध्ययन के लिए प्राक्कल्पना का निर्माण करने तथा उससे संबंधित अनुभव प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है।" इस प्रकार के शोध द्वारा विषय अथवा समस्या का कार्य-कारण संबंध ज्ञात हो जाता है। परिणामस्वरूप घटनाओं में व्याप्त नियमितता एवं शृंखलाबद्धता को स्पष्टतः समझा जा सकता है। इस प्रकार के शोध माध्यम से शोध-विषय की उपयुक्तता का पता भी लगाया जाता है। उदाहरण के रूप में, यदि हम यह जानना चाहते हैं कि किशोरों एवं युवकों में विचलित व्यवहार या अपराधी व्यवहार के लिए कौन-कौन से कारण उत्तरदायी हैं तो इसके लिए हमें अन्वेषणात्मक शोध का सहारा ही लेना पड़ेगा।

इस प्रकार की शोध की सफलता के लिए कुछ अनिवार्य दशाओं का होना आवश्यक है। अन्य शब्दों में ऐसे शोध के लिए निम्नलिखित अनिवार्यताओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए:

1. **संबद्ध साहित्य का अध्ययन** (Review of Pertinent Literature)—विषय से संबंधित प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य का अध्ययन प्रथम अनिवार्यता है। इसके अभाव में हम विषय को सही रूप में नहीं समझ सकेंगे और न ही ठीक से प्राक्कल्पना का निर्माण कर पायेंगे। अतः आवश्यक है कि सर्वप्रथम विषय से संबंधित उपलब्ध साहित्य का गहनता के साथ अध्ययन किया जाए। इससे श्रम, समय तथा व्यय में बचत होगी।

2. **अनुभव सर्वेक्षण** (Experience Survey)—यहाँ विषय से संबंधित अनुभव रखने वाले लोगों का पता लगाना, अध्ययन हेतु उनका चुनाव करना, उनसे संपर्क स्थापित करना और उनके अनुभवों से लाभ उठाना इस प्रकार के शोध में आवश्यक है। कभी-कभी शिक्षा के अभाव, साधनों की सीमितता एवं कुछ अन्य कारणों से कुछ अनुभव प्राप्त व्यक्ति अपने अनुभवों को लिखित में मूर्त रूप नहीं दे पाते। ऐसे व्यक्तियों को खोज निकालना और उनके अनुभवों से विषय के संबंध में जानकारी प्राप्त करना शोधकर्ता के लिए नितांत आवश्यक है। यह जानकारी उसके लिए पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करेगी।

3. **सही सूचनादाताओं का चुनाव** (Selection of Proper Respondents)—शोध की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ऐसे सूचनादाताओं का चयन किया जाए जिनसे विषय के संबंध में ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिल सके जो अध्ययन हेतु वास्तविक अंतर्दृष्टि प्रदान कर सके। सूचनादाताओं का चुनाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही विधियों के द्वारा किया जाना चाहिए। उदाहरण के रूप में, यदि ग्राम पंचायतों का अध्ययन करना है तो प्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत सरपंचों, पंचों तथा ग्राम पंचायतों से संबंधित अधिकारियों व कर्मचारियों में से कुछ का चयन किया जाना चाहिए। अप्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत उन लोगों का चयन किया जाना चाहिए जो प्रत्यक्ष रूप से ग्राम पंचायत से संबंधित तो नहीं हैं, परंतु जिनके पास इससे संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी है। ऐसे व्यक्तियों में स्कूल अध्यापकों, अन्य सरकारी कर्मचारियों तथा गाँव के कुछ सम्मानित एवं समझदार नागरिकों को लिया जा सकता है। इससे विषय के विभिन्न पक्षों को समझने में मदद मिलेगी।

4. **उपयुक्त प्रश्न पूछना** (Proper Questioning)—शोधकार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सूचना प्राप्ति हेतु प्रश्न बहुत सावधानीपूर्वक बनाए जाएँ। साथ ही किसी उपयुक्त विधि द्वारा प्रश्न पूछे जायें ताकि विषय से संबंधित सही जानकारी मिल सके। इसके अभाव में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ उलब्ध नहीं हो सकेंगी।

5. **अंतर्दृष्टि-प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण** (Analysis of Insight Stimulating Cases)—विषय के विभिन्न पहलुओं के संबंध में शोधकर्ता का ज्ञान सामान्यतः सीमित होता है। इसी कमी को दूर करने हेतु आवश्यक है कि सभी पहलुओं का गहनता के साथ अध्ययन एवं विश्लेषण किया जाए, सभी पक्षों को उजागर करने वाली घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन एवं अध्ययन किया जाए। ऐसा करने से विषय के संबंध में एक ऐसी अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी जो शोध-कार्य की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है।

अन्वेषणात्मक शोध के प्रमुख कार्य

अन्वेषणात्मक शोध के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं:

(*i*) पूर्व निर्धारित प्राक्कल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं के संदर्भ में परीक्षण करना।

(*ii*) महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं की ओर शोधकर्ता के ध्यान को आकर्षित करना।

(*iii*) अनुसंधान हेतु नवीन प्राक्कल्पनाओं को विकसित करना।

(*iv*) अंतर्दृष्टि-प्रेरक घटनाओं का विश्लेषण करना एवं अध्ययन के नवीन क्षेत्रों को विकसित करना।

(*v*) विभिन्न शोध-पद्धतियों के प्रयोग की उपयुक्तता की संभावना का पता लगाना।

(*vi*) शोध-कार्य को एक विश्वसनीय रूप में प्रारंभ करने हेतु आधार-शिला तैयार करना।

(*vii*) विज्ञान की सीमाओं का विस्तार कर उसके क्षेत्र को विकसित करना।

(*viii*) अध्ययन हेतु महत्त्वपूर्ण विषयों पर ध्यान केंद्रित करने हेतु शोधकर्ता को प्रेरित करना।

(*ix*) शोध-कार्य से संबंधित अनिश्चितता की स्थिति को दूर कर उसे निश्चित स्वरूप प्रदान करना।

अन्वेषणात्मक शोध के उपर्युक्त कार्यों से स्पष्ट है कि यह उन आधारों को प्रदान करता है जो सफल शोध-कार्य के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

नोट्स सेलटिज एवं उनके साथियों ने बताया है "अन्वेषणात्मक शोध (अनुसंधान) उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित शोध हेतु उचित प्राक्कल्पना (Hypothesis) के निर्माण में सहायक होगा।"

8.2 वर्णनात्मक शोध (Descriptive Research)

वर्णनात्मक शोध एक ऐसी शोध है जिसका उद्देश्य विषय या समस्या के संबंध में यथार्थ या वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर उनके आधार पर एक विवरण प्रस्तुत करना है। सामाजिक जीवन से संबंधित कई पक्ष ऐसे होते हैं जिनके संबंध में भूतकाल में कोई गहन अध्ययन नहीं किए गए। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है कि सामाजिक जीवन से संबद्ध विभिन्न पक्षों के संबंध में जानकारी प्राप्त की जाए, वास्तविक तथ्य या सूचनाएँ एकत्रित की जाएँ और उन्हें जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया जाए। यहाँ मुख्य जोर इस बात पर दिया जाता है कि विषय से संबंधित एकत्रित किए गए तथ्य वास्तविक एवं विश्वसनीय हों अन्यथा जो वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाएगा, वह वैज्ञानिक होने के बजाय दार्शनिक ही होगा। यदि हमें किसी जाति, समूह या समुदाय के सामाजिक जीवन के संबंध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है तो हमारे लिए आवश्यक है कि किसी वैज्ञानिक प्रविधि को काम में लेते हुए वास्तविक तथ्य एकत्रित किए जाएँ। तथ्यों को प्राप्त करने हेतु अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली अथवा किसी अन्य प्रविधि का प्रयोग किया जा सकता है।

क्या आप जानते हैं इन प्रविधियों के प्रयोग का उद्देश्य यही है कि यथार्थ सूचनाएँ एकत्रित की जाएँ। ऐसे शोध में घटनाओं को यथार्थ रूप में चित्रित करने पर विशेष बल दिया जाता है।

नोट

वर्णनात्मक शोध की विशेषताएँ

वर्णनात्मक शोध की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित हैं–

(*i*) इस प्रकार की शोध (अनुसंधान) में विषय या समस्या के विभिन्न पक्षों पर सविस्तार प्रकाश डाला जाता है।

(*ii*) यदि किसी विषय से संबंधित कोई अध्ययन पूर्व में नहीं किया गया हो तो उसके अध्ययन के लिए वर्णनात्मक शोध को ज्यादा उपयुक्त समझा जाता है।

(*iii*) इस प्रकार के अध्ययन में सामान्यत: किसी प्राक्कल्पना का निर्माण नहीं किया जाता।

(*iv*) वर्णनात्मक शोध के विभिन्न चरण वैज्ञानिक विधि के चरणों के समान ही होते हैं। इसमें विषय का सावधानीपर्वूक चुनाव, उचित प्रविधियों का प्रयोग, निदर्शन–प्रणाली द्वारा उत्तरदाताओं का चयन, वास्तविक तथ्यों का संकलन तथा पक्षपात–रहित होकर परिणामों का विशलेषण करना आदि बातें आती हैं।

(*v*) वर्णनात्मक अनुसंधान में शोधकर्ता की भूमिका एक समाज–सुधारक या भविष्यवक्ता के रूप में नहीं होकर एक वैज्ञानिक अर्थात् निष्पक्ष अवलोकन–कर्ता के रूप में होती है।

शोध कार्य में ध्यान देने योग्य बातें

वर्णनात्मक शोध में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है:

(*i*) शोध विषय या समस्या का चुनाव सावधानीपूर्वक इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि उससे संबद्ध सभी आवश्यक एवं निर्भर–योग्य तथ्य एकत्रित किए जा सकें।

(*ii*) शोध–कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि तथ्यों के संकलन के लिए प्रविधियों का चुनाव पूर्ण सावधानी के साथ किया जाए।

(*iii*) वर्णनात्मक शोध में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण बनाए रखने की अत्यंत आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि पक्षपात, मिथ्या झुकाव एवं पूर्वधारणा आदि के अध्ययन में प्रवेश कर जाने की काफी संभावना रहती है। अपने अध्ययन–विवरण को वस्तुनिष्ठता की कीमत पर रोचक बनाने के लोभ से शोधकर्ता को अपने आपको बचाना चाहिए।

(*iv*) वर्णनात्मक शोध–कार्य काफी विस्तृत होता है, अत: उसे समयबद्ध एवं व्यय में मितव्ययतापूर्ण होना आवश्यक है। ऐसे अध्ययन में समय एवं धन की काफी आवश्यकता पड़ती है। अत: इस बात की सावधानी रखी जानी चाहिए कि अनावश्यक मदों पर श्रम, समय एवं धन को नष्ट नहीं किया जाए।

वर्णनात्मक शोध–कार्य के चरण

वर्णनात्मक शोध–कार्य के सफलतापूर्वक संचालन के लिए निम्नलिखित चरणों से गुजरना आवश्यक होता है–

1. शोध के उद्देश्यों का प्रतिपादन (Formulating the Objectives of the Study)–सर्वप्रथम शोध के उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है, तत्पश्चात् उद्देश्यों को स्पष्टत: परिभाषित किया जाता है। यहाँ शोध से संबद्ध मौलिक प्रश्नों को स्पष्ट किया जाता है। ऐसा करने से अनावश्यक तथ्यों के संकलन एवं धन व श्रम की बर्बादी को रोका जा सकता है।

2. तथ्य-संकलन की प्रविधियों का चुनाव (Selection of the Techniques of Data Collection)–तथ्य-संकलन की विभिन्न प्रविधियों में से विषय या समस्या की प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त प्रविधि का चुनाव शोध–कर्ता को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने की दृष्टि से नितांत आवश्यक है। इसके अभाव में विषय से संबद्ध प्रामाणिक तथ्यों एवं आंकड़ों को एकत्रित नहीं किया जा सकता।

3. निदर्शन का चुनाव (Selection of Sample)—समूह या समग्र की प्रत्येक इकाई का समय एवं साधनों की सीमितता के कारण अध्ययन किया जाना संभव नहीं होता। अत: संपूर्ण जनसंख्या में से निदर्शन की किसी उपयुक्त विधि की सहायता से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव कर लिया जाता है। इन इकाइयों का अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे संपूर्ण जनसंख्या पर लागू होते हैं तथा साथ ही काफी विश्वसनीय भी होते हैं।

4. आंकड़ों का संकलन एवं उनकी जाँच (Collection and Scrutiny of Data)—अध्ययन की इकाइयों का किसी निदर्शन-पद्धति द्वारा चुनाव कर लेने के पश्चात् वैज्ञानिक प्रविधियों अर्थात् अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची अथवा प्रश्नावली का सहारा लेते हुए आवश्यक तथ्य एकत्रित किए जाते हैं। साथ ही उचित रीति से इन तथ्यों की जाँच भी की जाती है ताकि अध्ययन में अनावश्यक बातें सम्मिलित नहीं हो सकें।

5. तथ्यों का विश्लेषण (Analysis of Data)—इसका तात्पर्य यह है कि जिन तथ्यों को संकलित किया गया है, उनका समानता एवं भिन्नता के आधार पर अलग-अलग समूहों में वर्गीकरण किया जाता है, उनका सारणीयन किया जाता है। साथ ही तथ्यों की सांख्यिकीय विवेचना भी की जाती है। इस कार्य हेतु वस्तुनिष्ठ एवं प्रशिक्षित अध्ययनकर्ता का होना परम आवश्यक है।

6. प्रतिवेदन (रिपोर्ट) का प्रस्तुतीकरण (Reporting)—यहाँ अध्ययन विषय के संबंध में तथ्य-युक्त विवरण एवं सामान्य निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। यहाँ इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए कि लोग उसका भिन्न-भिन्न अर्थ नहीं लगा सकें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. यथार्थ का वास्तविक .... को एकत्रित कर उनके आधार पर एक विवरण प्रस्तुत करना है।
2. सामाजिक जीवन से .... कई पक्ष ऐसे होते हैं जिनके संबंध में भूतकाल में कोई अध्ययन नहीं किए गए।
3. तथ्यों को प्राप्त करने हेतु अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली अथवा किसी अन्य प्रविधि का .... किया जा सकता है।

निदानात्मक शोध-प्रचना (Diagnostic Research Design)—शोध-कार्य का मूलभूत उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति तथा ज्ञान की वृद्धि है। पर यह भी हो सकता है कि शोध-कार्य का उद्देश्य किसी समस्या के कारणों के संबंध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके उस समस्या के समाधानों को भी प्रस्तुत करना हो। इसी प्रकार की शोध-प्रचना को निदानात्मक शोध-प्रचना कहते हैं। अर्थात् विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज करने वाले-कार्य को निदानात्मक शोध कहते हैं। इस संबंध में यह स्पष्ट रूप से स्मरणीय है कि इस प्रकार के शोध में शोधकर्त्ता समस्या का हल प्रस्तुत करता है, न कि स्वयं उस समस्या को हल करने के प्रयास में जूट जाता है, समस्या को हल करना समाज-सुधारक, प्रशासक तथा नेताओं का काम होता है, शोधकर्त्ता केवल वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा समस्या के कारणों को जान लेने के बाद उसका उचित समाधान किस ढंग से सर्वोत्तम रूप में हो सकता है इस बात की खोज करता है। इसीलिए निदानात्मक शोध-कार्य में समस्या का पूर्ण एवं विस्तृत अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से करके समस्या की गहराई में पहुँचने का प्रयास किया जाता है जिससे कि समस्या के प्रत्येक संभावित कारण का पता ठीक ढंग से लग सके। इस प्रकार समस्या के कारणों का ज्ञान सर्वप्रथम है, उसके निदानों की खोज उसके बाद की बात है। इस प्रकार की खोज इस कारण की जाती है क्योंकि समस्या-विशेष का हल तत्काल ही करने की आवश्यकता होती है। संभावित हल को ध्यान में रखते हुए इसलिए प्राक्कल्पना (Hypothesis) का निर्माण किया जाता है जिससे कि अध्ययनकार्य वैज्ञानिक ढंग से किया जा सके।

नोट

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर निदानात्मक शोध की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है–

(1) निदानात्मक शोध-कार्य वैज्ञानिक पद्धति का निश्चित रूप से अनुसरण करता है जिसका कि प्रथम चरण प्राक्कल्पना का निर्माण और उसी के आधार पर अध्ययन का संचालन है।

(2) निदानात्मक शोध-कार्य की आवश्यकता सामाजिक व्यवस्था व सामाजिक संबंधों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं को तत्काल दूर करने या उपचार की खोज करने से संबद्ध होती है।

(3) निदानात्मक शोध में सर्वप्रथम वैज्ञानिक ढंग से समस्या के कारणों का सही रूप में पता करने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि यह माना जाता है कि वास्तविक कारणों के संबंध में उचित व पर्याप्त ज्ञान के बिना आवश्यक समाधान की खोज असंभव है।

(4) निदानात्मक शोध किसी विशिष्ट सामाजिक समस्या के निदान की खोज से संबद्ध होता है। अर्थात् केवल शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति करना ही इसका उद्देश्य नहीं होता, अपितु उसके हल को भी ढूँढ़ना इसका काम होता है।

(5) निदानात्मक शोधकर्त्ता समस्या का समाधान ढूँढ़ता अवश्य है, पर उस समस्या को हल करना उसका काम नहीं होता। वह तो वैज्ञानिक तौर पर केवल रास्ता बता देता है, उस रास्ते पर चलकर समस्या को सुलझाना समाज-सुधारक, प्रशासन आदि का काम होता है।

उपर्युक्त विवेचना से वर्णनात्मक तथा निदानात्मक शोध में अंतर स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। इसको हम फिर इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–(अ) वर्णनात्मक शोध का संबंध समस्या या विषय जिस रूप में है, उसी से होता है जबकि निदानात्मक शोध का संबंध किसी सामाजिक समस्या से ही होता है। इस अर्थ में निदानात्मक शोध केवल समस्याओं का ही अध्ययन करता है जबकि वर्णनात्मक शोध किसी भी सामाजिक घटना का, जिसमें सामाजिक समस्या भी आ जाती है, अध्ययन करता है। (ब) वर्णनात्मक शोध का कोई प्रत्यक्ष संबंध समस्या के समाधान से नहीं होता है, जबकि निदानात्मक शोध में निदान की ही खोज की जाती है। (स) वर्णनात्मक में घटना के कारणों को तथ्ययुक्त वर्णन प्रस्तुत करने के हेतु ढूँढ़ा जाता है, पर निदानात्मक शोध में समाधान ढूँढ़ने के उद्देश्य से कारणों को जानने का प्रयत्न किया जाता है। (द) वर्णनात्मक शोध में विषय का अध्ययन कर ज्ञान की प्राप्ति स्वयं साध्य (end) है जबकि निदानात्मक शोध में ज्ञान की प्राप्ति उपचार ढूँढ़ने का एक साधन (means) बन जाती है।

8.3 सारांश (Summary)

- सेलटिज के अनुसार अन्वेषणात्मक अनुसंधान उस अनुभव को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है जो कि अधिक निश्चित अनुसंधान के हेतु संबद्ध प्राक्कल्पना के निरूपण में सहायक होगा।
- विषय या समस्या के संबंध में वास्तविक तथ्यों के आधार पर वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करना वर्णनात्मक शोध प्ररचना का मुख्य उद्देश्य है।

8.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध-प्ररचना (Exploratory or Formulative Research Design)**–जब किसी शोध कार्य का उद्देश्य किन्हीं सामाजिक घटना में अंतर्निहित कारणों को ढूँढ़ निकालना होता है तो उससे संबद्ध रूपरेखा को अन्वेषणात्मक शोध-प्ररचना कहते हैं।
2. **शोध के उद्देश्यों का प्रतिपादन**–शोध से संबद्ध मौलिक प्रश्नों को स्पष्ट किया जाता है। ऐसा करने से अनावश्यक तथ्यों के संकलन एवं धन और श्रम की बर्बादी को रोका जा सकता है।

नोट

8.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरूपणात्मक शोध प्ररचना की अवधारणा को बताएँ।
2. वर्णनात्मक शोध प्ररचना की विशेषताओं को समझाएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. तथ्यों 2. संबंधित 3. प्रयोग।

8.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. शास्त्रीय सामाजिक चिन्तन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

2. सामाजिक शोध व सांख्यिकी–रवींद्रनाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–9: शोध प्ररचनाओं के प्रकार : परीक्षणात्मक एवं तुलनात्मक (Types of Research Design : Experimental and Cross-Sectional or Comparative)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 परीक्षणात्मक शोध (प्रयोगात्मक शोध) (Experimental Research)

9.2 मूल्यांकनात्मक शोध (Evaluation Research)

9.3 तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

9.4 तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग (Use of Comparative Method)

9.5 तुलनात्मक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Comparative Method)

9.6 तुलनात्मक पद्धति का महत्त्व (Importance of Comparative Method)

9.7 तुलनात्मक पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Comparative Method)

9.8 सारांश (Summary)

9.9 शब्दकोश (Keywords)

9.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

9.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- परीक्षणात्मक शोध प्ररचना के अर्थ को समझना।
- तुलनात्मक शोध या पद्धति की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक विज्ञान अपने प्रयोगसिद्ध अध्ययन-कार्य के लिए एक या एकाधिक निश्चित व सुव्यवस्थित अध्ययन-प्रणालियों को अपनाता है। इन्हीं को पद्धतियाँ कहते हैं **और ये पद्धतियाँ ही वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार हैं।** ये पद्धतियाँ आधारभूत रूप में सभी विज्ञानों में समान या एक जैसी होती हैं, केवल अध्ययन-वस्तु की प्रकृति के अनुरूप इनके रूप या स्वरूप में कुछ आवश्यक परिवर्तन प्रत्येक विज्ञान में कर लिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पद्धति (method) वह प्रणाली (procedure) है जिसके अनुसार अध्ययन-कार्य का संगठन तथ्यों की विवेचना तथा निष्कर्षों का निर्धारण किया जाता है। सर्वश्री बर्टरैण्ड (Bertrand) तथा साथियों के अनुसार,

नोट

"प्रकृति में नियमितता के निर्धारण और वर्गीकरण में प्रयुक्त प्रणाली को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।" सर्वश्री गूड और हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है कि जब विज्ञान की आधारभूत बातों को समाजशास्त्र के क्षेत्र में लागू किया जाता है तो उसे समाजशास्त्र की अध्ययन-पद्धति कहते हैं।

9.1 परीक्षणात्मक शोध (प्रयोगात्मक शोध) (Experimental Research)

इसे प्रयोगात्मक शोध या व्याख्यात्मक शोध (Explanatory Research) के नाम से पुकारते हैं। **चेपिन** ने लिखा है, "समाजशास्त्रीय शोध में परीक्षणात्मक प्रचना की अवधारणा नियंत्रण की दशाओं के अंतर्गत अवलोकन द्वारा मानवीय संबंधों के अध्ययन की ओर संकेत करती है।" स्पष्ट है कि जिस प्रकार भौतिक विज्ञानों में विषय को नियंत्रित अवस्थाओं में रखकर उसका अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार नियंत्रित अवस्थाओं में अवलोकन-परीक्षण के द्वारा सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने को ही परीक्षणात्मक शोध कहते हैं। इस प्रकार के शोध में सामाजिक घटनाओं के कुछ पक्षों या चरों (Variables) को नियंत्रित कर लिया जाता है और शेष चरों पर नवीन परिस्थितियों के प्रभाव का पता लगाया जाता है। इस प्रकार के शोध द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि किसी समूह, समुदाय, सामाजिक तथ्य, सामाजिक घटना आदि पर किसी नवीन परिस्थिति का कैसा और कितना प्रभाव पड़ा है। यहाँ नियंत्रित दशा में प्रयोग किया जाता है।

> *नोट्स* चेपिन ने बताया है, "प्रयोग नियंत्रित दशाओं में किया जाने वाला अवलोकन मात्र है। जब केवल अवलोकन किसी समस्या को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने में असफल रहता है, तब वैज्ञानिक के लिए प्रयोग (Experiment) का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।"

इसी बात को **श्री विमल शाह** ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, "प्रयोग शब्द शोध के उस भाग की ओर निर्देश करता है जिसमें कुछ चरों को नियंत्रित कर लिया जाता है जबकि अन्य में परिवर्तन लाया जाता और उनके प्रभावों को नियंत्रित चरों पर देखा जाता है।" स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक या परीक्षणात्मक शोध का सामाजिक विज्ञानों में वही महत्त्व है जो भौतिक विज्ञानों में प्रयोगशाला-पद्धति का है।

परीक्षणात्मक शोध तीन प्रकार के होते हैं : प्रथम, पश्चात् परीक्षण; द्वितीय, पूर्व-पश्चात् परीक्षण; तथा तृतीय, कार्यान्तर (ऐतिहासिक)-तथ्य परीक्षण।

1. **पश्चात् परीक्षण** (After Experiment)–इसमें सर्वप्रथम समान विशेषताओं एवं प्रकृति वाले दो समूहों को चुन लिया जाता है। इनमें से एक समूह नियंत्रित समूह (Controlled Group) और दूसरा समूह परीक्षणात्मक (Experimental Group) के नाम से जाना जाता है। नियंत्रित समूह में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन लाने का प्रयत्न नहीं किया जाता है, उसे किसी चर, कारक या नवीन परिस्थिति द्वारा बदलने का प्रयास नहीं किया जाता। परीक्षणात्मक समूह में किसी नवीन परिस्थिति का प्रभाव नहीं पड़ने दिया जाता। कुछ समय पश्चात् परीक्षणात्मक-समूह पर नवीन कारक या परिस्थिति के प्रभाव को मापा जाता है। यदि नियंत्रित और परीक्षणात्मक दोनों ही समूहों में समान परिवर्तन आते हैं तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि नवीन कारक या परिस्थिति का परीक्षणात्मक-समूह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यदि नियंत्रित-समूह की तुलना में परीक्षणात्मक-समूह में परिवर्तन अधिक होते हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि नवीन परिस्थिति या कारक का प्रभाव पड़ा है। यहाँ उदाहरण के रूप में दो समान समूह या गाँवों को लिया जा सकता है जिनमें बाल-विवाह का काफी प्रचलन है। इनमें से एक समूह में जिसे परीक्षणात्मक समूह मान लिया गया है, बाल-विवाह के विरुद्ध काफी प्रचार-प्रसार किया जाता है। कुछ समय के बाद इस समूह की तुलना नियंत्रित समूह से की जाती है जिसमें ऐसा कोई प्रचार-प्रसार नहीं किया गया। यदि बाल-विवाह के प्रचलन की दृष्टि से इन दोनों में अंतर देखने को मिले और परीक्षणात्मक समूह में बाल-विवाहों की मात्रा काफी कम हो जाये, तो इसे नवीन कारक अर्थात् बाल-विवाह विरोधी प्रचार-प्रसार का प्रभाव माना जायेगा।

नोट

2. **पूर्व-पश्चात् परीक्षण** (Before-after Experiment)—इस विधि के अंतर्गत दो समूहों का चुनाव नहीं करके केवल एक ही समूह का चुनाव किया जाता है। यहाँ इस समूह का अध्ययन दो विभिन्न अवधियों में किया जाता है और पूर्व (Before) तथा पश्चात् (After) के अंतर को ज्ञात किया जाता है। पूर्व और पश्चात् किये गये अध्ययन के आधार पर यह मापा जाता है कि पूर्व की अवस्था और बाद की अवस्था में क्या अंतर आया। यह अंतर ही नवीन परिस्थिति या कारक का प्रभाव (परिणाम) है। उदाहरण के रूप में, अध्ययन के लिए एक गाँव को चुन लिया जाता है जहाँ परिवार-कल्याण कार्यक्रम (Family Welfare Programme) के प्रभावों को मापा जाता है। एक अनुसूची की सहायता से यह पता लगा लिया जाता है कि गाँव वालों ने इस कार्यक्रम को कहाँ तक स्वीकार किया है। यह पूर्व (Before) की स्थिति है जिसे अध्ययन की दृष्टि से हम प्रथम स्तर कह सकते हैं। फिर इस गाँव में रेडियो, दूरदर्शन, ग्राम-सेवक, स्कूल-अध्यापक, डॉक्टर, नर्स आदि की सहायता से लोगों को परिवार कल्याण कार्यक्रम की अच्छाइयों से भली-भाँति परिचित कराया जाता है। इस काल को उपचार-काल या द्वितीय स्तर के नाम से जाना जा सकता है। एक निर्धारित अवधि के पश्चात् इस गाँव का पूर्व में निर्मित अनुसूची की सहायता से पुन: अध्ययन किया जाता है। यह पश्चात् (After) की स्थिति है जिसे तृतीय स्तर माना जा सकता है। अब पूर्व की स्थिति और पश्चात् की स्थिति में अंतर ज्ञात हो जायेगा। पूर्व की बजाय अब यदि गाँव वाले परिवार-कल्याण कार्यक्रम को अधिक मात्रा में अपनाते हैं, स्वयं आगे जाकर इस कार्यक्रम का लाभ उठाते हैं तो इसे उपचार-काल (द्वितीय स्तर) में किये गये प्रयत्न का परिणाम माना जायेगा।

3. **कार्यान्तर (ऐतिहासिक) तथ्य परीक्षण** (Ex-postfact Experiment)—अतीत से संबंधित तथ्यों या किसी ऐतिहासिक घटना का अध्ययन करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। अतीत की घटनाओं को दोहराया नहीं जा सकता, उनकी पुनरावृत्ति शोध-कर्ता के लिए संभव नहीं है। उन्हें न तो नियंत्रित किया जा सकता और न ही उनमें कोई परिवर्तन लाया जा सकता है। ऐसी स्थिति में इस शोध-विधि को काम में लेते हुए प्राचीन अभिलेखों के भिन्न-भिन्न पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन करके महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है, उपयोगी परिणाम निकाले जा सकते हैं। अभिलेखों की तुलना से महत्त्वपूर्ण परिणामों को मापना संभव हो पाता है। इस विधि द्वारा अध्ययन हेतु सामान्यत: दो ऐसे समूहों का चुनाव किया जाता है जिनमें से एक समूह में जिसका कि उसे अध्ययन करना है, कोई ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी होती है एवं दूसरा ऐसा समूह जिसमें वैसी कोई घटना घटित नहीं हुई है। इन दोनों समूहों की पुरानी परिस्थितियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है कि एक समूह विशेष में उस घटना के घटित होने के क्या कारण हैं, कौन सी परिस्थितियों ने उस घटना के घटित होने में योग दिया है।

क्या आप जानते हैं इस विधि के द्वारा ऐतिहासिक घटना-चक्रों का पता लगाकर वर्तमान अवस्थाओं या घटनाओं के कारणों की खोज की जाती है।

इस विधि द्वारा अध्ययन का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करना भी यहाँ उचित होगा। मान लिया कि हमें अनुसूचित जनजातियों पर विभिन्न कल्याण-कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन करना है। इसके लिए हमें ऐतिहासिक तथ्यों को चुनना पड़ेगा। यह पता लगाना पड़ेगा कि इन कल्याण-कार्यक्रमों की जानकारी किन-किन लोगों को है या इन कार्यक्रमों का लाभ किन्हें मिला है। फिर यह पता लगाना होगा कि जो लोग इन कार्यक्रमों से लाभान्वित हुए हैं, उनकी आयु क्या है, उनका शैक्षणिक स्तर क्या है, वे किस-किस जनजाति के सदस्य हैं, उनकी आजीविका का स्रोत क्या है, वे किस क्षेत्र के रहने वाले हैं। ऐसे अध्ययन का लाभ यह होगा कि तुलना के आधार पर यह पता लगाया जा सकेगा कि कल्याण-कार्यक्रमों का लाभ उठाने में कौन सी जनजातियाँ और विशेषत: किन क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियाँ आगे हैं। जिन जनजातीय लोगों ने इन योजनाओं का लाभ उठाया है, वे शिक्षित हैं या अशिक्षित तथा वे प्रमुखत: किस आयु-समूह में आते हैं। साथ ही यह भी ज्ञात हो सकेगा कि कार्यक्रम का लाभ उठाने वाले

नोट

लोगों में प्रमुख कौन हैं, क्या वे कृषक हैं, कृषि श्रमिक हैं, दस्तकारी का काम करने वाले हैं या वन-संपदा को एकत्रित कर अपनी आजीविका चलाने वाले हैं या कारखानों में काम करने वाले मजदूर हैं। कुछ समय के पश्चात् इन्हीं कारकों को ध्यान में रखते हुए उन्हीं लोगों का पुन: अध्ययन किया जायेगा और तत्पश्चात् तुलना के आधार पर महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकेंगे।

9.2 मूल्यांकनात्मक शोध (Evaluation Research)

आज अधिकांश देश नियोजित परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। वे कल्याणकारी राज्य के रूप में अपनी भूमिका निभा रहे हैं। जो देश अपने लोगों की खुशहाली के लिए विकास कार्यक्रमों पर अरबों-खरबों रुपया खर्च करता है, वह यह भी ज्ञात करना चाहता है कि आखिर उन कार्यक्रमों का उन लोगों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है जिनके लिए वे बनाये गये हैं। आज गरीबी-उन्मूलन, स्वास्थ्य, आवास, परिवार कल्याण, अपराध, बाल-अपराध, समन्वित ग्रामीण विकास आदि के क्षेत्र में अनेक शोध-कार्य इस उद्देश्य से चलाये जा रहे हैं कि इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का पता लगाया जा सके, यह ज्ञात किया जा सके कि लक्ष्यों एवं परिणामों में कहाँ तक साम्यता है, कहाँ तक इच्छित लक्ष्यों के अनुरूप आगे बढ़ा जा सका है। इस प्रकार के शोध-कार्यों द्वारा किसी कार्यक्रम, किसी विकास योजना की सफलता-असफलता का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण के रूप में, डा. एस. सी. दुबे ने शमीरपेट नामक गाँव के अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि वहाँ सामुदायिक विकास कार्यक्रम इच्छित मात्रा में जन-सहयोग प्राप्त नहीं कर सका है। कार्यक्रम में मानवीय कारकों की उपेक्षा की गयी है और इसी के फलस्वरूप ग्रामीण लोगों ने उनके विकास हेतु प्रारंभ की गई उत्तम से उत्तम योजनाओं को भी अस्वीकार कर दिया है। यह मूल्यांकनात्मक शोध का एक उदाहरण है। सन् 1960 से इस प्रकार के शोध की ओर भारत का झुकाव बढ़ा है। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता का पता लगाने हेतु, भारत सरकार ने एक स्थायी 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' की स्थापना की।

मूल्यांकनात्मक शोध के संबंध में **विलियमसन, कार्प** एवं **डालफिन** ने बताया है कि यह शोध वास्तविक जगत् में संपादित की गयी ऐसी खोज है जिसके माध्यम से यह मूल्यांकन किया जाता है कि व्यक्तियों के किसी समूह विशेष के जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से जो कार्यक्रम बनाया गया, वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल रहा है। इसके द्वारा कार्यक्रम की प्रभावकता को आँका जाता है। जहाँ उद्देश्यों तथा उपलब्धियों में अंतर कम से कम हो, वहाँ उस कार्यक्रम को उतना ही सफल माना जाता है। इस प्रकार का मूल्यांकन इस उद्देश्य से किया जाता है ताकि नियोजित परिवर्तन के विभिन्न कार्यक्रमों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किये जा सकें, उन्हें अधिक कारगर एवं सफल बनाया जा सके। इस प्रकार के शोध के द्वारा यह पता लगाया जाता है कि सामाजिक नियोजन एवं परिवर्तन के उद्देश्य से प्रेरित कार्यक्रम इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल क्यों नहीं हो रहा है और उसे सफल बनाने हेतु क्या कदम उठाये जाने चाहिए। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सामाजिक नियोजन एवं परिवर्तन के लक्ष्य से प्रेरित क्रियात्मक कार्यक्रमों की सफलता-असफलता को ज्ञात करने एवं उनकी प्रभावकता का पता लगाने हेतु जो खोज की जाती है, उसी को मूल्यांकनात्मक शोध कहते हैं। इस प्रकार की शोध व्यावहारिक शोध का ही एक प्रकार है। इन शोधों की व्यावहारिक उपयोगिता काफी है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि मूल्यांकनात्मक शोध का विशुद्ध शोध की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं है। इस प्रकार के शोध में उन सभी अध्ययन विधियों का प्रयोग किया जाता है जिन्हें विशुद्ध शोध में काम में लिया जाता है। इसमें किसी भी कार्यक्रम की प्रभावकता का पता लगाने के लिए लोगों के विश्वासों, विचारों, दृष्टिकोणों, भावनाओं आदि को जानने-समझने के लिए समाजमितीय पैमानों को काम में लिया जाता है।

नोट

क्या आप जानते हैं स्वतंत्र भारत में अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाएँ मूल्यांकनात्मक शोध-कार्य में लगी हुई हैं। व्यक्तिगत स्तर पर भी शोध-कर्ता इस प्रकार के शोध-कार्य में अपने आपको लगाये हुए हैं।

जनगणना विभाग, स्वास्थ्य विभाग, शिक्षा विभाग, सर्वेक्षण एवं सांख्यिकीय विभाग विभिन्न कार्यक्रमों की सफलता का आकलन करने हेतु समय-समय पर मूल्यांकनात्मक शोध का सहारा लेते हैं। इस प्रकार के शोध-कार्य में इस बात की सावधानी बरतना आवश्यक है कि अध्ययन पूर्णत: वैज्ञानिक होने के बजाय कहीं व्यक्तिपरक न हो जायें। किसी भी कार्यक्रम के प्रभाव का सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए, किसी भी रूप में न तो कम और न ही ज्यादा, अन्यथा परिणाम निराशाजनक ही होंगे।

टास्क मूल्यांकनात्मक शोध किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

9.3 तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

समाज-विज्ञानों में सामाजिक घटनाओं के अध्ययन हेतु तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग वर्तमान में बहुत हुआ है। तुलनात्मक पद्धति के द्वारा एक ही समूह अथवा समाज में घटने वाली समान प्रकृति की सामाजिक घटनाओं या समस्याओं की परस्पर तुलना की जाती है और उनकी समानता व असमानता को ज्ञात किया जाता है। एक ही समाज में विभिन्न समयों में घटने वाली घटनाओं अथवा विभिन्न समाजों में, विभिन्न स्थानों पर घटने वाली समान प्रकृति की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन भी इस विधि द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने यूरोपीय परिवारों को एवं भारतीय परिवारों को किस रूप में प्रभावित किया है, उनमें कौन-कौन सी नवीन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, दोनों समाजों में परिवर्तन की समानताएँ और भिन्नताएँ क्या हैं, आदि सभी पक्षों को जानने के लिए हमें तुलनात्मक पद्धति का सहारा लेना होगा। इसी प्रकार से यदि हम वर्तमान में जाति प्रथा में होने वाले परिवर्तनों और नवीन स्वरूपों की वैदिककालीन जाति प्रथा से तुलना करना चाहें, तब भी हमें इस विधि का प्रयोग करना होगा। इस प्रकार से विभिन्न समूहों, समाजों, स्थानों व समुदायों में घटने वाली सामाजिक घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए हमें इसी पद्धति का प्रयोग करना होता है।

9.4 तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग (Use of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में अनेक विद्वानों ने किया है। सामाजिक और सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने सामाजिक और सांस्कृतिक उद्‌विकास को जानने के लिए इसका प्रयोग किया। प्रारंभिक मानवशास्त्रियों में जिन्होंने कि इस पद्धति का प्रयोग किया, मार्गन, बेकोफन, टेगार्ट, हेनरीमेन, मैक्लीनन, टॉयलर, फ्रेजर, लेवी, ब्रुहल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। विकासवादी समाज वैज्ञानिकों ने ऐतिहासिक और तुलनात्मक पद्धति का साथ-साथ प्रयोग किया। समाजशास्त्र के जनक **ऑगस्ट कॉम्ट** ने समाज के विकास के विभिन्न चरणों की तुलना की। आपने 'सामाजिक विकास के तीन स्तरों का नियम' (Law of three stages) में काल्पनिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्तरों का उल्लेख किया और इनकी तुलना भी की। **हरबर्ट स्पेन्सर** ने समाज व सावयव की तुलना की और दोनों के बीच कई समानताओं का उल्लेख किया। इसी आधार पर आपने समाज को एक सावयव कहा। उन्होंने विभिन्न समाजों की भी परस्पर तुलना की। **दुर्खीम** ने अपनी पुस्तक *'The Rules of Sociological*

नोट

Method' में इस पद्धति के महत्त्व को स्वीकार किया तथा उन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों में आत्महत्या की दर व कारणों का तुलनात्मक अध्ययन कर 'आत्महत्या का सामाजिक सिद्धांत' प्रस्तुत किया।

मैक्स वेबर ने पूँजीवाद और प्रोटेस्टैंट धर्म के सह-संबंधों को दर्शाने के लिए दुनिया के छ: महान धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और बताया कि केवल प्रोटेस्टैंट धर्म में ही कुछ ऐसे आर्थिक आचार हैं जिन्होंने आधुनिक पूँजीवाद को जन्म दिया। **विसलर** ने अफ्रीका व अमरीका की संस्कृतियों को विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में विभाजित कर सांस्कृतिक तत्वों के आधार पर उनकी तुलना की। ऐसा करके वे सांस्कृतिक विकास, प्रसार एवं परिवर्तन के आधारभूत कारणों को जानना चाहते थे। इंग्लैंड के **चार्ल्स बूथ** ने लंदन नगर का, बी.एस. राउण्ट्री ने यार्क नगर का, बाउले एवं वुरनेट हर्स्ट ने इंग्लैंड के मध्यम आकार के पाँच औद्योगिक नगरों का अध्ययन तुलनात्मक पद्धति के आधार पर किया। इस प्रकार से एक लंबे समय से समाज वैज्ञानिकों ने समाजों, संस्कृतियों एवं संस्थाओं की वर्तमान और भूतकाल के संदर्भ में तुलना करने, उनके बीच पायी जाने वाली समानता व असमानता को ज्ञात करने, उनकी उत्पत्ति, विकास और विनाश के कारणों को जानने के लिए इस विधि का प्रयोग किया है।

क्या आप जानते हैं फ्रीमेन कहते हैं, "अध्ययन की तुलनात्मक पद्धति की स्थापना हमारे युग की महानतम् सफलता है।"

9.5 तुलनात्मक पद्धति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग हम अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में भी करते हैं। हम नेताओं, अधिकारियों, शिक्षकों, कर्मचारियों एवं मित्रों की तुलना कर उन्हें भला या बुरा, उचित या अनुचित, सफल व असफल, सक्षम और अक्षम ठहराते हैं। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग प्राकृतिक और सामाजिक सभी विज्ञानों में किया जाता है। हम विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, आर्थिक तथ्यों, जनसंख्या के आंकड़ों आदि की परस्पर तुलना करके विभिन्न देशों की आर्थिक समृद्धि, जीवन-स्तर, जनसंख्या वृद्धि की दर, वहाँ की प्रगति, विकास, खुशहाली और समृद्धि का पता लगाते हैं। हम ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना करके भी अनेक निष्कर्ष निकालते हैं। रैडक्लिफ ब्राउन कहते हैं कि तुलनात्मक पद्धति के द्वारा हम दो प्रकार की समस्याओं का हल करते हैं। (*i*) उन समस्याओं का जिनका संबंध वर्तमान से है, तथा (*ii*) उन समस्याओं का जिनका संबंध भूतकाल और इतिहास से है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग शिक्षा संबंधी अनुसंधानों में भी बहुत हुआ है।

तुलनात्मक पद्धति का केवल यह अर्थ नहीं है कि इसमें कुछ घटनाओं की पारस्परिक तुलना प्रस्तुत कर दी जाती है वरन् यह तुलना उद्देश्यमूलक होती है। इस संदर्भ में **गिन्सबर्ग** लिखते हैं, "तुलनात्मक पद्धति का कार्य केवल कुछ घटनाओं की तुलना करना ही नहीं है, वरन् तुलना के द्वारा उनकी व्याख्या करना भी है।" गिन्सबर्ग के विचारों से स्पष्ट है कि यदि तुलनात्मक पद्धति में घटनाओं की व्याख्या नहीं की जाती है और घटनाओं की निरुद्देश्य तुलना ही की जाती है, तो यह इस पद्धति की सफलता नहीं है।

हर्सकोविट्स ने तुलनात्मक पद्धति को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले स्वरूपों की तुलना के द्वारा मानवीय संस्थाओं तथा विश्वासों के विकासपूर्ण क्रम को स्थापित किया जाता है।"

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग ऐतिहासिक और उद्‌विकासवादी पद्धति के साथ-साथ होता रहा है क्योंकि इतिहासकार और उद्‌विकासवादी आधुनिक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संस्थाओं के उद्‌विकास को जानने के लिए उनकी तुलना प्राचीन संस्थाओं से करते रहे हैं।

नोट

किंतु वर्तमान में इसका पृथक अस्तित्व है। इस विधि के द्वारा शोधकर्ता विभिन्न सामाजिक घटनाओं की पारस्परिक तुलना करके उनमें पायी जाने वाली समानताओं और असमानताओं को ज्ञात करता है, सामान्य निष्कर्ष निकालता है और उनके बारे में सामान्यीकरण प्रस्तुत करता है, उनकी कारणात्मक व्याख्या करता है। तुलना विभिन्न समाजों में, विभिन्न स्थानों के आधार पर या एक ही समाज की विभिन्न समयों के आधार पर भी की जा सकती है। चूँकि सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करना एक कठिन कार्य है, ऐसी स्थिति में दो तथ्यों एवं घटनाओं की तुलना से सामान्य निष्कर्ष निकालकर उनकी सामान्य प्रवृत्ति को ज्ञात करने में तुलनात्मक पद्धति ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। संक्षेप में, यह वह पद्धति है जिसके द्वारा हम दो या दो से अधिक तथ्यों, घटनाओं और इकाइयों की तुलना करते हैं, उनकी व्याख्या व विश्लेषण करके उनके बारे में एक सामान्य प्रवृत्ति को ज्ञात किया जाता है। इस पद्धति का प्रयोग मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षा एवं सांख्यिकी में दिनोदिन बढ़ रहा है।

9.6 तुलनात्मक पद्धति का महत्त्व (Importance of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग यद्यपि 19वीं सदी में प्रारंभ हुआ, किंतु उसके बाद भी सामाजिक घटनाओं के तुलनात्मक और वैज्ञानिक अध्ययन हेतु इसका प्रयोग विद्वानों द्वारा काफी किया गया। इस पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व को हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत इस प्रकार से दर्शा सकते हैं **:**

1. **प्राक्कल्पना के परीक्षण में सहायक**–सामाजिक अनुसंधान में प्राक्कल्पनाओं का निर्माण और उनका परीक्षण एक प्रमुख चरण होता है। अध्ययन के द्वारा यदि प्राक्कल्पनाएँ सिद्ध हो जाती हैं तो वे सिद्धांत का रूप ग्रहण कर लेती हैं। तुलनात्मक पद्धति का एक प्रमुख कार्य विभिन्न प्राक्कल्पनाओं का परीक्षण कर उनकी सत्यता की परख करना भी है। रैडक्लिफ ब्राउन तुलनात्मक पद्धति को प्राक्कल्पना के परीक्षण में सर्वाधिक उपयोगी विधि मानते हैं। इनके द्वारा ही विभिन्न समूहों, संस्कृतियों और समाजों की तुलनात्मक विवेचना सरलता से की जाती है।

2. **कार्य-कारण संबंधों को जानने हेतु**–सामाजिक विज्ञानों में भौतिक विज्ञानों की भाँति किसी भी घटना की कार्य-कारण के आधार पर व्याख्या करना एक कठिन कार्य है। समाज-विज्ञानों में कार्य-कारण के संबंधों को ज्ञात करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं, किंतु भौतिक विज्ञानों की भाँति प्रत्यक्ष प्रयोग तो समाज-विज्ञानों में और भी कठिन है। **दुर्खीम** कहते हैं कि ऐसी स्थिति में 'अप्रत्यक्ष प्रयोग की विधि' के रूप में सामाजिक घटनाओं के कार्य-कारण के संबंधों को ज्ञात करने हेतु तुलनात्मक पद्धति ही एक उचित विधि है।

3. **सांख्यिकीय विश्लेषण में सहायक**–वर्तमान में सामाजिक घटनाओं को संख्या में प्रकट करने की भी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है तथा उनका विश्लेषण एवं तुलना करने के लिए सांख्यिकी नियमों, सूत्रों, चिह्नों, आवृत्तियों आदि का प्रयोग किया जाने लगा है। विभिन्न घटनाओं की तुलना करने के लिए प्रतिशत और अनुपात आदि का सहारा लिया जाने लगा है। इस प्रकार से सामाजिक घटनाओं की संख्यात्मक व्याख्या के लिए यह एक उपयुक्त विधि है।

4. **निष्कर्ष परीक्षण में सहायक**–विभिन्न समाजों और संस्थाओं के बारे में किये गये अध्ययनों और उनसे प्राप्त निष्कर्षों की सत्यता को जाँचने के लिए तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाने लगा है। सीमित क्षेत्रों वाले अध्ययनों के निष्कर्षों का परीक्षण करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के बीच इस प्रकार की तुलनाएँ वास्तव में अधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक समझी जाने लगी हैं।

छोटे क्षेत्रों एवं छोटे स्तर के अध्ययनों जैसे विभिन्न उद्योगों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, आदिम एवं ग्रामीण समाजों, शिक्षण संस्थाओं आदि के अध्ययन हेतु तुलनात्मक पद्धति वस्तुत: एक उपयोगी विधि सिद्ध हुई है।

5. **परिवर्तन की दिशा जानने में सहायक**–तुलनात्मक पद्धति का प्रारंभ ऐतिहासिक और उद्विकासीय पद्धति के साथ-साथ ही हुआ क्योंकि परिवर्तनवादी समाज, संस्कृति और संस्थाओं के परिवर्तन की दिशा को जानना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने आदिम समाज, संस्कृति और संस्थाओं की तुलना आधुनिक समाज, संस्कृति और संस्थाओं से की तथा इनमें होने वाले परिवर्तन की दिशा एवं प्रकृति को ज्ञात किया। परिवर्तन स्वयं में एक तुलनात्मक तथ्य है। एक घटना में होने वाले परिवर्तन को दूसरी घटना से तुलना करने पर ही ज्ञात किया जा सकता है।

6. **व्यापक रूप से प्रयुक्त पद्धति**–तुलनात्मक पद्धति एक ऐसी विधि है जिसका प्रयोग विद्वानों द्वारा सामाजिक अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों में किया गया है जो कि इस विधि की उपयुक्तता का प्रमाण है। जिन क्षेत्रों में इस पद्धति का प्रयोग हुआ है, उनमें से कुछ निम्न हैं :

(*i*) **सामाजिक मानवशास्त्र**–सामाजिक मानवशास्त्र में तुलनात्मक पद्धति के द्वारा आदिम और सरल समाजों की मुख्य संस्थाओं जैसे परिवार, विवाह, नातेदारी, धर्म, मनोरंजन, आर्थिक व राजनीतिक संस्थाओं आदि का अध्ययन किया गया है। सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया को जानने के लिए भी इस विधि का प्रयोग किया गया है।

(*ii*) **समाजशास्त्र**–तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग समाजशास्त्र में सामाजिक घटनाओं के कारणों को जानने तथा उनके सह-संबंधों को ज्ञात करने के लिए, सामाजिक स्तरीकरण व गतिशीलता और सामाजिक वर्गों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए भी किया गया है।

(*iii*) **सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र में**–तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग आर्थिक विभिन्नताओं के सह-संबंधों के अध्ययन के लिए, नगरीय समुदायों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए तथा औद्योगिक समाजों में व्यवहार का अध्ययन करने के लिए भी किया गया है। राउण्ट्री ने यार्क शहर की निर्धनता का अध्ययन किया और छोटे क्षेत्र के अध्ययन के निष्कर्षों की तुलना बड़े क्षेत्र के अध्ययनों से की। डॉ० बाउले ने राउण्ट्री द्वारा अध्ययन किये गये क्षेत्रों का ही दस वर्ष बाद पुनः अध्ययन किया और उनकी तुलना प्रस्तुत की।

आधुनिक समय में समाजशास्त्र के क्षेत्र में छोटे पैमाने पर तुलनात्मक अध्ययनों द्वारा परिवार, विवाह, अपराध, नगरीय जीवन, गतिशीलता, सामाजिक वर्ग तथा शैक्षणिक उपलब्धि के बीच सह-संबंध आदि के बारे में अनेक अध्ययन हुए हैं। इन अध्ययनों के विश्लेषणों एवं परिणामों की पारस्परिक तुलना से इस पद्धति की व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध हुई है। भारत में प्रो० घुरिये एवं कपाड़िया ने परिवार एवं विवाह के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. एल. के. ओड का अध्ययन तथा शिक्षा कमीशन की रिपोर्ट आदि भी इस पद्धति द्वारा अध्ययन की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं। सामाजिक विज्ञानों को इस पद्धति का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए क्योंकि यह पद्धति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रायोगिक पद्धति (Experimental Method) का ही विकल्प है तथा यह सामाजिक विज्ञानों के विकास में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

9.7 तुलनात्मक पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति एक महत्त्वपूर्ण पद्धति होते हुए भी इसके प्रयोग में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं जिनका निवारण किये बिना यह लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती।

नोट्स मानवशास्त्री रैडक्लिफ ब्राउन ने उचित ही कहा है, "अकेली तुलनात्मक पद्धति आपको कुछ नहीं दे सकती। बिना बीज बोये भूमि में कुछ नहीं उग सकता।"

इस कथन से स्पष्ट है कि तुलनात्मक पद्धति तब तक उपयोगी नहीं हो सकती जब तक इसके प्रयोग में आने वाली कठिनाइयों को दूर नहीं कर दिया जाता। इसके प्रयोग में प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नांकित हैं :

1. **प्राक्कल्पनाओं का अभाव**–किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए प्राक्कल्पनाओं का होना आवश्यक है क्योंकि प्राक्कल्पनाएँ अध्ययन की दिशा निर्धारित करती हैं, उनका मार्गदर्शन करती हैं तथा अध्ययन को सीमित करती हैं। तुलनात्मक पद्धति में हमें प्राक्कल्पनाओं का अभाव देखने को मिलता है। इस अभाव की ओर इंगित करते हुए **बोटोमोर** लिखते हैं, "तुलनात्मक पद्धति के उपयोग में आने वाली एक प्रमुख बाधा यह है कि इसमें या तो प्राक्कल्पनाओं का अभाव पाया जाता है या किसी प्राक्कल्पना का निर्माण करना आवश्यक नहीं समझा जाता।"

नोट

2. **इकाइयों के निर्धारण में कठिनाई**–तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि जिन इकाइयों के बीच हम तुलना करना चाहते हैं, उनका चयन किया जाए। ये इकाइयाँ क्या होंगी, उनका आकार व स्वरूप क्या होगा, उनके निर्धारण की माप क्या होगी और उनकी सीमाएँ क्या होंगी आदि सभी बातों को पूर्व में ही तय करना होता है। सामाजिक तथ्य चूँकि गुणात्मक तथ्य है, अतः इसकी इकाइयाँ निर्धारित करना एक कठिन कार्य है। उदाहरण के लिए, हम भारतीय गाँव की अमेरिका के गाँव से तुलना करना चाहते हैं, किंतु दोनों ही देशों में गाँव की परिभाषा में बहुत अंतर है। अमेरिका में जिसे गाँव माना जाता है, भारत में वह नगर की श्रेणी में आता है। इस प्रकार से तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग में इकाइयों का निर्धारण करना एक प्रमुख कठिनाई है।

3. **इकाइयों के विभिन्न स्वरूप**–अनेक बार ऐसा भी होता है कि अध्ययन के लिए चुनी गई इकाइयों में ऊपरी तौर पर तो अनेक समानताएँ दिखायी देती हैं, किंतु उनमें अनेक आंतरिक असमानताएँ व्याप्त होती हैं। इस संदर्भ में बोटोमोर ने उचित ही कहा है, "सही तौर पर जो समान संरचनाएँ दिखती हैं, वे वास्तव में अध्ययनगत समाजों में बहुत भिन्न हो सकती हैं।" उदाहरणार्थ, परिवारों के तुलनात्मक अध्ययन में परिवारों का आंतरिक व बाह्य स्वरूप समान होना चाहिए। ऊपर से संयुक्त दिखने वाले परिवार आंतरिक रूप से एकाकी नहीं होने चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि हम किसी इकाई को उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि से भिन्न करके देखते हैं तब भी उसके बारे में की गई व्याख्या भ्रामक हो सकती है।

4. **विश्लेषण की समस्या**–तुलनात्मक पद्धति में दो इकाइयों की तुलना की जाती है। उस समय उनकी व्याख्या उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में नहीं की जाती है वरन् उन्हें पृथक् से एक इकाई माना जाता है। ऐसी स्थिति में उनके वास्तविक स्वरूप को जान पाना कठिन होता है। इसके फलस्वरूप तुलना द्वारा निकाले गये निष्कर्ष और उनका विश्लेषण दोषपूर्ण और अवैज्ञानिक हो जाता है। उदाहरण के लिए, नातेदारी की भूमिका अथवा विवाह में मामा की भूमिका जो भारत में है, वही पश्चिमी देशों में नहीं है।

इस पद्धति के दोष निम्नांकित हैं, जैसे (*i*) तुलना सदैव समान प्रकार की घटनाओं में ही की जा सकती है और घटनाओं में समरूपता स्थापित करना कठिन है, (*ii*) तुलनात्मक इकाइयों को परिभाषित करना भी कठिन है, (*iii*) संपूर्ण समाजों और संस्कृतियों की तुलना भी कठिन है तथा इसमें विलक्षण घटनाओं का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. अध्ययनों के .... एवं परिणामों की पारस्परिक तुलना से इस पद्धति की व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध हुई है।
2. भारत में पो. धुरिये एवं कपाड़िया ने .... के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किए हैं।
3. किसी भी वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए .... का होना आवश्यक है।

9.8 सारांश (Summary)

- चेपिन के अनुसार "प्रयोग नियंत्रित दशाओं में किया जाने वाला अवलोकन मात्र है। जब केवल अवलोकन किसी समस्या को प्रभावित करने वाले कारकों का पता लगाने में असफल रहता है तब वैज्ञानिक के लिए प्रयोग का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।"
- विभिन्न समूहों, समाजों, स्थानों तथा समुदायों में घटने वाली सामाजिक घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

नोट

9.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **तुलनात्मक विधि (Comparative Method)**–इसका प्रयोग विभिन्न समाजों की तुलना करने अथवा एक ही समाज के विभिन्न भागों (समूहों) की तुलना करने के लिए किया जाता है।
2. **तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)**–तुलनात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले स्वरूपों के तुलना के द्वारा मानवीय संस्थाओं तथा विश्वासों के विकासपूर्ण क्रम को स्थापित किया जाता है।

9.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. परीक्षणात्मक शोध प्ररचना का अर्थ तथा विशेषता बताएँ।
2. तुलनात्मक शोध प्ररचना के महत्त्व तथा उपयोगिता बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विश्लेषणों   2. परिवार एवं विवाह   3. प्राक्कल्पनाओं।

9.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।

2. शास्त्रीय सामाजिक चिन्तन–अग्रवाल गोपाल क्रीशन, भट्ट ब्रदर्स।

नोट

इकाई–10: तथ्यों के प्रकार एवं उनके स्त्रोत (Types of Data and Their Sources)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 आँकड़ा संग्रहण तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़े (Data Collection and Primary and Secondary Data)

10.2 तथ्य (सामग्री) के स्रोत (Sources of Data)

10.3 शोध के साधन की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता (Authenticity and Reliability of Means of Research)

10.4 सारांश (Summary)

10.5 शब्दकोश (Keywords)

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शोध प्रक्रिया में आंकड़ा संग्रहण की आवश्यकता की जानकारी।
- तथ्य सामग्री के स्रोतों या साधनों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

शोध हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले तथ्यों को अध्ययनकर्ता मनमाने ढंग से एकत्रित नहीं करके विभिन्न उपकरणों एवं प्रविधियों की सहायता से संकलित करता है। वैज्ञानिक शोध के लिए इन तथ्यों का विश्वसनीय होना भी आवश्यक है और इस विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए शोधकर्ता वस्तुनिष्ठता के साथ तथ्यों को एकत्रित करता है। स्पष्ट है कि शोध या अनुसंधान के लिए विश्वसनीय तथ्यों या सामग्री का होना नितान्त आवश्यक है।

10.1 आँकड़ा संग्रहण तथा प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़े (Data Collection and Primary and Secondary data)

तथ्य (आँकड़ा) संकलन (Collection of Data)

किसी भी सर्वेक्षण, शोध या अनुसंधान के लिए सामग्री या तथ्यों का संकलन अत्यंत आवश्यक है। जब तक शोध-विषय से संबंधित तथ्यों को निश्चित प्रविधियों को काम में लेते हुए एकत्रित नहीं किया जाएगा, तब तक शोध (अनुसंधान) के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते और न ही किसी प्रकार के नियमों का ही प्रतिपादन

नोट

किया जा सकता है। तथ्य-संकलन शोध-प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण चरण है। जिस प्रकार ईंट, चूना, पत्थर, सीमेंट, बजरी, लकड़ी, लोहे आदि के बिना किसी भवन का निर्माण नहीं किया जा सकता, ठीक उसी प्रकार तथ्यों या सामग्री के बिना शोध का कार्य संपन्न नहीं किया जा सकता। किसी भी वैज्ञानिक निष्कर्ष तक पहुँचने एवं सामान्यीकरण तथा सैद्धांतीकरण के लिए सूचनाएँ प्राप्त करना, तथ्य एकत्रित करना, संख्यात्मक एवं गुणात्मक बातें मालूम करना आवश्यक है। उदाहरण के रूप में, यदि हम यह ज्ञात करना चाहते हैं कि किसी क्षेत्र विशेष के बालकों में अपराधी प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है, बजाय किसी अन्य क्षेत्र के, तो ऐसी दशा में दोनों क्षेत्रों के बालकों का, वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन करना होगा, रहन-सहन की स्थिति, आजीविका के साधन, बालकों के समाजीकरण की प्रक्रिया आदि के बारे में गहन जानकारी प्राप्त करनी होगी।

नोट्स एकत्रित सूचनाओं, आँकड़ों आदि के आधार पर शोध-कार्य को आगे बढ़ाया जा सकेगा, कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकेंगे, सामान्यीकरण किया जा सकेगा। ये सब सूचनाएँ, आँकड़े, जानकारी आदि ही तथ्यों (Data) के अंतर्गत आते हैं।

तथ्य (आँकड़ा या सामग्री) का अर्थ (Meaning of Data)

तथ्य-संकलन के लिए शोधकर्ता में अवलोकन की चेतना का होना आवश्यक है, यद्यपि यह सही है कि तथ्यों के अंतर्गत सूचनादाताओं से विभिन्न प्रविधियों की सहायता से प्राप्त सभी प्रकार की सूचनाएँ आती हैं। तथ्यों के अंतर्गत उन बातों या सूचनाओं को सम्मिलित किया जाता है जो अवलोकन के योग्य हों और जिन्हें लिखित रूप में रखा जा सकता हो।

वैज्ञानिक ज्ञान की सीमाओं के विस्तार हेतु शोध-प्रयत्नों के आधार पर संकलित की गई साधारण-सी लगने वाली छोटी-छोटी सूचनाएँ भी काफी लाभदायक होती हैं। इन्हीं संकलित सूचनाओं को तथ्य या सामग्री (Data) के नाम से पुकारते हैं। ऐसे ही तथ्यों या सामग्री के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकाले जाते तथा नियमों का प्रतिपादन एवं सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है।

तथ्य-संकलन प्रत्येक विज्ञान, चाहे वह भौतिक विज्ञान हो या सामाजिक विज्ञान, का लक्ष्य होता है। व्यवस्थित रूप में संकलित तथ्यों के आधार पर ही वैज्ञानिक नियमों का प्रतिपादन किया जा सकता है। तथ्य-संकलन से ही घटनाओं के कार्य-कारण संबंध को जाना जा सकता है, कारण-प्रभाव (Cause and Effect) संबंधों का पता लगाया जा सकता है। प्रत्येक विज्ञान में विविध घटनाओं के कारणों एवं प्रभावों को जानने का प्रयत्न किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि विज्ञान की प्रगति तथ्यों पर ही निर्भर करती है। अन्य शब्दों में प्रत्येक विज्ञान तथ्यों के आधार पर ही आगे बढ़ता है, न कि कल्पनाओं के आधार पर।

अमेरिकी कॉलेज शब्दकोश में तथ्यों का अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से बताया गया है कि जो घटना वास्तव में घटित हुई है, जो कुछ घटा है, उसे तथ्य का नाम दिया जाता है। यहाँ हमें यह बात ध्यान में रखनी है कि भौतिक विज्ञानों की मूर्त घटनाएँ मात्र ही सामाजिक विज्ञानों के तथ्य नहीं होतीं, बल्कि अमूर्त जैसे विश्वास, भावनाएँ, मनोवृत्तियाँ या विचार आदि भी तथ्यों के अंतर्गत आते हैं।

तथ्यों के प्रकार (Types of Data)

प्रत्येक अध्ययन विषय या समस्या से संबंधित तथ्य काफी विविधतापूर्ण होते हैं, कुछ तथ्य गुणात्मक तो कुछ परिमाणात्मक होते हैं। अध्ययन हेतु तथ्यों का संकलन कई प्रविधियों की सहायता से किया जा सकता है। अवलोकन-विधि, साक्षात्कार, अनुसूची, डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली आदि के माध्यम से तथ्य एकत्रित किए जा सकते हैं। कई बार अध्ययन-विषय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए कुछ ऐसे तथ्यों का उपयोग भी किया जाता है जिन्हें शोधकर्ता या उसके सहायकों ने स्वयं संकलित नहीं किया है बल्कि अन्य अध्ययनकर्ताओं ने अपने-अपने अध्ययन हेतु एकत्रित किया है। ऐसे तथ्य पुस्तकों, प्रतिवेदनों, पांडुलिपियों, डायरियों, जनगणना रिपोर्ट आदि से प्राप्त किए जाते

नोट

हैं। अतः तथ्य प्रमुखतः दो प्रकार के होते हैं: प्रथम **प्राथमिक तथ्य** (Primary Data) तथा **द्वितीय, द्वैतीयक तथ्य** (Secondary Data)। प्राथमिक तथ्यों का संकलन प्रथम बार शोधकर्ता या उसके सहायकों द्वारा क्षेत्रीय कार्य के आधार पर किया जाता है। द्वैतीयक तथ्यों के अंतर्गत वे तथ्य आते हैं जिनका संकलन किसी अन्य अध्ययनकर्ता, शोधकर्ता, किसी संस्थान या संगठन द्वारा किया गया है। अन्य अध्ययनकर्ताओं द्वारा संकलित तथ्यों का उपयोग जब कोई शोधकर्ता करता है तो उस शोधकर्ता के लिए अन्यों द्वारा संकलित तथ्य द्वैतीयक तथ्य होते हैं क्योंकि उसने या उसके सहायकों ने इन तथ्यों को प्रथम बार एकत्रित नहीं किया है। **यहाँ अब हम प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्यों पर सविस्तार विचार करेंगे–**

1. प्राथमिक तथ्य (सामग्री) (Primary Data)

वे सभी सूचनाएँ, संग्रहित की गई सामग्री और आँकड़े जिन्हें शोधकर्ता ने अपने अध्ययन (शोध) हेतु स्वयं या अपने सहायकों की मदद से एकत्रित किया हो, प्राथमिक तथ्य कहलाते हैं। ये तथ्य प्रमुखतः क्षेत्रीय कार्य (Field-work) के आधार पर प्राप्त किए जाते हैं। **रॉबर्टसन तथा राइट** ने लिखा है, "वे तथ्य प्राथमिक होते हैं, जिन्हें एक विशेष शोध-समस्या को हल करने के लिए विशेष उद्देश्य हेतु संकलित किया गया हो।" स्पष्ट है कि अनुसंधान या शोध-समस्या से संबंधित एकत्रित आँकड़े, सूचनाएँ एवं सामग्री प्राथमिक तथ्य कहलाते हैं।

श्रीमती पी.वी. यंग–ने लिखा है, "प्राथमिक तथ्य-सामग्री का तात्पर्य उन सूचनाओं व आँकड़ों से है जिनको पहली बार संकलित किया गया हो तथा जिनके संकलन का उत्तरदायित्व शोधकर्ता या अन्वेषणकर्ता का अपना है।" यहाँ यह बात स्पष्ट है कि प्राथमिक तथ्यों का संकलन या तो शोधकर्ता स्वयं करता है या अपनी देखरेख में अपने सहायकों से कराता है, इस प्रकार की सामग्री या तथ्य क्षेत्रीय कार्य के आधार पर प्राप्त किए जाते हैं।

प्राथमिक तथ्यों (सामग्री) की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण प्राथमिक सामग्री (तथ्य) को प्रथम-स्तरीय सामग्री (First-hand Data), क्षेत्रीय-सामग्री (Field Data) एवं आधार या मौलिक सामग्री (Basic Data) के नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार की सामग्री का संकलन शोधकर्ता स्वयं या अपने सहायकों की मदद से या तो घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन करके करता है या शोध-विषय से संबंधित लोगों से बातचीत करके, साक्षात्कार करके, अनुसूची या डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की सहायता से करता है। प्राथमिक सामग्री या तथ्य क्योंकि शोधकर्ता द्वारा प्रथम बार एकत्रित किए जाते हैं, इसलिए इन्हें प्राथमिक तथ्य कहते हैं। ये तथ्य नवीन और विश्वसनीय होते हैं। इन तथ्यों के अधिक विश्वसनीय होने का कारण यह है कि इन्हें शोधकर्ता नियंत्रित रूप से अपनी प्राक्कल्पना के सत्यापन की आवश्यकता एवं अपने अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर स्वयं संकलित करता है। यदि कोई शोधकर्ता ग्रामीण-नेतृत्व का अध्ययन करना चाहे तो उसे किसी ग्राम विशेष या कुछ ग्रामों के नेताओं का पता लगाना होगा। इसके पश्चात् उसे इन नेताओं के क्रियाकलापों व विभिन्न गतिविधियों का निरीक्षण करना होगा। शोधकर्ता को इनसे संपर्क स्थापित कर बहुत सी सूचनाएँ या जानकारी प्राप्त करनी होंगी। उसे यह मालूम करना पड़ेगा कि इन नेताओं ने सामूहिक हित के कौन-कौन से कार्य किए हैं। ये किस आयु-समूह में आते हैं, इनकी शैक्षणिक योग्यता क्या है, इनकी आजीविका के साधन क्या हैं, इनकी आर्थिक स्थिति कैसी है? ये सब सूचनाएँ, जानकारी, आँकड़े शोधकर्ता स्वयं या कुछ सहायकों की मदद से एकत्रित करता है। इन्हीं सब एकत्रित तथ्यों को प्राथमिक तथ्य (Primary Data) कहते हैं।

2. द्वैतीयक तथ्य (सामग्री) (Secondary Data)

वे सब सूचनाएँ, आँकड़े एवं तथ्य जिन्हें शोधकर्ता अपने अध्ययन हेतु स्वयं संकलित नहीं करता बल्कि जो पहले से ही प्रकाशित या अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं, द्वैतीयक सामग्री या तथ्य कहलाते हैं। इनमें पत्र, डायरियाँ, आत्मकथाएँ, पांडुलिपियाँ, सरकारी प्रतिवेदन, जनगणना रिपोर्ट, गजेटियर, प्रलेख, अभिलेख आदि आते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि द्वैतीयक तथ्य पहले से ही उपलब्ध होते हैं जिनका उपयोग कोई शोधकर्ता अपने शोध-विषय की आवश्यकतानुसार करता है। किसी शोधकर्ता या संगठन द्वारा इस प्रकार की सामग्री या तथ्य पहले से संकलित किए हुए होते हैं। **श्रीमती पी.वी. यंग** के अनुसार, "द्वैतीयक तथ्य वे होते हैं जिन्हें मौलिक स्रोतों से एक बार प्राप्त कर लेने के पश्चात् काम में लिया गया हो एवं जिनका प्रसारण अधिकारी उस व्यक्ति से भिन्न होता है जिसने प्रथम बार तथ्य संकलन को नियंत्रित किया था।" स्पष्ट है कि द्वैतीयक तथ्य वे होते हैं जिनका एकत्रीकरण स्वयं शोधकर्ता

नोट

या उसके सहायकों द्वारा नहीं किया गया हो, परंतु जिसने किसी अन्य अध्ययन हेतु किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा संकलित सामग्री का उपयोग किया हो। इस सामग्री या तथ्यों का उपयोग करने वाला इसके क्षेत्रीय संकलन से संबंधित नहीं होता है। अन्य शब्दों में जब कोई शोधकर्ता, अन्य शोधकर्ता, संस्था, संगठन या किसी सरकारी या गैर-सरकारी एजेंसी द्वारा एकत्रित सामग्री या तथ्यों का स्वयं के अध्ययन हेतु उपयोग करता है तो उसके लिए वह सामग्री द्वैतीयक सामग्री या तथ्य होंगे। यहाँ इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना उचित रहेगा। यदि कोई शोधकर्ता 2001 की जनगणना-रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित सामग्री में से कुछ तथ्यों का चयन कर अपने अध्ययन हेतु उपयोग करता है तो ऐसे तथ्य उसके लिए द्वैतीयक तथ्य कहलाएँगे। किसी अध्ययन में द्वैतीयक तथ्यों का उपयोग उस समय किया जाता है जब विषय की प्रकृति ऐसी हो कि सभी तथ्यों को नवीन सिरे से एकत्र करना आवश्यक नहीं हो तथा उस विषय से संबंधित अन्य द्वारा एकत्रित तथ्य पहले से उपलब्ध हों। शोधकर्ता को अपने सीमित साधनों के कारण भी कई बार द्वैतीयक सामग्री का उपयोग करना पड़ता है। द्वैतीयक सामग्री को काम में लेने हेतु शोधकर्ता का कार्य-कुशल और सूझ-बूझ वाला होना आवश्यक है। यह सामग्री काफी विविधता लिए हुए होती है। अत: इसमें से शोधकर्ता को आवश्यक तथ्यों को संकलित करना होता है।

प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्यों में अंतर

वास्तव में प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य सापेक्ष हैं। किसी अध्ययन में कौन से तथ्य प्राथमिक और कौन से तथ्य द्वैतीयक होंगे, यह शोध के लक्ष्य से संबंधित है। एक शोधकर्ता के लिए जो तथ्य प्राथमिक हैं, वे ही अन्य शोधकर्ताओं के अध्ययन में प्रयुक्त होने पर द्वैतीयक कहलायेंगे।

प्राथमिक तथ्यों को द्वैतीयक तथ्यों की तुलना में अधिक मौलिक (Original) माना जाता है क्योंकि इनका संकलन स्वयं शोधकर्ता के द्वारा अध्ययन की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। इस मौलिकता का द्वैतीयक तथ्यों में सापेक्ष रूप से अभाव पाया जाता है।

प्राथमिक तथ्य द्वैतीयक तथ्यों की तुलना में अधिक विश्वसनीय होते हैं क्योंकि इन्हें शोधकर्ता या अन्वेषणकर्ता अपनी प्राक्कल्पनाओं के परीक्षण हेतु अथवा अध्ययन-विषय के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए किसी वैज्ञानिक प्रविधि द्वारा वस्तुनिष्ठ तरीके से स्वयं या अपने निर्देशन में संकलित करता है। ये तथ्य ऐसे होते हैं जिनका अन्य वैज्ञानिकों द्वारा सत्यापन किया जा सकता है। यहाँ हमें यह नहीं सोच लेना चाहिए कि द्वैतीयक तथ्य प्राथमिक तथ्यों की तुलना में घटिया किस्म के होते हैं। कहने का तात्पर्य केवल यही है कि प्राथमिक तथ्य तुलनात्मक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होते हैं।

प्राथमिक तथ्य क्षेत्रीय-कार्य के आधार पर प्रथम बार एकत्रित किये जाने के कारण नवीन होते हैं जबकि द्वैतीयक तथ्य पूर्व में किये गए अन्वेषणों के अंतर्गत संकलित किये जाने के कारण पुराने होते हैं। उनका यह पुरानापन कई बार वर्तमान का विश्लेषण करने में कठिनाई पैदा करता है।

प्राथमिक तथ्यों का प्रयोग प्रथम बार किया जाता है अर्थात प्रथम बार एकत्रित किये गये तथ्यों का प्रथम बार उपयोग किया जाता है। उन्हीं तथ्यों का दूसरी बार उपयोग करने पर वे द्वैतीयक तथ्यों के नाम से जाने जाते हैं।

प्राथमिक तथ्य शोधकर्ता के स्वयं के निर्देशन में एकत्रित किये जाते हैं जबकि द्वैतीयक तथ्य अन्य के द्वारा एकत्रित एवं उपयोग किये हुए होते हैं।

प्राथमिक तथ्यों का संकलन शोधकर्ता अपनी अध्ययन समस्या के अनुरूप स्वयं करता है। अत: वह सुगमता से इस बात का निर्णय कर पाता है कि उसके अध्ययन के लिए कौन से तथ्य उपयोगी हैं एवं कौन से अनुपयोगी हैं, किन्हें अध्ययन में सम्मिलित किया जाना चाहिए और किन्हें हटा दिया जाना चाहिए। द्वैतीयक तथ्यों के संकलनकर्ता को कई बार उन महत्त्वपूर्ण तथ्यों के संकलन से वंचित रहना पड़ता है जिन्हें निरर्थक समझकर प्राथमिक तथ्यों के संकलनकर्ता ने अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया।

10.2 तथ्य (सामग्री) के स्त्रोत (Sources of Data)

तथ्यों (सामग्री) के स्त्रोत का तात्पर्य यह है कि तथ्यों का संकलन किन स्त्रोतों या माध्यमों से किया जा रहा है।

तथ्य-संकलन के स्रोतों के चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। यदि ये स्रोत विश्वसनीय नहीं हुए तो संपूर्ण शोधकार्य ही निरर्थक साबित हो सकता है। अत: तथ्य-संकलन के विभिन्न स्रोतों को भलीभाँति समझ लेना अत्यंत आवश्यक है। प्रमुखत: तीन तरीकों से अध्ययन हेतु तथ्य एकत्रित किये जा सकते हैं। सामाजिक शोध का विषय चूँकि मानव या मानव समूह होता है जिसे हम अपनी सुविधानुसार या आवश्यकतानुसार नियंत्रित नहीं कर सकते। अत: हम उसके संबंध में तीन तरीकों से सूचना प्राप्त कर सकते या तथ्य एकत्रित कर सकते हैं–

(1) हम व्यक्ति से स्वयं बातचीत करें, वार्तालाप करें, सीधे प्रश्न करें तथा विषय या समस्या के संबंध में उसके विचार या प्रतिक्रिया को जान लें।

(2) शोध-विषय से संबंधित व्यक्ति, समूह एवं संगठन के क्रियाकलापों, आचार-व्यवहारों का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करें और इस अवलोकन के आधार पर प्राप्त तथ्यों को संकलित कर लें।

(3) शोध-कार्य के समय उन दस्तावेजों, तथ्यों या सामग्री का उपयोग अपनी आवश्यकतानुसार करें जो किसी अन्य अध्ययन या शोध हेतु एकत्रित किये गये थे।

तथ्य-संकलन के उपर्युक्त तीन स्रोतों को विद्वानों ने प्रमुखत: दो भागों में बाँटा है, प्रथम, **प्राथमिक स्रोत** (Primary Source) तथा द्वितीय, **द्वैतीयक स्रोत** (Secondary Source)।

I. प्राथमिक स्रोत (Primary Source)

प्राथमिक स्रोत से प्राप्त तथ्य वे मौलिक तथ्य होते हैं जिनको संकलित व प्रचारित करने का दायित्व उसी व्यक्ति या शोधकर्ता का होता है जिसने उन्हें एकत्रित किया है। यहाँ हमें यह बात भलीभाँति समझ लेनी चाहिए कि प्राथमिक स्रोत से एकत्रित सामग्री का संकलनकर्ता रिपोर्ट या प्रतिवेदन का लेखक हो, यह आवश्यक नहीं है। **श्रीमती पी. वी. यंग** ने लिखा है, "प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों के संकलन में सहायक होते हैं।" **पीटर एच. मान** के अनुसार, "प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं जो प्रथम बार तथ्य प्रदान करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ये तथ्य संकलित करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत किये तथ्यों का मौलिक स्वरूप होते हैं।"

प्राथमिक स्रोत को अन्य शब्दों में हम इस प्रकार समझा सकते हैं। जहाँ शोधकर्ता स्वयं अपने अध्ययन-क्षेत्र या समग्र (Universe) की अध्ययन इकाइयों से संपर्क कर तथ्यों को एकत्रित करता है, वहाँ इसे तथ्य-संकलन का प्राथमिक स्रोत कहा जाता है। यहाँ अपनी अध्ययन की इकाई–व्यक्ति से वह सीधा संपर्क कर तथ्य संकलित करता है। इस प्रकार से प्राप्त तथ्यों को प्राथमिक स्रोत द्वारा एकत्रित सामग्री इस कारण भी कहा जाता है क्योंकि किसी विशिष्ट विषय (समस्या) के लक्ष्य को ध्यान में रखकर इसे प्रथम बार एकत्रित किया जाता है। इस सामग्री के संकलन का दायित्व स्वयं शोधकर्ता का होता है। इस सामग्री की विश्वसनीयता एवं उपयुक्तता के लिए स्वयं अनुसंधानकर्त्ता उत्तरदायी होता है। इस सामग्री के संकलन में शोधकर्ता का स्वयं का लगाव होता है। इस लगाव के फलस्वरूप अपने अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने हेतु वह पूर्णत: निष्पक्ष रहकर तथ्यों का संकलन कर सकता है। यह भी संभव है कि इस लगाव के कारण वह पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाए, ऐसे तथ्यों का संकलन कर ले जो उसकी प्राक्कल्पना को सही प्रमाणित करने में योग दें। ऐसी स्थिति में अध्ययन में वैज्ञानिकता बनाये रखने हेतु शोधकर्ता को सभी पूर्वाग्रहों से अपने को मुक्त रखने की आवश्यकता है।

श्रीमती पी.वी. यंग ने तथ्य-संकलन के प्राथमिक स्रोत को दो भागों में विभाजित किया है: प्रथम स्रोत (Direct Source) तथा द्वितीय, अप्रत्यक्ष स्रोत (Indirect Source)। प्रत्यक्ष स्रोत के अंतर्गत अवलोकन, अनुसूची एवं साक्षात्कार प्रविधियों की सहायता से सामग्री संकलित की जाती है। प्रत्यक्ष स्रोत में शोधकर्ता या अध्ययनकर्ता द्वारा अध्ययन-इकाइयों से सीधा संपर्क स्थापित किया जाता है। अप्रत्यक्ष स्रोत में शोधकर्ता अध्ययन-इकाइयों से सीधा संपर्क किये बिना ही सामग्री का संकलन करता है। अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत में प्रश्नावली, रेडियो या टेलीविजन अपील, टेलीफोन साक्षात्कार, प्रतिनिधि प्रविधियाँ आदि प्रमुख हैं। यहाँ इन माध्यमों से सामग्री एकत्रित की जाती है।

यहाँ तथ्य संकलन के प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत हम अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रश्नावली पर विचार करेंगे।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. तथ्यों के स्रोत का तात्पर्य यह है कि तथ्यों का .... किन स्रोतों या माध्यमों से किया जा रहा है।
2. शोध-विषय से संबंधित व्यक्ति, समूह एवं संगठन के .... आचार-व्यावहारों का प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन करें।
3. शोध-कार्य के समय उन दास्तावेजों, तथ्यों या सामग्री का उपयोग अपनी .... करें।

(1) **अवलोकन** (Observation)–अवलोकन तथ्य संकलन के प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत आता है। इसमें अध्ययनकर्ता स्वयं अध्ययन-स्थल पर पहुँचकर घटनाओं, दशाओं, वस्तुओं, रीति-रिवाजों एवं व्यवहारों को निष्पक्ष रूप से देखता है, तटस्थ होकर उनका अवलोकन करता है और इस आधार पर तथ्यों को एकत्रित करता है। इस प्रविधि का सफल प्रयोग सीमित क्षेत्र में ही किया जा सकता है। साथ ही ऐसा अध्ययन लोगों के विचारों, विश्वासों, भावनाओं एवं मनोवृत्तियों से संबंधित नहीं होना चाहिए क्योंकि इनका अध्ययन अवलोकन प्रविधि से नहीं किया जा सकता। अवलोकन के तीन प्रकार हैं–प्रथम, सहभागिक अवलोकन (Participant Observation); द्वितीय, अर्द्ध-सहभागिक अवलोकन (Quasi Participant Observation) तथा तृतीय, असहभागिक अवलोकन (Non-Participant Observation)। सहभागिक अवलोकन में अध्ययनकर्ता स्वयं उस समूह या समुदाय का एक सदस्य या भाग बन जाता है जिसका उसे अध्ययन करना होता है। ऐसा करके वह समूह के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात कर सकता है। अर्द्ध-सहभागिक अवलोकन में अध्ययनकर्ता लंबे समय तक समूह का अंग बनकर नहीं रहता। वह विशेष अवसरों से संबंधित तथ्य एकत्रित करने के लिए उन अवसरों पर समूह के निकट संपर्क में आता है। असहभागिक अवलोकन में अध्ययनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह या लोगों के निकट संपर्क में नहीं आता, उस समूह का सदस्य नहीं बन जाता। वह तो एक दर्शक के रूप में घटनाओं का निरीक्षण कर तथ्य एकत्रित करता है। तथ्य संकलन की यह प्रविधि अर्थात अवलोकन अधिक विश्वसनीय और निर्भर योग्य है।

(2) **साक्षात्कार** (Interview)–इसमें अध्ययन-विषय से संबंधित विभिन्न व्यक्तियों से सीधा संपर्क स्थापित कर बातचीत की जाती है और अध्ययन हेतु आवश्यक सामग्री एकत्रित की जाती है। इस विधि को साक्षात्कार विधि के नाम से पुकारते हैं। इसमें अध्ययनकर्ता अनुसूची या साक्षात्कार प्रदर्शिका (Interview Guide) की सहायता ले सकता है। वह चाहे तो मुक्त वार्तालाप के माध्यम से भी तथ्य संकलित कर सकता है। घटना या विषय से जुड़े हुए लोग साक्षात्कार के माध्यम से विश्वसनीय एवं निर्भर योग्य सूचनाएँ (तथ्य) दे सकते हैं, फिर भी साक्षात्कारकर्ता द्वारा बीच-बीच में ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते हैं जिनकी सहायता से एकत्रित सामग्री की जाँच की जा सके।

(3) **अनुसूची** (Schedule)–अनुसूची प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे अनुसंधानकर्ता स्वयं या उसके प्रगणक क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं से प्रश्न पूछकर उत्तरों को भरते हैं। इस विधि में अनुसंधानकर्ता तथा सूचनादाताओं के बीच अनुसूची के माध्यम से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित हो जाता है। इस विधि की सहायता से अशिक्षित व्यक्तियों से भी सूचनाएँ सुगमता से प्राप्त कर ली जाती हैं। यह सूचना-प्राप्ति का काफी विश्वसनीय स्रोत है। इस विधि की सहायता से अध्ययन का एक प्रमुख लाभ यह है कि अनुसंधानकर्ता को घटनाओं का अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त हो जाता है।

(4) **प्रश्नावली** (Questionnaire)–यद्यपि प्रश्नावली की सहायता से प्राथमिक तथ्य संकलित किये जाते हैं, परंतु फिर भी यह सूचना-प्राप्ति का प्रत्यक्ष स्रोत नहीं होकर अप्रत्यक्ष स्रोत है। इस विधि द्वारा अध्ययन में अनुसंधानकर्ता तथा सूचनादाता में प्रत्यक्ष संबंध स्थापित नहीं होकर अप्रत्यक्ष संबंध रहता है। प्रश्नावली अनुसंधानकर्ता द्वारा तैयार की गयी प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे वह उत्तरदाता के पास डाक द्वारा इस अनुरोध के साथ भेजता है कि इसे भरकर समय पर अवश्य लौटायें। इस विधि का प्रयोग उस दशा में किया जाता है जब अध्ययन-क्षेत्र या समग्र इतना विस्तृत हो कि सभी सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क कर तथ्य संकलित करना संभव नहीं हो। इसके अलावा इस विधि का प्रयोग ऐसे उत्तरदाताओं के लिए ही किया जा सकता है जो शिक्षित हों, जो स्वयं प्रश्नों को समझकर बिना अनुसंधानकर्ता की सहायता के उत्तर दे सकें। इस विधि द्वारा अध्ययन का लाभ यह है कि इसमें समय एवं धन की काफी बचत होती है। इस विधि का एक प्रमुख दोष यह है कि इसमें प्राप्त उत्तरों का सत्यापन कठिन रहता है।

नोट

II. द्वैतीयक स्रोत (Secondary Source)

द्वैतीयक तथ्यों या सामग्री को जिन स्रोतों से प्राप्त किया जाता है, उन्हें तथ्य-संकलन के द्वैतीयक स्रोत कहते हैं। **जॉन मेज** के अनुसार, "द्वैतीयक स्रोतों का निर्माण कही-सुनी बातों एवं अप्रत्यक्ष दर्शकों के आधार पर होता है।" **श्रीमती पी. वी. यंग** ने लिखा है, "इन तथ्यों (द्वैतीयक) का उपयोग करने वाले एवं इन्हें प्रथम बार एकत्रित करने वाले लोग पृथक्-पृथक् होते हैं।" **प्रो. पी. एच. मान.** के अनुसार, "ये द्वैतीयक स्तर पर प्राप्त किये गये तथ्य होते हैं, यानि कि ये प्रथम बार एकत्रित किये हुए तथ्य नहीं होते बल्कि अन्य व्यक्तियों द्वारा एकत्रित मूल तथ्यों के आधार पर रचित तथ्य होते हैं।" स्पष्ट है कि द्वैतीयक सामग्री तथ्य संकलन की ऐसी सामग्री है जिसका प्रथम बार संकलन करने वाले लोग अब शोधकार्य के लिए इसका उपयोग करने वाले लोगों से भिन्न थे।

द्वैतीयक स्रोतों से कई बार सुगमता से ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ मिल जाती हैं जो प्राथमिक स्रोतों से भी नहीं मिल पाती हैं। सामाजिक शोध में द्वैतीयक स्रोतों का प्राथमिक स्रोतों की तुलना में कम महत्त्व नहीं है। प्राथमिक तथ्यों की सत्यता का पता लगाने के लिए द्वैतीयक स्रोतों द्वारा प्राप्त तथ्यों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। द्वैतीयक स्रोत अध्ययन की प्रारंभिक पृष्ठभूमि निर्मित करने एवं अध्ययन की दिशा तय करने में उपयोगी भूमिका निभाते हैं।

तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्रोतों को प्रमुखतः दो भागों में विभाजित किया जाता है। प्रथम **व्यक्तिगत प्रलेख** (Personal Documents) तथा द्वितीय **सार्वजनिक प्रलेख** (Public Documents) । इन पर विचार करने से यह स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा कि शोधकर्ता किन-किन स्रोतों से द्वैतीयक तथ्य एकत्रित कर अपने अध्ययन हेतु उपयोग में ले सकता है।

1. व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Documents)

व्यक्तिगत प्रलेख के अंतर्गत वह संपूर्ण लिखित सामग्री आ जाती है जो एक व्यक्ति अपने स्वयं के बारे में या सामाजिक घटनाओं को एक विशेष दृष्टिकोण से देख-समझकर प्रस्तुत करता है। व्यक्तित्व प्रलेखों में व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, आदर्शों आदि का समावेश भी हो सकता है। व्यक्तिगत प्रलेखों के रूप में उपलब्ध लिखित सामग्री प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों ही रूपों में हो सकती है। व्यक्तिगत प्रलेख का अर्थ स्पष्ट करते हुए **जान मेज** ने लिखा है, "अपने संकुचित अर्थ में, व्यक्तिगत प्रलेख किसी व्यक्ति के द्वारा उसकी स्वयं की क्रियाओं, अनुभवों एवं विश्वासों के बारे में स्वयं द्वारा लिखा गया एक विवरण है।" **जहोदा एवं उनके सहयोगी लेखकों** के अनुसार, "व्यक्तिगत प्रलेखों के अंतर्गत उन सभी प्रलेखों को सम्मिलित किया जाता है जो सामान्यतः सूचनादाताओं के व्यक्तिगत जीवन के आधार पर स्वयं उन्हीं के द्वारा लिखे होते हैं एवं जिनमें उनके स्वयं के अनुभव शामिल होते हैं।"

व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तियों, एक समय विशेष की परिस्थितियों एवं भूतकाल में घटित सामाजिक घटनाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में समझने में योग देते हैं। यद्यपि व्यक्तिगत प्रलेख व्यक्तिपरक होते हैं परंतु फिर भी सामाजिक शोध में इनकी काफी उपयोगिता है। ये सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने हेतु आवश्यक सामग्री प्रदान करते हैं। इनकी इस दृष्टि से काफी महत्ता है कि इनके आधार पर एक विशिष्ट समय में लोगों के रहन-सहन, खान-पान, व्यवहार-प्रतिमान, सामाजिक आदर्श-नियम आदि का पता चलता है। पत्र, डायरी, जीवन-इतिहास एवं संस्मरण व्यक्तिगत प्रलेखों के अंतर्गत आते हैं। यहाँ अब हम इन्हीं पर विचार करेंगे।

(1) **पत्र** (Letters)—सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में कई पत्र लिखता है यद्यपि अधिकांशतः पत्र वैयक्तिक होते हैं, परंतु फिर भी ये महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करते हैं। अध्ययन की दृष्टि से इतिहासकारों एवं जीवनी लेखकों द्वारा पत्रों का विशेष उपयोग किया गया है। **थॉमस** एवं **नैनकि** द्वारा पोलैण्ड के कृषकों के अपने अध्ययन में सर्वप्रथम पत्रों को काम में लिया गया। व्यक्तिगत पत्र अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं। इनसे पत्र लिखने वालों के विचारों एवं दृष्टिकोणों को समझने में मदद मिलती है। पत्र अपने निकट के व्यक्तियों को लिखे जाते हैं। अतः इनमें व्यक्ति महत्त्वपूर्ण विचारों, भावनाओं, जीवन की प्रमुख घटनाओं, अनुभवों, प्रेम, घृणा, अपनी योजनाओं आदि को व्यक्त करता है। पत्रों में राजनीतिक घटनाओं एवं सामाजिक जीवन का विवरण मिलता है। जीवन के अंतरंग पक्षों से संबंधित बातें पत्रों में लिखी होती हैं। पारिवारिक तनाव, वैवाहिक संबंध, यौनिक असंतुलन, पृथक्करण, विवाह-विच्छेद आदि से संबंधित महत्त्वपूर्ण बातों का पता पत्रों के माध्यम से सुगमता से चल जाता है। पत्र चूँकि व्यक्तिगत और गोपनीय होते हैं, अतः इनसे यथार्थ एवं विश्वसनीय सामग्री मिल पाती है।

नोट

अध्ययन की दृष्टि से पत्रों की उपयोगिता सीमित ही है। इसका कारण यह है कि एक तो व्यक्तिगत होने के कारण इन्हें प्राप्त करना कठिन है। दूसरा, पत्रों में पूर्ण संदर्भ-सहित घटनाओं का विवरण नहीं मिलता है तथा साथ ही घटनाओं के वर्णन में क्रमबद्धता की कमी पायी जाती है। तीसरा, पत्रों में अपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं जिनके आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना कठिन है। चतुर्थ, यदि पत्र लिखने का उद्देश्य कोई प्रचार कार्य रहा है तो उनमें वर्णित बातों की यथार्थता ज्ञात करना कठिन हो जाता है। अत: पत्रों द्वारा संकलित सामग्री में अभिनति व पक्षपात का दोष पाया जाता है।

(2) **डायरी** (Diary)–कई लोग अपने दिन-प्रतिदिन की घटनाओं को डायरी के रूप में लिखते हैं। चूँकि डायरी एक पूर्णत: गोपनीय दस्तावेज है, अत: व्यक्ति के जीवन की रहस्यमयी बातों का पता लगाने का एक विश्वसनीय स्त्रोत है। **जॉन मेज** ने लिखा है, ''डायरियाँ सबसे ज्यादा रहस्योद्‌घाटन करने वाली होती हैं क्योंकि एक ओर व्यक्ति को इनका जनता के सामने प्रदर्शित होने का भय नहीं होता एवं दूसरी ओर इनमें घटनाओं एवं क्रियाओं के घटित एवं सम्पन्न होने के समय ही उनको बहुत स्पष्ट रूप में लिख दिया जाता है।'' **मेज** के इस कथन से सामाजिक अनुसन्धान में डायरी का तथ्य-संकलन के स्त्रोत के रूप में महत्त्व स्वत: ही स्पष्ट हो जाता है। इससे गोपनीय तथ्य प्राप्त होते हैं जो सापेक्ष दृष्टि से अधिक विश्वसनीय होते हैं क्योंकि लेखक डायरी में घटनाओं का यथार्थ चित्रण करता है। वह प्रदर्शन या प्रकाशन के उद्देश्य से डायरी नहीं लिखता है। महापुरुषों के कार्यों, यात्रा-वर्णन, जेल जीवन का वृत्तान्त, युद्ध या किसी अन्य असाधारण घटना के संस्मरण के रूप में लिखी गयी डायरियाँ शोध-कार्य में काफी सहायक होती हैं। डायरियों द्वारा सही सूचनाएँ मिल पाती हैं क्योंकि इनमें सामान्यत: घटनाओं को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं किया जाता। गोपनीय एवं विश्वसनीय तथ्यों को प्राप्त करने का यह एक महत्त्वपूण स्त्रोत है।

यद्यपि सामाजिक शोध में डायरी की काफी उपयोगिता है, परन्तु फिर भी उसकी कुछ सीमाएँ हैं, कुछ दोष हैं। **आलपोर्ट** ने लिखा है, ''डायरियों में घटनाओं को पूरी तरह स्वीकार करके चला जाता तथा अक्सर उन व्यक्तियों या दशाओं का विवरण भुला दिया जाता है जिनके अस्तित्व व चरित्र के बारे में डायरी के लेखक को अनुमान मात्र होता है।'' **जॉन मेज** ने बताया है, ''डायरियां जीवन के नाटकीय एवं संघर्षात्मक पक्षों का तो बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन कर सकती हैं परन्तु कई महीनों के शान्तिपूर्ण एवं सुखद क्षणों को इनमें उचित मात्रा में स्थान नहीं दिया जाता है।'' इन कमियों के अलावा डायरियों द्वारा तथ्य-संकलन के कुछ अन्य दोष इस प्रकार हैं। इनमें घटनओं का क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलता है। यदि डायरी को प्रकाशित कराने की लेखक की तनिक-सी अप्रकट इच्छा भी है तो उसमें कल्पनाशीलता एवं घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर लिखने का भाव आ जाता है। ऐसी स्थिति में डायरियों के माध्यम से प्राप्त तथ्यों के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना कठिन है।

(3) **जीवन-इतिहास** (Life History)–तथ्य-संकलन के द्वैतीयक स्त्रोत के रूप में जीवन-इतिहास का काफी महत्त्व है। **जॉन मेज** ने लिखा है, ''वास्तविक अर्थ में जीवन-इतिहास का तात्पर्य किसी विस्तृत आत्म-कथा से होता है। सामान्य अर्थों में इसका प्रयोग किसी भी जीवन-सम्बन्धी सामग्री के लिए किया जा सकता है।'' अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवन-इतिहास का तात्पर्य किसी भी प्रकार की जीवन-सम्बन्धी सामग्री से है। जीवन-इतिहास के प्रमुखत: दो रूप देखने को मिलते हैं: प्रथम, **आत्मकथा** (Autobiography) जिसे व्यक्ति अपने सम्बन्ध में स्वयं लिखता है, तथा द्वितीय, **जीवन-चरित्र** (Biography) जिसे कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के बारे में लिखता है। साधारणत: प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्तियों के जीवन-चरित्र ही लिखे जाते हैं।

जीवन-इतिहास आत्मकथा के रूप में स्वयं द्वारा भी लिखा जा सकता है और किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा भी। ये दोनों ही द्वैतीयक तथ्य-संकलन के प्रमुख स्त्रोत हैं। किसी महापुरुष के जीवन-इतिहास से उसके समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं विभिन्न प्रकार की घटनाओं को समझने में सहायता मिलती है। जीवन-इतिहासों से एक विशेष काल की सामाजिक परिस्थितियों एवं समस्याओं को भली प्रकार से समझा जा सकता है। भारत में समाज-सुधारकों के जीवन-इतिहास से हिन्दू-समाज और उसमें व्याप्त कुरीतियों को समझने और उनसे सम्बन्धित अध्ययन करने में काफी मदद मिली है।

नोट

जीवन-इतिहासों के उपयोग की कुछ सीमाएं भी हैं। प्रथम, इनमें वस्तुनिष्ठता का अभाव पाया जाता है। आत्मकथाएँ लिखने वाले अधिकांशतः यह जानते हैं कि उनका प्रकाशन होगा, अतः वे उनके दुर्बल पक्षों को कई बार छिपा जाते हैं, परिस्थितियों व घटनाओं का यथार्थ चित्रण नहीं कर पाते। इससे आत्मकथाओं द्वारा प्राप्त सामग्री की वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता कम हो जाती है। द्वितीय, जीवन-इतिहासों से संकलित तथ्यों की जांच करना सम्भव नहीं होता है। तृतीय, जीवन-इतिहासों में व्यक्ति के व्यक्तित्व को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाता है। जीवन-चरित्र लिखने वाले, किसी नेता या महापुरुष की प्रशंसा में घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करते हैं। चतुर्थ, लेखक जिन घटनाओं को अपनी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझते हैं, उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर और शेष को या तो अति संक्षिप्त में प्रस्तुत करते या छोड़ देते हैं। जो बातें उनके सम्मान की दृष्टि से अरुचिकर होती हैं, उन्हें वे स्थान नहीं देते हैं। इससे वास्तविक स्थिति का पता नहीं चल पाता है। ऐसी सामग्री के आधार पर वैज्ञानिक निष्कर्ष निकालना बहुत कठिन है।

(4) **संस्मरण** (Memories)—कई लोग अपनी यात्राओं, जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं एवं रोमांचकारी अनुभवों को संस्मरण के रूप में लिखते हैं, या इन्हें समय-समय पर अन्य व्यक्तियों को सुनाते हैं। ये संस्मरण न केवल व्यक्ति के जीवन-अनुभवों का लेखा-जोखा ही प्रस्तुत करते हैं बल्कि काल विशेष के समाज की दशाओं का चित्रण भी करते हैं। यात्राओं व महत्त्वपूर्ण घटनाओं के संस्मरण लिखने का प्रचलन प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। उदाहरण के रूप में, कोलम्बस, फाह्यान, ह्वेनसांग एवं मैगस्थनीज ने काफी उपयोगी संस्मरण लिखे।

टास्क व्यक्तिगत प्रलेख क्या है? उल्लेख करें।

2. सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents)

सामग्री संकलन के द्वैतीयक स्रोत के रूप में सार्वजनिक प्रलेख का काफी महत्त्व है। किसी सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर सरकारी या गैर-सरकारी संस्था के द्वारा सार्वजनिक प्रलेख तैयार कराये जाते हैं। कभी व्यक्तिगत स्तर पर भी तथ्य संकलित किये जाते हैं और यदि उन्हें सार्वजनिक उपयोग के लिए काम में लाया जाता हो तो ऐसी सामग्री भी सार्वजनिक प्रलेख के अन्तर्गत ही आती है। सार्वजनिक प्रलेख व्यक्तिगत प्रलेख की तुलना में अधिक विस्तृत एवं व्यापक जानकारी प्रदान करने वाले और अधिक विश्वसनीय होते हैं। ये प्रायः व्यक्तिगत पक्षपात से मुक्त होते हैं। सार्वजनिक प्रलेखों को प्रमुखतः दो भागों में विभाजित किया जाता है, प्रथम, **प्रकाशित प्रलेख** तथा द्वितीय, **अप्रकाशित प्रलेख।**

1. **प्रकाशित प्रलेख** (Published Documents)—सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों द्वारा समय-समय पर कई तथ्य प्राथमिक रूप से संकलित कराये जाते हैं जिन्हें सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित करा दिया जाता है। जब इन तथ्यों (सामग्री) का अन्य अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा उपयोग किया जाता है तो उनके लिए ये तथ्य प्रकाशित प्रलेखों के रूप में तथ्य-संकलन का द्वैतीयक स्रोत बन जाते हैं। यहां हम कुछ प्रमुख प्रकाशित सार्वजनिक प्रलेखों का उल्लेख करेंगे।

(*i*) **शोध-संस्थानों के प्रतिवेदन**—विभिन्न शोध-संस्थान अपने शोध-कार्यों का विवरण प्रस्तुत करने हेतु समय-समय पर प्रतिवेदन प्रकाशित कराते हैं। यह सामग्री अन्य शोधकर्ताओं के लिए काफी उपयोगी प्रमाणित होती है। टाटा समाज विज्ञान संस्थान, जनजातीय अनुसन्धान संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षणिक शोध तथा प्रशिक्षण संस्थान, समाज-विज्ञान शोध परिषद् एवं राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक शोध परिषद् ने अपने प्रतिवेदन का समय-समय पर प्रकाशन कराके महत्त्वपूर्ण शोध-सामग्री उपलब्ध करायी है।

(*ii*) **व्यक्तिगत शोधकर्ताओं के प्रकाशन**—अनेक शोध-छात्र विभिन्न क्षेत्रों में अपना शोध-कार्य सम्पन्न कर शोध-निबन्ध प्रकाशित कराते हैं। ये प्रकाशन भी सार्वजनिक प्रलेख के रूप में द्वैतीयक सामग्री के प्रमुख स्रोत हैं।

नोट

(*iii*) **समितियों व आयोगों के प्रतिवेदन**–अनेक सरकारी व गैर-सरकारी समितियों तथा आयोगों द्वारा समय-समय पर अपने प्रतिवेदन प्रकाशित कराये जाते हैं। इन समितियों व आयोगों द्वारा कई प्रकार के तथ्य संकलित कराये जाते हैं, जैसे शिक्षा सम्बंधी आंकड़े, अपराध सम्बन्धी आंकड़े, निर्धनता व बेकारी सम्बन्धी आंकड़े जिन्हें सार्वजनिक उपयोग हेतु प्रकाशित करा दिया जाता है। मद्य निषेध जांच समिति, राष्ट्रीय नियोजन समिति, योजना आयोग आदि के द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं। भारत में जनगणना प्रतिवेदन (Census Reports) द्वैतीयक सामग्री के प्रमुख स्रोत हैं। इनका अनेक समाजशास्त्रीय अध्ययनों में काफी उपयोग किया गया है। उदाहरण के रूप में, प्रो. आई. पी. देसाई द्वारा भारतीय संयुक्त परिवार सम्बन्धी अध्ययन जनगणना प्रतिवदेन पर ही आधारित है। भारत सरकार द्वारा प्रतिवर्ष प्रकाशित कराये जाने वाला ग्रन्थ 'भारत (India)' द्वैतीयक तथ्य संकलन का प्रमुख स्रोत है।

(*iv*) **व्यावसायिक संस्थाओं एवं परिषदों के प्रकाशन**–राष्ट्रीय उत्पादन परिषद्, बाल-कल्याण परिषद्, सूती कपड़ा मिल मालिक संघ, आर्थिक व सांख्यिकी निदेशालय, कृषि विभाग, चैम्बर आफ कामर्स आदि के प्रकाशन तथ्य-संकलन के महत्त्वपूर्ण द्वैतीयक स्रोत हैं।

(*v*) **अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रकाशन**–संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक-वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन (UNESCO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), अन्तर्राष्ट्रीय बाल सहायता कोष आदि के द्वारा समय-समय पर प्रकाशित सामग्री तथ्य-संकलन का विश्वसनीय स्रोत है।

(*vi*) **पत्र-पत्रिकाएं**–विभिन्न शोध-पत्र समय-समय पर प्रकाशित होते हैं। अनेक शोध पत्रिकाएँ भी निकलती रहती हैं। इनके अलावा दिन-प्रतिदिन की घटनाओं का विवरण समाचार-पत्रों में प्रकाशित होता है, उनमें कई लेख व सम्पादकीय भी छपते रहते हैं। रेडियो व दूरदर्शन भी मूल्यवान सामग्री उपलब्ध कराते हैं। यद्यपि जन-संचार के इन साधनों से महत्त्वपूर्ण तथ्य तो प्राप्त होते हैं, परन्तु शोध-कार्य हेतु इनका उपयोग बड़ी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए। ऐसे तथ्यों की विश्वसनीयता का पता लगा लिया जाना चाहिए।

2. अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished Documents)–सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों द्वारा एकत्रित कुछ सामग्री उनकी गोपनीयता को बनाये रखने हेतु प्रकाशित नहीं करायी जाती, जबकि कुछ सामग्री आर्थिक या अन्य कारणों से प्रकाशित नहीं हो पाती। प्रतिरक्षा मन्त्रालय से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों की गोपनीयता बनाये रखने के उद्देश्य से ही उनका प्रकाशन नहीं कराया जाता। पुलिस विभाग, न्याय विभाग, सरकारी कार्यालयों आदि के द्वारा समय-समय पर कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएं एकत्रित करायी जाती हैं। परन्तु उन्हें रिकार्ड या दस्तावेजों के रूप में ही सुरक्षित रखा जाता है, प्रकाशित नहीं कराया जाता। ऐसी सामग्री को अभिलेख कहा जाता है, ये अप्रकाशित दस्तावेज भी द्वैतीयक सामग्री के प्रमुख स्रोत हैं, यद्यपि इनका उपयोग करने के लिए आज्ञा प्राप्त करनी पड़ती है। अप्रकाशित प्रलेख के अन्तर्गत द्वैतीयक सामग्री के निम्नलिखित स्रोत आते हैं:

(*i*) **अभिलेख**–विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी कार्यालयों में उनकी आवश्यकतानुसार कई प्रकार के आँकड़े और सूचनाएँ एकत्रित करके रखे जाते हैं। यह सम्पूर्ण सामग्री (अभिलेख) विभिन्न समितियों, संगठनों, आयोगों के प्रतिवेदनों व समय-समय पर आयोजित होने वाली बैठकों (मीटिंग्स) की कार्यवाहियों के रूप में होती है। यद्यपि यह सामग्री गोपनीय होती है, परन्तु साथ ही काफी विश्वसनीय भी होती है।

(*ii*) **अनुसन्धानकर्ताओं के प्रतिवेदन**–अनेक अनुसन्धानकर्ता शोध-कार्यों के आधार पर महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन तो तैयार कर लेते हैं, शोध-निबन्ध तो लिख लेते हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश अप्रकाशित ही रह जाते हैं। ये भी सूचना-प्राप्ति एवं सामग्री के सत्यापन के प्रमुख स्रोत हैं।

(*iii*) **पांडुलिपियाँ**–कुछ महापुरुष, समाज सुधारक, नेता एवं विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति-प्राप्त व्यक्ति विभिन्न विषयों का गहन अध्ययन एवं तथ्य संकलन कर पांडुलिपियाँ तैयार करते हैं। वे किन्हीं कारणों से इन्हें प्रकाशित नहीं करा पाते। इनमें काफी उपयोगी सामग्री होती है। शोध हेतु इन पांडुलिपियों को

नोट

प्राप्त करना काफी कठिन होता है। कई बार इन्हें संग्रहालयों में सुरक्षित रख दिया जाता है। जहाँ इनका लाभ भी उठाया जा सकता है।

(*iv*) **अप्रकाशित लोक-गीत, लोक-संस्कृति, शिलालेख, लोकगाथाएँ**–ये द्वैतीयक तथ्य-संकलन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। मानवशास्त्रियों के द्वारा अनेक अध्ययनों में इनका काफी उपयोग किया गया है।

भारत में द्वितीयक तथ्यों के प्रमुख स्रोत

(Principal Sources of Statistics of Secondary Data in India)

भारत सरकार के विभिन्न विभाग देश के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन, शिक्षा, उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, जनसंख्या, श्रम आदि के बारे में सूचनाएँ संकलित करते हैं और उन्हें प्रकाशित करते हैं। सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन ब्रिटिश शासन के समय से ही किया जाता रहा है। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद सूचनाएँ संकलित करने का कार्य व्यवस्थित रूप से किया जाने लगा है। भारतीय संविधान की धारा 246 में भी सुरक्षा, रेलवे, बैंकिंग तथा मुद्रा, जनसंख्या एवं विदेश व्यापार सम्बन्धी तथ्यों का संग्रह करने के केन्द्र सरकार को निर्देश दिये गये हैं। राज्य सरकारें भी कृषि, पशुपालन, वन, शिक्षा, जेल, स्वास्थ्य तथा समाज-कल्याण सम्बन्धी तथ्यों का संकलन करती हैं। इस प्रकार से केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही सरकारें विभिन्न विषयों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों का संकलन एवं प्रकाशन करती हैं जो अनुसन्धान और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टि से उपयोगी होते हैं। भारत में संकलित किये जाने वाले तथ्यों को प्रमुख रूप से तीन भागों में बांट सकते हैं–केन्द्र सरकार द्वारा संकलित तथ्य, राज्य सरकारों द्वारा संकलित तथ्य एवं गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संकलित तथ्य। हम इन स्रोतों का उल्लेख करेंगे।

(अ) केन्द्रीय सरकार के विभागों द्वारा प्रकाशित तथ्य

(1) **अर्थशास्त्र तथा सांख्यिकी निदेशालय** (Directorate of Economics and Statistics)–यह निदेशालय भारत सरकार के कृषि तथा खाद्य मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्य करता है। यह निदेशालय भारत में कृषि, कृषि उपज, कृषि मजदूरी तथा कृषि विकास आदि से सम्बन्धित कृषि सांख्यिकी संकलित करता है तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं बुलेटिनों के माध्यमों से प्रकाशित करता है।

(2) **रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया** (Reserve Bank of India)–वित्त मन्त्रालय के अन्तर्गत ऋण, वित्त, बेकारी, गरीबी, मुद्रास्फीति, रहन-सहन के स्तर, प्रतिव्यक्ति आय एवं अन्य आर्थिक तथ्य संकलित किये जाते हैं और विभिन्न प्रतिवेदनों के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं।

(3) **वाणिज्य तथा उद्योग मन्त्रालय** (Ministry of Commerce and Industry)–यह मन्त्रालय भी उत्पादन और वाणिज्य तथा उद्योग से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन एवं प्रकाशन करता है। 'Indian Trade Journal' नामक साप्ताहिक पत्रिका के माध्यम से यह मन्त्रालय सूचनाओं का प्रकाशन करता है।

(4) **श्रम मन्त्रालय** (Ministry of Labour)– यह मन्त्रालय श्रमिकों की संख्या, श्रम-अधिनियम, श्रम-सुरक्षा एवं श्रम-कल्याण से सम्बन्धित सूचनाएँ 'भारतीय श्रम गजट' में प्रकाशित करता है।

(5) **रेल मन्त्रालय** (Ministry of Railway)–Monthly Railway Statistics में भारतीय रेल परिवहन सम्बन्धी सूचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं।

(6) **परिवहन विभाग** (Transport Deptt.)–यह विभाग भारतीय परिवहन सम्बन्धी तथ्यों का संकलन कर उन्हें 'Traffic Survey' में प्रकाशित करवाता है।

(7) **शिक्षा मन्त्रालय** (Ministry of Education)–यह विभाग, साक्षरता, शैक्षणिक नीति, शिक्षा का विकास आदि से सम्बन्धित तथ्यों का प्रकाशन 'Education in India' (Annual) में करता है।

(8) **सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय** (Ministry of Information and Broadcasting)–इस विभाग का प्रकाशन विभाग तथ्यों के संकलन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। इस विभाग की

नोट

स्थापना सन् 1953 में हुई थी, यह विभाग प्रतिवर्ष अंग्रेजी और हिन्दी में 'भारत' (India) नामक पत्रिका का प्रकाशन करता है। इसके अन्तर्गत भारतीय भूमि तथा जनता, भारत की जनसंख्यात्मक विशेषताओं, आर्थिक आँकड़ों, सांस्कृतिक गतिविधियों, स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज-कल्याण, जनसंचार, भूमि-सुधार, सहकारिता, सामुदायिक विकास, सिंचाई, शक्ति तथा उद्योग, परिवहन, श्रम तथा आवास आदि से सम्बन्धित नवीनतम आंकड़े प्रकाशित किये जाते हैं। इस विभाग द्वारा प्रकाशित तथ्य एवं सूचनाएँ अधिक प्रामाणिक मानी जाती हैं।

(9) **केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन** (Central Statistical Organisation)–इस संगठन की स्थापना सन् 1951 में की गयी थी। यह विभाग केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा संकलित आँकड़ों को समन्वयात्मक दृष्टि से प्रकाशित करता है। अब राज्य स्तर पर भी सांख्यिकीय विभाग को इस संगठन से सम्बद्ध कर दिया गया है। अखिल भारतीय स्तर पर आँकड़ों को संकलित करने और उन्हें प्रकाशित करने का दायित्व इसी विभाग का है। यह विभिन्न साप्ताहिक, मासिक, अर्द्ध-वार्षिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से तथ्यों का प्रकाशन करवाता है।

(10) **राष्ट्रीय निदर्शन सर्वेक्षण संगठन** (National Sample Survey Organisation)–इस विभाग की स्थापना सन् 1950 में **प्रो. महालनोवीस** की सिफारिश पर केन्द्र सरकार द्वारा की गयी। वर्तमान में यह विभाग भारतीय सांख्यिकी तथा सूचनाओं का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत बन गया है। यह विभाग पंचवर्षीय योजनाओं के लिए योजना आयोग की सहायता करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षण करके तथ्यों का संकलन करता है। इस विभाग के द्वारा देश के अर्थव्यवस्था, आवासीय स्थिति, परिवार के आकार, व्यय के स्वरूप, उपभोग के स्वरूप, ग्रामीण एवं नगरीय बेकारी, ग्रामीण आय, भूमिहीन कृषि मजदूरों आदि से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन कर उनका प्रकाशन किया जाता है।

(11) **जनगणना रिपोर्ट** (Census Report)–केन्द्रीय गृह मन्त्रालय के अधीन भारतीय रजिस्ट्रार जनरल का कार्यालय भारत में प्रति दसवें वर्ष देश में जनगणना का कार्य करवाता है। जनगणना से सम्बन्धित विभिन्न 'Census of India Report' तथा 'Census of India Papers' नामक पुस्तकों में प्रकाशित किये जाते हैं। जनगणना में देश की जनसंख्या सम्बन्धी विभिन्न तथ्य जैसे–आयु, स्त्री-पुरुषों की संख्या, साक्षरता, धर्म, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या, जन्म एवं मृत्यु-दर, वैवाहिक स्थिति, व्यवसाय, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की जनसंख्या आदि से सम्बन्धित आँकड़ों का संकलन एवं प्रकाशन किया जाता है। नवीनतम जनगणना सन् 2011 में हुई है।

10.3 शोध के साधन की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता (Authenticity and Reliability of Means of Research)

शोध के साधन चाहे कितनी ही सावधानीपूर्वक अपनाए गए हों, फिर भी यह शंका बनी ही रहती है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हैं या नहीं। इसका कारण यह है कि कई बार सूचनादाताओं द्वारा एक ही प्रश्न को भिन्न-भिन्न अर्थ में समझ लिया जाता है और ऐसी दशा में उनके उत्तर भी भिन्न-भिन्न होते हैं। यह भी संभव है कि प्रश्न के अर्थ को ही न समझा गया हो।

क्या आप जानते हैं किसी भी शोध के साधन को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय तभी ठहराया जा सकता है, जबकि सूचनादाता प्रश्नों को उन्हीं अर्थों में समझें जिन अर्थों में उनकी रचना की गई है।

शोध के साधन की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता को ज्ञात करने के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं:

1. **पुनः प्रश्नावली भेजना** (Sending again the Questionnaire)–प्रश्नावली की विश्वसनीयता को

नोट

ज्ञात करने का एक तरीका यह है कि हम कुछ समय बाद उन्हीं सूचनादाताओं के पास एक बार फिर प्रश्नावली को भेजें। यदि दोनों प्रश्नावलियों के उत्तरों में समानता हो तो प्रश्नावली विश्वसनीय मानी जाएगी और अंतर होने पर अविश्वसनीय। किंतु इस बीच सूचनादाता की सामाजिक एवं मानसिक परिस्थिति में भी कोई अंतर नहीं आना चाहिए अन्यथा उत्तर भी भिन्न प्राप्त हो सकते हैं।

2. **समान वर्ग का अध्ययन** (Study of Similar Group)–शोध की विश्वसनीयता की परख के लिए उसी प्रश्नावली को समान विशेषताओं वाले किसी अन्य समूह के पास भी भरने के लिए भेजा जा सकता है। यदि दोनों से प्राप्त होने वाले उत्तरों में समानता हो तो प्रश्नावली विश्वसनीय है अन्यथा नहीं।
3. **उप-निदर्शन का प्रयोग** (Use of Sub-sample)–शोध की विश्वसनीयता की परख के लिए एक विधि यह है कि जिस बड़े समूह का हमने अध्ययन किया है, उसी में से एक छोटा निदर्शन चुनकर उनके पास प्रश्नावली भेजी जाए। यदि दोनों के परिणामों में बहुत कुछ समानता हो तो प्रश्नावली को विश्वसनीय माना जा सकता है।
4. **अन्य अनुसंधान विधियों का प्रयोग** (Use of other Research Methods)–शोध की विश्वसनीयता को ज्ञात करने के लिए साक्षात्कार, अनुसूची एवं अवलोकन आदि विधियों द्वारा भी उन्हीं प्रश्नों के उत्तर ज्ञात किये जाएँ। यदि अन्य विधियों से भी वही उत्तर प्राप्त होते हैं तो प्रश्नावली विश्वसनीय मानी जानी चाहिए।
5. **सामान्य अनुभव** (Common Experience)–शोध की विश्वसीयता को ज्ञात करने का सबसे सरल तरीका यह है कि हम उन्हें अपने सामान्य ज्ञान के द्वारा परखें। यदि उत्तर सामान्य एवं प्रचलित ज्ञान के विपरीत है तो वे अविश्वसनीय मानी जाएँगी।

10.4 सारांश (Summary)

- तथ्य या आँकड़ा संकलन शोध प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण चरण है। जिस प्रकार ईंट, चूना-पत्थर, सीमेंट, लकड़ी, लोहे आदि के बिना किसी भवन का निर्माण नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार तथ्यों या सामग्री के बिना शोध का कार्य संपन्न नहीं किया जा सकता।
- तथ्य दो प्रकार के होते हैं–प्राथमिक तथा द्वितीयक तथ्य।
- प्राथमिक तथ्यों का संकलन प्रथम बार शोधकर्ता या उसके सहायकों द्वारा क्षेत्रीय कार्य के आधार पर किया जाता है। द्वितीयक तथ्य के अंतर्गत वे तथ्य आते हैं जिसका संकलन किसी अन्य अध्ययनकर्ता, शोधकर्ता या किसी संगठन द्वारा किया जाता है।

10.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **समंक/तथ्य (data)**–किसी घटना से संबंधित ऐसी व्यवस्थित जानकारी, जिसके आधार पर कोई निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं अथवा सिद्धांत की जाँच की जा सकती है, समंक अथवा तथ्य कहलाती है। यह जानकारी ज्ञात अथवा उपलब्ध सामग्री, आंकड़ों या सूचनाओं के रूप में होती है।
2. **शोध के साधन**–शोध के साधन चाहे कितनी ही सावधानीपूर्वक बनाये गये हों फिर भी यह शंका बनी रहती है कि इसके द्वारा प्राप्त सूचनायें विश्वसनीय हैं या नहीं।

10.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. शोध प्रक्रिया में आँकड़ा संग्रहण की आवश्यकता को बताएँ।

2. तथ्य का क्या अर्थ है?
3. द्वितीयक तथ्य के अंतर्गत कौन-कौन से साधन आते हैं?
4. प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य में अंतर बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संकलन 2. क्रियाकलापों 3. आवश्यकतानुसार।

10.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. समाजशास्त्र विश्वकोश–हरिकृष्ण रावत।
2. सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी–रवींद्रनाथ मुखर्जी।

नोट

इकाई–11: सर्वेक्षण तकनीक (Survey Techniques)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा व अर्थ (Definition and Meaning of Social Survey)

11.2 सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य, कार्य या सामाजिक सर्वेक्षणों को आयोजित करने के कारण (Objective or Roles of Social Survey or Reasons of Planning Social Surveys)

11.3 सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान में अंतर या भेद (Distinction between Social Survey and Social Research)

11.4 सारांश (Summary)

11.5 शब्दकोश (Keywords)

11.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

11.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सर्वेक्षण के अर्थ की जानकारी।
- सामाजिक सर्वेक्षण क्यों किया जाता है? इसकी जानकारी।
- सामाजिक सर्वेक्षण एवं सामाजिक अनुसंधान में अंतर जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक विज्ञानों की एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन-पद्धति है। यह सामाजिक समस्याओं के अध्ययन व समाधान का एक वैज्ञानिक साधन है। वैज्ञानिक इस अर्थ में है कि इसमें सर्वेक्षणकर्ता घटनाओं के प्रत्यक्ष संपर्क में आता है और कोई भी निदान या निष्कर्ष वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर करता है। परंतु इस संबंध में कुछ और जानने से पहले सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा व अर्थ को जान लेना आवश्यक व उचित है।

11.1 सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा व अर्थ (Definition and Meaning of Social Survey)

1. **श्रीमती यंग (Pauline V. Young)**–"साधारणतया इस समय हम यह अनुभव करते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण, सामाजिक व्याधिशास्त्रीय प्रकृति की वर्तमान एवं तात्कालिक दशाओं, जिनकी निश्चित भौगोलिक

सीमाएँ एवं निश्चित सामाजिक अर्थ व सामाजिक महत्त्व हैं, के सामाजिक सुधार तथा प्रगति के लिए एक रचनात्मक योजना के निर्माण से संबंधित हैं; इन अवस्थाओं को मापा जा सकता है एवं उन स्थितियों से तुलना की जा सकती है जिनको आदर्श रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"

2. **बोगार्डस (Bogardus)**–"मोटे तौर पर एक सामाजिक सर्वेक्षण एक विशेष क्षेत्र के लोगों के रहन-सहन तथा कार्य करने की अवस्थाओं से संबंधित तथ्यों को संकलित करना है।

3. **मोर्स (N. Morse)**–"संक्षेप में सर्वेक्षण किसी सामाजिक परिस्थिति, समस्या अथवा जनसंख्या की विशिष्ट उद्देश्यों के लिए वैज्ञानिक तथा क्रमबद्ध रूप में की गयी विवेचना की विधि मात्र है।"

4. **मार्क अब्राम्स (Mark Abrams)**–"सामाजिक सर्वेक्षण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक सुमदाय की बनावट एवं क्रियाओं के सामाजिक पक्ष के संबंध में संख्यात्मक तथ्य संकलित किये जाते हैं।"

5. **बरगैस (E.W. Burgess)**–"एक समुदाय का सर्वेक्षण, सामाजिक विकास की रचनात्मक योजना प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया गया, इसकी दशाओं एवं आवश्यकताओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक सर्वेक्षण रचनात्मक योजना के उद्देश्य से किया गया वैज्ञानिक अध्ययन है। यह अध्ययन किसी निश्चित भौगोलिक प्रदेशों में किसी समुदाय के रीति-रिवाज, रहन-सहन, वर्तमान दशाओं, सामुदायिक रचना तथा व्याधिशास्त्रीय समस्याओं से संबंधित रहता है।

11.2 सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य, कार्य या सामाजिक सर्वेक्षणों को आयोजित करने के कारण (Objective or Roles of Social Survey or Reasons of Planning Social Surveys)

प्रो० मोजर (Moser) का कहना है, "एक सर्वेक्षण जन-जीवन के किसी पक्ष पर प्रशासन-संबंधी तथ्यों को जानने की आवश्यकता के लिए अथवा किसी कार्य-कारण संबंध की खोज करने के लिए, अथवा समाजशास्त्रीय सिद्धांत के किसी पक्ष पर नवीन प्रकाश डालने के लिए आयोजित या संचालित किया जा सकता है।"

इस प्रकार सामाजिक जीवन के किसी भी पहलू से संबंधित सूचना का संकलन करना सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य हो सकता है। इतना ही नहीं, प्राप्त सूचनाओं के आधार पर किसी समस्या के समाधान हेतु किसी रचनात्मक योजना को प्रस्तुत करना भी सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य हो सकता है। वास्तव में सामाजिक सर्वेक्षण के समस्त उद्देश्यों या सामाजिक अनुसंधान में सामाजिक सर्वेक्षण के कार्य या सामाजिक सर्वेक्षण को आयोजित करने के कारणों को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. **समुदाय के सामाजिक पक्ष से संबंधित सामग्री का संकलन** (Collection of data related to social aspect of Community)–सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा समुदाय की रचना एवं क्रियाओं के सामाजिक पहलू के बारे में संख्यात्मक रूप में तथ्यों का संकलन किया जाता है।

> *नोट्स* सामाजिक सर्वेक्षण के आयोजन का प्रमुख उद्देश्य या कारण सामाजिक समस्याओं के बारे में तथ्य एकत्रित करना और उनके विश्लेषण से सूक्ष्म अध्ययन करना है।

2. **व्यावहारिक सूचना का संकलन** (Collection of practical information)–सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य कुछ विशिष्ट समस्याओं के बारे में व्यावहारिक सूचना प्रदान करना भी है। उदाहरणार्थ यदि सरकारी विभाग या कोई संस्था यह जानना चाहती है कि लोग भोजन, कपड़ा, मकान आदि पर कितना प्रतिशत व्यय

नोट

करते हैं और इसी प्रकार यदि एक व्यापारिक संस्था अपने द्वारा निर्मित वस्तुओं के उपयोग के बारे में जानना चाहती है तो इन सबके लिए सामाजिक सर्वेक्षणों के आयोजन की आवश्यकता पड़ती है। कुछ भी हो, इस दृष्टि से सामाजिक सर्वेक्षणों का उद्देश्य तत्कालीन समस्याओं के बारे में व्यावहारिक सूचना का संकलन करना है।

3. **सामाजिक सर्वेक्षण मूल रूप से श्रमिक या निम्न वर्ग की अवस्थाओं से संबंधित अध्ययन** (Originally related to the study for working class and its conditions)–सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन समाज के निम्न या श्रमिक वर्गों के अध्ययन हेतु किया जाता है क्योंकि समाज की अधिकांश समस्याएँ इन्हीं निम्न वर्गों के लोगों में पायी जाती हैं। निर्धनता, गंदगी, बेकारी, अभाव, अपराध, अशिक्षा आदि समस्याएँ अधिकतर निर्धन या श्रमिक वर्ग में पायी जाती हैं। समाज की इन्हीं समस्याओं के अध्ययन एवं समाधान से सामाजिक सर्वेक्षणों का सीधा या प्रत्यक्ष संबंध है।

क्या आप जानते हैं इन समस्याओं का अध्ययन करते हुए, समाज के सर्वसंपन्न व्यक्तियों का अध्ययन भी होता रहता है।

फिर भी यही कहा जा सकता है कि सामाजिक सर्वेक्षण मूलरूप से श्रमिक एवं निम्न वर्ग की अवस्थाओं के अध्ययन से संबंधित है।

4. **सामाजिक सिद्धांतों का सत्यापन** (Verification of social laws)–सामाजिक नियमों व सिद्धातों की परिवर्तित परिस्थितियों में सत्यापन की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। अत: बहुत-से सामाजिक सर्वेक्षण इस प्रकार पुराने सिद्धांतों तथा नियमों के सत्यापन के लिए भी किए जाते हैं।

5. **उपकल्पना की परीक्षा** (Testing of Hypothesis)–इनकी सत्यता की परख तभी संभव है जबकि वैज्ञानिक विधि पर आधारित सर्वेक्षण विधि से तथ्यों का संकलन किया जाए। इस प्रकार अनेकों सर्वेक्षणों का उद्देश्य या आयोजनों का प्रमुख कारण विभिन्न उपकल्पनाओं की परख करना होता है।

6. **कार्य-कारण संबंध का ज्ञान** (Knowledge of Cause-effect relationship)–अनेकों सामाजिक सर्वेक्षणों का उद्देश्य केवल समस्याओं का वर्णन करना ही नहीं होता, अपितु उनकी व्याख्या विवेचना करना भी होता है। इस विवेचना या व्याख्या से संबंधित घटनाओं के कारणों को खोजा जा सकता है। इस प्रकार कार्य-कारण के संबंध का ज्ञान भी अनुसंधानकर्ता को सामाजिक सर्वेक्षणों के आयोजन के लिए प्रेरित करता है।

7. **उपयोगितावादी दृष्टिकोण** (Utilitarian point of view)–सामाजिक सर्वेक्षण का अंतिम व सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी है। इस प्रकार सर्वेक्षण के बाद सामाजिक सुधार, विकास एवं समस्याओं के समाधान हेतु रचनात्मक योजना प्रस्तुत करके निश्चित कदम भी उठाए जाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से सामाजिक सर्वेक्षणों के आयोजनों के कारण या सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्य या सामाजिक सर्वेक्षण कार्यों का स्पष्टीकरण हो जाता है। इन्हीं कारणों या उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए सामाजिक सर्वेक्षणों का आयोजन किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. सर्वेक्षण जन-जीवन के किसी .... पर प्रणासन-संबंधी तथ्यों को जानने की आवश्यकता के लिए संचालित किया जा सकता है।

नोट

2. सामाजिक जीवन के किसी भी पहलू से संबंधित सूचना का .... करना सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य हो सकता है।
3. प्राप्त सूचना के आधार पर किसी समस्या के समाधान हेतु किसी .... को प्रस्तुत करना भी सामाजिक सर्वेक्षण का उद्देश्य हो सकता है।

11.3 सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान में अंतर या भेद (Distinction between Social Survey and Social Research)

बहुधा बहुत-से व्यक्ति सामाजिक सर्वेक्षण और सामाजिक अनुसंधान को एक ही समझते हैं। इस प्रकार अनेकों भ्रम उत्पन्न होने की संभावनाएँ हो जाती हैं। वस्तुतः सामाजिक सर्वेक्षण, सामाजिक अनुसंधान की एक महत्त्वपूर्ण पद्धति है, दोनों में कुछ मौलिक अंतर हैं। इन दोनों का अंतर अग्र तालिका से स्पष्ट हो जाएगा—

सामाजिक सर्वेक्षण (Social Survey)	सामाजिक अनुसंधान (Social Research)
1. सामाजिक सर्वेक्षण में वैज्ञानिक पद्धतियों एवं प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है।	1. सामाजिक अनुसंधान में वैज्ञानिक प्रणाली के समस्त पहलुओं एवं चरणों का उपयोग होता है।
2. इसमें वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया जाता है। इसलिए यह वैज्ञानिक पद्धति के अत्यंत निकट है।	2. सामाजिक अनुसंधान अपने-आप में वैज्ञानिक पद्धति है।
3. सामाजिक घटना के बारे में किसी भी प्रकार की उपकल्पना (Hypothesis) का निर्माण करना आवश्यक नहीं है।	3. इसमें सामाजिक घटना या वस्तु के बारे में उपकल्पना का निर्माण करना आवश्यक है, क्योंकि उपकल्पना के आधार पर ही अनुसंधान संभव है।
4. प्रायः सर्वेक्षण बिना उपकल्पना के ही अच्छा होता है। उपकल्पना तो इसका परिणाम होती है।	4. इसका मुख्य उद्देश्य किसी बनी हुई उपकल्पना की परीक्षा करना होता है।
5. सामाजिक अनुसंधान के लिए सर्वेक्षण, उपकल्पनाओं की सूची प्रस्तुत करता है।	5. सर्वेक्षण द्वारा प्रस्तुत उपकल्पनाओं की परीक्षा सामाजिक अनुसंधान द्वारा होती है।
6. यह विशिष्ट समस्याओं से संबंधित है, जैसे देहली में गंदी बस्तियों का अध्ययन।	6. इसका संबंध सामान्य तथा अमूर्त समस्याओं से होता है, जैसे अपराधी वृत्ति में परिवार का योगदान।
7. सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् ऐसे नियमों या सिद्धांतों का निर्माण नहीं किया जाता है, जिनका कि समस्त घटनाओं पर सामान्यीकरण (Generalisation) किया जा सके। इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण एक सीमित क्षेत्र से संबंधित है।	7. सामाजिक घटनाओं एवं तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् ऐसे नियमों या सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है। यदि प्राप्त तथ्यों से उपकल्पना की पुष्टि हो जाती है तो उसे सामान्य सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है एवं उस प्रकार की समस्त घटनाओं पर उसका सामान्यीकरण कर लिया। इस प्रकार सामाजिक अनुसंधान का संबंध संपूर्ण जगत से है।

नोट

8. प्राप्त तथ्यों के आधार पर सामाजिक सुधार, सामाजिक उपचार एवं समस्याओं के समाधान की योजना का निर्माण किया जाता है।	8. इसका सामाजिक सुधार एवं समस्याओं के समाधान अथवा सामाजिक कल्याण से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है।
9. इसका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान में वृद्धि करना नहीं है वरन् प्राप्त ज्ञान को रचनात्मक योजना में प्रयुक्त करना है।	9. इसका प्रमुख उद्देश्य ज्ञान में निरंतर वृद्धि करना है। उपयोगिता से इसका कोई संबंध नहीं है।
10. इसका संबंध अविलंब समस्याओं एवं आवश्यकताओं के अविलंब नियंत्रण व पूर्ति से है। अत: सुधार एवं समाधान के लिए अविलंब कदम उठाना आवश्यक है।	10. सामाजिक अनुसंधान दूर की सोचता है। अविलंब उपायों से इसका कोई संबंध नहीं है।

11.4 सारांश (Summary)

- बोगार्डस के अनुसार "एक सामाजिक सर्वेक्षण एक विशेष क्षेत्र के लोगों के रहन-सहन तथा कार्य करने की अवस्थाओं से संबंधित तथ्यों को संकलित करना है।"
- सामाजिक सर्वेक्षण का आयोजन मुख्यत: निम्न या श्रमिक वर्गों के अध्ययन हेतु किया जाता है क्योंकि समाज की अधिकांश समस्याएँ इन्हीं निम्न वर्गों में पाई जाती हैं।

11.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामाजिक सर्वेक्षण (Social Survey)**–किसी विशिष्ट भौगोलिक, सांस्कृतिक अथवा प्रशासनिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों के सामाजिक जीवन से संबंधित तथ्यों के व्यवस्थित संकलन की विधि को सामाजिक सर्वेक्षण कहते हैं।
2. **उपयोगितावादी दृष्टिकोण (Utilitarian Point of View)**–विकास एवं समस्याओं के समाधान हेतु रचनात्मक योजना प्रस्तुत करके निश्चित कदम भी उठाए जा सकते हैं।

11.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक सर्वेक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. सामाजिक सर्वेक्षण के उद्देश्यों का वर्णन करें?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. पक्ष 2. संकलन 3. रचनात्मक योजना।

11.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध की पद्धतियाँ–संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–12: निदर्शन
(Sampling)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 निदर्शन (Sampling)

12.2 निदर्शन के प्रकार (Types of Sampling)

12.3 सारांश (Summary)

12.4 शब्दकोश (Keywords)

12.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

12.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- निदर्शन की उपयोगिता की जानकारी।
- निदर्शन चुनाव प्रणाली या विधियों की जानकारी।
- निदर्शन के प्रकारों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

समग्र में से कुछ इकाइयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप में चुनना निदर्शन कहलाता है। निदर्शन का प्रयोग अति प्राचीन काल से होता रहा है। दैनिक जीवन में भी हम निदर्शन विधि का प्रयोग खूब करते हैं। गृहणियाँ चावल पके हैं या नहीं, यह जानने के लिए कुछ चावलों का परीक्षण करके देखती हैं। इसी प्रकार से बाजार से गेहूँ, चावल एवं दाल आदि खरीदते समय बोरियों में से मुट्ठीभर दाने लेकर उनकी जाँच करते हैं, अथवा आम खरीदते समय टोकरे में से आम चखकर सभी आमों के बारे में निर्णय लेते हैं। केवल एक बूंद रक्त की परीक्षा कर डॉक्टर रोगी के रक्त के बारे में निष्कर्ष निकाल लेता है। व्यापारी लोग गुड़, शक्कर, मिर्च, धनियाँ, रुई, कपड़ा एवं हजारों चीजों की परख के लिए ढेर में से कुछ नमूना लेकर निष्कर्ष निकालते हैं और इस निष्कर्ष को सारे ढेर पर लागू करते हैं। इस प्रकार निदर्शन का प्रयोग दैनिक जीवन में आम आदमी द्वारा व्यापक रूप से किया जाता है।

12.1 निदर्शन (Sampling)

निदर्शन (Sample) सामाजिक अनुसंधान एवं सर्वेक्षण की आधारशिला है। किसी भी प्रकार का अध्ययन करने से पूर्व अनुसंधानकर्ता को यह तय करना होता है कि वह समूह के सभी सदस्यों से संपर्क स्थापित करके तथ्यों का संकलन करेगा अथवा उनमें से कुछ सदस्यों को प्रतिनिधि के रूप में चुनकर उनका अध्ययन करेगा। इस प्रकार क्षेत्र

नोट

से अनुसंधान संबंधी आँकड़े दो प्रकार से एकत्रित किए जा सकते हैं–(1) संगणना विधि द्वारा, तथा (2) निदर्शन विधि द्वारा।

(1) **संगणना विधि** (Census Method) में अनुसंधानकर्ता समग्र (Universe) अर्थात् संपूर्ण क्षेत्र का अध्ययन करता है। वह उस क्षेत्र की प्रत्येक इकाई अथवा प्रत्येक सदस्य से संपर्क स्थापित कर जानकारी प्राप्त करता है। हमारे देश में प्रति दस वर्ष बाद की जाने वाली जनगणना में इसी विधि का प्रयोग किया जाता है।

(2) **निदर्शन विधि** (Sampling Method) में समग्र में से कुछ इकाइयों को प्रतिनिधि के रूप में चुन लिया जाता है और उनके संबंध में आवश्यक जानकारी प्राप्त की जाती है। उदाहरण के लिए, यदि हम दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों के कश्मीर समस्या पर विचार जानना चाहते हैं तो संगणना विधि में हमें दिल्ली विश्वविद्यालय के सभी छात्रों से संपर्क स्थापित कर सूचनाएँ संकलित करनी होंगी, जबकि निदर्शन पद्धति में कुछ छात्रों को प्रतिनिधि के रूप में चुनकर उन्हीं का अध्ययन किया जायेगा। निदर्शन पद्धति का उल्लेख करने से पूर्व यहाँ संगणना पद्धति पर विचार कर लेना उपयुक्त रहेगा।

स्टीफन का मत है कि नियमित जनगणनाओं का आयोजन करने से पूर्व सदैव ही निदर्शन का प्रयोग किया जाता रहा है। सन् 1900 से पूर्व सामाजिक अनुसंधान में निदर्शन का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है। **बाउले** ने लंदन में सर्वप्रथम घरों का अध्ययन करने के लिए दैव निदर्शन पद्धति का प्रयोग किया था। आज तो अनुसंधान एवं सर्वेक्षण में निदर्शन का प्रयोग एक आवश्यक चरण बन गया है।

निदर्शन की परिभाषा एवं अर्थ (Definition and Meaning of Sampling)

विभिन्न विद्वानों ने निदर्शन को इस प्रकार से परिभाषित किया है–

(1) **गुडे** तथा **हाट** के अनुसार, "एक निदर्शन जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है, कि एक विस्तृत समूह का एक लघुत्तर प्रतिनिधि है।"

(2) **पी. वी. यंग** के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन संपूर्ण समूह अथवा योग का एक लघुकृत आकार का चित्र है जिससे कि निदर्शन लिया गया है।"

एक श्रेष्ठ निदर्शन की आवश्यक विशेषताएँ (Essential Characteristics of a Representative Sample)

निदर्शन द्वारा सामाजिक घटनाओं के बारे में हमारे निष्कर्ष कितने यथार्थ एवं वैज्ञानिक होंगे, यह बात निर्भर करती है–हमारे निदर्शन की उत्तमता एवं समग्र की प्रतिनिधित्वपूर्णता पर। अतः अध्ययन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि हमारे निदर्शन में निम्नांकित विशेषताओं का समावेश हो।

(1) **समग्र का प्रतिनिधित्व** (Representation of Universe)–एक श्रेष्ठ निदर्शन की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि वह समग्र का प्रतिनिधित्व करे। ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब समग्र की प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हो। **लुण्डबर्ग** का मत है कि प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन दो बातों पर निर्भर करता है–(*i*) अध्ययन तथ्यों में कितनी मात्रा में समानता पायी जाती है तथा (*ii*) निदर्शन के चुनाव में किस प्रणाली को अपनाया गया है।

नोट्स श्रेष्ठ निदर्शन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि समग्र की इकाइयों में एकरूपता लायी जाए तथा निदर्शन का चुनाव इस प्रकार किया जाए कि प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुने जाने की स्वतंत्रता एवं समान अवसर प्राप्त हो।

(2) **पर्याप्त आकार** (Adequate Size)–श्रेष्ठ निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन की इकाइयों की

नोट

संख्या पर्याप्त हो। निदर्शन में जितनी अधिक इकाइयाँ होंगी, परिणामों में उतनी ही अधिक परिशुद्धता आने की संभावना रहेगी, यद्यपि सदैव ही यह आवश्यक नहीं है कि निदर्शन का आकार निदर्शन के प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की गारण्टी देता हो। फिर भी यदि हमें दस हजार छात्रों का अध्ययन करना हो और उनमें से केवल दस छात्रों को ही हम प्रतिनिधि निदर्शन के रूप में चुनते हैं तो यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे सभी छात्रों की विशेषताओं का उचित प्रतिनिधित्व करेंगे। निदर्शन का आकार ही नहीं, वरन् इसके चुनाव का तरीका भी उपयुक्त होना चाहिए। इस संदर्भ में **पी. वी. यंग** ने लिखा है, "निदर्शन का आकार उसकी प्रतिनिधित्वता का आवश्यक बीमा नहीं है। सापेक्षिक रूप में उचित प्रकार से चुने गये छोटे निदर्शन अनुपयुक्त तरीकों से चुने हुए बड़े निदर्शनों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय हो सकते हैं।"

(3) **निष्पक्षता** (Free from Bias)—एक श्रेष्ठ निदर्शन को पक्षपात एवं मिथ्या-सुझाव से स्वतंत्र होना चाहिए अन्यथा वह प्रतिनिधित्वपूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता। निदर्शन का चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रहे कि वह अनुसंधानकर्ता की रुचि, स्वार्थ, सुविधा एवं स्वेच्छा पर आधारित न हो, न ही उसमें पूर्व-धारणा या अनुसंधानकर्ता की असावधानी का कोई प्रभाव हो।

(4) **साधनों के अनुरूप** (According to Resources)—एक प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन वह है जो अनुसंधानकर्ता के पास उपलब्ध साधनों के अनुरूप हो। साधनों को ध्यान में रखकर ही निदर्शन की संख्या, प्रकार और चुनाव-विधि का निश्चय किया जाना चाहिए। साधनों के अनुरूप निदर्शन न होने पर उसमें पक्षपात आने की संभावना रहती है।

(5) **उद्देश्यों के अनुरूप** (According to the Aims)—एक श्रेष्ठ निदर्शन वह है जो अनुसंधान के उद्देश्यों के अनुकूल हो। उदाहरण के लिए, यदि हम ब्यावर नगर के बीड़ी श्रमिकों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना चाहते हैं और हमारे निदर्शन में हमने ऐसे श्रमिकों का चयन किया है जो बीड़ी बांधने का कार्य नहीं करते हैं तो हमारा निदर्शन व्यर्थ हो जायेगा। अत: उत्तम निदर्शन के लिए यह आवश्यक है कि वह अनुसंधान उद्देश्य के अनुरूप हो।

(6) **सामान्य ज्ञान तथा तर्क पर आधारित** (Based on General Knowledge and Logic)—एक उत्तम निदर्शन वह है जो सामान्य ज्ञान एवं तर्क पर आधारित हो। निदर्शन को तर्क की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। केवल सूत्रों और नियमों का अंधानुकरण करने से ही आदर्श निदर्शन का चुनाव नहीं किया जा सकता। नियमों एवं सूत्रों के साथ-साथ निदर्शन के चुनाव में अनुसंधानकर्ता को तर्क एवं सामान्य ज्ञान का भी प्रयोग करना चाहिए।

(7) **व्यावहारिक अनुभवों पर आधारित** (Based on Practical Experiences)—एक उत्तम निदर्शन का चयन करने के लिए हमें अन्य अनुभवी अध्ययनकर्ताओं के अनुभवों का भी उपयोग करना चाहिए। यदि जिस क्षेत्र का हम अध्ययन कर रहे हैं, उसका पूर्व में भी किसी ने अध्ययन किया है तो उससे संपर्क कर उसके अनुभवों का लाभ उठाना चाहिए। इसी प्रकार से इसी प्रकृति के यदि कोई अन्य अनुसंधान किये गये हों तो उनके प्रतिवेदनों एवं निदर्शन-आधारों का लाभ भी उठाया जा सकता है।

(8) **स्वतंत्रता** (Independence)—समग्र की सभी इकाइयाँ आपस में स्वतंत्र होनी चाहिए अर्थात् निदर्शन में किसी इकाई का सम्मिलित होना किसी अन्य इकाई के सम्मिलित होने पर निर्भर न हो। दूसरे शब्दों में, समग्र की प्रत्येक इकाई को निदर्शन में चुने जाने का स्वतंत्र एवं समान अवसर प्राप्त होना चाहिए।

निदर्शन चुनाव प्रणाली (विधि) (Procedure of Sample Selection)

निदर्शन का चुनाव भी उत्तम निदर्शन का एक पक्ष है। यह एक तकनीकी प्रक्रिया है जिसके लिए अनुभवी एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। निदर्शन के चुनाव में हमें निम्नांकित प्रक्रिया से गुजरना होता है।

समग्र का निर्धारण (Determination of Universe)—जिस समूह या क्षेत्र से निदर्शन का चुनाव किया जाता है, उसे समग्र कहते हैं। निदर्शन निकालने का सर्वप्रथम चरण है—समग्र को तय करना। समग्र दो प्रकार के हो सकते हैं—**निश्चित** और **अनिश्चित।** निश्चित समग्र की इकाइयों की संख्या एवं गाँव तथा नगर की जनसंख्या एवं भौगोलिक सीमा तय होती है। उदाहरण के लिए, एक महाविद्यालय के छात्रों की संख्या एवं गाँव तथा नगर की जनसंख्या और भौगोलिक सीमा निश्चित होती है। ऐसे समग्र में इकाइयों को हम निश्चित रूप से जान सकते हैं लेकिन कई बार समग्र की इकाइयाँ अनिश्चित होती हैं। उदाहरण के लिए, लक्स साबुन का प्रयोग करने वाले एवं

नोट

सरिता के पाठकों की संख्या अनिश्चित है। अनिश्चित समग्र की भौगोलिक सीमा भी नहीं होती। ऐसे समग्र की अनिश्चितता का कारण इसकी निरंतर परिवर्तनशीलता है। अत: निदर्शन के चुनाव से पूर्व हमें समग्र का निर्धारण कर लेना चाहिए। हमारा समग्र कोई भी भौगोलिक इकाई, गाँव, नगर, संस्था, समुदाय एवं सामाजिक घटना हो सकता है।

निदर्शन के आधार (Bases of Sampling)

प्रश्न यह उठता है कि निदर्शन में थोड़ी-सी इकाइयों को बहुत बड़े समूह का प्रतिनिधि कैसे मान लिया जाता है, इसके मूल आधार निम्नांकित हैं–

(1) **समग्र की सजातीयता** (Homogeneity of Universe)–ऊपरी तौर पर हमें व्यक्तियों एवं तथ्यों में बहुत अधिक असमानताएँ दिखाई देती हैं, यहाँ तक कि कारखाने में बनने वाली कोई दो वस्तुएँ भी पूर्णतया समान नहीं होतीं और दो जुड़वाँ भाई भी समान नहीं होते, फिर भी यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें या देखें तो ज्ञात होगा कि ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली इस विविधता में भी अन्तर्निहित एकता अथवा समानता है। उदाहरण के लिए, सभी मनुष्यों की शारीरिक बनावट में ऊपरी तौर पर अनेक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, फिर भी शारीरिक दृष्टि से उनमें कई समानताएँ विद्यमान हैं। यही कारण है कि निदर्शन को समग्र का प्रतिनिधि मान लिया जाता है। इस संदर्भ में **लुण्डबर्ग** ने लिखा है, "यदि तथ्यों में अत्यधिक एकरूपता पाई जाती है अर्थात् संपूर्ण तथ्यों की विभिन्न इकाइयों में अंतर बहुत कम है तो संपूर्ण में से कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करेगी।" इस प्रकार निदर्शन-विधि इस मान्यता पर आधारित है कि विविधताओं में भी समानताएँ अन्तर्निहित होती हैं, जिन्हें सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में खोजा जा सकता है।

(2) **प्रतिनिधित्वपूर्ण चुनाव की संभावना** (Possibility of Representative Selection)–निदर्शन इस मान्यता पर आधारित है कि संपूर्ण समूह में से थोड़ी-सी इकाइयों का चयन इस प्रकार किया जा सकता है कि वे समग्र का प्रतिनिधित्व कर सकें, किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि निदर्शन की इकाइयों में वे सभी विशेषताएँ हों जो मूल समग्र में हों।

(3) **उचित परिशुद्धता** (Adequate Accuracy)–कोई भी निदर्शन शत-प्रतिशत रूप से समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता फिर भी पर्याप्त मात्रा में परिशुद्धता प्राप्त की जा सकती है। हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि निदर्शन में इकाइयों की संख्या पर्याप्त हो, ताकि वह प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सके और उनके अध्ययन से निकाले गये निष्कर्ष वास्तविक स्थिति का सही चित्रण कर सकें।

(4) **निदर्शन की इकाई का निर्धारण** (Determination of Sampling Unit)–समग्र के निर्धारण के बाद दूसरा चरण निदर्शन की इकाइयों को तय करना है। हमें यह तय करना होता है कि हमारे निदर्शन की इकाई क्या होगी? यह इकाई व्यक्ति, संस्था, परिवार, समूह, व्यवसाय और निवास क्षेत्र आदि कुछ भी हो सकती है। निदर्शन की इकाइयाँ चार प्रकार की होती हैं–

(*i*) भौगोलिक इकाई, जैसे–एक राज्य, जिला, नगर, गाँव एवं वार्ड आदि।

(*ii*) भवन संबंधी इकाई–जैसे मकान, फ्लैट, कमरा, क्वार्टर आदि।

(*iii*) समूह संबंधी इकाई–जैसे परिवार, स्कूल, क्लब, चर्च एवं समिति आदि।

(*iv*) व्यक्तिगत इकाई–जैसे व्यक्ति, स्त्री, पुरुष, श्रमिक, छात्र, अध्यापक एवं कृषक आदि।

इकाई सदैव स्पष्ट, भ्रमरहित निश्चित एवं विषय के अनुरूप होनी चाहिए जो अध्ययनकर्ता को आसानी से उपलब्ध हो जाए।

(5) **स्रोत सूची** (Source List)–वह सूची जिसमें समग्र की समस्त इकाइयों के नाम होते हैं, स्रोत सूची कहलाती है। यह स्रोत सूची तैयार भी मिल सकती है और तैयार करायी भी जा सकती है। **पार्टेन** ने स्रोत-सूची प्राप्त करने के कई ठिकानों का उल्लेख किया है–जैसे जनगणना रिपोर्ट, टेलीफोन डायरेक्ट्री, वेतन-वितरण सूची एवं करदाता, विद्यार्थियों, अध्यापकों, मकान मालिकों की सूचियाँ विभिन्न दफ्तरों से प्राप्त की जा सकती हैं। एक अच्छी स्रोत सूची के लिए यह आवश्यक है कि वह पूर्ण, नवीनतम, वैध, विश्वसनीय, विषयानुरूप एवं सरलता से प्राप्त की जाने वाली होनी चाहिए।

(6) **निदर्शन का आकार निर्धारण** (Determination of Sample Size)–निदर्शन प्रक्रिया का चौथा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण है। निदर्शन का आकार बहुत छोटा या बहुत बड़ा नहीं, वरन् समग्र की संख्या एवं प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त होना चाहिए। निदर्शन के आकार का परिशुद्धता की मात्रा, समय, लागत तथा संगठन से सीधा संबंध है। निदर्शन का आकार क्या हो, यह कई बातों पर निर्भर करता है, जैसे समग्र की सजातीयता एवं विषमता, अध्ययन की प्रकृति, अध्ययन की विधि, वर्गों की संख्या, समय एवं धन की उपलब्धि, परिशुद्धता की मात्रा, विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता आदि।

(7) **निदर्शन पद्धति का चुनाव** (Selection of Sampling Method)–निदर्शन प्रक्रिया का अंतिम चरण समग्र से निदर्शन निकालने की विधि का चयन करना है। निदर्शन पद्धति का चुनाव अध्ययन की समस्या, समग्र की प्रकृति, धन, समय एवं कार्यकर्ताओं की उपलब्धि एवं साधनों पर निर्भर करता है। निदर्शन पद्धति ऐसी हो जिसका प्रयोग आसानी से किया जा सके तथा निदर्शन निकालने में पक्षपात भी न आए। दैव निदर्शन, सविचार निदर्शन, स्तरित अथवा निर्दिष्टांश निदर्शन विधियों में से किस विधि का चुनाव किया जायेगा, यह निर्णय अनुसंधानकर्ता को अपनी सूझबूझ एवं अनुसंधान संबंधी अपने अनुभव के आधार पर लेना होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. व्यक्तियों और तथ्यों में बहुत अधिक .... दिखाई देती है, जैसे कारखाने में बनने वाली दो वस्तुएँ समान नहीं होती, दो जुड़वे भाई भी समान नहीं होते।
2. संपूर्ण तथ्यों की विभिन्न इकाइयों में अंतर बहुत कम हो तो संपूर्ण में कुछ या कोई इकाई समग्र का उचित .... करेगी।
3. कोई भी निदर्शन शत-प्रतिशत रूप से समग्र का .... नहीं कर सकता फिर भी पर्याप्त मात्रा में परिशुद्धता प्राप्त की जा सकती है।

12.2 निदर्शन के प्रकार (Types of Sampling)

विभिन्न सांख्यिकीविदों एवं समाज-वैज्ञानिकों ने निदर्शन के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है। हम अपने अध्ययन में निदर्शन के किस प्रकार का चयन करेंगे, यह समग्र की प्रकृति, समय, धन, श्रम एवं अनुभव की उपलब्धता आदि कई बातों पर निर्भर है। निदर्शन के चुनाव की पद्धतियों अथवा प्रकार में दैव निदर्शन, सविचार निदर्शन, वर्गीकृत निदर्शन, बहुस्तरीय निदर्शन, क्षेत्रीय निदर्शन, सुविधाजनक निदर्शन, स्वयं निर्वाचित निदर्शन आदि प्रमुख हैं। हम निदर्शन के विभिन्न प्रकारों एवं पद्धतियों का यहाँ उल्लेख करेंगे।

1. दैव निदर्शन (Random Sampling)

दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने के समान अवसर होते हैं। इसमें समग्र की इकाइयों के व्यक्तिगत महत्त्व को समाप्त कर उसके स्थान पर 'संभावना (Possibility)' को प्रतिष्ठित कर दिया जाता है, जिसमें समग्र की सभी इकाइयों के निदर्शन में चुने जाने की समान संभावना होती है। निदर्शन में आने के लिए प्रत्येक इकाई को स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाती है। इस विधि में अनुसंधानकर्ता का झुकाव किसी इकाई विशेष के चुनाव की तरफ नहीं होता, वरन् चुनाव की संपूर्ण प्रक्रिया दैव एवं संयोग पर छोड़ दी जाती है। इसलिए ही इसे दैव निदर्शन कहते हैं। दैव निदर्शन को विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

पार्टेन के अनुसार, "दैव निदर्शन विधि का उपयोग उस समय माना जाता है जब चुनाव की विधि ऐसी हो कि समग्र की प्रत्येक इकाई तथा तत्व के चुने जाने का समान अवसर हो।"

हार्पर के अनुसार, "एक दैव निदर्शन वह निदर्शन है जिसका चयन इस प्रकार हुआ हो कि समग्र की प्रत्येक इकाई को सम्मिलित होने का समान अवसर प्राप्त हुआ हो।"

नोट

गुडे एवं **हाट** के अनुसार, "दैव निदर्शन में समग्र की इकाइयों को इस प्रकार क्रमबद्ध किया जाता है कि चयन प्रक्रिया उस समग्र की प्रत्येक इकाई को चुनाव की समान संभावना प्रदान करती है।"

यूल तथा **केण्डल** के अनुसार, "जब समग्र की प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने के समान अवसर हों तब समग्र से इकाई का चयन दैव निदर्शन है।"

फ्रैंकयेटस के शब्दों में, "दैव निदर्शन वही होगा जिसमें समग्र की प्रत्येक इकाई को निदर्शन में सम्मिलित होने का समान अवसर हो।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि दैव निदर्शन असावधानीपूर्ण, अव्यवस्थित तथा लापरवाहीपूर्ण एवं आकस्मिक नहीं होता।

दैव निदर्शन चुनने की प्रणालिया (Methods of selecting Random Sample)–दैव निदर्शन में निदर्शन चुनने के कई तरीके हो सकते हैं, उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं–

(क) लॉटरी प्रणाली (Lottery Method)–इस प्रणाली के अंतर्गत वही तरीका अपनाया जाता है जो कि अन्य प्रकार के लॉटरी निकालने में प्रयोग में लाया जाता है। समग्र की समस्त इकाइयों के नाम अथवा नंबर कागज की चिटों (chits) या छोटे चौकोर कार्डों पर लिख लिए जाते हैं और फिर उन्हें किसी बर्तन, बक्स या झोले में डालकर अच्छी तरह से हिला दिया जाता है ताकि वे खूब अव्यवस्थित हो जाएँ। फिर आँख बंद करके उतने कार्ड या चिट निकाल लिए जाते हैं जितनी इकाइयाँ निदर्शन में लेनी हैं। जो भी इकाइयाँ इस प्रकार दैवयोग से चुनाव में आ जाते हैं, उनका अध्ययन किया जाता है।

(ख) कार्ड अथवा टिकट प्रणाली (Card of Ticket Method)–इस प्रणाली में सबसे पहले एक ही आकार रंग व मोटाई के कार्डों अथवा टिकटों पर समग्र (universe) की समस्त इकाइयों के नाम अथवा नंबर अथवा अन्य कोई प्रतीक अंकित कर दिए जाते हैं और सबको मिलाकर एक गोल ड्रम में भर दिया जाता है। ड्रम को पचास बार बहुत तेजी से घुमाकर सभी कार्ड़ों को खूब हिला-मिला लिया जाता है। तत्पश्चात् एक कार्ड अनायास ही निकाल लिया जाता है। फिर ड्रम को पचास बार हिलाया जाता है और फिर दूसरा कार्ड उठा लिया जाता है। इस प्रकार की क्रिया उतनी बार की जाती है जितने निदर्शनों का चुनाव करना है। जो कार्ड इस प्रकार चुनाव में आ जाते हैं उन्हीं से संबंधित इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। लॉटरी प्रणाली तथा कार्ड प्रणाली में यही अंतर है कि लॉटरी प्रणाली में स्वयं अनुसंधानकर्ता आँखों को बंद करके कार्ड निकालता है, लेकिन कार्ड प्रणाली में कोई अन्य व्यक्ति भी आँखें खुली रखकर कार्ड निकाल सकता है।

(ग) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Marking Method)–जब समग्र (universe) की सभी इकाइयाँ किसी विशेष ढंग, काल, स्थान, आदि के आधार पर व्यवस्थित होती हैं तो नियमित अंकन प्रणाली के द्वारा निदर्शनों का चुनाव सरलता से हो सकता है। इस प्रणाली में सर्वप्रथम समग्र की सभी इकाइयों को क्रमसंख्या डालते हुए एक सूची बना ली जाती है। इसके बाद यह निश्चित किया जाता है कि उन इकाइयों में से हमें कितनी इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुनना है फिर सूची को सामने रखकर किसी भी एक संख्या से आरंभ करके प्रत्येक पाँचवाँ या प्रत्येक दसवाँ अथवा कोई भी प्रत्येक अंक के अनुसार नियमित रूप से अगली संख्याएँ चुनी जाती हैं। उदाहरणार्थ, यदि हमें 100 विद्यार्थियों के एक समग्र में से 10 विद्यार्थी चुनने हैं तो पहले हमें उन 100 विद्यार्थियों की एक सूची बनानी होगी। तत्पश्चात् चूँकि हमें 10 विद्यार्थी चुनने हैं अतः हर दसवाँ विद्यार्थी हमारे चुनाव में आता जाएगा। यह चुनाव हम किसी भी सूची में अंकित किसी भी क्रमसंख्या से आरंभ कर सकते हैं। मान लीजिए हमने क्रमसंख्या 5 से चुनाव आरंभ किया तो 5, 15, 25, 35, 45, 55, 65, 75, 85 तथा 95 संख्याओं वाले विद्यार्थी निदर्शन के रूप में चुने जाएंगे।

(द) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Marking Method)–इस प्रणाली में भी समग्र की समस्त इकाइयों की एक सूची बनाई जाती है और उस सूची में से प्रथम तथा अंतिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की सूची में अनुसंधानकर्त्ता अनियमित ढंग से विभिन्न इकाइयों में उतने ही निशान लगाता चलता जाता है जितने कि

निदर्शन उसे चुनने हैं। इसमें अनुसंधानकर्त्ता से यह आशा की जाती है कि वह प्रथम तथा अंतिम अंक को छोड़कर बिना पक्षपात के अनियमित ढंग से निदर्शनों को चुन लेगा, पर इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

(य) टिप्पेट प्रणाली (Tippet Method)—प्रोफेसर टिप्पेट (L.H.C. Tippet) ने चार अंकों वाली 10400 संख्याओं की एक सूची बनाई थी। उन संख्याओं को दैव निदर्शन-पद्धति में प्रयोग करने के उद्देश्य से सुनिश्चित कर दिया गया है। ये संख्याएँ बिना किसी क्रम के कई पृष्ठों पर लिखी गई है। जब किसी अनुसंधानकर्त्ता को अपने अध्ययन के लिए निदर्शन चुनना होता है तो वह प्रो. टिप्पेट द्वारा बनाई गई सूची के किसी भी पृष्ठ से लगातार उतनी ही संख्याएँ ले लेता है जितनी संख्या में उसे निदर्शन चुनना है। बीच में कोई संख्या नहीं छोड़ी जानी चाहिए। टिप्पेट द्वारा दिए गए अंकों में से प्रथम 20 संख्याएँ इस प्रकार हैं—

2952	6641	3392	9792
4167	9524	1545	1396
2370	7483	3408	2762
0560	5246	1112	6107
2754	9143	1405	9025

इस प्रणाली से निदर्शन चुनने के तरीके को एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। यदि हमें 100 धर्मिकों के एक समग्र में से 10 श्रमिक निदर्शन में चुनने हैं तो हम पहले समग्र की सभी इकाइयों को किसी भी क्रम से व्यवस्थित करके उनकी एक सूची बना लेंगे। फिर टिप्पेट की सूची के किसी भी स्थान से लगातार 10 संख्याएँ ले लेंगे और उस क्रमसंख्या के श्रमिकों को निदर्शन के रूप में चुन लिया जाएगा। यदि इन 10 श्रमिकों का निदर्शन भी टिप्पेट की उपरोक्त संख्याओं के आधार पर चुना जाएगा तो वे इस प्रकार होंगी—52, 67, 70, 60, 54, 41, 24, 33, 46 और 4.3। समग्र की सूची में से जिन-जिन इकाइयों की क्रमसंख्या 52, 67, 70 आदि है उन्हें 10 इकाइयों को निदर्शन में स्थान दिया जाएगा। चूँकि हमारा समग्र केवल 100 श्रमिकों का है इसलिए श्री टिप्पेट द्वारा उल्लेखित संख्या में से 100 के अंदर वाले अंकों को ही हम चुनेंगे। जो संख्या एक बार आ जाती है वह दुबारा नहीं ली जाती। टिप्पेट प्रणाली अधिक वैज्ञानिक मानी जाती है इसीलिए इसका प्रयोग अधिक होता है।

(र) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)—इस प्रणाली का प्रयोग क्षेत्रीय चुनाव में किया जाता है अर्थात् किसी विशाल क्षेत्र में से कुछ विभिन्न क्षेत्रों को निदर्शन के रूप में चुनने के लिए ग्रिड पद्धति उपयोगी सिद्ध होती हैं। इस प्रणाली में सर्वप्रथम उस विशाल क्षेत्र के लिए भौगोलिक मानचित्र या तो तैयार कराया जाता है या कहीं से प्राप्त होता है। उस मानचित्र पर ग्रिड प्लेट, जो सेल्यूलाइड या किसी अन्य पारदर्शक पदार्थ की बनी होती है, रख दी जाती है। इस प्लेट में वर्गाकार खाने कटे होते हैं जिस पर नंबर लिखे होते हैं। यह पहले ही तय कर लिया जाता है कि नंबरों को निदर्शन में लेना है। नंबरों का निर्णय आकस्मिक किया जाता है। इस प्रकार मानचित्र के जिन भागों पर निर्धारित नंबरों के कटे हुए वर्ग आते हैं उन पर निशान लगा लिया जाता है। ये भाग ही या क्षेत्र ही निदर्शन की इकाइयाँ होती हैं।

(ल) कोटा निदर्शन (Quota Sampling)—इस प्रणाली के अंतर्गत सबसे पहले समग्र को कई वर्गों में विभाजित कर लिया जाता है। इसके पश्चात् यह निश्चित कर लिया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में से कितनी इकाइयाँ चुननी हैं, फिर प्रत्येक वर्ग में से अनुसंधानकर्त्ता उतनी ही इकाइयाँ अपनी इच्छा से स्वतंत्रतापूर्वक छाँट लेते हैं। इस प्रकार चुनी गई इकाइयों को निदर्शन मान लिया जाता है। चूँकि इस पद्धति में इकाइयों को चुनने की स्वतंत्रता अनुसंधानकर्त्ता को दी जाती है इस कारण इसमें पक्षपात की संभावना अधिक होती है।

दैव निदर्शन के गुण या लाभ (Merits of Random Sampling)—दैव निदर्शन के अपने कुछ गुण हैं जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं—

नोट

(क) दैव निदर्शन में निष्पक्षता का गुण होता है। इसमें किसी प्रकार का मिथ्या-झुकाव या पक्षपात की संभावना नहीं रहती क्योंकि निदर्शन के चुनाव में किसी भी इकाई को प्राथमिकता या प्रमुखता या अधिमान्यता नहीं दी जाती और प्रत्येक इकाई के निदर्शन में चुने जाने की समान संभावना होती हैं।

(ख) दैव निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें प्रत्येक इकाई को चुने जाने का समान अवसर होने के कारण दैव निदर्शन की इकाइयों में समग्र के अधिकाधिक लक्षण विद्यमान होते हैं।

(ग) दैव निदर्शन, निदर्शन की सबसे सरल पद्धति है जिसमें किसी जटिल प्रक्रिया अथवा गूढ़ नियमों का पालन नहीं करना पड़ता है।

(घ) दैव निदर्शन में संभावित अशुद्धता का पता लगाया जा सकता है। यदि निदर्शन पूर्णतया दैव निदर्शन-प्रणाली द्वारा चुना गया है तो गणितीय विधियों द्वारा इस बात का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है कि निदर्शन का वास्तविक माप से कितना अंतर है।

दैव निदर्शन के दोष या सीमायें (Limitations of Random Sampling)–इसमें संदेह नहीं कि दैव निदर्शन कि दैव निदर्शन सरल, निष्पक्ष तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण होता है फिर भी इसकी अपनी कुछ सीमायें भी हैं जिन्हें कि हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) दैव निदर्शन के सफल चुनाव के लिए यह आवश्यक है कि समग्र की सभी इकाइयों की विस्तृत तथा संपूर्ण सूची या तो तैयार की जाए या उपलब्ध हो। पर प्रायः यह काम सरल नहीं होता विशेषकर उस अवस्था में जबकि समग्र (universe) बहुत विशाल है। इसलिए पूर्णतया दैव निदर्शन-प्रणाली के आधार पर निदर्शन का चुनाव संभव नहीं होता।

(ख) इसके अंतर्गत निदर्शन के चुनाव में अनुसंधानकर्त्ता का कोई नियंत्रण नहीं होता। इसलिए ऐसी इकाइयों का चुनाव हो सकता है जो दूर-दूर तक फैली हों अथवा जिनसे संपर्क स्थापित करना सरलता से संभव न हो। ऐसी स्थिति में चुने हुए निदर्शन पर कायम रहना कठिन हो जाता है।

(ग) दैव निदर्शन में विकल्प (alternative) की संभावना नहीं हो सकती। यदि हमें यह पता चल जाए कि निदर्शन की किन्हीं इकाइयों से हम संपर्क स्थापित नहीं कर सकते, पर उसके स्थान पर किन्हीं अन्य विकल्प इकाइयों से सुविधापूर्वक तथा उपयोगी संपर्क स्थापित करके आवश्यक सूचना प्राप्त की जा सकती है, फिर भी दैव निदर्शन-प्रणाली के नियमानुसार चुनी हुई इकाइयों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

(घ) यदि समग्र (universe) की सब इकाइयाँ समान आकार वाली नहीं हैं और उनमें एकरूपता का अभाव है तो दैव निदर्शन-प्रणाली के द्वारा प्रतिनिधि इकाइयाँ नहीं चुनी जा सकतीं। ऐसी स्थिति में यह प्रणाली उपयुक्त नहीं होती।

आवश्यक दशाएँ (Essential Conditions)

पार्टेन ने दैव निदर्शन का उपयोग करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक बताया है–

(*i*) समग्र की इकाइयाँ स्पष्ट होनी चाहिए एवं उनकी सूची तैयार की जानी चाहिए,

(*ii*) इकाइयों का आकार लगभग समान हो,

(*iii*) प्रत्येक इकाई एक-दूसरे से स्वतंत्र हो,

(*iv*) निदर्शन चयन की विधि स्वतंत्र होनी चाहिए,

(*v*) अध्ययनकर्ता की प्रत्येक इकाई तक पहुँच सुलभ होनी चाहिए,

(*vi*) चुनी हुई इकाई को न तो छोड़ा जाना चाहिए और न ही उसका प्रतिस्थान करना चाहिए।

2. उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)

जब अनुसंधानकर्ता किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर जान-बूझकर समग्र में कुछ इकाइयों का चुनाव करता है तो उसे उद्देश्यपूर्ण या सविचार निदर्शन कहते हैं। इस प्रकार के निदर्शन के चुनाव का मुख्य आधार यही है कि इसमें अनुसंधानकर्ता समग्र (universe) की इकाइयों के लक्षणों से पूर्वपरिचित होकर सविस्तारपूर्वक निदर्शनों का चुनाव करता है। चुनाव का आधार अध्ययन का उद्देश्य होता है और उद्देश्यों को सामने रखते हुए उसी के अनुरूप अनुसंधानकर्ता संपूर्ण क्षेत्र से सर्वाधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चुनाव करता है। इस प्रकार अध्ययन के उद्देश्यों को अपना मार्गदर्शन मानते हुए उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त निदर्शनों का विचारपूर्वक चुनाव करने के कारण ही इसे उद्देश्यपूर्ण अथवा सविचार निदर्शन कहते हैं। **श्री एडोल्फ जेन्सन** (Adolph Jenson) ने लिखा है, "सविचार निदर्शन से अर्थ है इकाइयों के समूहों की एक संख्या को इस प्रकार चुनना कि चुने हुए समूह मिलकर उन विशेषताओं के संबंध में यथासंभव वही औसत अथवा अनुपात प्रदान करें जो कि समग्र में है और जिनकी सांख्यिकीय जानकारी पहले से ही है।"

सविचार निदर्शन के लक्षण (Characteristics of Purposive Sampling)–

(1) अनुसंधानकर्ता समग्र (universe) की समस्त इकाइयों की विशेषता से परिचित हो ताकि उसे पहले से ही यह ज्ञान हो कि कौन-सी इकाई के क्या गुण हैं और उसी आधार पर कौन-सी इकाइयों को चुनने से अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति सरल हो सकेगी।

(2) सविचार निदर्शन में निदर्शनों का चुनाव किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर ही किया जाता है। बहुधा सभी उद्देश्यों की पूर्ति सविचार निदर्शनों द्वारा नहीं होती है। फिर भी यथासंभव उद्देश्यों की पूर्ति इस प्रकार के निदर्शन का लक्ष्य होता है।

(3) इस प्रणाली में चूँकि अनुसंधानकर्ता अपनी इच्छानुकूल निदर्शनों का चुनाव करता है, इसलिये पक्षपात की संभावना भी अधिक होती है।

उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुण (Merits of Purposive Sampling)–उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख हम कर सकते हैं–

(क) यह कम खर्चीली है क्योंकि इसमें निदर्शन का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है। इसकी मान्यता यह है कि यदि निदर्शनों का चुनाव पक्षपात रहित होकर किया जाये तो अपेक्षाकृत छोटा निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है।

(ख) यह उन अनुसंधानों में अत्यंत उपयोगी होती है जिनमें समग्र की कुछ इकाइयाँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं और इसीलिए उनका चुना जाना आवश्यक होता है। इस आवश्यकता की पूर्ति दैव निदर्शन से नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ, यदि रुहेलखण्ड डिविजन की शिक्षा संस्थाओं का अध्ययन करना है तो बरेली कॉलेज को निदर्शन में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर यदि हम दैव निदर्शन-प्रणाली को अपना रहे हैं तो निदर्शन के चुनाव में बरेली कॉलेज का नाम आ भी सकता है और नहीं भी आ सकता है। ऐसी दशा में उद्देश्यपूर्ण निदर्शन-प्रणाली ही उपयोगी सिद्ध होती है।

3. संस्तरित अथवा वर्गीकृत निदर्शन (Stratified Sampling)

प्रो० सिन पाओ यांग (Hsin Pao Yang) ने लिखा है कि "संस्तरित निदर्शन का अर्थ है समग्र में से उप-निदर्शनों (Sub-samples) को लेना जिनकी कि समान (common) विशेषताएँ हैं जैसे खेती के प्रकार, खेतों के आकार, भूमि पर स्वामित्व, शिक्षा-स्तर, आय, लिंग, सामाजिक वर्ग आदि। उप-निदर्शनों के अंतर्गत आने वाले इन तत्वों (elements) को एक साथ लेकर प्रारूप (type) या श्रेणी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।" और भी स्पष्ट रूप में हम संस्तरित निदर्शन को इस प्रकार समझ सकते हैं–इस प्रकार के निदर्शन का चुनाव करने के लिये अनुसंधानकर्ता सर्वप्रथम समग्र (universe) की सभी विशेषताओं के बारे में एक प्राथमिक जानकारी प्राप्त करता है। इस जानकारी के आधार पर वह समग्र को कुछ वर्गों या उप-निदर्शनों (sub-samples) में विभक्त कर लेता है जिससे प्रत्येक वर्ग समग्र के केवल एक ही गुण (जैसे शिक्षा-स्तर, आय, धर्म सामाजिक वर्ग, लिंग आदि) का

नोट

प्रतिनिधित्व करे। दूसरे शब्दों में, समान लक्षण या विशेषताओं के आधार पर समग्र की इकाइयों को विभिन्न उप-विभागों या वर्गों में विभाजित करके सर्वप्रथम समग्र में एकरूपता (homogeneity) लाने का प्रयत्न किया जाता है। समग्र की विशेषताओं को देखते हुए तथा अनुसंधान की समस्या को ध्यान में रखते हुए अनुसंधानकर्ता सरलता से यह तय कर सकता है किस आधार पर और कितने वर्गों में विभक्त किया जाए। समग्र को इस प्रकार वर्गों में विभाजित कर लेने के पश्चात दैव निदर्शन को चुनने की किसी भी उपयुक्त प्रणाली की सहायता से प्रत्येक वर्ग में से उचित संख्या में निदर्शन चुन लिया जाता है। प्रत्येक वर्ग से प्रकार निदर्शन चुनते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि जहाँ तक हो सके प्रत्येक वर्ग से उतनी ही इकाइयाँ चुनी जाएँ जिस अनुपात में वर्ग की कुल इकाइयाँ समग्र में हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक समग्र में शिक्षक 120, इंजीनियर 10, डॉक्टर 30, और वकील 50 हैं और यदि हमें 10 प्रतिशत निदर्शन चुनना है तो 12 शिक्षक, 1 इंजीनियर, 3 डॉक्टर तथा 5 वकीलों को हम निदर्शन के रूप में दैव निदर्शन चुनने की किसी एक प्रणाली की सहायता से चुन लेंगे। इस प्रकार संस्तरित निदर्शन में दैव निदर्शन चुनने की प्रणाली की भी सहायता ली जाती है और इसीलिये इसे प्राय: संस्तरित दैव निदर्शन (Stratified Random Sampling) कहते हैं।

संस्तरित निदर्शन के प्रकार (Kinds of Stratified Sampling)–संस्तरित निदर्शन तीन प्रकार का होता है–**(अ) समानुपाति (Proportionate)**–इसमें प्रत्येक वर्ग में से इकाइयाँ उसी अनुपात में चुनी जाती हैं जिस अनुपात में वर्ग की कुल इकाइयाँ समग्र में हैं। **(ब) असमानुपातिक (Disproportionate)**–इसमें प्रत्येक वर्ग से समान संख्या में इकाइयाँ चुनी जाती हैं? चाहे समग्र में किसी वर्ग की इकाइयों की संख्या कितनी ही हो। इसका तात्पर्य यही हुआ कि यदि विभिन्न वर्गों में इकाइयाँ समान संख्या में नहीं हैं तो निदर्शन में उनकी संख्या असमानुपातिक (Disproportionate) हो जाएगी। **(स) भारयुक्त संस्तरित निदर्शन (Stratified Weighted Sampling)**–यह उपरोक्त दोनों प्रकारों का एक मिला-जुला रूप है। इसमें प्रत्येक वर्ग से इकाइयाँ तो समान संख्या में चुनी जाती हैं परंतु बाद में अधिक संख्या वाले वर्गों की इकाइयों को अधिक भार प्रदान करके उनका प्रभाव बढ़ा दिया जाता है। यह भार उसी अनुपात से बढ़ाया जाता है जिस अनुपात में वर्ग की इकाइयाँ समग्र में है।

संस्तरित निदर्शन के गुण (Merits of Stratified Sampling)–इस प्रकार के निदर्शन के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया जा सकता है–

(क) इसमें समग्र (universe) के प्रत्येक वर्ग की इकाइयों को निदर्शन में स्थान प्राप्त हो जाता है और किसी महत्त्वपूर्ण वर्ग के उपेक्षित होने की संभावना नहीं रहती। दैव निदर्शन में यद्यपि प्रत्येक इकाई के चुने जाने की समान संभावना रहती है, फिर भी कभी-कभी कुछ महत्त्वपूर्ण वर्ग या इकाई छूट जाते हैं। संस्तरित निदर्शन इस संभावना को रोकती है।

(ख) इसमें यदि विभिन्न वर्गों का विभाजन सतर्कता से किया जाए तो भिन्न-भिन्न वर्गों में से थोड़ी-थोड़ी इकाइयों का चुनाव करने पर भी समग्र का प्रतिनिधित्व हो जाता है। दैव निदर्शन में प्रतिनिधित्व का गुण तभी प्राप्त होगा जब पर्याप्त संख्या में इकाइयाँ चुनी जाएँ।

(ग) इसमें किसी इकाई को आवश्यकता पड़ने पर त्यागकर उसके स्थान पर दूसरी किसी इकाई को चुनने की सुविधा होती है। यदि आरंभ में निदर्शन के रूप में चुना हुआ कोई व्यक्ति या इकाई इस प्रकार है कि उससे संपर्क स्थापित नहीं किया जा सकता तो उसके स्थान पर उसी वर्ग से दूसरा व्यक्ति या इकाई चुनी जा सकती है। इस प्रकार के परिवर्तन से निदर्शन के प्रतिनिधित्वपूर्ण बने रहने में कोई बाधा नहीं पड़ती।

(घ) वर्ग-विभाजन भौगोलिक आधार पर भी हो सकता है। क्षेत्रीय दृष्टि से वर्गीकरण करने पर समय तथा धन की बचत हो जाती है और इकाइयों से संपर्क स्थापित करने में सुविधा होती है। दैव निदर्शन में इस प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं हो सकता और चुनी हुई इकाइयाँ दूर-दूर तक बिखरी हो सकती हैं।

संस्तरित निदर्शन के दोष (Defects of Stratified Sampling)–उपरोक्त गुण होते हुए संस्तरित निदर्शन के कुछ दोष भी हैं–

(अ) यदि वर्गों का विभाजन ठीक से नहीं किया गया तो निदर्शन में मिथ्याझुकाव या पूर्वग्रह (bias) उत्पन्न हो

सकता है। उसी प्रकार चुने हुए निदर्शन में किसी विशेष वर्ग की इकाइयाँ बहुत अधिक या बहुत कम हो सकती हैं ऐसा होने पर निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नहीं रह जाता।

(ब) यदि भिन्न-भिन्न वर्गों के आकार में बहुत अधिक अंतर है तो समान अनुपात में इकाइयों का चुनना कठिन हो जाता है और इस प्रकार यदि निदर्शन समानुपातिक नहीं होता तो वह प्रतिनिधित्वपूर्ण भी नहीं हो सकता।

(स) यदि वर्गों से इकाइयों का चुनाव असमानुपातिक आधार पर किया गया है तो बाद में भार का प्रयोग करना पड़ता है। इस काम में अनुसंधानकर्त्ता का पक्षपात व मिथ्या-झुकाव अपना प्रभाव डाल सकते हैं।

(द) ऐसा भी होता है कि एक ही इकाई में ऐसे मिश्रित गुण विद्यमान हों कि यह निश्चित करना वास्तव में कठिन हो जाए कि उसे किस वर्ग में रखा जाए। ऐसी स्थिति में वर्ग बन जाने के बाद भी इकाइयों का विभाजन एक समस्या बन जाती है।

सावधानियाँ (Precautions)–संस्तरित निदर्शन चुनने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

(*i*) जिन उप-विभागों या वर्गों का निर्माण किया जाए उसका आकार पर्याप्त होना चाहिए जिससे कि उसमें से दैव निदर्शन चुनने के प्रणाली द्वारा इकाइयों का चुनाव किया जा सके।

(*ii*) समग्र के विषय में अनुसंधानकर्त्ता का सामान्य ज्ञान कम-से-कम इतना अवश्य हो कि उसे यह पता लग जाए कि समग्र के कौन-कौन से गुण हैं जिनके आधार पर समग्र का वर्गीकरण विभिन्न वर्गों में या उप-विभाजन में किया जाता है।

(*iii*) वर्गों का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि एक वर्ग के अंतर्गत आने वाली सभी इकाइयों में एकरूपता हो और वे समग्र के केवल एक ही गुण का प्रतिनिधित्व करें।

(*iv*) जहाँ तक संभव हो प्रत्येक वर्ग से उतनी ही इकाइयाँ चुनी जाएं जिस अनुपात में वर्ग की कुल इकाइयाँ समग्र में हैं।

(*v*) वर्ग स्पष्ट तथा सुनिश्चित होने चाहिए जिससे कि समग्र की समस्त इकाइयाँ किसी न किसी वर्ग में अवश्य आ जाएं तथा कोई भी इकाई एक से अधिक वर्ग में न आने पाए।

(*vi*) विभिन्न वर्गों के निर्माण का आधार अध्ययन-विषय की प्रकृति होना चाहिए। जैसी समस्या या विषय है उसी के अनुसार समग्र को विभिन्न उप-विभागों में बाँट देना चाहिए।

अन्य प्रकार के निदर्शन (Other Types of Sampling)

उपरोक्त तीन प्रमुख प्रकार के निदर्शनों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के निदर्शनों का भी उल्लेख यहाँ किया जा सकता है।

4. बहुस्तरीय निदर्शन (Multistage Sampling)–इसका उपयोग बहुत बड़े अध्ययन-क्षेत्र से निदर्शन चुनने के लिए किया जाता है। इसे बहुस्तरीय निदर्शन इसीलिए कहते हैं कि इसमें निदर्शन-चुनाव की प्रक्रिया कई स्तरों में से होकर गुजरती है। ये स्तर निम्नलिखित हैं–

(क) पहले स्तर पर संपूर्ण अध्ययन-क्षेत्र अथवा देश या प्रांत को कुछ सजातीय क्षेत्रों में बाँट लिया जाता है। जहाँ तक संभव हो ये क्षेत्र समान क्षेत्रफल के होने चाहिए तथा प्रत्येक क्षेत्र के निवासियों में भी अधिकतम समानता होनी चाहिए।

(ख) दूसरे स्तर पर प्रत्येक क्षेत्र में से कुछ गाँव या शहर, जिनका अध्ययन करना हो, दैव निदर्शन चुनने की प्रणाली के आधार पर चुन लिए जाते हैं।

(ग) तीसरे स्तर पर दूसरे स्तर में चुने हुए प्रत्येक गाँव या नगर में से कुछ गृह-समूह दैव निदर्शन चुनने की प्रणाली के आधार पर चुन लिए जाते हैं।

नोट

(घ) अंतिम चरण में उपरोक्त गृह-समूहों में से कुछ परिवारों को दैव निदर्शन चुनने की प्रणाली के द्वारा चुन लिया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बहु-स्तरीय निदर्शन दैव निदर्शन तथा संस्तरित निदर्शन का सम्मिलित रूप है और यदि पर्याप्त सावधानी बरती गई तो इनमें उक्त दोनों प्रणालियों के लाभ प्राप्त हो जाते हैं।

5. **सुविधाजनक निदर्शन (Convenience Sampling)**—सुविधाजनक निदर्शन के नाम से ही स्पष्ट है इसमें अनुसंधानकर्त्ता अपनी सुविधा के अनुसार निदर्शन का चुनाव करता है। अनुसंधानकर्ता निदर्शन को चुनने से पहले उपलब्ध धन, समय, साधन-सूची (Source List) की उपलब्धता, इकाइयों से संपर्क स्थापित करने की योग्यता आदि विषयों को ध्यान में रखते हुए जैसी सुविधा होती है उसी के अनुसार निदर्शन का चुनाव करता है। इसीलिए इसको अनियमित, आकस्मिक, अवसरवादी निदर्शन भी कहते हैं। यह पर्याप्त अवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें किसी भी सीमा तक पक्षपात और मिथ्या-झुकाव या पूर्वाग्रह का प्रवेश हो सकता है। फिर भी बहुत बड़े क्षेत्रों का अध्ययन करते समय इसी का सहारा लिया जाता है। जब समग्र (universe) का स्पष्ट ज्ञान न हो, जब निदर्शन की इकाइयाँ स्पष्ट न हों और जब पूर्ण साधन-सूची उपलब्ध न हो तो इस प्रकार के निदर्शन उपयोगी हो सकते हैं।

6. **स्वयं निर्वाचित निदर्शन (Self-selected Sampling)**—जब संबंधित व्यक्ति (जिनका कि अध्ययन करना है अथवा जो सूचनादाता है) स्वयं अपना नाम देकर निदर्शन की इकाई बन जाते हैं और अनुसंधानकर्ता को उनका चुनाव नहीं करना पड़ता है तो उसे स्वयं निर्वाचित निदर्शन कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी संस्था को यह पता लगाना है कि किसी विशेष रेडियो प्रोग्राम को लोगों ने कितना पसंद किया तो वह यह घोषणा करवा सकती है कि जो लोग अपनी पसंद की बात लिखकर भेजेंगे उनके नामों की घोषणा रेडियो द्वारा की जाएगी। ऐसी अवस्था में अपने नाम को रेडियो द्वारा घोषित होते हुए सुनने के लिए बहुत से लोग अपना-अपना मत भेज देंगे। इस प्रकार अपना मत भेजने वाले लोग ही निदर्शन की इकाइयाँ बन जाएँगे।

7. **क्षेत्रीय निदर्शन (Area Sampling)**—क्षेत्रीय निदर्शन वह निदर्शन है जिसे विभिन्न छोटे-छोटे क्षेत्रों में से अनुसंधानकर्ता के द्वारा उसकी सुविधा तथा निर्णय के अनुसार चुन लिया जाता है तथा उस एक क्षेत्र के सभी निवासियों का संपूर्ण अध्ययन किया जाता है। आजकल इस प्रकार के निदर्शन को भी काफी प्रयोग में लिया जाने लगा है।

12.3 सारांश (Summary)

- पी.वी. यंग के अनुसार, "एक सांख्यिकीय निदर्शन संपूर्ण समूह अथवा योग का एक लघुकृत आकार का चित्र है जिससे कि निदर्शन लिया गया है।"
- अनुसंधान संबंधी आँकड़े दो प्रकार से एकत्रित किए जा सकते हैं—I. संगणना विधि II. निदर्शन विधि द्वारा
- एक श्रेष्ठ निदर्शन की विशेषताओं में निष्पक्षता होनी चाहिए।

12.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **निदर्शन (Sampling)**—समग्र में से कुछ इकाइयों को अध्ययन हेतु प्रतिनिधि के रूप में चुनना निदर्शन कहलाता है।
2. **दैव निदर्शन (Random Sampling)**—इस विधि में अनुसंधानकर्ता का झुकाव किसी इकाई विशेष के चुनाव की तरफ नहीं होता वरन् चुनाव की संपूर्ण प्रक्रिया दैव एवं संयोग पर छोड़ दी जाती है।

12.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. एक श्रेष्ठ निदर्शन की विशेषताओं को समझाएँ।

2. निदर्शन के प्रकारों का संक्षिप्त विवरण दें।
3. उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के गुणों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. असमानताएँ   2. प्रतिनिधित्व   3. प्रतिनिधित्व।

12.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–13: प्रश्नावली संरचना, प्रेषित प्रश्नावली (Questionnaire Construction, Mailed Questionnaire)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
13.1 प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Questionnaire)
13.2 प्रश्नावली के उद्देश्य (Objects of Questionnaire)
13.3 प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)
13.4 एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ (Characteristics of Good Questionnaire)
13.5 प्रश्नावली की पूर्व जाँच (पूर्व परीक्षण) (Pretesting of Questionnaire)
13.6 प्रश्नावली-विधि के गुण (महत्त्व) (Methods of Preparing a good Questionnaire)
13.7 प्रश्नावली-विधि के दोष (सीमाएँ) (Demerits (Limitations) of Questionnaire Technique)
13.8 प्रश्नावलियों के उदाहरण (Examples of Questionnaire)
13.9 सारांश (Summary)
13.10 शब्दकोश (Keywords)
13.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
13.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रश्नावली का अर्थ व उद्देश्य को जानना।
- एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषता को समझना।
- प्रश्नावली के महत्त्व को जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक अनुसंधान में प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु आजकल प्रश्नावली विधि का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ रहा है। यह विधि अन्य विधियों की अपेक्षा सरल एवं सस्ती है। वर्तमान में यातायात एवं संदेश-वाहन के साधनों के विकास के कारण प्रश्नावली विधि द्वारा दूर-दराज क्षेत्रों में बसे लोगों का अध्ययन सरल हो गया है। जब सूचनादाता शिक्षित

नोट

हो, समग्र, विशाल एवं विस्तृत हो तो इस विधि के द्वारा अध्ययन करना अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। कई बार ऐसा होता है कि जिस विषय या समस्या का हम अध्ययन करना चाहते हैं, उससे संबंधित लोग बहुत बड़े क्षेत्र में फैले हुए रहते हैं, जिनका अध्ययन अवलोकन या साक्षात्कार-विधि द्वारा करने पर बहुत अधिक समय एवं धन की आवश्यकता होती है और सूचनाएँ भी शीघ्र संकलित नहीं की जा सकतीं। ऐसी स्थिति में समय, श्रम एवं धन की बचत करने तथा शीघ्र सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए प्रश्नावली-विधि का प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग विषय की प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है।

प्रश्नावली विषय अथवा समस्या से संबंधित अनेक प्रश्नों की एक सूची होती है, जिसे अध्ययनकर्ता सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेजता है और सूचनादाता उसे स्वयं भरकर पुनः लौटाता है। चूँकि प्रश्नावली सूचनादाताओं के पास डाक द्वारा भेजी जाती है, अतः इसे 'डाक द्वारा प्रेषित प्रश्नावली' (Mailed questionnaire) भी कहते हैं। कई बार यह लोगों में वितरित भी की जा सकती है। वर्तमान में जनमत सर्वेक्षण, बाजार सर्वेक्षण तथा सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षणों में प्रश्नावली विधि का प्रयोग काफी होने लगा है।

13.1 विषय-वस्तु : प्रश्नावली का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Questionnaire)

विभिन्न विद्वानों ने प्रश्नावली को इस प्रकार से परिभाषित किया है–

पोप (Pope) के अनुसार, "एक प्रश्नावली को प्रश्नों के एक समूह के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उत्तर सूचनादाता को बिना एक अनुसंधानकर्ता अथवा प्रगणक की व्यक्तिगत सहायता के देना होता है।"

नोट्स बोगार्डस के अनुसार, "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए प्रेषित की गई प्रश्नों की एक सूची है।"

गुडे तथा **हाट** के अनुसार, "सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से तात्पर्य प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के एक उपकरण से होता है, जिसमें एक प्रपत्र का प्रयोग किया जाता है जिसे उत्तरदाता स्वयं ही भरता है।"

विल्सन गी के अनुसार, "प्रश्नावली बहुत बड़ी संख्या में लोगों से अथवा छोटे चुने हुए एक समूह से, जिसके सदस्य विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं, सीमित मात्रा में सूचना प्राप्त करने की एक सुविधाजनक प्रणाली है।"

सिन पाओ येंग के अनुसार, "अपने सरलतम रूप में प्रश्नावली प्रश्नों की एक ऐसी अनुसूची है जिसे कि निदर्शन (Sample) के रूप में चुने हुए व्यक्तियों के पास डाक द्वारा भेजा जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रश्नावली किसी भी अध्ययन-विषय से संबंधित प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजा जाता है जिसे सूचनादाता स्वयं भरकर पुनः लौटाता है।

13.2 प्रश्नावली के उद्देश्य (Objects of Questionnaire)

प्रश्नावली विधि के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए श्रीमती गॉर्डेन कैप्ट लिखती हैं कि प्रश्नावली का निर्माण शुद्ध संप्रेषण और शुद्ध उत्तर के लिए किया जाता है। शुद्ध संप्रेषण तभी संभव है जब सूचनादाता अध्ययन के उद्देश्य को समझते हों तथा शुद्ध उत्तर भी तभी उपलब्ध हो सकते हैं, जब इच्छित सूचनाएँ प्राप्त हों और उनसे सारणी बनाने तथा विषय का विश्लेषण करने में सहायता मिलती हो। प्रश्नावली के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

नोट

(1) विस्तृत, विशाल, विविध एवं व्यापक रूप में बिखरे हुए लोगों से सूचनाएँ संकलित करना, (2) प्रामाणिक तथा विश्वसनीय सूचनाएँ संकलित करना, (3) सूचनाओं का व्यवस्थित संकलन, (4) वैषयिक अध्ययन के लिए, (5) अनावश्यक तथ्यों को छोड़ना, (6) कम खर्च, (7) संख्यात्मक अनुमापन, (8) एक साथ तथा शीघ्र सूचनाओं का संकलन।

13.3 प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)

प्रश्नावली की रचना, विषय-वस्तु, प्रश्नों की प्रकृति, आदि के आधार पर प्रश्नावली को विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया जाता है। किस प्रकार की प्रश्नावली का उपयोग कहाँ किया जाएगा, यह बहुत कुछ उत्तरदाताओं एवं क्षेत्र की विशेषताओं पर निर्भर करता है। लुण्डबर्ग, पी.वी. यंग, गुडे एवं हाट, सेल्टिज, जहोदा तथा उनके सहयोगियों ने प्रश्नावली के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है। **लुण्डबर्ग** ने दो प्रकार की प्रश्नावलियों–तथ्य संबंधी एवं मनोवृत्ति संबंधी का उल्लेख किया है। **पी. वी. यंग** ने प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर–बंद एवं खुली प्रश्नावली तथा प्रश्नावली की संरचना के आधार पर-संरचित एवं असंरचित प्रश्नावली की विवेचना की है। अन्य विद्वानों ने चित्रमय एवं मिश्रित प्रश्नावलियों का उल्लेख किया है। हम यहाँ प्रश्नावली के विविध प्रकारों की संक्षेप में विवेचना करेंगे।

1. **तथ्य संबंधी प्रश्नावली** (Factual Questionnaire)–इस प्रश्नावली का उपयोग किसी समूह की सामाजिक-आर्थिक दशाओं से संबंधित तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है। जब हम किसी व्यक्ति की आय, आयु, धर्म, जाति, शिक्षा, विवाह, व्यवसाय, पारिवारिक रचना, ऋणग्रस्तता, आदि के बारे में सूचना संकलित करना चाहते हैं तो इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग किया जाता है।

2. **मत एवं मनोवृत्ति संबंधी प्रश्नावली** (Questionnaire of opinion and Attitude)–जब हम किसी विषय पर सूचनादाता की रुचि, राय, मत, विचारधारा, विश्वास एवं दृष्टिकोण जानना चाहते हैं तो इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग करते हैं। बाजार-सर्वेक्षण, जनमत संग्रह, विज्ञापन तथा टेलीविजन एवं रेडियो कार्यक्रमों के बारे में लोगों के विचार जानने के लिए इसी प्रकार की प्रश्नावलियों का निर्माण एवं प्रयोग किया जाता है।

3. **संरचित प्रश्नावली** (Structured Questionnaire)–इस प्रकार की प्रश्नावली का निर्माण अनुसंधान प्रारंभ करने से पूर्व ही कर लिया जाता है। इसमें प्रश्नों की भाषा, शब्द, वाक्य आदि पहले से ही तय कर लिये जाते हैं जिनमें अनुसंधानकर्ता अथवा साक्षात्कारकर्ता को अनुसंधान के दौरान परिवर्तन करने की कोई छूट नहीं होती है। इसमें प्रश्नों का क्रम भी पूर्व निर्धारित होता है। इस प्रकार की प्रश्नावली का मुख्य उद्देश्य सुनिश्चित एवं समरूप उत्तर प्राप्त करना है। संरचित प्रश्नावली को परिभाषित करते हुए **श्रीमती पी. वी. यंग** लिखती हैं, "संरचित प्रश्नावली वह होती है जिसमें कि निश्चित, ठोस तथा पूर्व-निर्धारित प्रश्नों के अतिरिक्त ऐसे आवश्यक सीमित प्रश्न भी रहते हैं जो अपर्याप्त उत्तरों के स्पष्टीकरण करने या अधिक विस्तृत प्रत्युत्तर पाने के लिए आवश्यक होते हैं। प्रश्नों का प्रकार चाहे प्रतिबन्धित हो या अप्रतिबंधित, महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि उन प्रश्नों को पहले से ही, न कि साक्षात्कार के समय, लिखित रूप में दे दिया जाता है।" जब उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये उत्तर अपर्याप्त, अस्पष्ट एवं अपूर्ण होते हैं तो साक्षात्कारकर्ता को अतिरिक्त प्रश्नों को पूछने की छूट दे दी जाती है। इस प्रकार की प्रश्नावलियों का उपयोग उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ औपचारिक अन्वेषण का संचालन करना हो, उनके आधार पर उपकल्पना का निर्माण करना हो, प्राथमिक तथ्यों का संकलन करना हो या संकलित तथ्यों की पुनर्परीक्षा करनी हो। अध्ययन क्षेत्र के विस्तृत होने पर भी इस प्रकार की प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है ताकि प्रश्नों के समान उत्तर प्राप्त किये जा सकें। इस प्रकार की प्रश्नावलियों के द्वारा सामाजिक-आर्थिक घटनाओं का अध्ययन किया जाता है। किसी विषय पर लोगों की राय जानने, प्रशासकीय नीति या परिवर्तन का अध्ययन करने, सामाजिक स्वास्थ्य, जनकल्याण की योजनाओं,

लोगों के रहन-सहन की दशाओं तथा आय-व्यय आदि के बारे में सूचना एकत्रित करने के लिए भी संरचित प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इस प्रश्नावली का उपयोग किसी समूह की सामाजिक-आर्थिक .... से संबंधित तथ्यों का संग्रह करने के लिए किया जाता है।
2. जब हम किसी .... पर सूचनादाता की सूचि, राय, विचार जानना चाहते हैं तो मत एवं मनोवृत्ति संबंध प्रश्नावली का प्रयोग करते हैं।
3. जब उत्तरदाताओं द्वारा दिए गए उत्तर .... होते हैं तो साक्षात्कारकर्त्ता की अतिरिक्त प्रश्नों को पूछने की छूट दे दी जाती है।

4. असंरचित प्रश्नावली (Unstructured Questionnaire)–असंरचित प्रश्नावली में पहले से प्रश्नों का निर्माण नहीं किया जाता, वरन् केवल उन विषयों एवं प्रसंगों का उल्लेख किया जाता है जिनके बारे में सूचनाएँ संकलित करनी होती हैं। इस दृष्टि से असंरचित प्रश्नावली साक्षात्कार-पथ-प्रदर्शिका (Interview guide) के समान ही होती है। इसे स्पष्ट करते हुए **श्रीमती पी. वी. यंग** लिखती हैं, "असंरचित प्रश्नावलियाँ प्राय: साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका के रूप में लक्षित की जाती हैं जिनका उद्देश्य निश्चित विषय-वस्तु क्षेत्रों को रखना तथा शुद्धता भी होता है जिसके साक्षात्कार के अंतर्गत सम्मिलित किये जाने की आवश्यकता होती है। साक्षात्कारकर्ता सीमाओं में रहते हुए आकार को व्यवस्थित करने तथा पूछताछ के समय के निर्धारित करने में स्वतंत्र रहता है।" प्रश्नावली में साक्षात्कार नहीं होता है क्योंकि वे डाक द्वारा प्रेषित की जाती हैं। अत: असंरचित प्रश्नावली अनुसूची का ही एक रूप होती है। इस प्रकार की प्रश्नावली का उपयोग मनोविश्लेषणात्मक साक्षात्कारों तथा अनौपचारिक एवं गहन अध्ययनों के लिए किया जाता है। असंरचित प्रश्नावली का प्रमुख गुण इसका लचीलापन है अर्थात् इसमें अनुसंधानकर्ता अनुसंधान के तरीकों में परिवर्तन कर सकता है।

क्या आप जानते हैं संरचित प्रश्नावली में उत्तरदाता उत्तर देने में बंधा होता है, जबकि असंरचित प्रश्नावली में उत्तरदाता खुलकर अपने को अभिव्यक्त करता है।

सूचनादाता के विश्वासों, दृष्टिकोणों एवं विचारों को जानने के लिए इस प्रकार की प्रश्नावलियाँ अधिक उपयोगी होती हैं।

5. बंद सीमित या प्रतिबंधित प्रश्नावली (Closed Questionnaire)–इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के सामने ही कुछ निश्चित वैकल्पिक उत्तर लिखे होते हैं और उत्तरदाता को उनमें से ही उत्तर छांटकर लिखने होते हैं। इस प्रकार ऐसी प्रश्नावलियों में प्रश्नों के उत्तर सीमित कर दिये जाते हैं। अत: उत्तरदाता को स्वतंत्र राय देने की छूट नहीं होती और न ही उत्तर देने के लिए उन्हें अधिक सोचना पड़ता है, वरन् उन्हें पूर्वनिर्धारित उत्तरों में से ही किसी एक को चुनकर उसके आगे निशान लगाना होता है। इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग श्रेणीबद्ध सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। **सिन पाओ येंग** के अनुसार, "प्रतिबंधित प्रश्नावली में प्राय: पूछे गये प्रश्नों के मद के अनुसार उत्तर दिये जाते हैं।" इस प्रकार की प्रश्नावली में उत्तर देने में सूचनादाता को सुविधा रहती है। उसे अधिकांशत: 'हाँ' या 'नहीं' में ही उत्तर देने होते हैं तथा उत्तर देने की जटिलता से वह मुक्त हो जाता है। ऐसी

नोट

प्रश्नावलियों के भरकर लौट आने की संभावनाएँ भी अधिक रहती हैं। ऐसी प्रश्नावलियों के प्रश्नों के कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं–

(1) क्या आप अनुसूचित जाति के छात्र हैं? हाँ/नहीं

(2) क्या आप विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में हैं? हाँ/नहीं

(3) आपके अपने अध्यापकों से किस प्रकार के संबंध हैं? (क) मधुर (ख) सामान्य (ग) तनावपूर्ण।

इस प्रकार की प्रश्नावली में सामग्री के वर्गीकरण में सुविधा रहती है।

6. खुली, असीमित या अप्रतिबंधित प्रश्नावली (Open Questionnaire)–इस प्रकार की प्रश्नावली में सूचनादाता को अपने विचारों को खुलकर प्रकट करने की स्वतंत्रता होती है। प्रश्नावली में प्रश्नों के संभावित उत्तर दिये हुए नहीं होते हैं, वरन् सूचनादाता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी इच्छानुसार उत्तर दे। कई बार एक प्रश्न के कई संभावित उत्तर हो सकते हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए ही ऐसे प्रश्नों का चयन किया जाता है। इन प्रश्नावलियों के प्रश्नों में काफी लचीलापन पाया जाता है, जिनका उत्तर सूचनादाता अपने शब्दों में व्यक्त करता है। अप्रतिबंधित प्रश्नावलियों का प्रयोग व्यक्तिगत विचारों भावनाओं, सुझावों आदि के ज्ञात करने, गहन अध्ययन करने एवं विषय से संबंधित प्रारंभिक सूचनाएँ संकलित करने के लिए किया जाता है। विवरणात्मक एवं गुणात्मक सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए भी ऐसी प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें प्रश्नों के सामने उत्तर देने के लिए कुछ स्थान खाली छोड़ दिया जाता है।

टास्क आपकी राय में वर्तमान शिक्षा-पद्धति में क्या-क्या सुधार किए जाने चाहिए?

7. चित्रमय प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire)–इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के संभावित उत्तर चित्र द्वारा प्रकट किये जाते हैं और सूचनादाता अपने उत्तर का चयन उन चित्रों में ही करके उस पर निशान लगा देता है। चित्रों के कारण प्रश्नावली रोचक एवं आकर्षक बन जाती है जिसके कारण सूचनादाता उत्तर देने के लिए प्रेरित हो जाता है। आधुनिक युग में हर व्यक्ति अपने कार्य में व्यस्त है, उसके पास इतना समय नहीं है कि वह लंबे-लंबे प्रश्नों के उत्तर दे सके। ऐसी स्थिति में सूचनादाताओं से कम समय एवं प्रयत्न से सरलतापूर्वक उत्तर प्राप्त करने के लिए चित्रमय प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है। ऐसी प्रश्नावलियों की भाषा भी सामान्य आदमी की समझ में आने वाली होती है। बालकों की मनोवृत्तियों को जानने एवं गूँगे तथा निरक्षर लोगों के लिए ऐसी प्रश्नावलियाँ अधिक उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस प्रकार की प्रश्नावलियों के प्रश्नों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

(1) आपके परिवार का आकार क्या है?

इसी प्रकार से यह जानने के लिए कि आप गाँव अथवा नगर में से कहाँ रहना पसंद करेंगे। इसके उत्तर को जानने के लिए गाँव एवं नगर के चित्र बना दिये जाते हैं। इस प्रकार की प्रश्नावलियों के उत्तरों की जाँच एवं वर्गीकरण सरलता से किया जा सकता है।

8. मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire)–इस प्रकार की प्रश्नावली ऊपर वर्णित सभी प्रकार की प्रश्नावलियों की विशेषताएँ लिए होती है। प्रमुखतः इसमें बंद व खुली प्रश्नावली का मिश्रण होता है। अधिकांशतः प्रश्नावलियाँ इसी प्रकार की होती हैं। सामाजिक अनुसंधान में आजकल इसी प्रकार की प्रश्नावलियों का उपयोग बढ़ता जा रहा है क्योंकि इनका निर्माण सुविधाजनक होता है तथा इनके द्वारा महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ सुगमता से संकलित

कर ली जाती हैं। किसी भी सामाजिक तथ्य के बारे में किसी एक ही प्रकार के प्रश्नों द्वारा सूचनाएँ ज्ञात करना संभव नहीं है, अत: आवश्यकतानुसार खुले एवं बंद, चित्रमय या संरचित एवं असंरचित प्रश्नों का निर्माण कर लिया जाता है। ऐसी प्रश्नावलियाँ कम और अधिक शिक्षित दोनों के लिए ही उपयोगी होती हैं तथा स्पष्ट और सटीक उत्तर के साथ-साथ उत्तरदाता के स्वतंत्र विचार जानने में भी सहायक होती हैं।

13.4 एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषताएँ (Characteristics of good Questionnaire)

ए. एल. बाउले ने एक उत्तम प्रश्नावली की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. तुलनात्मक दृष्टि से प्रश्नों की संख्या कम होनी चाहिए।
2. जिन प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दिए जाते हैं, उन्हें सम्मिलित किया जाना चाहिए।
3. प्रश्न सरल एवं शीघ्र बोधगम्य हों।
4. प्रश्नों की रचना इस प्रकार की जाए कि उनका उत्तर देते समय पक्षपात से बचा जा सके।
5. प्रश्न अशिष्टतापूर्ण, धृष्टतापूर्ण एवं परीक्षात्मक नहीं होने चाहिए।
6. जहाँ तक संभव हो, प्रश्न पारस्परिक पुष्टि करने वाले होने चाहिए।
7. प्रश्न इस प्रकार के हों जिनसे इच्छित सूचनाएँ प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो सकें।

एगल बर्नर ने प्रश्नावली का निर्माण करते समय निम्नांकित बातों को ध्यान में रखने की बात कही है–

1. किस प्रकार की सूचनाएँ संकलित करनी हैं, यह तय करने के लिए विषय की विस्तृत व्याख्या की जाए।
2. प्रश्नों का उत्तर लिखने के लिए आवश्यकतानुसार प्रत्येक प्रश्न के सामने रिक्त स्थान होना चाहिए।
3. इस प्रकार के प्रश्न नहीं पूछने चाहिए जिनका उत्तर देने में सूचनादाता को कोई आपत्ति हो।
4. प्रश्नों को तार्किक दृष्टि से व्यवस्थित किया जाना चाहिए।
5. लंबे-लंबे प्रश्नों से बचा जाना चाहिए।
6. प्रश्नावली यथासंभव संक्षिप्त होनी चाहिए।
7. प्रश्न सरल और सीधे हों जिन्हें उत्तरदाता आसानी से समझ सके।
8. प्रश्नों की भाषा सरल व स्पष्ट होनी चाहिए।
9. प्रश्न उत्तरदाता की भावनाओं को ठेस पहुँचाने वाले नहीं होने चाहिए।
10. प्रश्नावली की रचना करते समय उसके भौतिक पक्ष पर भी ध्यान देना चाहिए अर्थात् प्रश्नावली का आकार बहुत अधिक छोटा या बड़ा न हो, कागज का रंग आकर्षक हो, छपाई सुंदर व स्पष्ट हो आदि।

13.5 प्रश्नावली की पूर्व जाँच (पूर्व परीक्षण) (Pretesting of Questionnaire)

प्रश्नावली का निर्माण करने के बाद उसका वास्तविक रूप में प्रयोग करने और डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजे जाने से पूर्व एक छोटे से निदर्शन क्षेत्र में उसकी जाँच कर लेनी चाहिए ताकि प्रश्नावली में यदि किसी प्रकार की कोई त्रुटियाँ हैं तो उन्हें सुधारा जा सके। प्रश्नावली के निर्माण में चाहे कितनी ही सावधानी रखी गयी हो और चाहे कितने ही अनुभवी व्यक्ति एवं साहित्य का सहारा लिया गया हो फिर भी उसमें कमियों की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। अत: यह आवश्यक है कि प्रश्नावलियों की पूर्व-जाँच कर ली जाए। इससे हमें यह ज्ञात हो जायेगा कि उत्तरदाता प्रश्नों को सही अर्थ में समझ सकते हैं या नहीं, वे उनका क्या अर्थ लगाते हैं, प्रश्नावली की लंबाई, विषय-वस्तु, भाषा-शैली में किस प्रकार के संशोधन की आवश्यकता है आदि। कई बार प्रश्नावलियों के

नोट

वितरण के बाद उनकी त्रुटियों का पता लगता है। अत: यह आवश्यक है कि पहले से ही उनकी जाँच कर यह देख लेना चाहिए कि उनके निर्माण एवं शब्दावली में कोई कमी तो नहीं है। **स्लेटो** ने लिखा है, "संक्षेप में पूर्व-जाँच की प्रणाली कार्य-विधि पर त्रुटियों को, इसके पहले कि वे न्यून मात्रा में विश्वसनीय एवं प्रामाणिक जवाबों एवं उत्तरों के कम अनुपात में आने के रूप में भारी दंड थोपे, निकालने का साधन उपलब्ध कराती है। पूर्व-जाँच आवश्यक रूप से एक परीक्षण एवं त्रुटि (trial and error) की प्रणाली है जिसमें सफल परीक्षणों की पुनरावृत्ति की जाती है तथा जब अंतिम रूप से प्रश्नावली अंतिम समूह को भेजी जाती है तो त्रुटियाँ निकल जाती हैं।'

नोट्स पूर्व-परीक्षण करने पर जो कमियाँ हमें ज्ञात हों, उन्हें दूर करने के लिए प्रश्नावलियों में परिवर्तन एवं संशोधन करने चाहिए। यदि त्रुटियाँ बहुत अधिक हों तो प्रश्नावली का पुन: निर्माण करना चाहिए।

पूर्व-परीक्षण की उपयोगिता एवं लाभ निम्नांकित हैं–

(1) पूर्व-परीक्षण से हमें ऐसे प्रश्नों का पता चल पायेगा जिनके उत्तर सूचनादाताओं को ज्ञात नहीं है और जिनके उत्तर में वे "पता नहीं", "मैं नहीं जानता" आदि वाक्य लिखते हैं। इस कमी को उपयुक्त प्रश्नों द्वारा दूर किया जा सकता है।

(2) इससे प्रश्नों के क्रम की कमी ज्ञात होती है।

(3) प्रश्न के उत्तरों में दिए हुए विकल्प यदि कम हैं तो उनका पता लग जाता है और आवश्यक विकल्प जोड़ दिये जाते हैं।

(4) ऐसे प्रश्नों का पता लग जाता है, जिनका उत्तर देना सूचनादाता उचित नहीं समझते और उत्तर के स्थान रिक्त ही छोड़ दिये जाते हैं।

(5) आवश्यकता से अधिक शर्तों अथवा अनावश्यक आलोचनाओं को उकसाने वाले प्रश्नों का पता चलता है।

(6) अनावश्यक एवं असंबंधित प्रश्न ज्ञात हो जाते हैं।

(7) इससे उत्तरदाता की क्षमता एवं उत्सुकता का बोध हो जाता है।

(8) प्रश्नावली की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता बढ़ जाती है।

(9) सारणीकरण की दृष्टि से उपयुक्त शीर्षक एवं तथ्य प्राप्त होते हैं।

(10) इसके फलस्वरूप प्रत्युत्तरों की संख्या में वृद्धि होती है।

पूर्व-परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि (*i*) पहले प्रश्नावलियों को कम मात्रा में छपाया जाए, (*ii*) जिस क्षेत्र का अध्ययन करना है, उसमें से एक छोटा निदर्शन-समूह चुनकर उसे ही पूर्व-परीक्षण के लिए प्रश्नावलियाँ भेजी जाएँ, (*iii*) पूर्व-परीक्षण वैयक्तिक साक्षात्कार के रूप में किया जाए, (*iv*) सही प्रत्युत्तर न देने वाले प्रश्नों में संशोधन किया जाए अथवा उन्हें छोड़ दिया जाए।

सहभागी पत्र (Accompanying Letter)

पूर्व परीक्षण कर लेने एवं प्रश्नावली को अंतिम रूप देने के बाद प्रश्नावलियों को सूचना संकलन हेतु डाक द्वारा भेजा जाता है। इनके साथ अनुसंधान करने वाली संस्था अथवा व्यक्ति द्वारा एक पत्र भी भेजा जाता है जिसे सहगामी पत्र कहते हैं। इस पत्र में सूचनादाता को अनुसंधान करने वाली संस्था का परिचय दिया जाता है, उसे अनुसंधान का विषय व उसके उद्देश्य बताये जाते हैं तथा प्रश्नावली को एक निश्चित समय में शीघ्र भरकर लौटाने की प्रार्थना की जाती है। उत्तरदाता से कहा जाता है कि आपके सहयोग से ही अनुसंधान कार्य पूर्ण हो पायेगा। पत्र टाइप किया हुआ, छपा

हुआ या साइक्लोस्टाइल्ड हो सकता है। पत्र साफ-साफ छपा हुआ एवं आकर्षक कागज में हो जिससे कि सूचनादाता आकर्षित हो सके। पत्र ही सूचनादाता व अनुसंधानकर्ता के बीच एक कड़ी का काम करता है, उन्हें एक दूसरे के निकट लाता है। पत्र का शीर्षक मोटे अक्षरों में हो जिसे पढ़कर सूचनादाता वस्तुस्थिति को समझ सके। पत्र की भाषा एवं शब्दावली का चयन सावधानीपूर्वक किया जाए जिसे पढ़कर उत्तरदाता स्वयं ही सूचना देने को तैयार हो जाए। पत्र में यह भी लिखा जाए कि आपके द्वारा दी गयी सूचनाएँ गुप्त रखी जायेंगी, उनका दुरुपयोग नहीं होगा तथा सार्वजनिक रूप से उन्हें प्रकाशित नहीं किया जायेगा। पत्र के अंत में उत्तरदाता के सहयोग के प्रति आभार प्रकट किया जाना चाहिए। पत्र छोटा, आकर्षक एवं प्रभावशाली होना चाहिए। शीघ्र जवाब पाने के लिए सहगामी पत्र के साथ टिकट सहित जवाबी लिफाफा भी भेजा जाना चाहिए। इसका उत्तरदाता पर मनौवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और वह प्रश्नावली भरकर लौटाने के महत्त्व को समझ पाता है।

13.6 प्रश्नावली विधि के गुण (महत्त्व) (Methods of Preparing a Good Questionnaire)

आधुनिक समय में सामाजिक अनुसंधानों में तथ्यों के संकलन हेतु प्रश्नावली विधि का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए **विल्सन गी** ने लिखा है, "यह व्यक्तियों के एक बड़े समूह अथवा अधिक बिखरे हुए व्यक्तियों के एक छोटे से चुने हुए समूह से कुछ सीमित सूचनाएँ प्राप्त करने की एक सुगम विधि है।" **कैथराइन गोर्डन कैप्ट** ने भी लिखा है, "प्रश्नावली के द्वारा वस्तुपरक तथा परिमाणात्मक तथ्यों के साथ-साथ गुणात्मक प्रकृति की सूचनाओं के विकास की जानकारी को भी एकत्रित किया जा सकता है।" प्रश्नावली-विधि के गुण, लाभ, उपयोगिता अथवा महत्त्व को हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत इस प्रकार दर्शा सकते हैं–

1. **विशाल जनसंख्या का अध्ययन** (Study of Large Population)–प्रश्नावली विधि का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसके द्वारा हम दूर-दूर तक फैले हुए क्षेत्र एवं विशाल जनसंख्या का अध्ययन कम समय, धन एवं श्रम खर्च करके कर सकते हैं। अन्य विधियों द्वारा विशाल जनसंख्या के अध्ययन हेतु अधिक धन, समय और श्रम की आवश्यकता होती है। इसी उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए **सिन पाओ येंग** लिखते हैं, "प्रश्नावली एक विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र में बिखरे हुए व्यक्तियों के समूह में से सूचनाएँ संकलित करने की शीघ्रतम तथा सरलतम विधि प्रदान करती है।"

2. **निम्नतम व्यय** (Minimum Expenses)–प्रश्नावली विधि अन्य विधियों की अपेक्षा अध्ययन की कम खर्चीली विधि है। कागज, छपाई तथा डाक-व्यय पर होने वाले अल्प खर्च में ही विशाल क्षेत्र का अध्ययन हो जाता है। क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं की इस विधि में आवश्यकता न होने से उनके वेतन एवं भत्तों तथा संगठन संबंधी व्यय की आवश्यकता ही नहीं होती।

3. **न्यूनतम समय** (Minimum Time)–प्रश्नावलियों को छपवाकर एक साथ डाक द्वारा सभी सूचनादाताओं के पास भेज दिया जाता है जो शीघ्र ही भरकर पुनः लौटा दी जाती हैं। इसके विपरीत साक्षात्कार, अवलोकन तथा अनुसूची विधि में अध्ययनकर्ता को सूचनादाता से व्यक्तिगत संपर्क करना पड़ता है जिसके लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है, यदि क्षेत्र विस्तृत हो तो समय की और अधिक आवश्यकता होती है जबकि प्रश्नावलियाँ एक ही साथ भेजी जाती हैं और कुछ समय में अधिकांश उत्तर सहित लौटा दी जाती हैं।

4. **न्यूनतम श्रम** (Minimum Labour)–प्रश्नावली द्वारा अध्ययन करने के लिए हमें अधिक अध्ययनकर्ताओं की आवश्यकता नहीं होती। एक केंद्रीय कार्यालय से ही प्रश्नावलियों को भेजा व प्राप्त किया जाता है। उनके वर्गीकरण, सारणीयन, निर्वचन, निष्कर्ष एवं प्रतिवेदन तैयार करने में भी अधिक लोगों की आवश्यकता नहीं होती।

5. **पुनरावृत्ति संभव** (Repetition Possible)–कुछ अनुसंधान इस प्रकार के होते हैं कि उनके लिए हमें थोड़े-थोड़े समय बाद बार-बार सूचनाएँ एकत्रित करनी होती हैं, तब यही विधि अधिक उपयोगी होती है। प्रश्नावली की अनेक प्रतियाँ छपवाकर रख ली जाती हैं जो समय-समय पर सूचनादाताओं के पास भेज दी जाती हैं।

नोट

6. सुविधाजनक (Convenient)–प्रश्नावली-विधि सूचना संकलित करने की एक सरल एवं सुविधाजनक विधि है क्योंकि इसे सूचनादाता अपनी सुविधा एवं रुचि के अनुसार समय मिलने पर भर सकता है। अनुसंधानकर्ता को भी सूचनादाता से साक्षात्कार का समय निर्धारण करने की आवश्यकता नहीं होती।

7. स्वतंत्र तथा प्रामाणिक सूचनाएँ (Free and Valid Informations)–चूँकि प्रश्नावली भरते समय अनुसंधानकर्ता सूचनादाता के समक्ष उपस्थित नहीं होता है, अतः वह खुलकर स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करता है। फलस्वरूप प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। सूचनादाता पर अनुसंधानकर्ता के उपस्थित होने पर जो प्रभाव पड़ता है तथा सूचना में पक्षपात आने की संभावना रहती है, उससे भी इस विधि में बचाव हो जाता है। इस प्रकार प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएँ विश्वसनीय, प्रामाणिक एवं पक्षपात-रहित होती हैं।

8. स्वयं-प्रशासित (Self-Administered)–प्रश्नावली द्वारा सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए अनुसंधानकर्ता को स्वयं क्षेत्र में उपस्थित नहीं होना पड़ता और न ही किसी प्रकार के संगठन तथा व्यवस्था की समस्या में उलझना पड़ता है। उसे अध्ययनकर्ताओं के चुनाव, प्रशिक्षण, संगठन एवं प्रशासन से मुक्ति मिल जाती है। डाक द्वारा भेजने के बाद प्रश्नावलियाँ भरकर स्वयं ही आ जाती हैं। इसलिए ही यह विधि स्वयं-प्रशासित एवं संगठित होती है।

9. सांख्यिकीय प्रयोग संभव (Statistical Treatment Possible)–बोगार्डस ने लिखा है, "इस (प्रश्नावली) से प्रमापीकृत परिणाम प्राप्त होते हैं जिन्हें सारणीबद्ध तथा सांख्यिकीय रूप से प्रयोग में लाया जा सकता है।" इस कथन से स्पष्ट है कि प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाओं का वर्गीकरण, सारणीयन एवं श्रेणीबद्ध करना सरल है तथा परिणामों को प्राप्त करने के लिए उन पर सांख्यिकीय सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है।

10. तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study)–प्रश्नावली विधि द्वारा विभिन्न अध्ययनकर्ताओं के परिणामों की परस्पर तुलना सरलता से की जा सकती है क्योंकि प्रश्नावली विधि में अनुसंधान के समय अध्ययनकर्ता के उपस्थित न होने से सूचनाएँ सामान्यतः निष्पक्ष, समरूप एवं प्रामाणिक होती हैं जिनकी तुलना करना संभव है।

13.7 प्रश्नावली-विधि के दोष (सीमाएँ) (Demerits (Limitations) of Questionnaire Technique)

प्रश्नावली विधि की अनेक उपयोगिताएँ एवं लाभ होते हुए भी यह दोषों से पूरी तरह मुक्त नहीं है। इसकी कमियों को बताते हुए **एफ. एल. विटनी** ने लिखा है, "प्रश्नावली शायद सबसे दूषित प्रविधि है, क्योंकि इसमें आंतरिक कमजोरियाँ मौजूद हैं।" प्रश्नावली के प्रमुख दोष या सीमाएँ निम्नांकित हैं–

1. अशिक्षितों के लिए अनुपयुक्त (Inappropriate for Uneducated)–प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षित लोगों के लिए ही हो सकता है क्योंकि सूचनादाता को स्वयं उन्हें पढ़कर भरना होता है। हमारे देश में जहाँ अशिक्षा का प्रतिशत अधिक है, वहाँ इसका प्रयोग सीमित मात्रा में ही हो सकता है।

2. प्रत्युत्तर की समस्या (Problem of Response)–प्रश्नावलियाँ बहुत कम संख्या में लौटकर आती हैं अथवा सूचनादाता उन्हें भरकर लौटाने में तत्परता नहीं बरतते हैं। इसका कारण यह है कि अधिकांश सूचनादाता लापरवाह, अनिच्छुक एवं आलसी होते हैं, कुछ सर्वेक्षण के उद्देश्य को नहीं समझ पाते, उनके पास समयाभाव होता है अथवा प्रश्नों का उत्तर देना नहीं जानते या व्यक्तिगत तथ्यों को स्वयं लिखना नहीं चाहते। ऐसी स्थिति में बहुत कम प्रश्नावलियाँ ही पुनः प्राप्त होती हैं।

3. अपूर्ण सूचनाएँ (Incomplete Informations)–कई बार प्रश्नावलियों में मुख्य प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जाता है। जब सूचनादाता सूचना प्रश्नों को नहीं समझ पाते हैं या गुप्त सूचनाएँ नहीं देना चाहते हैं तो जान-बूझकर वे ऐसे प्रश्नों के उत्तरों को टाल जाते हैं अथवा लापरवाही एवं शीघ्रता से भरने पर प्रश्नों के छूट जाने की संभावना भी बनी रहती है। इस प्रकार प्रश्नावली-विधि द्वारा संकलित सूचनाएँ अपर्याप्त एवं अपूर्ण होती हैं।

4. **अस्वच्छ एवं अस्पष्ट लेख** (Dirty and Illegible Writing)–प्रश्नावलियों को सूचनादाता स्वयं भरते हैं और सभी लोगों का लेख सुंदर नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्राप्त उत्तरों को पढ़ना एवं समझना एक समस्या हो जाती है। उत्तरों में काट-छांट एवं पुनर्लेखन (Over-writing), गंदे एवं घसीटमार लिखे अक्षर पढ़े नहीं जा सकते, अत: कई प्राप्त सूचनाएँ उपयोगी नहीं हो पातीं।

5. **प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन असंभव** (Representative Sampling Impossible)–प्रश्नावली विधि द्वारा अध्ययन के लिए चयनित निदर्शन क्षेत्र का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करता है क्योंकि क्षेत्र में शिक्षित एवं अशिक्षित सभी प्रकार के लोग होते हैं, किंतु प्रश्नावली का प्रयोग केवल शिक्षितों के लिए ही किया जा सकता है। अत: समग्र के संबंध में वैषयिक ढंग से सामान्यीकरण करना संभव नहीं हो पाता है।

6. **भावात्मक प्रेरणा का अभाव** (Lack of Emotional Stimulation)–प्रश्नावली विधि में सूचनादाता एवं अनुसंधानकर्ता में व्यक्तिगत एवं आमने-सामने का संपर्क नहीं हो पाता। अत: वे एक-दूसरे के विचारों को अच्छी तरह नहीं समझ सकते और न ही अनुसंधानकर्ता सूचनादाता को प्रश्नावली भरने के लिए भावात्मक प्रेरणा ही दे सकता है। अत: यह एक औपचारिक विधि मात्र रह जाती है जिसके परिणामस्वरूप अपूर्ण एवं अपर्याप्त सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

7. **सार्वभौमिक प्रश्नों का निर्माण असंभव** (Impossibility of Uniform Questions)–सूचनादाताओं के स्वभाव, विचारधारा, आदर्श, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि एवं शिक्षा के स्तर में पर्याप्त भिन्नता पायी जाती है। अत: ऐसी प्रश्नावली का निर्माण करना कठिन है जो सभी लोगों के लिए सार्थक एवं व्यावहारिक हो तथा जिसे समान रूप से सभी पर लागू किया जा सके। ऐसी स्थिति में निष्कर्षों का भिन्न-भिन्न आना स्वाभाविक है।

8. **गहन अध्ययन असंभव** (Deeper Study Impossible)–प्रश्नावली द्वारा विषय का गहन अध्ययन नहीं किया जा सकता क्योंकि एक तो समय का अभाव होता है, दूसरा अनुसंधानकर्ता की अनुपस्थिति के कारण खोद-खोदकर सूचनाएँ नहीं पूछी जा सकतीं और न ही भावात्मक प्रेरणा दी जा सकती है। अत: इसके द्वारा केवल मोटी-मोटी बातें एवं सतही सूचनाएँ ही एकत्रित की जा सकती हैं, गहन नहीं।

9. **विश्वसनीयता का अभाव** (Lack of Reliability)–प्रश्नावली द्वारा प्राप्त सूचनाएँ पूर्ण विश्वसनीय नहीं मानी जा सकतीं क्योंकि अनुसंधानकर्ता की अनुपस्थिति के कारण कई बार सूचनादाता प्रश्नों को समझ ही नहीं पाते या उनका गलत अर्थ लगाते हैं, ऐसी स्थिति में प्राप्त उत्तर प्रामाणिक एवं विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते।

10. **उत्तर लिखने में अनुसंधानकर्ता की सहायता का अभाव** (Lack of Assistance of the Investigator in Answering the Questions)–प्रश्नावली विधि में सूचनादाता कई बार कुछ प्रश्नों को समझने में असमर्थ रहता है जिसे समझाने के लिए वहाँ अनुसंधानकर्ता नहीं होता है। ऐसी स्थिति में उन प्रश्नों के उत्तर या तो छोड़ दिये जाते हैं या गलत लिख दिये जाते हैं।

13.8 प्रश्नावलियों के उदाहरण (Examples of Questionnaire)

किसी भी प्रश्नावली के दो प्रमुख भाग होते हैं, प्रथम भाग में सूचनादाता के बारे में प्रारंभिक जानकारी प्राप्त की जाती है, जैसे उसका नाम, पता, आयु, आय, शिक्षा, जाति, धर्म, व्यवसाय आदि। द्वितीय भाग में अध्ययन समस्या के बारे में प्रश्न किये जाते हैं। हम यहाँ नमूने के लिए बाल-अपराध से संबंधित प्रश्नावली प्रस्तुत कर रहे हैं।

बाल-अपराधियों के अध्ययन हेतु प्रश्नावली

1. नाम ....
2. स्थायी पता ....

नोट

3. आयु ....
4. जाति ....
5. धर्म ....
6. शिक्षा ....
7. व्यवसाय ....
8. मासिक आय ....
9. वैवाहिक स्थिति ....
   अविवाहित/विवाहित/विधवा/विधुर/तलाकशुदा
10. आपके परविार का आकार क्या है?

क्रम संख्या	नाम	सूचनादाता से संबंध	आयु	शिक्षा	आय

13.9 सारांश (Summary)

- बोगार्डस के अनुसार "प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने के लिए प्रेषित की गई प्रश्नों की एक सूची है।"
- प्रश्नावली का निर्माण करने के बाद डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजे जाने से पूर्व एक छोटे से निदर्शन क्षेत्र में उसकी जाँच कर लेनी चाहिए।
- एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषता है, प्रश्न सरल एवं बोधगम्य हों।

13.10 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रश्नावली**–प्रश्नावली किसी भी अध्ययन विषय से संबंधित प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेजा जाता है जिसे सूचनादाता स्वयं भरकर पुन: लौटाता है।
2. **सहभागी पत्र (Accompanying Letter)**–अनुसंधान करने वाली संस्था अथवा व्यक्ति द्वारा एक पत्र भेजा जाता है। जिसे सहभागी पत्र कहते हैं।

13.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. एक अच्छी प्रश्नावली की विशेषता बताएँ।
2. प्रश्नावली के प्रकारों को बताएँ।
3. प्रश्नावली विधि के महत्त्व और सीमाएँ क्या हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. दशाओं 2. विषय 3. अपर्याप्त, अस्पष्ट एवं अपूर्ण।

13.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शोध प्रविधि—डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।
2. शिक्षा का समाजशास्त्र—तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

नोट

इकाई–14: साक्षात्कार (Interview)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
14.1 साक्षात्कार (Interview)
14.2 सारांश (Summary)
14.3 शब्दकोश (Keywords)
14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- साक्षात्कार की अवधारणा से अवगत कराना।
- किसी व्यक्ति से साक्षात्कार किस प्रकार लेना चाहिए? इसकी जानकारी।
- साक्षात्कार के उद्देश्य, गुण-दोषों के बारे में जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक अनुसंधान की सर्वाधिक प्रचलित प्रविधियों में संभवतः इस प्रविधि का स्थान सर्वोपरि है। इस प्रविधि की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अनुसंधानकर्ता अपनी अध्ययन, वस्तु-मनुष्य से आमने-सामने के संबंध (Face to face relationship) स्थापित कर वार्तालाप कर सकता है और इस प्रकार मनुष्य की भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का क्रमबद्ध अध्ययन कर सकता है।

14.1 साक्षात्कार (Interview)

अंग्रेजी का 'इन्टरव्यू' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– 'inter' अर्थात् 'भीतर' अथवा 'अन्दर' तथा 'view' अर्थात् 'दृष्टि' या 'देखना'। दोनों शब्दों का सम्मिलित अर्थ है 'अन्तर-दर्शन' अथवा 'अन्तर-दृष्टि'। दोनों शब्दों में जिन अप्रकट अथवा अदृश्य तथ्यों का बाह्य रूप से निरीक्षण नहीं हो सकता, उन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना ही साक्षात्कार कहलाता है। विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार को निम्नांकित रूप से परिभाषित किया है:

सी.ए. मोजर के अनुसार, "एक सर्वेक्षण साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तरदाता के मध्य एक वार्तालाप है, जिसका उद्देश्य उत्तरदाता से निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।"

पी.वी. यंग के शब्दों में, "साक्षात्कार को एक ऐसी क्रमबद्ध प्रणाली के रूप में माना जा सकता है, जिसके

द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में थोड़ा-बहुत कल्पनात्मक रूप से प्रवेश करता है जो कि उसके लिए सामान्यतया तुलनात्मक रूप से अपरिचित होता है।"

एम.एन. बसु के अनुसार, "एक साक्षात्कार को कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने-सामने का मिलन कहा जा सकता है।"

सिन पायो येंग के अनुसार, "साक्षात्कार क्षेत्रीय कार्य की एक ऐसी प्रविधि है जो कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार को देखने, कथनों को लिखने तथा सामाजिक या सामूहिक अन्त:क्रिया के वास्तविक परिणामों का निरीक्षण करने के लिए प्रयोग में लायी जाती है। अत: यह एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें दो व्यक्तियों के मध्य अन्त:क्रिया सम्मिलित होती है।"

गुडे तथा **हाट** ने साक्षात्कार को मूलरूप से सामाजिक अन्त:क्रिया की एक प्रक्रिया माना है। **हैडर** तथा **लिण्डमेन** ने साक्षात्कार को दो अथवा अधिक व्यक्तियों के मध्य एक संवाद माना है जिसमें मौखिक उत्तर-प्रत्युत्तर होते हैं। **पामर** ने साक्षात्कार को एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया माना है जिसमें दो व्यक्तियों के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर होते हैं। **लूथर फ्राई** का मत है कि साक्षात्कार सामग्री-संग्रहण की एक प्रणाली है, यह किसी निश्चित उद्देश्य हेतु वार्तालाप के अलावा कुछ भी नहीं है। इसमें दो या अधिक व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे से प्रेरणा पाते हुए उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं।

नोट्स साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर आमने-सामने होकर संवाद, वार्तालाप एवं उत्तर-प्रति-उत्तर करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता की भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों एवं आंतरिक जीवन का अध्ययन करता है। यह एक सामाजिक प्रक्रिया भी है।

साक्षात्कार की विशेषताएँ (Characteristics of Interview)

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर साक्षात्कार की निम्न विशेषताएँ प्रकट होती हैं–

1. साक्षात्कार के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है जो परस्पर संपर्क, वार्तालाप एवं अंत:क्रिया करते हैं।
2. इन व्यक्तियों में एक साक्षात्कार लेने वाला होता है और दूसरा उत्तरदाता।
3. साक्षात्कार एक सामाजिक प्रक्रिया है।
4. साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है।
5. यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया भी है।
6. साक्षात्कार में दोनों पक्षों के बीच आमने-सामने के और प्राथमिक संबंध स्थापित हो जाते हैं।
7. साक्षात्कार में अनुसंधानकर्ता द्वारा अध्ययन विषय से संबंधित सूचनाओं एवं तथ्यों का संकलन किया जाता है।
8. साक्षात्कार सूचना संकलन की एक मौखिक विधि है।

साक्षात्कार के उद्देश्य (Objectives of Interview)

साक्षात्कार के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं–

1. प्रत्यक्ष संपर्क द्वारा सूचनाएँ (Informations through Direct Contact)–साक्षात्कार में दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य आमने-सामने के प्रत्यक्ष एवं प्राथमिक संबंध स्थापित हो जाते हैं और इस स्थिति

नोट

में अनुसंधानकर्ता सूचनादाता से विषय से संबंधित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन करता है। अनुसंधानकर्ता अपनी उपस्थिति के कारण सूचनादाता को सूचनाएँ देने के लिए प्रेरित करता है, वे दोनों खुलकर वार्तालाप करते हैं, सूचनादाता अपनी आंतरिक सूचनाएँ प्रदान करता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष संपर्क के द्वारा अनुसंधानकर्ता सूचनादाता की आंतरिक भावनाओं, संवेगों, मनोवृत्तियों, धारणाओं एवं इच्छाओं आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करता है जो साक्षात्कार के अतिरिक्त किसी अन्य विधि द्वारा साधारणत: संभव नहीं है।

2. **उपकल्पनाओं का स्रोत** (Source of Hypothesis)—साक्षात्कार का एक उद्देश्य उपकल्पनाओं के निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करना है। साक्षात्कार के दौरान व्यक्ति और समूहों के बारे में नवीन ज्ञान का उद्घाटन होता है, नये क्षेत्रों का पता लगता है, लोगों की भावनाओं, मनोवृत्तियों, विचारों एवं आकाँक्षाओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, व्यक्ति एवं सामूहिक जीवन के संबंध में उपयोगी अनुभव प्राप्त होते हैं जिनका प्रयोग नवीन उपकल्पनाओं के निर्माण हेतु किया जा सकता है।

3. **व्यक्तिगत तथ्यों की प्राप्ति** (Personal Information)—साक्षात्कार का उद्देश्य लोगों के जीवन से संबंधित व्यक्तिगत एवं आंतरिक सूचनाएँ प्राप्त करना भी है। ऐसी सूचनाएँ जिन्हें **पी. वी. यंग** 'मानव व्यक्तित्व का एक चित्र' कहकर पुकारती हैं और जो वैयक्तिक अध्ययनों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती हैं, भी साक्षात्कार द्वारा ही प्राप्त की जा सकती हैं।

4. **गुणात्मक तथ्यों के लिए** (For Qualitative Informations)—मानव जीवन से संबंधित ऐसे गुणात्मक तथ्य हैं जैसे भावनाएँ, मनोवृत्तियाँ, उद्वेग, आकाँक्षाएँ, विचार, लोकविश्वास, प्रवृत्तियाँ, मूल्य, आदर्श, रुचियाँ आदि जिनका अध्ययन केवल साक्षात्कार द्वारा ही संभव है। इन्हें हम संख्या में प्रकट नहीं कर सकते।

5. **अवलोकन का अवसर** (Opportunity for Observation)—साक्षात्कार से व्यक्तिगत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करने के साथ-साथ व्यक्ति के व्यवहार और जीवन की बहुत-सी बातों का अवलोकन करने का अवसर भी प्राप्त होता है। इस प्रकार साक्षात्कार में अवलोकन एवं साक्षात्कार दोनों के गुण पाये जाते हैं।

6. **अन्य विधियों से प्राप्त सामग्री का सत्यापन** (Verification of informations received through other Methods)—साक्षात्कार का एक उद्देश्य प्रश्नावली, अवलोकन एवं अन्य विधियों द्वारा प्राप्त सामग्री की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता ज्ञात करना भी है। कई बार कुछ तथ्य प्रश्नावली एवं अवलोकन से स्पष्ट नहीं होते, तब सूचनादाताओं से साक्षात्कार द्वारा पूछकर उन्हें ज्ञात किया जाता है।

7. साक्षात्कार का एक उद्देश्य समस्या के बारे में **विभिन्न विचारों तथा अतिरिक्त सूचनाओं को ज्ञात करना भी है।**

8. साक्षात्कार के द्वारा किसी **घटना के लिए उत्तरदायी कारकों की खोज** की जाती है। उन कारकों के सह-संबंधों एवं प्रभावक कारकों को भी ज्ञात किया जाता है।

साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview)

विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार के उद्देश्यों, अवधि, क्षेत्र, औपचारिकता, उपागम के आधार, भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या आदि के आधार पर साक्षात्कार के प्रकारों का उल्लेख किया है। हम यहाँ विभिन्न प्रकार के साक्षात्कार का उल्लेख करेंगे—

1. उद्देश्य के आधार पर (On the Basis of Purpose)

1. **निदानात्मक साक्षात्कार** (Diagonistic Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या के कारणों को ज्ञात करना होता है। जिस प्रकार से एक डॉक्टर रोग के कारणों को जानने के लिए रोगी से पूछताछ करता है, उसी प्रकार से सामाजिक समस्याओं एवं घटनाओं के कारणों को जानने के लिए अनुसंधानकर्ता सूचनादाता से साक्षात्कार करता है। उदाहरण के लिए, अपराध, बाल-अपराध, बेकारी आदि समस्याओं के कारणों को जानने के लिए किये जाने वाले साक्षात्कार निदानात्मक साक्षात्कार ही हैं।

2. **उपचारात्मक साक्षात्कार** (Treatment Interview)—सामाजिक समस्या के कारणों को जान लेने मात्र

नोट

से ही समस्या का हल नहीं हो जाता वरन् समस्या को दूर करने के लिए लोगों से सुझाव एवं उपाय भी पूछे जाते हैं। ऐसे साक्षात्कार को उपचारात्मक साक्षात्कार कहा जाता है।

3. अनुसंधानात्मक साक्षात्कार (Research Interview)–अनुसंधानात्मक साक्षात्कार का उद्देश्य सामाजिक जीवन एवं घटनाओं के बारे में नवीन ज्ञान एवं तथ्यों की खोज करना होता है। सूचनादाताओं की भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों, मूल्यों एवं आदर्शों आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के साक्षात्कार आयोजित किये जाते हैं।

2. सूचनादाताओं की संख्या के आधार पर (On the Basis of Number of Informants)

1. व्यक्तिगत साक्षात्कार (Personal Interview)–इस प्रकार के साक्षात्कार में एक समय में एक साक्षात्कार लेने वाला एवं एक सूचनादाता परस्पर विषय से संबंधित वार्तालाप करते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता प्रश्न पूछता जाता है और सूचनादाता उसका उत्तर देता जाता है। इसमें सूचनादाता को साक्षात्कारकर्ता से व्यक्तिगत प्रेरणा भी मिलती रहती है जिससे वह व्यक्तिगत तथ्यों को स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त करता है।

लाभ– (*i*) इस प्रकार के साक्षात्कार में विषय से संबंधित विश्वसनीय, सही एवं प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। यदि सूचनादाता किसी प्रश्न को नहीं समझ पाता है या गलत समझता है तो साक्षात्कारकर्ता उसके सही अर्थ को स्पष्ट कर सही सूचनाएँ प्राप्त कर सकता है। (*ii*) इस प्रकार के साक्षात्कार में संवेदनशील प्रश्नों को जिनमें उत्तरदाता के क्रोधित होने या भावुक होने का डर हो, इस प्रकार से हेर-फेर कर पूछा जा सकता है जिससे उसकी भावना को ठेस न लगे और उत्तर भी प्राप्त हो जाए। (*iii*) प्रश्नों की कठिन भाषा को भी साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के समक्ष सरल शब्दों में रख सकता है। (*iv*) ऐसे साक्षात्कार में प्राप्त सूचनाओं की जाँच संभव है। (*v*) इसमें विषय से संबंधित गहन एवं विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। (*vi*) इसमें अन्तरंग एवं घनिष्ठ संबंधों की स्थापना संभव होती है।

दोष– (*i*) इसमें अधिक समय, धन एवं श्रम खर्च होता है। (*ii*) इसमें पक्षपात आने की भी अधिक संभावना रहती है। (*iii*) इसमें प्रत्येक सूचनादाता से संपर्क स्थापित करना होता है जो कि एक कठिन कार्य है। (*iv*) इस प्रकार के साक्षात्कार का आयोजन एवं संगठन भी एक कठिन कार्य है।

2. सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview)–इस प्रकार के साक्षात्कार के अंतर्गत एक साक्षात्कारकर्ता एक समय में एक से अधिक व्यक्ति अथवा एक समूह से इच्छित एवं आवश्यक सूचनाओं को प्राप्त करता है। वह समूह में लोगों से बारी-बारी से प्रश्न कर सकता है अथवा किसी प्रश्न का उत्तर समूह का कोई नेता, व्यक्ति या सामूहिक रूप से भी दे सकते हैं। समूह के लोग मौन रहकर सूचनादाता के प्रति अपनी सहमति व्यक्त कर सकते हैं अथवा उसका विरोध और आलोचना भी कर सकते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा ऐसी सूचनाएँ संकलित की जाती हैं जिनका संबंध संपूर्ण समूह से हो।

लाभ– (*i*) यह कम खर्चीली विधि है। (*ii*) इसमें विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है। (*iii*) इसमें प्राप्त सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति के कारण संभव हो पाती है। उनसे घटना का स्पष्टीकरण प्राप्त किया जा सकता है। (*iv*) इससे काफी जनसंख्या वाले क्षेत्र में सामग्री का संकलन सरलता से किया जा सकता है। (*v*) इसमें व्यक्तिगत पक्षपात की संभावना नहीं रहती। (*vi*) इससे अधिक सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। (*vii*) इसमें कम कुशल व्यक्ति भी साक्षात्कार का संचालन कर सकता है।

दोष– (*i*) इसमें गोपनीयता का अभाव पाया जाता है। अतः इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा व्यक्तिगत जीवन से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं। (*ii*) इसका उपयोग गहन अध्ययनों के लिए नहीं किया जा सकता। (*iii*) समूह में कई उत्तरदाता प्रश्नों को समझने में असमर्थ रहते हैं, अतः सही उत्तर प्राप्त नहीं हो पाते।

नोट

3. अवधि के आधार पर (On the Basis of Duration)

सूचनादाताओं से संपर्क की अवधि के आधार पर साक्षात्कार को दो भागों में बाँटा गया है–

1. अल्पकालिक साक्षात्कार (Short term Interview)–कुछ साक्षात्कार ऐसे होते हैं जिनमें विषय से संबंधित कुछ छोटी-मोटी बातें ही जाननी होती हैं, और उनमें गिने-चुने प्रश्नों के ही उत्तर प्राप्त किये जाते हैं, अत: वे शीघ्र समाप्त हो जाते हैं। इसलिए इन साक्षात्कारों को अल्पकालिक साक्षात्कार कहा जाता है।

2. दीर्घकालिक साक्षात्कार (Long term Interview)–कुछ समस्याएँ ऐसी होती हैं जिनके बारे में गहन और विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी होती है, उनके लिए लंबी अवधि के साक्षात्कारों का आयोजन किया जाता है जो कई घण्टे, कई दिनों और महीनों तक भी चलाए जा सकते हैं। मनो-विश्लेषणकर्ता एवं मनोचिकित्सक मानसिक रोगियों के उपचार हेतु इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग करते हैं।

4. संरचना के आधार पर (On the Basis of Structure)

यहाँ साक्षात्कार में पहले से ही प्रश्नों का निर्माण किया जाता है अथवा मूल रूप से प्रश्न पूछे जाते हैं। इस आधार पर साक्षात्कार को निम्नांकित तीन भागों में बांटा गया है–

1. संरचित साक्षात्कार (Structured Interview)–इस प्रकार के साक्षात्कार में अध्ययन विषय से संबंधित कुछ प्रश्नों का पहले से ही निर्माण कर लिया जाता है और उन्हें एक व्यवस्थित क्रम में रख लिया जाता है। साक्षात्कारकर्ता इन प्रश्नों को सूचनादाता से पूछकर जानकारी प्राप्त करता है। प्रश्नों की इस सूची को **'साक्षात्कार अनुसूची'** (Interview Schedule) कहते हैं। साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार अनुसूची में दिए हुए प्रश्नों को उसी क्रम में पूछता है, उनमें हेर-फेर करने की उसे छूट नहीं होती है। इसमें साक्षात्कार का समय, अवधि तथा परिस्थिति आदि सभी का पूर्ण निर्धारण कर लिया जाता है ताकि साक्षात्कार में समानता बनी रह सके। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एवं सूचनादाता दोनों पर नियंत्रण बना रहता है। इस प्रकार के साक्षात्कार को नियोजित साक्षात्कार, निर्देशित साक्षात्कार या औपचारिक साक्षात्कार भी कहा जाता है। प्रशासकीय तथा विविध प्रकार के बाजार सर्वेक्षण एवं मतदान व्यवहार को ज्ञात करने के लिए इस प्रकार के साक्षात्कारों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कारों में पक्षपात आने की संभावना नहीं होती क्योंकि प्रश्नों का निर्माण पहले से ही कर लिया जाता है।

2. असंरचित साक्षात्कार (Unstructured Interview)–इस प्रकार के साक्षात्कार को अनिर्देशित, अनियंत्रित, अनौपचारिक तथा असंरचित साक्षात्कार भी कहते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता के पास प्रश्नों की कोई पूर्व-निर्धारित सूची नहीं होती है, वरन् विषय से संबंधित प्रश्नों का तत्काल ही निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार द्वारा सूचनादाता की भावनाओं, मनोवृत्तियों, विचारों एवं आदर्शों आदि को ज्ञात किया जाता है। इसमें साक्षात्कारकर्ता का मार्गदर्शन करने के लिए साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका (Interview-guide) का प्रयोग अवश्य किया जाता है, जिसमें विषय से संबंधित जिस प्रकार की जानकारी प्राप्त करनी हो, उसके बारे में मोटी-मोटी बातें लिखी होती हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग आदिम जनजातियों के अध्ययन में मानवशास्त्रियों ने काफी किया है। ऐसे साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता में उच्चस्तरीय ज्ञान और कुशलता की आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत नमनीयता या लचीलेपन की भी अधिक संभावना रहती है। इसमें साक्षात्कारकर्ता परिस्थिति के अनुसार प्रश्नों को बदलकर महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त करता है।

3. अर्द्ध-संरचित साक्षात्कार (Semi-structured Interview)–इस प्रकार का साक्षात्कार न तो पूर्ण रूप से संरचित होता है और न पूर्णत: असंरचित ही वरन् इसमें दोनों का सम्मिश्रण होता है। विषय से संबंधित कुछ प्रश्न तो पहले से ही निर्मित कर लिए जाते हैं और कुछ साक्षात्कारकर्ता स्वतंत्र रूप से पूछता है।

5. आवृत्ति के आधार पर (On the Basis of Frequency)

कई बार साक्षात्कार एक ही बार में पूर्ण हो जाता है और कई बार उसकी पुनरावृत्ति करनी पड़ती है। इस आधार पर साक्षात्कारों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है–

नोट

1. प्रथम या अन्तिम साक्षात्कार (First or final Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार में पहली बार में ही सारी सूचनाएँ संकलित कर ली जाती है और सूचनादाता से इस संदर्भ में बार-बार संपर्क की आवश्यकता नहीं होती इसलिए इसे प्रथम या अंतिम साक्षात्कार कहा जाता है। इस प्रकार का साक्षात्कार समस्या के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

2. पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग **लेजार्सफील्ड** ने किया था। जब किसी निरंतर परिवर्तित होने वाली प्रवृत्ति को ज्ञात करना हो अथवा विकास के प्रतिमान का पता लगाना हो तो इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। इसमें सूचनादाता से कुछ अवधि के बाद बार-बार भेंट कर सूचनाएँ संकलित की जाती हैं। किसी नगर पर बढ़ते हुए औद्योगीकरण के प्रभावों को ज्ञात करने के लिए इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि के कई लाभ होते हुए इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं, जैसे यह एक खर्चीली प्रणाली है। इसमें समय भी अधिक लगता है। इसके लिए स्थायी अनुसंधान संस्था का निर्माण करने की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही इसमें स्थायी सूचनादाताओं को भी खोजना पड़ता है।

6. संपर्क के आधार पर (On the Basis of Contact)

सूचनादाता से संपर्क के आधार पर साक्षात्कार को निम्न दो भागों में बाँटा गया है—

1. प्रत्यक्ष साक्षात्कार (Direct Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता एवं सूचनादाता परस्पर आमने-सामने होकर वार्तालाप करते हैं। इसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के हाव-भाव, चेहरे की अभिव्यक्ति आदि को देखकर उसके मनोभावों का अध्ययन कर सकता है।

2. अप्रत्यक्ष साक्षात्कार (Indirect Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता के आमने-सामने की स्थिति में नहीं होता है। टेलीफोन के द्वारा साक्षात्कार लेना अथवा पर्दे में रहने वाली स्त्रियों से पर्दा डालकर अथवा किसी मध्यस्थ व्यक्ति के माध्यम से सूचना एकत्रित करना अप्रत्यक्ष साक्षात्कार कहलाता है।

7. औपचारिकता के आधार पर (On the Basis of Formality)

1. औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview)—इसमें पहले से ही कुछ प्रश्न बनाकर लिख लिए जाते हैं। इनके अतिरिक्त नये प्रश्न बनाने व शब्दों में परिवर्तन करने की छूट साक्षात्कारकर्ता को नहीं होती है। इसे नियमित, संचालित व निर्देशित साक्षात्कार भी कहते हैं।

2. अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview)—इसमें साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नों को बनाने, क्रम परिवर्तन करने, अर्थ की व्याख्या करने, नये प्रश्न बनाने एवं प्रश्नों की शब्दावली में परिवर्तन करने की छूट होती है। इसमें साक्षात्कार के समय किसी भी प्रकार की अनुसूची की सहायता नहीं ली जाती है। इसे अनियंत्रित एवं अनिर्देशित साक्षात्कार भी कहते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. .... द्वारा सूचनादाता की भावनाओं, मनोवृत्तियों, विचारों तथा आदर्शों आदि को ज्ञात किया जाता है।
2. साक्षात्कारकर्त्ता का .... करने के लिए साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका का प्रयोग आवश्य किया जाता है।
3. इसके अंतर्गत .... की भी अधिक संभावना रहती हैं।

8. अध्ययन पद्धति के आधार पर (On the Basis of Methodology)

अध्ययन पद्धति के आधार पर साक्षात्कार को निम्नांकित दो भागों में बाँटा गया है—

1. केंद्रित साक्षात्कार (Focussed Interview)—इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिकन समाजशास्त्री **मर्टन** ने 1946 में सार्वजनिक संदेशवाहन के साधनों जैसे रेडियो, टी. वी. फिल्म, समाचार-पत्र आदि

नोट

के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रभावों को जानने के लिए किया था। आपने रेडियो के सामाजिक जीवन पर 150 प्रभावों का उल्लेख किया है। यह साक्षात्कार उन्हीं सूचनादाताओं का लिया जाता है जो अध्ययन विषय से संबंधित रहे हों। उदाहरण के लिए, किसी रेडियो कार्यक्रम को सुनने अथवा किसी फिल्म को देखने के बाद उसके प्रभाव को जानने के लिए श्रोताओं एवं दर्शकों का साक्षात्कार लिया जाता है। चूँकि इसमें किसी विशेष घटना, अवस्था या परिस्थिति के प्रभाव पर ही साक्षात्कार केंद्रित होता है, इसलिए इसे 'केंद्रित साक्षात्कार' कहा जाता है। इसकी निम्नांकित विशेषताएँ हैं–

(*i*) यह साक्षात्कार केवल उन्हीं लोगों का लिया जाता है जो उस विषय विशेष से संबंधित रह चुके हों।

(*ii*) इस प्रकार के साक्षात्कार में 'साक्षात्कार पथ-प्रदर्शिका' (Interview guide) का सहारा लिया जाता है। जिसमें विषय से संबंधित ज्ञात की जाने वाली बातों का उल्लेख होता है।

(*iii*) इस प्रकार का साक्षात्कार एक विशिष्ट परिस्थिति के प्रति सूचनादाता के अनुभवों, मनोवृत्तियों एवं भावनाओं को जानने के लिए किया जाता है।

(*iv*) इसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाताओं के उत्तरों को प्रभावित नहीं कर सकता है।

(*v*) इसमें घटना का पूर्व विश्लेषण कर प्रश्नों की एक सूची तैयार कर ली जाती है।

2. अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-directive Interview)–इसे अनियंत्रित एवं असंचालित साक्षात्कार भी कहते हैं। इसमें किसी कठिन समस्या के बारे में सूचनादाता से स्वतंत्रतापूर्वक प्रश्न पूछे जाते हैं। इसमें प्रश्नों की पूर्व निर्धारित अनुसूची नहीं होती है और न ही सूचनादाता पर उत्तर देने के संदर्भ में कोई नियंत्रण ही होता है। इसमें सूचनादाता मुक्त होकर विषय के बारे में सूचनाएँ देता है और साक्षात्कारकर्ता धैर्यपूर्वक उन्हें सुनता जाता है। यदि कोई सूचना छूट जाए तो सूचनादाता के द्वारा सारी बात कह देने के बाद ही अन्य प्रश्न पूछे जाते हैं। यह साक्षात्कार अनौपचारिक साक्षात्कार के समान ही है।

टास्क साक्षात्कार कितने प्रकार का होता है? वर्णन करें।

एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता के गुण (Qualities of a good Interviewer)

साक्षात्कार की सफलता बहुत कुछ साक्षात्कारकर्ता पर निर्भर होती है और साक्षात्कार लेना विज्ञान की अपेक्षा कला अधिक है, जैसा कि **पी. वी. यंग** ने लिखा है, "इसीलिए साक्षात्कार अधिकांश रूप में एक कला है न कि एक विज्ञान।" साक्षात्कार का सफल संचालन साक्षात्कारकर्ता की योग्यता एवं व्यवहार-कुशलता पर बहुत कुछ निर्भर करता है। कई बार सूचनादाता चतुर एवं मक्कार होते हैं तो कई बार वे मंदबुद्धि, डरपोक, अपनी बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहने वाले, झूठे एवं तथ्यों को छिपाने वाले होते हैं। साक्षात्कारकर्ता को इन सभी से संपर्क करना होता है और उनसे सूचनाएँ प्राप्त करनी पड़ती हैं, अत: उसमें अनेक गुणों का होना आवश्यक है। **एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में निम्नांकित गुण होने चाहिए–**

(*i*) साक्षात्कारकर्ता का व्यक्तित्व हँसमुख, प्रभावशाली एवं आकर्षक होना चाहिए।

(*ii*) उसमें धैर्य एवं सहनशीलता होनी चाहिए।

(*iii*) उसमें आत्म-नियंत्रण रखने की क्षमता होनी चाहिए।

(*iv*) उसे एक व्यवहारकुशल, विनम्र एवं चतुर व्यक्ति होना चाहिए।

(*v*) उसमें वाक्पटुता तथा हाजिरजवाबी का गुण होना चाहिए।

(*vi*) उसमें बौद्धिक ईमानदारी एवं निष्पक्षता होनी चाहिए।

(*vii*) साक्षात्कारकर्ता को बुद्धिमान होना चाहिए।

(*viii*) उसमें शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए।

(*ix*) उसमें समय एवं परिस्थिति के अनुसार अनुकूलन करने का गुण होना चाहिए।

साक्षात्कार विधि के गुण (महत्त्व) (Merits of Interview Method)

साक्षात्कार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा अनुसंधान विषय से संबंधित मौखिक सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। साक्षात्कार में व्यक्ति को अवलोकन का अवसर भी मिलता है। इसके द्वारा अनेक गुणात्मक एवं प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया जाता है। **गुडे** तथा **हाट** ने इसके महत्त्व को बताते हुए लिखा है, "आधुनिक अनुसंधान में साक्षात्कार करना गुणात्मक साक्षात्कार का फिर से मूल्यांकन करने हेतु अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।"

साक्षात्कार के महत्त्व अथवा गुणों को हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं–

1. मनोवैज्ञानिक महत्त्व (Psychological importance)–साक्षात्कार वह विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन संभव है। साक्षात्कार में व्यक्ति के उद्वेगों, भावनाओं, धारणाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, विचारों आदि का आसानी से अध्ययन संभव है। साक्षात्कार के दौरान सूचनादाता द्वारा प्रकट किये गये भावों, चेहरे की मुद्राओं आदि के आधार पर सूचनादाता के मनोवैज्ञानिक व्यवहार एवं मानसिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। बातचीत के दौरान भी सूचनादाता के कई मानसिक पक्ष उजागर होते हैं। इस प्रकार साक्षात्कार के द्वारा मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अवलोकन एवं अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

2. सभी स्तर के लोगों से सूचना प्राप्ति (Securing information from persons of all levels)–साक्षात्कार के द्वारा शिक्षित और अशिक्षित तथा विभिन्न संस्कृतियों से संबंधित सभी प्रकार के लोगों से संपर्क कर सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं क्योंकि साक्षात्कारकर्ता प्रश्नों को उनकी बुद्धि एवं स्तर के अनुसार समझाकर वांछित उत्तर प्राप्त कर सकता है।

3. भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन (Study of Past Events)–साक्षात्कार के द्वारा भूतकालीन घटनाओं एवं उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है क्योंकि कई घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनकी पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें उन लोगों का साक्षात्कार लेना होगा जिन्होंने उस घटना को देखा है, उससे संबंधित रहे हैं अथवा प्रभावित हुए हैं। उदाहरण के लिए, भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए किन-किन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा, यह बात हम उन लोगों के साथ साक्षात्कार द्वारा ज्ञात कर सकते हैं जो स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित रहे हैं।

4. अमूर्त्त घटनाओं का अध्ययन (Study of abstract Phenomena)–साक्षात्कार के द्वारा हम 'अमूर्त और अदृश्य घटनाओं का अध्ययन कर सकते हैं। व्यक्ति की मानसिक स्थिति, विचारों, भावनाओं, धारणाओं, संवेगों आदि का अध्ययन साक्षात्कार के द्वारा आसानी से किया जा सकता है। ये सभी अमूर्त तथ्य मानव व्यवहार को प्रभावित करते हैं, अत: इनका अध्ययन अनुसंधान की दृष्टि से आवश्यक है।

5. पारस्परिक प्रेरणा (Inter-stimulation)–साक्षात्कार में कम से कम दो व्यक्ति (साक्षात्कारकर्ता तथा सूचनादाता) आमने-सामने होते हैं, अत: वे परस्पर एक-दूसरे को प्रेरित, प्रोत्साहित एवं प्रभावित करते हैं। इस मित्रतापूर्ण वातावरण में दोनों एक-दूसरे से घनिष्ठता एवं मित्रता स्थापित कर लेते हैं। इसके परिणामस्वरूप सूचनादाता गोपनीय एवं महत्त्वपूर्ण तथ्यों को प्रकट कर देता है।

6. सूचनाओं का सत्यापन (Verification of information)–साक्षात्कार में सूचनादाता द्वारा दी गई सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं सत्यता साक्षात्कार के दौरान ही ज्ञात की जा सकती है। साक्षात्कार के दौरान खोजपूर्ण प्रश्न एवं प्रतिप्रश्नों के द्वारा सूचनाओं की सत्यता ज्ञात की जा सकती है। अपनी उपस्थिति के कारण साक्षात्कारकर्ता संदेहास्पद और अस्पष्ट बातों को भी सूचनादाता के समक्ष स्पष्ट कर देता है।

7. घटनाओं का अवलोकन (Observation of Events)–साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्ता को घटनाओं के बारे में न केवल प्रश्न पूछने की सुविधा होती है वरन् वह कई घटनाओं का अपनी आँखों से अवलोकन भी कर सकता है तथा इस आधार पर संग्रहित सामग्री की सत्यता को भी ज्ञात कर सकता है।

8. विविध सूचनाओं की प्राप्ति (Securing Various information)–साक्षात्कार के द्वारा विभिन्न प्रकार के

नोट

सूचनादाताओं से कई प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। विभिन्न वर्ग, जाति, धर्म, व्यवसाय, आय, आयु, लिंग तथा सामाजिक एवं शैक्षणिक स्तर के लोगों का साक्षात्कार लेकर अनुसंधान से संबंधित सूचनाओं का संकलन किया जा सकता है।

9. लचीली विधि (Flexible Method)—साक्षात्कार विधि विषयवस्तु एवं संचालन दोनों ही दृष्टियों से एक लचीली विधि है जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन करने के लिए किया जाता है।

साक्षात्कार विधि के दोष अथवा सीमाएँ (Demerits or Limitations of Interview Method)

साक्षात्कार विधि के अनेक गुण होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं। इस विधि का प्रयोग हम सभी प्रकार के अनुसंधानों में नहीं कर सकते, फिर प्रत्येक साक्षात्कारकर्ता से भी साक्षात्कार के सफल संचालन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। **श्रीमती यंग** ने लिखा है, "साक्षात्कारकर्ता समझदार होने पर भी दोषपूर्ण अंतर्दृष्टि, दोषपूर्ण स्मृति, सूक्ष्म दृष्टि की कमी तथा स्पष्ट अभिव्यक्ति की अयोग्यता से ग्रसित हो सकते हैं।" **हाइमन** ने भी लिखा है, "साक्षात्कारकर्ता प्राय: अपने सूचनादाताओं के पास एक निश्चित प्रकार की आशा लेकर जाते हैं कि वे किस रूप में विशेष प्रश्नों का उत्तर देंगे। कभी-कभी तो साक्षात्कार के दौरान ही शीघ्रतापूर्वक अथवा अपूर्ण उत्तरों के आधार पर ही यह आशा कर लेते हैं।" इन कथनों से साक्षात्कार की कुछ सीमाएँ प्रकट होती हैं। **हम यहाँ साक्षात्कार के प्रमुख दोषों अथवा सीमाओं का उल्लेख करेंगे—**

1. दोषपूर्ण स्मरणशक्ति (Faulty Memory)—साक्षात्कार में सूचनाओं को साक्षात्कार के दौरान नहीं लिखा जाता, अत: साक्षात्कारकर्ता की स्मरण-शक्ति पर भरोसा करना पड़ता है। प्रत्येक साक्षात्कारकर्ता से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह सभी बातों को याद रख पायेगा, अत: कुछ तथ्यों के भूल जाने या गलत नोट कर लिये जाने की संभावना रहती है। सूचनादाता से यह भी अपेक्षा नहीं की जा सकती कि उसे भूतकाल की सभी घटनाओं का सारा वृत्तान्त याद रहे। ऐसी स्थिति में संकलित तथ्य अपूर्ण एवं दोषयुक्त होते हैं।

2. अभिनति की संभावना (Possibility of Bias)—साक्षात्कार में व्यक्तिगत पक्षपात आने की संभावना रहती है, क्योंकि सूचनादाता और साक्षात्कारकर्ता के विचारों, मूल्यों और संस्कृति में भिन्नता होने पर एक ही घटना, प्रश्न और शब्दों का वे भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं। सूचनादाता तो अपने विचार प्रकट करते समय अपने व्यक्तिगत भावों एवं पक्षपात को जोड़ता ही है, स्वयं साक्षात्कारकर्ता भी उन्हें ग्रहण करने में पक्षपात से बच नहीं सकता। इसीलिए संकलित सामग्री की विश्वसनीयता संदिग्ध बनी रहती है।

3. हीनता की भावना (Inferiority Complex)—साक्षात्कार के लिए साक्षात्कारकर्ता को सूचनादाता के कई चक्कर लगाने पड़ते हैं, उसकी चापलूसी तक करनी पड़ती है। साक्षात्कार हेतु उसे अनेक प्रकार के लोगों के पास जाना पड़ता है जो उसके साथ अच्छा और बुरा सभी तरह का व्यवहार करते हैं, फलस्वरूप उसमें हीनता की भावना पनप जाती है, उसके आत्म-सम्मान को ठेस लगती है। अत: कई बार वह महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का संकलन विवशतावश नहीं कर पाता।

4. साक्षात्कारदाता पर निर्भरता (Dependence on Interviewee)—साक्षात्कार में सूचना का संकलन पूर्णत: साक्षात्कारदाता पर निर्भर करता है। कई बार वह अपनी इस स्थिति का दुरुपयोग भी करता है और साक्षात्कारकर्ता को अपने घर के कई चक्कर लगाने तक को मजबूर कर देता है। वह बहाने बनाकर उसे टालने का प्रयास भी करता है। इस प्रकार यह विधि पूर्णत: साक्षात्कारदाता की दया पर निर्भर है।

5. अशुद्ध रिपोर्ट (Inaccurate Report)—साक्षात्कारकर्ता द्वारा लिखित प्रतिवेदन में उसके व्यक्तिगत पक्षपात, विचारों एवं भावनाओं का समावेश होने के कारण रिपोर्ट में अशुद्धता आने की संभावना रहती है जो वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से ठीक नहीं है।

6. कुशल साक्षात्कारकर्ता की समस्या (Problem of expert Inerviewer)—साक्षात्कार की सफलता साक्षात्कारकर्ता की योग्यता, कुशलता, प्रशिक्षण, बुद्धि, वाक्पटुता एवं बौद्धिक ईमानदारी पर निर्भर है। सभी साक्षात्कारकर्ताओं से इन गुणों की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

14.2 सारांश (Summary)

- एम.एन. बसु के अनुसार, "एक साक्षात्कार को कुछ विषयों को लेकर व्यक्तियों के आमने-सामने का मिलन कहा जा सकता है।"
- साक्षात्कार का उद्देश्य उत्तरदाता से एक निश्चित सूचना प्राप्त करना होता है।
- विभिन्न विद्वानों ने साक्षात्कार के उद्देश्यों, अवधि, क्षेत्र, औपचारिकता, उपागम के आधार, भाग लेने वाले व्यक्तियों की संख्या आदि के आधार पर साक्षात्कार के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है।
- एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए।

14.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **साक्षात्कार-विधि (Interview Method)**–एक व्यक्ति अथवा समूह के साथ विशिष्ट प्रयोजन से आयोजित औपचारिक वार्तालाप की प्रक्रिया साक्षात्कार विधि कहलाती है।
2. **निदानात्मक साक्षात्कार (Diagnostic-Interview)**–जब साक्षात्कार का मुख्य उद्देश्य किसी घटना अथवा समस्या के कारणों को जानना होता है, तब इसे निदानात्मक साक्षात्कार कहते हैं।

14.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. एक अच्छे साक्षात्कारकर्ता में क्या-क्या गुण होने चाहिए?
2. अध्ययन पद्धति के आधार पर केंद्रित साक्षात्कार का क्या अर्थ है?
3. साक्षात्कार विधि के महत्त्व बताएँ।
4. संरचना के आधार पर साक्षात्कार के प्रकारों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. साक्षात्कार 2. मार्ग दर्शन 3. नम नीयता या लचीलापन।

14.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. शिक्षा का समाजशास्त्र–तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

2. व्यावहारिक शोध की विधियाँ–डॉ. जय भगवान, फ्रेंड्स पब्लिकेशंन (इंडिया)।

नोट

इकाई–15: अनुमापन एवं मापन (Scaling and Measurement)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
15.1 विषय-वस्तु : अनुमापन का अर्थ (Definition of Scales)
15.2 अनुमापों की उपयोगिता (Utility of Scales)
15.3 समाजशास्त्रीय अनुमाप की कठिनाइयाँ (Difficulties of Sociological Scaling)
15.4 अनुमापों के प्रकार (Types of Scales)
15.5 मनोवृत्तियों की माप (Measurement of Attitudes)
15.6 मनोवृत्तियों को मापने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Measuring Attitudes)
15.7 मनोवृत्तियों को मापने की विधियाँ (Methods of Measuring Attitudes)
15.8 मत-मापक पैमाना (Opinion Scale)
15.9 थर्सटन पैमाना विधि (Thurstone Method of Scale)
15.10 लिकर्ट पैमाना–विधि (Likert Method of Scale)
15.11 अंक पैमाने (Point Scales)
15.12 सारांश (Summary)
15.13 शब्दकोश (Keywords)
15.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
15.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अनुमापों की उपयोगिता की जानकारी।
- मनोवृत्तियों की माप की विधियों की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुमापन प्रविधियाँ उन प्रणालियों की द्योतक हैं जिनके द्वारा हम किसी वस्तु या घटना (phenomenon) की पैमाइश करते व उसकी किसी विशेषता को गणनात्मक रूप में व्यक्त करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि हम यह कहते हैं कि पैमाइश करने पर एक कपड़े का टुकड़ा दो मीटर का है तो हम कपड़े की एक विशेषता अर्थात् लंबाई को गणनात्मक रूप में व्यक्त करते हैं और कपड़े की लंबाई के संबंध में एक स्पष्ट व निश्चित धारणा पनपाने में दूसरों

की मदद करते हैं। भौतिक या प्राकृतिक चीजों की इस प्रकार की पैमाइश सरल है क्योंकि उन्हें मापने के लिए निश्चित पैमानों का विकास कर लिया गया है। उदाहरणार्थ, गर्मी व सर्दी को मापने व माप के परिणामों को डिग्रियों में अभियुक्त करने के लिए विशेष उपकरण हैं, बुखार को मापने के लिए थर्मामीटर, भौतिक वस्तुओं की लंबाई मापने के लिए गज, फीट, मीटर आदि और तरल पदार्थों की माप को गलन आदि में व्यक्त करने के लिए विशेष उपकरण हैं। उसी प्रकार किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई, धारिता (capacity), भार या वजन मापने में भी मनुष्य समर्थ है।

15.1 विषय-वस्तु : अनुमापन का अर्थ (Definition of Scales)

विविध प्रकार की वस्तुओं की पैमाइश करने के लिए वह विविध प्रकार के अनुमानों का प्रयोग करता है और उन्हें निश्चित रूप में मापने में सफल भी होता है। परंतु जब यही काम सामाजिक घटनाओं (Social Phenomenon) के संबंध में करने को होता है तो वह अत्यंत कठिन और कभी-कभी असंभव-सा प्रतीत होने लगता है क्योंकि अधिकांश सामाजिक घटनाएँ अमूर्त, जटिल तथा परिवर्तनशील हैं। उदाहरणार्थ, किसी विषय के संबंध में एक व्यक्ति के विचार, दृष्टिकोण मनोवृत्ति, विश्वास या मान्यता आदि गुणात्मक व अमूर्त चीजों को मापना कोई सरल काम नहीं है। फिर भी परिशुद्ध एवं सही माप किसी भी विज्ञान की परिपक्वता (maturity) एवं प्रगति का प्रतीक है। इसलिए समाज-शास्त्र के लिए भी यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने को इस योग्य बनाने के लिए प्रयत्नशील हो कि अमूर्त सामाजिक घटनाओं को भी ठीक-ठीक मापा जा सके। अतएव सामाजिक अनुसंधान के संदर्भ में अनुमापन (Scaling) का तात्पर्य पैमाइश की उस विधि से है जिसके द्वारा गुणात्मक (qualitative) तथा अमूर्त (abstract) सामाजिक तथ्यों या घटनाओं (phenomena) को गणनात्मक या परिमाणात्मक (quantitative) स्वरूप दिया जाता है।

नोट्स गुडे तथा हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है, "अनुमापन प्रविधियों में अंतर्निहित समस्या इकाइयों की श्रेणियों को एक क्रम के अंतर्गत व्यवस्थित करने की विधि है।

दूसरे शब्दों में, "अनुमापन प्रविधियाँ गुणात्मक तथ्यों की श्रेणियों को गणनात्मक श्रेणियों में बदलने की पद्धतियाँ हैं।" इस अध्ययन में हम इन्हीं पद्धतियों के संबंध में विवेचना करेंगे।

15.2 अनुमापों की उपयोगिता (Utility of Scales)

परिशुद्ध एवं सही माप करने की क्षमता इस बात की द्योतक है कि एक विज्ञान कितना प्रगति कर चुका है। समाजशास्त्र के लिए यह काम सरल नहीं है क्योंकि इसे मनोवृत्ति, विचार सामाजिक स्थिति, सामाजिक दूरी आदि अमूर्त व गुणात्मक घटनाओं को मापना पड़ता है और इनका प्रत्यक्ष व सही माप संभव नहीं है। उदाहरणार्थ, हरिजनों के प्रति एक ब्राह्मण के मनोभाव का माप करना उतना सरल नहीं है जितना कि किसी भौतिक वस्तु के वजन, लंबाई अथवा चौड़ाई ज्ञात करना है। इसका प्रमुख कारण यही है कि अधिकांश सामाजिक घटनाएँ न केवल जटिल हैं अपितु वे परिवर्तनशील तथा गुणात्मक भी हैं। उनकी प्रकृति गुणात्मक होने के कारण उनका वस्तुनिष्ठ (Objective) एवं गणनात्मक माप एक कठिन समस्या बन जाता है।

क्या आप जानते हैं विज्ञान का काम तो समस्याओं व बाँधाओं की चुनौतियों को स्वीकार करना है और समाजशास्त्र ने भी यही किया है क्योंकि घटनाओं को ठीक-ठीक मापने की क्षमता को विकसित किए बिना समाजशास्त्र के लिए अपनी वैज्ञानिक प्रस्थिति (scientific status) को बनाए रखना संभव नहीं हो सकता।

नोट

वैसे भी अनुमापों की आवश्यकता व उपयोगिता सभी विज्ञानों के लिए है और विकासशील सामाजिक विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र के लिए तो अनुमापों की उपयोगिता और भी अधिक है। निम्नलिखित विवेचना से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी–

1. वैज्ञानिक परिपक्वता की प्राप्ति के लिए (For Attaining Scientific Maturity)–अनुमापों की प्रथम उपयोगिता यह है कि ये विज्ञान को इस योग्य बना देते हैं कि वह अपने अध्ययन-विषय के अंतर्गत आने वाली घटनाओं का सही व प्रामाणिक माप कर सके। इसके बिना कोई भी विज्ञान परिपक्वता व प्रगति की ओर आगे नहीं बढ़ सकता है। प्रगतिशील व विकासशील होना प्रत्येक विज्ञान की एक उल्लेखनीय आवश्यकता है और इसकी पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक अनुमापन प्रविधियों की भी उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि न होती जाए। सर्वश्री गुडे तथा हॉट (Goode and Hatt) ने लिखा है, "सभी विज्ञान अधिकतम परिशुद्धता की दिशा में अग्रसर होते हैं। इस परिशुद्धता के अनेक रूप होते हैं, पर उसका एक आधारभूत रूप है क्रमबद्ध श्रेणियों का माप।" यह माप अनुमापन प्रविधियों की सहायता से ही संभव हो सकता है अत: स्पष्ट है कि अधिकतम परिशुद्धता की प्राप्ति के लिए ये प्रविधियाँ आवश्यक हैं।

2. वस्तुनिष्ठ माप के लिए (For Objective Measurement)–सामाजिक अनुसंधानों में सामाजिक घटनाओं की वास्तविकताओं का अध्ययन और उस अध्ययन द्वारा यथार्थ व निर्भरयोग्य निष्कर्ष निकालना तभी संभव हो सकता है जबकि हम एक घटना विशेष का वस्तुनिष्ठ माप कर सकें। वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए गणनात्मक विवेचना अत्यंत आवश्यक होती है और यह काम अनुमापन प्रविधियों की सहायता से ही संभव हो सकता है। यदि सामाजिक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ माप न किया गया तो सदैव ही यह डर बना रहेगा कि सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक होने के कारण प्रत्येक अनुसंधानकर्ता उनका अलग-अलग अर्थ लगाएगा जिसके फलस्वरूप घटनाओं के विश्लेषण में किसी भी प्रकार की सुस्पष्टता पनप ही नहीं सकेगी। सभी के लिए समान वस्तुनिष्ठ व तटस्थ निष्कर्ष निकालना तभी संभव है जब कि विभिन्न सामाजिक घटनाओं को मापने की सुनिश्चित प्रणाली या पैमाना हमारे पास हो। अत: सामाजिक घटनाओं के वस्तुनिष्ठ माप के लिए भी अनुमापन प्रविधियों की अत्यंत आवश्यकता है और यही उनकी उपयोगिता व महत्त्व भी है।

भौतिक विज्ञान अधिक परिपक्व व परिशुद्ध है क्योंकि इसमें संख्यात्मक माप की प्रविधियाँ अत्यंत विकसित रूप में हैं। पर इन प्रविधियों का इतना अधिक विकास समाजशास्त्र अभी नहीं कर पाया है, फिर भी इस दिशा में प्रयत्नशीलता की कुछ भी कमी नहीं है। कोई भी विज्ञान आरंभ से ही गणनात्मक परिशुद्धता को प्राप्त नहीं कर लेता है। जैसे-जैसे उस विज्ञान की प्रगति होती जाती है वैसे-वैसे गणनात्मक परिशुद्धता भी बढ़ती जाती है क्योंकि धीरे-धीरे अनुमापन प्रविधियों का भी विकास होता जाता है। यही स्थिति समाजशास्त्र की भी है। डॉ० पी० वी० यंग (P.V. Young) ने उचित ही लिखा है कि "यद्यपि इस क्षेत्र में अर्थात् अनुमापन प्रविधियों के विकास के क्षेत्र में बहुत-सा कार्य अभी आरंभिक स्तर पर है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि एक विज्ञान के रूप में जैसे-जैसे समाजशास्त्र परिपक्व होता जाएगा, वैसे-वैसे विद्यमान मापक यंत्रों तथा प्रविधियों में अधिक उन्नति होगी और साथ ही अन्य अनेक नवीन व अधिक परिशुद्ध मापक प्रविधियाँ विकसित होंगी।"

15.3 समाजशास्त्रीय अनुमाप की कठिनाइयाँ (Difficulties of Sociological Scaling)

पैमाने के निर्माण में आने वाली उपरोक्त सामान्य कठिनाइयों के अतिरिक्त भी समाजशास्त्रीय अनुमापों (पैमानों) के निर्माण में कुछ अन्य कठिनाइयों का सामना भी हमें करना पड़ता है। इसका कारण सामाजिक घटनाओं की अपनी विशिष्ट प्रकृति है। निम्नलिखित विवेचना से सामाजिक घटनाओं की प्रकृति के संदर्भ में समाजशास्त्रीय पैमानों को बनाने में आने वाली कठिनाइयों का स्पष्टीकरण हो सकेगा–

1. सामाजिक घटनाओं की जटिलता (Complexity of Social Phenomena)–सामाजिक तथ्यों को मापने

नोट

के लिए पैमानों को बनाने में सर्वप्रथम कठिनाई इस कारण उत्पन्न होती है कि सामाजिक घटनाएँ जटिल होती हैं। प्रत्येक सामाजिक तथ्य प्राय: कई कारकों का परिणाम होता है और इसीलिए यह निश्चित करना कठिन हो जाता है कि पैमाने के निर्माण में इनमें से किस कारक को महत्त्व दिया जाए। साथ ही ये सभी तथ्य या कारक एक-दूसरे के साथ इतने अधिक घुले-मिले होते हैं अर्थात् उनमें इतना अधिक अंत: संबंध अंत: निर्भरता पाई जाती है कि उनकी अलग-अलग माप नहीं की जा सकती।

2. सामाजिक घटनाओं की अमूर्तता (Abstractness of Social Phenomena)–समाजशास्त्रीय पैमाने के निर्माण में आने वाली दूसरी कठिनाई सामाजिक घटनाओं की अमूर्तता है। अर्थात् ये गुणात्मक हैं और गुणात्मक तथ्यों की गणनात्मक या परिमाणात्मक (quantitative) रूप में माप एक कठिन समस्या बन जाती है। सामाजिक प्रस्थिति, विचार, प्रेम, पक्षपात, घृणा मनोवृत्ति आदि सभी सामाजिक घटनाएँ अमूर्त या गुणात्मक (qualitative) हैं और इसीलिए यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि इनको गुणात्मक रूप में कैसे अभिव्यक्त किया जाए।

3. सामाजिक घटनाओं की असमानता (Heterogeniety of Social Phenomena)–समाजशास्त्रीय पैमानों को बनाना इसलिए भी अत्यधिक कठिन हो जाता है क्योंकि सामाजिक घटनाओं में अत्यधिक असमानता पाई जाती है। मानव समाज में विभिन्न समूह पाये जाते हैं। उनकी प्रत्येक की अपनी संस्कृति, प्रथा, परंपरा, आदर्श, मूल्य, भाषा, धर्म, विश्वास, जाति, प्रजाति आदि होती हैं और इन्हीं के आधार पर उनमें न जाने कितने प्रकार के विभेद होते हैं। इसके अतिरिक्त एक ही समूह के विभिन्न सदस्यों के विचार, भावना, आदर्श, जीवन मूल्य, विश्वास, धर्म आदि के आधार पर विविधताएँ होती हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि किसी भी समाजशास्त्रीय पैमाने पर पूर्णतया निर्भर नहीं किया जा सकता और न ही एक समूह के लिए तैयार किए गए पैमाने को दूसरे समूह पर लागू किया जा सकता है।

नोट्स ब्राह्मणों के धर्म संबंधी कट्टरपन को मापने के लिए जिस पैमाने का निर्माण किया जाएगा उसे हरिजनों पर लागू नहीं किया जा सकता।

4. मानवीय व्यवहार की परिवर्तनशीलता (Changing Nature of Human Behaviour)– मानव-व्यवहार निरंतर परिवर्तनशील है और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्य के व्यवहारों में भी अनेक प्रकार के परिवर्तन उत्पन्न होते रहते हैं। एक ही विषय के संबंध में आज जो विचार है, कुछ दिनों के पश्चात् भी वही विचार स्थिर रहेगा ऐसा कहा नहीं जा सकता। अत: समस्या यह होती है कि एक समय विशेष में तैयार किया गया कोई भी पैमाना दूसरे समय पर लागू नहीं किया जा सकता। इससे स्वत: ही पैमाना निर्माण करने का कार्य अत्यंत कठिन हो जाता है।

5. सामाजिक मूल्यों के सार्वभौमिक माप का अभाव (Absence of Universal Measurement of Social Values)–सामाजिक मूल्यों को मापने के लिए कोई भी सर्वप्रचलित या सर्वमान्य माप नहीं है। आर्थिक वस्तुओं के मूल्यों को मापने के लिए द्रव्य (money) एक सार्वभौमिक माप है। लेकिन इस संसार का कोई भी माप सामाजिक मूल्यों को मापने के लिए उपलब्ध नहीं है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति एवं समूह सामाजिक घटनाओं या तथ्यों का मूल्यांकन अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं। इससे नाना प्रकार की विविधताएँ और जटिलताएँ उत्पन्न होती हैं। जिसके कारण पैमाने के निर्माण का कार्य कठिन हो जाता है।

6. प्रयोगशाला-विधि को लागू नहीं किया जा सकता (Laboratory Method can not be applied)–सामाजिक घटनाओं की एक और उल्लेखनीय कमी यह है कि इसकी विशेषताओं के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला-पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में विभिन्न तथ्यों के सापेक्षिक महत्त्व का पता लगाना अत्यंत कठिन होता है और इसके बिना पैमानों का निर्माण भी सरलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है।

नोट

उपरोक्त कठिनाइयों के होते हुए भी सामाजिक घटनाओं या तथ्यों को मापने के लिए विभिन्न पैमानों का निर्माण किया गया है और इस दिशा में और भी उन्नति करने के लिए निरंतर प्रयत्न जारी है। इसीलिए यह आशा की जा सकती है कि गुणात्मक, जटिल व परिवर्तनशील समझी जाने वाली सामाजिक घटनाओं को भी सुनिश्चित माप लेना भविष्य में समाजशास्त्रियों के लिए संभव होगा।

15.4 अनुमापों के प्रकार (Types of Scales)

सामाजिक घटनाओं या तथ्यों को मापने के लिए अब तक कुछ पैमानों का विकास किया गया है; इनके संबंध में जान लेना यहाँ उपयोगी सिद्ध होगा। पर इस संबंध में यह स्मरणीय है कि इन विद्यमान अनुमापों या पैमानों को अधिक सुनिश्चित तथा परिशुद्ध बनाने के लिए भी निरंतर प्रयास किया जा रहा है। समाज-शास्त्रीय अध्ययन में जिन पैमानों का प्रयोग किया जाता है वे इस प्रकार हैं–

1. अंक पैमाना (Point Scale)–इस प्रकार के पैमाने में कुछ विशिष्ट शब्द या स्थितियाँ ले ली जाती हैं और प्रत्येक को एक अंक प्रदान कर दिया जाता है। फिर इन शब्दों या स्थितियों को सूचनादाता के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है और वह जिस शब्द या स्थिति के पक्ष में राय देना चाहता है उसके आगे क्रास (×) अथवा सही (✓) का चिह्न लगा देता है। सब सूचनादाताओं से इस प्रकार मत को जानकर फिर हिसाब लगाकर देखा जाता है कि किसके पक्ष में कितने मत आए हैं।

2. सामाजिक दूरी मापक पैमाना (Social Distance Scale)–इस प्रकार के पैमानों के द्वारा विभिन्न वर्गों अथवा व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले सामाजिक अंतर या भेद का पता लगाया जाता है। सामाजिक दूरी मापक पैमाने मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं–(अ) बोगार्डस का सामाजिक दूरी का पैमाना, (ब) समाजमिति पैमाना। **बोगार्डस के पैमाने** में कुछ ऐसी परिस्थितियों को चुन लिया जाता है जिससे कि सामाजिक दूरी की तीव्रता प्रगट हो। इन परिस्थितियों को तीव्रता के आधार पर एक क्रम में सजा दिया जाता है और फिर जिन समूहों के बीच सामाजिक दूरी का पता लगाना है उनके सम्मुख उस पैमाने को प्रस्तुत किया जाता है। जो जिस परिस्थिति के पक्ष में अपनी राय देता है उसे लिख लिया जाता है और इस प्रकार सभी सूचनादाताओं के मतों को जानने के पश्चात् सांख्यिकीय हिसाब लगाकर सामाजिक दूरी का अंदाजा लगाया जाता है। समाजमिति पैमाने में जिन व्यक्तियों के या समूह के बारे में अध्ययन करना होता है अथवा घृणा, प्रेम आदि के आधार पर सामाजिक दूरी या निकटता का पता लगाना होता है उनको एक-एक पर्ची दे दी जाती है और यह अनुरोध किया जाता है कि वे उन लोगों का नाम लिख दें जिन्हें कि वे सर्वाधिक चाहते हैं या नापसंद करते हैं। उनके उत्तरों के आधार पर सामाजिक दूरी या निकटता को मापा जाता है।

3. तीव्रता मापक पैमाने (Rating or Intensity Scales)–इस प्रकार के पैमाने के द्वारा लोगों के विचारों, मनोभावों आदि की तीव्रता की माप की जाती है। यह पैमाना उस समय अधिक उपयोगी सिद्ध होता है जबकि किसी विषय के संबंध में केवल दो विरोधी विचार न होकर इन दोनों के बीच अन्य विकल्प भी होता है। उदाहरण के लिए एक अफसर के प्रति उसके दफ्तर के कर्मचारियों का मनोभाव केवल अच्छा या बुरा नहीं हो सकता बल्कि कुछ लोग उसे बहुत अच्छा, कुछ लोग बहुत खराब और कुछ लोग औसत दर्जे का भी मान सकते हैं। इस पसंदगी या नापसंदगी को तीव्रता के आधार पर एक क्रम में लगा दिया जाता है जैसे–बहुत अच्छा/अच्छा/सामान्य/बुरा/बहुत बुरा। फिर इस पैमाने के प्रति विभिन्न कर्मचारियों के मनोभावों को मालूम किया जाता है और उसी के आधार पर यह मालूम किया जाता है कि अधिकांश कर्मचारी उस अफसर को किस सीमा तक पसंद करते हैं या नापसंद करते हैं अथवा उसे औसत दर्जे का (न अच्छा, न बुरा) मानते हैं।

4. श्रेणी सूचक पैमाने (Ranking Scales)–इस प्रकार के पैमानों में परिस्थितियों या तथ्यों को कुछ श्रेणियों में प्रस्तुत किया जाता है और उन्हें ऐसे क्रम से रखा जाता है कि उससे यह पता चल जाए कि एक की तुलना में किस दूसरे को लोग अधिक पसंद करते हैं।

15.5 मनोवृत्तियों की माप (Measurement of Attitudes)

मनोवृत्तियों को मापा भी जा सकता है और इसी संभावना ने मनोवृत्ति को सामाजिक मनोविज्ञान का एक केंद्रीय अध्ययन-विषय बना दिया है; क्योंकि विज्ञान में यथार्थता (exactness) का महत्त्व अत्यधिक है और जिस घटना (phenomenon) की माप संभव है उसमें यथार्थता की संभावना भी आप-से-आप होती है। इसीलिए मनोवृत्तियों की माप पर अत्यधिक बल दिया जाता है। साथ ही बहुत से सामाजिक सुधारों की सफलता अथवा असफलता बहुत-कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि लोगों की मनोवृत्तियों के संबंध में हमें यथार्थ ज्ञान हो। इसीलिए सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक, व्यापार तथा जीवन के अन्य अनेक क्षेत्रों में मनोवृत्तियों को मापने का और उन्हें काम में लाने का प्रयास किया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी चुनाव में लड़ने के पूर्व प्रत्याशी (candidate) को मतदाताओं की, उसके प्रति तथा विभिन्न समस्याओं के प्रति, मनोवृत्तियों का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है।

15.6 मनोवृत्तियों को मापने में कठिनाइयाँ (Difficulties in Measuring Attitudes)

यह सत्य है कि मनोवृत्तियों की माप मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, फिर भी मनोवृत्तियों को मापने का काम उतना सरल नहीं है जितना कि हम सामान्य रूप से समझते हैं। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं–

1. मनोवृत्तियों में व्यक्तिगत भिन्नताएँ अत्यधिक होती हैं, इस कारण उनकी माप यथार्थ रूप में नहीं हो पाती है। इतना ही नहीं, मनोवृत्ति में तीव्रता का भी अंतर प्रत्येक व्यक्ति में देखने को मिलता है। कुछ लोगों को दहेज से घृणा हो सकती है, पर इस घृणा की तीव्रता प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग हो सकती है।
2. इस संबंध में दूसरी कठिनाई यह है कि मनोवृत्तियाँ अमूर्त (abstract) होती हैं और अमूर्त को मापना अत्यंत कष्टकर होता है। कोई व्यक्ति क्या सोच रहा है, क्या-क्या अनुभव कर रहा है, इसका तो केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है और अनुमान पर अधिक भरोसा करना उचित नहीं समझा जाता है।
3. मनोवृत्तियाँ अत्यंत जटिल होती हैं। इसका कारण यह है कि किसी व्यक्ति अथवा समस्या के प्रति लोगों की मनोवृत्तियाँ अनेक कारणों से प्रभावित और परिवर्तित होती रहती हैं। इन समस्त प्रभावों तथा परिवर्तनों को टालकर मनोवृत्तियाँ को मापना कठिन होता है। अधिक से अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि अन्य परिस्थितियों के समान रहने पर किसी व्यक्ति-विशेष में अमुक मनोवृत्ति की संभावना पाई जा सकती है।
4. मनोवृत्तियों की माप में एक और कठिनाई किसी सही और सर्वमान्य पैमाने का अभाव है। भौतिक विद्वानों में इस प्रकार के यंत्रों तथा पैमानों का उपयोग अत्यधिक होता है। जैसे कि गर्मी को थर्मामीटर द्वारा डिग्रियों में मापा जा सकता है। वायु के भार को बैरोमीटर द्वारा इंचों में प्रकट किया जाता है, बिजली के मीटर की शक्ति हॉर्स-पावर (Horse-power) में तथा सूत की किस्म नंबरों (counts) में प्रकट की जाती है। परंतु मनोवृत्तियों के मापने के संबंध में इस प्रकार के अचूक तथा सर्वमान्य पैमानों के अभाव का अनुभव किया ही जाता है।

परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मनोवृत्तियों को मापा ही नहीं जा सकता है। धैर्यपूर्वक वैज्ञानिक विधियों को काम में लाने से मनोवृत्तियों की सही माप भी निकाली जा सकती है। अब हम संक्षेप में उन पैमानों का वर्णन करेंगे जिनके द्वारा मनोवृत्तियों को मापा जा सकता है।

15.7 मनोवृत्तियों को मापने की विधियाँ (Methods of Measuring Attitudes)

मनोवृत्ति को मापने के लिए कुछ निश्चित विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस संबंध में यह आवश्यक है कि उन विधियों व पैमानों को संक्षेप में समझ लिया जाए। मनोवृत्ति-माप के लिए जिन प्रमुख विधियों का प्रयोग किया जाता है वे निम्नलिखित हैं–

नोट

15.8 मत-मापक पैमाना (Opinion Scale)

मतों को मापने के लिए इस प्रकार के पैमानों का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है जिनकी सहायता से मनोवृत्ति के विषय में भी पता चल जाता है। इस विधि में एक ऐसे पैमाने का निर्माण किया जाता है कि जिसमें क्रम से ऐसे कथन (propositions or term) होते हैं जिनके प्रति व्यक्ति को अपनी स्वीकृति अथवा अस्वीकृति, सम्मति या असम्मति प्रकट करनी होती है। पैमाने में मनोवृत्ति को किसी चरम स्थिति से मापना आरंभ किया जाता है और फिर धीरे-धीरे विपरीत दिशा को बढ़ाना होता है। दूसरे शब्दों में, पैमाने में किसी में भी मनोवृत्ति के अभावात्मक से भावात्मक अथवा अनुकूल से प्रतिकूल रूप तक एक क्रमिक परिमाणात्मक विस्तार होता है। इस विस्तार में व्यक्ति के मतों के आधार पर एक औसत निकालकर उसकी मनोवृत्ति को मापा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि हम हरिजनों के प्रति मनोवृत्तियों को मापना चाहते हैं तो निम्नलिखित रूप से पैमाना बनाया जा सकता है–

1. आप हरिजनों से घृणा करते हैं।
2. आप हरिजनों के प्रति उदासीन हैं।
3. आपको हरिजनों के प्रति किंचित् स्नेह है।
4. आपको हरिजन प्रिय लगते हैं।
5. आप हरिजनों से घनिष्ठता करना चाहते हैं।

उपर्युक्त पैमाना मनोवृत्ति के एक लक्ष्य घृणा से आरंभ होता है और उसकी विपरीत अवस्था घनिष्ठता में समाप्त होता है। पर इन सबका उद्देश्य समान है। अर्थात् व्यक्ति को मापदंड पर एक ऐसा स्थान देने का प्रयास किया गया है जिससे व्यक्ति की मनोवृत्तियों की स्थिति का परिचय मिल जाए।

मत-मापक पैमाने द्वारा व्यक्तियों की मनोवृत्तियों की प्रत्यक्ष माप नहीं हो पाती है। इससे तो केवल विशेष कथनों के प्रति व्यक्ति की उन प्रतिक्रियाओं को जानने का प्रयास किया जाता है जो उसके मतों से अभिव्यक्त होती हैं। व्यक्ति का मत उसकी मनोवृत्ति की परछाई है–यह इस विधि का निर्देशक सिद्धांत है। इस विधि के अंतर्गत मापदंड या पैमाना बनाया जाता है। उसमें निम्नलिखित विशेषताओं का होना आवश्यक है–(1) पैमाने को विश्वसनीय (reliable) होना चाहिए, अर्थात् दो समान परिस्थितियों में प्राप्त होने वाली मापों में अधिक अंतर नहीं होना चाहिए। (2) पैमाने को सप्रमाण (Valid) होना चाहिए, अर्थात् पैमाने में ऐसे कथन (items) होने चाहिए जो यथार्थ या वास्तविक रूप से व्यक्ति की मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालें। (3) पैमाने के चरणों (steps) में पारस्परिक अंतर और विभेद होना चाहिए। (4) पैमाने के कथनों का व्यक्ति की मनोवृत्तियों से वैज्ञानिक संबंध होना चाहिए। (5) निर्णायकों (Judges) की मनोवृत्तियों का प्रभाव पैमाने के निदशों के चुनाव पर न पड़ना चाहिए। (6) ऐसे कथनों का चुनाव किया जाए कि विभिन्न मात्रा में मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों को विभिन्न श्रेणियों में बाँट सकें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इस विधि में प्रति व्यक्ति की अपनी .... प्रकट करनी पड़ती है।
2. इस विस्तार में व्यक्ति के .... के आधार पर एक औसत निकाल कर उसकी मनोवृत्ति को मापा जाता है।
3. व्यक्ति को .... पर एक ऐसा स्थान देने का प्रयत्न किया गया है जिससे व्यक्ति की मनोवृत्तियों की स्थिती का परिचय मिल जाए।

15.9 थर्सटन पैमाना-विधि (Thurstone Method of Scale)

श्री थर्सटन तथा उनके साथियों ने सन् 1929 और 1931 के बीच विभिन्न समूहों के सदस्यों के युद्ध, चर्च, मृत्युदंड, संतति-नियम आदि के संबंध में मनोवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए पैमानों को प्रस्तुत किया। थर्सटन-विधि का

सिद्धांत यह है कि यदि एक व्यक्ति किसी कथन को स्वीकार या अस्वीकार करता है तो उसके आधार पर मनोवृत्ति के पैमाने में उसे एक निश्चित स्थान प्रदान किया जा सकता है। अत: समस्या उपर्युक्त कथनों के चुनावों की है जिनके आधार पर व्यक्ति की मनोवृत्ति यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हो सके। अत: श्री थर्सटन की विधि में वस्तु, विषय या समस्या के संबंध में कथनों की एक सूची अखबारों में प्रकाशित लेखों से, लोकसभा, राज्यसभा या विधानसभा की कार्यवाही से या सहयोगियों के मतों से बनाई जाती है। इन कथनों में पूर्ण स्वीकृति से लेकर पूर्ण अस्वीकृति तक सभी श्रेणी के कथनों का समावेश होना चाहिए। इस विधि के अनुसार सामान्यत: दो-तीन सौ कथनों का संग्रह आवश्यक होता है। इसके बाद इन कथनों का संपादन (editing) किया जाता है और उन कथनों को सूची से निकाल दिया जाता है जिनका कि कोई संबंध अध्ययन-विषय से न हो। ये कथन सरल, संक्षिप्त, संपूर्ण, निश्चित एवं प्रत्यक्ष होने चाहिए जिससे कि व्यक्ति इन्हें सरलता से स्वीकार या अस्वीकार कर सके। कथनों के संग्रह व संपादन में अनुसंधानकर्त्ता को व्यक्तिगत पक्षपात से बचना चाहिए। इसके पश्चात इन कथनों को चरम अनुकूल से चरम प्रतिकूल रूप तक एक क्रम से सजा देना होता है। इसके लिए कथनों की नकल (copies) करके प्रत्येक कथन की एक-एक प्रति एकाधिक विशेषज्ञों या निर्णायकों (Judges) के पास भेजी जाती है ताकि उनमें से प्रत्येक जज अपने-अपने निर्णय के अनुसार उन कथनों को कुछ श्रेणियों में बाँट दे। वे कथन जो कि सर्वाधिक अनुकूल हैं उन्हें प्रथम श्रेणी में तथा वे कथन जो कि सर्वाधिक प्रतिकूल हैं उन्हें नवीं या ग्यारहवीं श्रेणी में रखने के लिए निर्णायकों को कहा जाता है और इन दोनों श्रेणियों के बीच अन्य कथनों को एक क्रम से अनुकूल से प्रतिकूल तक विभिन्न श्रेणियों में सजा दिया जाता है; और इस प्रकार नौ या ग्यारह श्रेणियों में समस्त कथनों को क्रम से सजा दिया जाता है। इसके पश्चात् इन कथनों में से प्रत्येक कथन को अधिकतर निर्णायकों (Judges) ने जो औसत स्थान दिया है उसी स्थान पर एक कथन को पैमाने (Scale) में रखा जाता है, अर्थात् कथनों को बहुमत के आधार पर पैमाने के एक क्रम में सजा दिया जाता है। उन मतों या कथनों को पैमाने में नहीं रखा जाता है जिनके संबंध में निर्णायकों या जजों में पर्याप्त मतभेद हो अंत में, पैमाने का निर्माण एक सीमित संख्या में उपयुक्त ढंग से चुने हुए कथनों द्वारा इस प्रकार कर लिया जाता है कि संपूर्ण पैमाने के अंतर्गत विभिन्न कथनों के विभिन्न स्थान मिले हुए हों और कथन या श्रेणी अत्यधिक से न्यूनतम या सर्वाधिक अनुकूल से सर्वाधिक प्रतिकूल तक फैली हुई हो।

इस पैमाने को बनाने में कुछ विशेष सावधानियाँ ध्यान में रखनी चाहिए। जो कथन पैमाने में रखे जाएँ उनकी भाषा सरल, सुस्पष्ट, सार्थक एवं परिमार्जित होनी चाहिए; उनमें से प्रत्येक कथन का प्रत्यक्ष संबंध व्यक्ति के किसी विषय से संबंधित मतों, विश्वासों और मनोवृत्तियों से हो। ऐसे कथन जो द्वयर्थक या अस्पष्ट (ambiguous) हों, उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। विशेषज्ञों या जजों की संख्या भी पर्याप्त होनी चाहिए। कथनों की जाँच करते समय जजों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे निजी विश्वास या मनोवृत्ति से प्रभावित होकर किसी कथन को कोई गलत स्थान न दे दें।

टास्क मनोवृत्तियों को मापने की क्या-क्या विधियाँ है? संक्षिप्त वर्णन करें।

15.10 लिकर्ट पैमाना-विधि (Likert Method of Scale)

सन् 1932 में श्री लिकर्ट ने श्री थर्सटन से कुछ भिन्न तथा सरल पैमाने का निर्माण किया और उसकी सहायता से विभिन्न समूहों के साम्राज्यवाद (imperialism), अंतर्राष्ट्रीयता और नीग्रो के प्रति मनोवृत्तियों को जानने का प्रयास किया। लिकर्ट पैमाना निम्नलिखित ढंग से बनाया जाता है–

पैमाने (scale) को तैयार करने के लिए एक वस्तु या विषय से संबंधित बहुत से कथनों को एकत्रित किया जाता

नोट

है। इसके पश्चात जिन लोगों की मनोवृत्ति का अध्ययन करना है उनमें से प्रत्येक को कहा जाता है कि इन कथनों में से प्रत्येक के प्रति अपनी मनोवृत्ति की मात्रा (degree of his attitude) पाँच विभिन्न श्रेणियों में व्यक्त करें अर्थात् एक एक कथन-विशेष के प्रति प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृढ़ सहमति, सहमति, अनिश्चितता, असहमति, दृढ़ असहमति (strongly approve, approve, undecided, disapprove, strongly disapprove) प्रकट करे। इन पाँच श्रेणियों को क्रम से 5, 4, 3, 2, 1, अंक प्रदान कर दिया जाता है। जिस कथन को अधिक अंक मिलता है उसे अनुकूल मनोवृत्ति का द्योतक माना जाता है। उन कथनों को निकालकर पृथक् कर दिया जाता है जिनका व्यक्ति के संपूर्ण गुणांक (score) से कोई भी सह-संबंध नहीं है।

इस विधि का और भी स्पष्टीकरण निम्नलिखित अंक-पैमाने (Point Scales) की विवेचना से हो जाएगा।

15.11 अंक पैमाने (Point Scales)

इस प्रकार के पैमाने में विभिन्न प्रकार के शब्द अथवा परिस्थितियाँ ली जाती हैं और प्रत्येक को अंक (Point) प्रदान किया जाता है। उत्तरदाता से यह कहा जाता है कि जिस शब्द अथवा परिस्थिति से उसके मन में प्रसन्नता की अपेक्षा रोष ही अधिक उत्पन्न हो, उसके आगे काटे (×) का निशान लगा दे। ऐसे प्रत्येक शब्द को, जिसे उत्तरदाता ने काटा नहीं है, एक अंक प्रदान किया जाता है। किसी व्यक्ति की मनोवृत्ति का पता विभिन्न शब्दों के काटने अथवा छोड़ देने (अर्थात् न काटने) के आधार पर किया जाता है। दो-एक उदाहरण के द्वारा इस पैमाने को समझाया जा सकता है।

उदाहरण 1. नीचे कुछ शब्द दिए जा रहे हैं। जिन शब्दों से आपको प्रसन्नता का अनुभव हो उनको यूँ ही छोड़ दें और जिन शब्दों से आपको अप्रसन्नता या रोष का अनुभव हो उनके आगे (×) का निशान लगा दें; प्रत्येक शब्द को, जिसे काटा नहीं जाएगा, एक अंक प्रदान किया जाएगा–

1. नाच-गान
2. पूजा-पाठ
3. अनेक संतान
4. परिवार नियोजन
5. अंतर्विवाह
6. अंतर्जातीय विवाह
7. अध्यात्मवाद
8. भोगवाद

उपर्युक्त पैमाने की सहायता से हम विभिन्न विषयों के संबंध में व्यक्ति की मनोवृत्ति का पता लगा सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि व्यक्ति ने 'नाच-गान' को काट दिया और 'पूजा-पाठ' को यूँ ही छोड़ दिया है तो समझा जाएगा कि वह सदाचारपसंद व्यक्ति है।

केवल शब्दों की सहायता से मनोवृत्ति को मापा जा सकता है कि जैसा कि निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होगा–

उदाहरण 2. आप निम्नलिखित में से किन-किन बातों से सहमत या असहमत हैं उनके आगे काटे (×) का निशान लगा दें। जिन्हें आप नहीं काटेंगे उनमें से प्रत्येक को एक अंक प्रदान किया जाएगा–

1. संयुक्त परिवार में रहना।

2. अंतर्जातीय विवाह करना।
3. जाति-प्रथा के नियमों का पालन करना।
4. विधवा-पुनर्विवाह करना।
5. अपनी ही जाति में विवाह करना।
6. बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा देना।
7. लड़कियों को स्कूल-कॉलेज न भेजना।
8. गाँव में रहना।
9. बच्चों की प्रगति के लिए शहर में बस जाना।
10. पूजा-पाठ करना।
11. सिनेमा का शौक रखना।
12. अधिक बच्चे पैदा करना।
13. परिवार नियोजन को स्वीकार करना।
14. घर की स्त्रियों को क्लब आदि का सदस्य बनने की स्वीकृति देना।
15. स्त्रियों पर कड़ी निगरानी रखना।

एक व्यक्ति के द्वारा उपर्युक्त परिस्थितियों के आगे काटे (×) का निशान लगाने या न लगाने के आधार पर यह पता चल सकेगा कि व्यक्ति परंपरावादी है अथवा नवीन युग की विचारधाराओं का समर्थक।

नोट्स इस पैमाने की कुछ कमियों के प्रति विद्वानों ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उनमें से **प्रथम** यह है कि निश्चित प्रकार के भेदात्मक (dichotomous) शब्द इस प्रकार का पैमाना बनाने के लिए आवश्यक होते हैं जो कि मिल नहीं पाते हैं जिसके फलस्वरूप पैमानों का निर्माण कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है। **दूसरी** बात यह है कि इस पैमाने के द्वारा मिश्रित मनोवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

15.12 सारांश (Summary)

- अनुमापन विज्ञान को इस योग्य बना देता है कि वह अपने अध्ययन विषय के अंतर्गत आनेवाली घटनाओं का सही व प्रामाणिक माप कर सके।
- अनुमापों के प्रकारों में मुख्यत: अंक पैमाना, सामाजिक दूरी का पैमाना, तीव्रता मापक पैमाना, श्रेणी सूचक पैमाना आते हैं।
- कई समाजशास्त्रियों ने मनोवृत्तियों को मापने की विधियाँ बताई हैं। इनमें थर्सटन पैमाना विधि तथा लिकर्ट पैमाना विधि प्रमुख हैं।

15.13 शब्दकोश (Keywords)

1. **अनुमापन या प्रमापन** (Scaling)–प्रमापन वस्तुओं की विशेषताओं को शब्दों या अंकों अथवा किसी

नोट

अन्य प्रतीकों द्वारा निर्धारण का एक तरीका है। यह एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा वस्तुओं अथवा घटनाओं को मापा जाता है।

2. **मत-मापक पैमाना (Opinion Scale)**—व्यक्ति का मत उसकी मनोवृत्ति की परछाई है—यह इस विधि का निर्देशक सिद्धांत है। इस विधि के अंतर्गत माप दंड या पैमाना बनाया जाता है।

15.14 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अनुमापन की उपयोगिता बताएँ।
2. समाजशास्त्रीय अध्ययन में जिन पैमानों का प्रयोग किया जाता है, उसका वर्णन करें।
3. लिकर्ट पैमाना विधि को बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. स्वीकृति अथवा अस्वीकृति सम्मति या असम्मति 2. मतों
3. मापदंड।

15.15 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध व सांख्यिकी—रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. सामाजिक शोध की पद्धतियाँ—संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

इकाई–16: विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता (Reliability and Validity)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की समस्या (Problems of Reliability and Validity)

16.2 सारांश (Summary)

16.3 शब्दकोश (Keywords)

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की स्थिति।
- संबंधित समस्याओं के बारे में जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक घटनाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं–जैसे, सामाजिक घटनाओं की जटिलता, अमूर्तता, गुणात्मकता, परिवर्तनशीलता आदि। ये विशेषताएँ कुछ सीमा तक इस प्रकार की बाधाएँ बन जाती हैं कि जिससे वैज्ञानिक पद्धतियों का समुचित प्रयोग और इसीलिए तथ्यों की खोज भौतिक विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र के लिए बहुत-कुछ कठिन हो जाती है और जब तथ्यों की खोज उचित रूप में नहीं हो पाती तो वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति भी सरल नहीं रहती। उदाहरण के लिए, सभी माताएँ या सभी पिता या सभी विद्यार्थी एक समान नहीं होते जबकि एक जाति के सभी चूहे या एक विशेष प्रकार के सभी आम के पेड़ प्राय: समान प्रकार के होते हैं। अत: इनका इन समानताओं के आधार पर अध्ययन करना अथवा इनसे संबद्ध तथ्यों को खोजना हमारे लिए सरल होता है, पर यह बात माता-पिता, विद्यार्थी या अन्य सामाजिक घटनाओं के संबंध में नहीं कही जा सकती; क्योंकि उनमें अत्यधिक विविधताएँ हैं।

16.1 विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की समस्या (Problems of Reliability and Validity)

अधिकांश सामाजिक घटनाएँ सामाजिक संबंधों पर आधारित होने के कारण अमूर्त होती हैं जिनका निरीक्षण-परीक्षण बहुत कठिन होने के कारण उनसे संबद्ध तथ्यों को खोजना सरल नहीं होता और इसलिए वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में

नोट

कठिनाई का अनुभव होता है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक (qualitative) हैं, इस कारण परिमाणात्मक (quantitative) तौर पर उनकी अभिव्यक्ति, यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य ही है। इस अर्थ में सामाजिक घटनाओं की गुणात्मकता वस्तुनिष्ठता की विरोधिनी है और तथ्यों के खोज की एक गंभीर समस्या को उत्पन्न करती है; उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं की परिवर्तनशीलता तथ्यों के खोज की एक अन्य समस्या को जन्म देती है। क्योंकि अपनी परिवर्तनशीलता के गुण के कारण सामाजिक घटनाओं से संबद्ध कोई भी तथ्य अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रहता और उसमें अनिश्चितता का तत्व किसी-न-किसी रूप में छिपा होता है। यहाँ हम उन कठिनाइयों का उल्लेख करेंगे जो कि वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होती हैं–

टास्क विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की समस्याओं पर प्रकाश डालें।

1. अध्ययन-विषय से संपूर्ण अलगाव संभव नहीं (Complete detachment from subject-matter not possible)–वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के पथ पर सर्वप्रथम बाधा तो यही है कि अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं होना कि वह अपने अध्ययन-विषय से अपने को पूर्णतया पृथक मान ले; क्योंकि जिस विषय का वह अध्ययन कर रहा है वह उस सामाजिक संबंध से संबद्ध है जिसका कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में एक अभिन्न अंग है। अभिन्न इस अर्थ में नहीं कि वह उसी समाज का सदस्य है बल्कि अभिन्न इस अर्थ में कि वह स्वयं मानव है और किसी-न-किसी मानवीय घटना का अध्ययन कर रहा है। यदि वह मानवीय घटना उसके अपने समाज या समूह से संबंधित है तो उसके प्रति उसके दिल में 'विशेष' स्थान है और यदि वह ऐसे विषय का अध्ययन कर रहा है जो कि उसके अपने समाज या समूह का नहीं है तो उस विषय के प्रति उसके दिल में कुछ-न-कुछ पक्षपात का होना भी स्वाभाविक है। दोनों में से किसी भी दशा में उसके लिए विषय से संपूर्ण अलगाव रखना संभव नहीं होता है। और लगाव, चाहे वह किसी भी रूप में हो, वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में एक बहुत बड़ी कठिनाई बन जाता है। यही कारण है कि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में अनुसंधानकर्ता का अपना राग-अनुराग, घृणा या स्नेह-भाव, द्वेष या द्वंद्व, आसक्ति या विरक्ति, पसंद या नापसंद की कुछ-न-कुछ भूमिका अवश्य ही होती है और ये सब अध्ययन की प्रकृति, दिशा, लक्ष्य, तथ्यों के संकलन आदि को किसी-न-किसी रूप में अपने रंग में रंग देते हैं, चाहे उसके संबंध में अनुसंधानकर्ता सचेत हो अथवा नहीं, या ऐसा वह जान-बूझकर करता हो या अनजाने में। किसी भी अवस्था में अध्ययन के विषय में संपूर्ण अलगाव न होना वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में कठिनाई उत्पन्न करता है।

2. भावनात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव (Influence of emotional tendencies)–अनुसंधानकर्ता जिस विषय का अध्ययन कर रहा है वह सामाजिक जीवन का ही एक अंग है और उस पर अनेक प्रकार की भावनात्मक प्रवृत्तियों का निरंतर प्रभाव पड़ता रहता है। विभिन्न सामाजिक घटनाओं के प्रति समाज में कुछ सामान्य भावनाएँ प्रचलित हो जाती हैं और अपने अनुसंधान के दौरान अनुसंधानकर्ता उन भावनाओं का शिकार बन सकता है। उदाहरणार्थ, वेश्यावृत्ति को ही लीजिए–इस सामाजिक घटना का अध्ययन करते समय अनुसंधानकर्ता उस भावनात्मक प्रवृत्ति का शिकार बन सकता है जिसके अनुसार सभी वेश्याओं को बुरा मान लिया गया है। अपना शरीर बेचकर पैसा कमाने के लिए वे सब-कुछ कर सकती हैं–यह सामान्य प्रचलित धारणा है और हो सकता है कि अनुसंधानकर्ता इसके प्रभाव से अपने को विमुक्त न रख पाए। इसी प्रकार संयुक्त परिवार प्रणाली, अस्पृश्यता, जाति-प्रथा आदि का अध्ययन करते समय भी अनुसंधानकर्ता पर भावनात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ सकता है और उसके लिए वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति कठिन हो सकती है।

3. विशिष्टमूलक भ्रांति (Particularistic fallacy)–श्री थॉमस (W.I. Thomas) के मतानुसार वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में एक और कठिनाई विशिष्टमूलक भ्रांति है जिसका तात्पर्य यह है कि सामाजिक घटना के अध्ययन में बहुधा अनुसंधानकर्ता किसी एक कारण पर आवश्यकता से अधिक बल देकर या घटना के किसी विशेष पक्ष को

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण मान लेने की गलती कर बैठते हैं। वे अपने अध्ययन का निष्कर्ष या तो अपर्याप्त या असंपूर्ण या असंबद्ध तथ्यों के आधार पर निकाल लेते हैं। उदाहरण के लिए, "बुरी संगत बाल-अपराध का एक मात्र कारण है", "प्रजातीय भिन्नता ही जाति-प्रथा की उत्पत्ति का एक मात्र कारण है", "पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति ने अपनी विशिष्टता को बिल्कुल ही खो दिया है"–इसी प्रकार के असंख्य निष्कर्ष विशिष्टमूलक भ्रांति के ही परिचायक हैं और इनका आधार अपर्याप्त या असंबद्ध तथ्य हैं। ऐसी स्थिति में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति बहुत-कुछ असंभव-सी प्रतीत होती है।

4. असत्य प्रतिमाएँ (False Idols)–श्री फ्रांसिस बेकन (Francis Bacon) ने एक विशिष्ट वाक्यांश के द्वारा उन गलतियों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो कि किसी अनुसंधान के दौरान अनुसंधानकर्ता प्राय: कर बैठता है। उन्होंने लिखा है कि ये प्रतिमाएँ अनेक प्रकार की होती हैं, जैसे गुफ़ा की प्रतिमाएँ (Idols of Cave) अर्थात् वे गलतियाँ जिन्हें अनुसंधानकर्ता अपने संकीर्ण तथा असम्बद्ध विचारों के फलस्वरूप एक घटना या व्यक्ति के संबंध में कर बैठता है; ये विचार उसके अपने विचार होते हैं अथवा ऐसे होते हैं जिनके विषय में कोई दूसरा नहीं जानता। इसी प्रकार न्यायालय या वादपीठ की प्रतिमाएँ होती हैं। (Idols of Forum) अर्थात अनुसंधानकर्ता केवल शब्दों पर अनावश्यक भरोसा करने की गलती कर बैठता है। इसके अतिरिक्त बाजार की प्रतिमाएँ (Idols of the market place) भी होती हैं। अर्थात् प्रथा, परंपरा, रूढ़ि इत्यादि पर अनावश्यक बल देने और उसी के आधार पर निष्कर्षों को निकालने की गलती अनुसंधानकर्ता कर सकता है। अंत में, श्री बेकन के अनुसार, जनजाति की प्रतिमाएँ (The Idols of the Tribe) भी होती हैं जिसका तात्पर्य यह है कि अनुसंधानकर्ता किसी वस्तु या घटना को अपने ही ढंग से देखने या विचारने की गलती करता है; अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण या जीवन के संबंध में अपने सीमित ज्ञान के बाहर निकलकर कुछ निष्कर्ष निकालना बहुधा अनुसंधानकर्ता के लिए कठिन होता है। ये सभी परिस्थितियाँ वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न करती हैं।

5. सामान्य ज्ञान और वास्तविक ज्ञान में भ्रम (Confusions regarding general knowledge and real knowledge)–श्री क्लाइड हार्ट (Clyde W. Hart) ने लिखा है कि वस्तुनिष्ठता का संबंध वास्तविक ज्ञान से है, न कि सामान्य ज्ञान से। जब एक अनुसंधानकर्ता सामान्य ज्ञान (general knowledge) को ही वास्तविक ज्ञान मान लेता है या सामान्य ज्ञान के आधार पर ही निष्कर्षों तक पहुँचने या कम-से-कम वस्तुनिष्ठता के निकट जाने का प्रयत्न करता है तब वह वैज्ञानिक के रूप में एक असाधारण गलती कर बैठता है। कभी-कभी तो सामान्य ज्ञान के आधार पर जिस प्राक्कल्पना का निर्माण एक बार अनुसंधानकर्ता कर लेता है उसी को ठीक प्रमाणित करने की धुन में वह तथ्यों को उसी दृष्टिकोण से देखता व उसी रूप में प्रस्तुत करता है। जो तथ्य उसके सामान्य ज्ञान से मेल नहीं खाता उसे वह सावधान होकर त्याग देता है। स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया से और कुछ की प्राप्ति संभव हो सकती है, पर वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं कि सामान्य ज्ञान यथार्थ होता ही नहीं; इसका तात्पर्य केवल इतना है कि सामान्य ज्ञान की वास्तविकता की जाँच वास्तविक तथ्यों द्वारा न करने की प्रवृत्ति ही अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति के पथ पर एक बाधा की सृष्टि करती है।

6. पक्षपात व विरोधी-पक्षपातों की संभावना (Possibility of prejudices and counter-prejudices)–कहा जाता है कि अनुसंधानकर्ता को दुधारी तलवार पर चलना होता है और वह इस अर्थ में कि यदि वह अपने अध्ययन-विषय के प्रति पक्षपातपूर्ण मनोभाव को अपनाता है तो वह तटस्थता से दूर चला जाता है; और यदि वह उन पक्षपातों को जबर्दस्ती रोकने या हटाने का प्रयत्न करता है तो अनेक विरोधी-पक्षपात उसका रास्ता रोककर तटस्थता की प्राप्ति को असंभव बना देते हैं। उदाहरणार्थ, एक संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में यदि एक अनुसंधानकर्ता बिल्कुल पक्षपातरहित होकर संयुक्त परिवार प्रणाली के दोषों का विश्लेषण करता है तो भी उसका वह अध्ययन एकतरफा हो जाएगा क्योंकि ऐसा करने पर वह विरोधी-पक्षपात के जाल में स्वत: ही फँस जाएगा और उसके अध्ययन व निष्कर्षों के विषय में यह कहा जाएगा कि उसने संयुक्त परिवार प्रणाली के लाभों के प्रति अपनी आँखें मूँद ली हैं। इसी प्रकार यदि वह केवल लाभों का विश्लेषण करता है तो हानि वाला पक्ष छूट

नोट

जाता है। हानि और लाभ दोनों के बीच में संतुलित दृष्टिकोण को अपनाकर तटस्थता की प्राप्ति बहुत कठिन हो जाती है। यदि एक अनुसंधानकर्ता जातिवाद को अच्छा कहता है तो यह विरोधी-पक्षपातों का शिकार बन जाता है और उसके माथे पर निष्पक्ष न होने का कलंक लगता है और यदि वह जातिवाद को बुरा कहता है तो भी वह विरोधी-पक्षपात का शिकार बनता है और जातिवाद की अच्छाइयों के प्रति पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए दोषी ठहराया जाता है। इस प्रकार पक्षपात और विरोधी-पक्षपात दोनों ही तटस्थता की प्राप्ति में बाधक सिद्ध होते हैं।

7. सजातिवाद (Ethnocentrism)–वस्तुनिष्ठता अथवा तटस्थता की प्राप्ति के रास्ते में एक और उल्लेखनीय बाधा सजातिवाद है। इसका तात्पर्य यह है कि दूसरों की तुलना में अपने समाज और सामाजिक घटनाओं के लिए प्रत्येक व्यक्ति के दिल में एक 'दुर्बल कोना' (soft corner) होता है और उसकी वह दुर्बलता इस रूप में प्रकट होती है कि वह अपने समाज की परिवार-व्यवस्था, धर्म, साहित्य, भाषा, अन्य सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थाओं, विचारों तथा आदर्शों को सबसे अच्छा मान लेता है। यह सबसे अच्छा होना वास्तविकता नहीं, उसकी दुर्बलता का ही परिचायक है और यह दुर्बलता वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधा की सृष्टि करती है क्योंकि इससे बचना अनुसंधानकर्ता के लिए भी संभव नहीं होता। इसी प्रकार जब वह दूसरे समाज की किसी सामाजिक घटना का अध्ययन करता है तो भी उसके लिए पक्षपातरहित तटस्थ अध्ययन करना अत्यधिक कठिन होता है क्योंकि अपने समाज की तुलना में उसे अन्य समाज की घटनाएँ तुच्छ प्रतीत होती हैं और साथ ही वह उन घटनाओं का मूल्यांकन भी अपने समाज के मापदंडों (standards) के आधार पर करता है। इसलिए अनुसंधानकर्ता के लिए तटस्थता की प्राप्ति संभव नहीं रहती है। वास्तविकता तो यह है कि सजातीयता की भावना उस लगाव की परिचायक है जो कि एक व्यक्ति के मन में उसके अपने समाज की प्रथाओं, परंपराओं, संस्थाओं, मूल्यों एवं आदर्शों आदि के प्रति स्वभावतः ही विकसित हो जाता है, और जहाँ लगाव है वहाँ वस्तुनिष्ठता का होना कठिन होता है, अलगावपन (detachment) वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति की प्रथम शर्त है। सजातिवाद इस शर्त का विरोधी है, इसलिए वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में बाधक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. उन गलतियों के प्रति हमारा ध्यान आकर्षित है जो कि किसी अनुसंधान के दौरान .... प्रायः कर बैठता है।
2. .... किसी वस्तु घटना को अपने ही ढंग से देखने या विचारने की गलती करता है।
3. .... का संबंध वास्तविक ज्ञान से है, न कि सामान्य ज्ञान से।

8. अनुसंधानकर्ता का व्यक्तिगत स्वार्थ (Vested interest of the Researcher Himself)–ऐसा भी होता है कि स्वयं अनुसंधानकर्ता का अपना स्वार्थ तटस्थ की प्राप्ति में बाधा डालता है। ऐसा तभी होता है जबकि वह सत्य की बलि अपने स्वार्थ की वेदी में दे बैठता है। जिस अनुसंधानकर्ता के लिए अपना निजी स्वार्थ सर्वोपरि है, उसके लिए तटस्थता की प्राप्ति होना या न होना कोई अर्थ ही नहीं रखता है। अपना स्वार्थ उसे अंधा बना देता है और वह समस्त वास्तविकताओं के प्रति आँख मूँदकर तथ्यों को उसी रूप में प्रस्तुत करता है जिससे कि उसके स्वार्थों की (न कि तटस्थता की) अधिकतम पूर्ति हो या उन स्वार्थों को न्यूनतम आघात पहुँचे।

नोट्स चार्ल्स वुड (Charles Wood) ने लिखा है कि "अनुसंधानकर्ता का व्यक्तिगत स्वार्थ वह पैमाना है जो कि वस्तुनिष्ठता को नहीं, स्वयं अपने-आपको (व्यक्तिगत स्वार्थ को) नापता है और उसी नाप के आधार पर अध्ययन की सार्थकता का मूल्यांकन करता है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत स्वार्थ वस्तुनिष्ठता का दुश्मन है और अंधे अध्ययन का साथी। यही कारण है कि अपने व्यक्तिगत स्वार्थों द्वारा प्रेरित अनुसंधानकर्ता जब यह देखता है कि उसकी खोज का परिणाम उसके हित अथवा स्वीकृत सिद्धांतों के प्रतिकूल है तो वह या तो तथ्यों को विकृत या अवास्तविक रूप में प्रस्तुत कर परिणाम को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करता है अथवा केवल ऐसे तथ्यों का ही संकलन करता है जो कि उसकी रुचि व स्वार्थों के अनुकूल परिणामों को निकालने में सहायक सिद्ध होंगे। दोनों ही स्थितियों में तटस्थता की प्राप्ति दूर का सपना बन जाती है।

9. बाह्य हितों का हस्तक्षेप (Interference by External Interests)–वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में उस समय भी अत्यधिक कठिनाई होती है जबकि अध्ययनकार्य में बाह्य स्वार्थ-समूहों का हस्तक्षेप होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक अनुसंधान इस प्रकार का है जिससे कि टाटा-बिड़ला जैसे पूँजीपतियों के अनेक काले कृत्यों (Black deeds) का भंडाफोड़ होने का अंदेशा है तो उस स्थिति को रोकने के लिए टाटा-बिड़ला आदि संबद्ध स्वार्थ-समूह अनुसंधानकर्ता पर इस प्रकार का दबाव व प्रभाव डालने का प्रयत्न करेंगे कि उनके कारनामों पर पर्दा पड़ा रहे अर्थात् वास्तविक तथ्य प्रकट न होने पाएँ। बाह्य हितों का हस्तक्षेप एक दूसरे अर्थ में भी हो सकता है। जिस प्रकार अनुसंधानकर्ता अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए वास्तविक तथ्यों को तोड़-मोड़कर प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार अपने ही समाज या समूह के प्रति एक लगाव होने के कारण वह उस अवस्था में भी वास्तविक तथ्यों को छुपा सकता है यदि वह यह अनुभव करे कि उसके द्वारा उसके अपने समूह या समाज के स्वार्थों की रक्षा होगी या उस समूह या समाज के जीवन का कोई लज्जाजनक पक्ष प्रकट होने से बच जाएगा। उदाहरणार्थ, अपने ही समाज या समूह में पाए जाने वाले यौनव्यभिचार संबंधी तथ्यों को एक अनुसंधानकर्ता उतनी स्पष्टता और तत्परता से प्रस्तुत नहीं कर सकता है जितनी कि अन्य किसी समाज या समूह में पाई जाने वाली उसी घटना (phenomenon) को वह प्रकट करेगा और वहाँ के लोगों की नैतिकता का स्तर कितना निम्न है इसे दर्शाने का प्रयत्न करेगा। इस प्रकार बाह्य हित भी सामाजिक घटनाओं के वस्तुनिष्ठ अथवा तटस्थ अध्ययन में बाधक बनते हैं।

10. शीघ्र निर्णय की आवश्यकता (Need of immediate Decision)–अध्ययन में आवश्यक वस्तुनिष्ठता का अभाव उस स्थिति में भी हो सकता है जबकि अनुसंधानकर्ता का अध्ययन-विषय ऐसा है जिस पर कि वह तुरंत निर्णय लेता है। इसका कारण भी स्पष्ट है। जल्दबाजी में अनुसंधान-कार्य तो दूर रहा, साधारण कार्य भी बिगड़ जाता है। उस स्थिति में शीघ्र निर्णय लेने की आवश्यकता पर बल दिया जाता है, न निर्भरयोग्य तथ्यों के संकलन व उनका निष्पक्ष रूप में विश्लेषण करने पर। वास्तव में जल्दबाजी में पर्याप्त, संपूर्ण तथा संबद्ध तथ्यों का संकलन संभव नहीं होता और शीघ्र निर्णय की आवश्यकता के कारण अनुसंधानकर्ता के लिए जो कुछ भी तथ्य सरलतापूर्वक उपलब्ध (readily available) होते हैं, वह उन्हीं पर निर्भर कर बैठता है। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति संभव नहीं होती क्योंकि सामाजिक घटनाएँ अत्यधिक जटिल होने के कारण इनके संबंध में कोई भी यथार्थ निष्कर्ष तब तक निकाला नहीं जा सकता जब तक पर्याप्त समय देकर उपयुक्त संपूर्ण व संबद्ध तथ्यों को संकलित न किया जाए, अति सावधान होकर उनका वर्गीकरण न किया जाए और अति तर्कयुक्त ढंग से व विचार विवेचना के पश्चात् कोई निष्कर्ष न निकाला जाए। सामाजिक अनुसंधान में शीघ्रता का कोई स्थान नहीं होता। वास्तविक सामाजिक निर्णय तक पहुँचने के लिए वर्षों के अथक एवं निष्ठापूर्ण परिश्रम की आवश्यकता होती है परंतु अधिकांश सामाजिक समस्याओं की प्रकृति ही कुछ ऐसी होती है कि उनके संबंध में शीघ्रता से कोई कदम उठाने की आवश्यकता अनुभव की जाती है और इसीलिए उनके विषय में अनुसंधान करने का पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। अतः इन अध्ययनों में वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति वास्तव में कठिन होती है।

11. पूर्वाग्रह या मिथ्या-झुकाव तथा पक्षपात (Bias and Prejudice)–श्री लुंडबर्ग (Lundberg) का कहना है कि "पूर्वाग्रह और पक्षपात सभी विज्ञानों में जटिलता उत्पन्न करने वाले कारक हैं परंतु उनका महत्त्व सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा भौतिक विज्ञानों में बहुत कम है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सामाजिक घटनाएँ प्रायः जिन सामान्य संवेगात्मक भाव-ग्रंथियों (common emotional complexes) का शिकार बन जाती हैं उनसे भौतिक विज्ञानों के अध्ययन-वस्तु को हम दूर रख सकते हैं। यही कारण है कि स्वाभाविक इंद्रियों (normal senses) द्वारा भौतिक तथ्यों का प्रत्यक्षीकरण (perception) बहुत-कुछ समरूप (uniform) होता है।"

नोट

इस कथन से यह स्पष्ट है कि भौतिक घटनाओं का अध्ययन करने में पक्षपात व पूर्वाग्रह (मिथ्या-झुकाव) (bias) कोई विशेष बाधा नहीं पहुँचाता है क्योंकि उनके साथ अनुसंधानकर्ता का कोई संवेगात्मक संबंध नहीं होता है और न ही उनके प्रति पक्षपात या पूर्वाग्रह से उसे किसी प्रकार का लाभ होने की आशा होती है। साथ ही, अनुसंधानकर्ता को यह भी डर नहीं होता है कि यदि भौतिक घटना की कोई दुर्बलता उसके अध्ययन द्वारा प्रकट भी हो जाए तो उसकी आँच उस पर या 'मानवता' पर आएगी। अत: उसके लिए भौतिक घटनाओं के संबंध में सच को सच कहने में संकोच नहीं होता या उसके अपने विचार, रुचि, आदर्श तथा मूल्यों को ठेस भी नहीं पहुँचती। पर यदि कुछ ठेस पहुँचती भी है या यदि उसे किसी भौतिक घटना से कुछ लगाव है, तो भी वह इतना गंभीर नहीं होता कि उससे अनुसंधानकर्ता का बचना और पक्षपात-रहित होकर अध्ययन करना असंभव हो। श्री केल्लर (Keller) ने उचित ही लिखा है कि "एक व्यक्ति अपने दिल को ठेस पहुँचाए बिना ही एक मक्खी के अनेक या बहुत कम पैरों को गिन सकता और परिणाम को सूचित कर सकता है।" पर उस व्यक्ति के लिए, जो कि अपने संयुक्त परिवार को बहुत चाहता है, यह एक अत्यधिक कठिन कार्य होगा यदि उसे यह प्रमाणित करने को कहा जाए कि व्यक्ति की प्रगति संयुक्त परिवार प्रणाली के विनाश होने पर ही हो सकती है। इसका कारण यह है कि सामाजिक घटनाओं के क्षेत्र में पक्षपात व मिथ्या-झुकाव का स्पर्श सर्वत्र होता है और वे अध्ययनकर्ता को पग-पग पर वस्तुनिष्ठता से दूर खींचते हैं। हम पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं आदि का अध्ययन करते समय पक्षपातरहित और पूर्वाग्रह (bias) से विमुक्त हो सकते हैं, पर जब हम अपने ही विषय में अध्ययन करते हैं तो वही काम हमारे लिए कठिन हो जाता है क्योंकि हम वैचारिक तटस्थता को पूर्णतया बनाए रखने में असफल होते हैं।

क्या आप जानते हैं अध्ययनकर्ता जिस सामाजिक समस्या का अध्ययन करता है उसके पक्ष या विपक्ष में उसके पूर्व-विचार कुछ-न-कुछ होते हैं, अपने आदर्शों के अनुसार उसे वह अच्छा या बुरा, उचित या अनुचित की श्रेणी में ला भी सकता है और अपने हितों के अनुसार तथ्यों को तोड़-मोड़ भी सकता है।

इनमें से किसी भी व्यवस्था में वह पक्षपात व मिथ्या-झुकाव का शिकार बन जाता है और अध्ययन की वस्तुनिष्ठता को खो बैठता है। पर भौतिक विज्ञानों में तथ्यों को तोड़-मरोड़कर रखने की आवश्यकता अथवा संभावना कम होती है क्योंकि तथ्यों को उनके मौलिक या वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने में उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता और न ही कोई स्वार्थ साधन की आशा होती है। इसके विपरीत सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में राज-भय, कुल-भय और जाति-भय उसे पक्षपाती बना देता है, उसका स्वार्थ उसे एक विशेष और असत्य आधारों पर झुकने के लिए विवश कर देता है। वह भूल नहीं पाता है कि 'जो कुछ' का अध्ययन वह कर रहा है वह उसी का एक अभिन्न अंग है और इसलिए उसका अपना विचार, राग-द्वेष, आदर्श, मूल्य, रुचि-अरुचि उसे पक्षपात (prejudice) व पूर्वाग्रह (bias) के पंचों में निर्दयतापूर्वक ला फेंकता है। इन्हीं से प्रभावित व निर्देशित अनुसंधानकर्ता तटस्थता प्राप्ति की बात को भूलकर अपनी ही त्रुटियों को सजीव करने का प्रयास करता है।

16.2 सारांश (Summary)

- अधिकांश सामाजिक घटनाएँ सामाजिक संबंधों पर आधारित होने के कारण अमूर्त होती है जिनका निरीक्षण-परीक्षण बहुत कठिन होने के कारण उनसे संबद्ध तथ्यों को खोजना आसान नहीं होता इसलिए वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में कठिनाई का अनुभव होता है।
- वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे भावनात्मक प्रवृत्तियों का प्रभाव, सामान्य ज्ञान व वास्तविक ज्ञान में भ्रम आदि।

नोट

16.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **वस्तुनिष्ठता (Objectivity)**–संबंधित घटना से संबंधित तथ्यों को पूर्वाग्रह की अपेक्षा साक्ष्य एवं तर्क के आधार पर देखता-परखता है।
2. **सजातिवाद (Enthnocentrism)**–वस्तुनिष्ठता अथवा तटस्थता की प्राप्ति के रास्ते में एक और उल्लेखनीय बाधा सजातिवाद है।

16.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की स्थिति स्पष्ट करें।
2. वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में कठिनाइयों का विश्लेषण करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. अनुसंधानकर्त्ता
2. अनुसंधानकर्त्ता
3. वस्तुनिष्ठता।

16.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।
2. शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

नोट

इकाई–17: सर्वेक्षण की सीमाएँ (Limitations of Survey)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाएँ (Definitions of Social Survey)

17.2 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार (Types of Social Survey)

17.3 सर्वेक्षण पद्धति के गुण (Merits of Survey Method)

17.4 सर्वेक्षण पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Survey Method)

17.5 सारांश (Summary)

17.6 शब्दकोश (Keywords)

17.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक सर्वेक्षण के अर्थ को जानना।
- सामाजिक सर्वेक्षण की सीमाएँ क्या हो सकती हैं? इसकी जानकारी देना।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक सर्वेक्षण को एक समाजशास्त्रीय अध्ययन-पद्धति के रूप में देखा जा सकता है। इस पद्धति के द्वारा न केवल सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, अपितु समाज सुधार के उद्देश्य को सामने रखते हुए उन समस्याओं का समाधान ढूँढ़ने का भी प्रयत्न किया जाता है। इस अर्थ में सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक समस्याओं का अध्ययन व समाधान का एक वैज्ञानिक साधन है। वैज्ञानिक इस अर्थ में कि इसमें अध्ययन-कार्य किसी मनमाने ढंग से न होकर वैज्ञानिक विधि के आधार पर होता है और कोई भी निदान या निष्कर्ष वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण पर सुप्रतिष्ठित होता है।

विषय-वस्तु : सर्वेक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

'सर्वेक्षण' का शाब्दिक अर्थ ध्यानपूर्वक किसी वस्तु या घटना का निरीक्षण-परीक्षण करना है। यदि यह निरीक्षण-परीक्षण सामाजिक जीवन या सामाजिक घटना से संबंधित है तो उसे मोटे तौर पर सामाजिक सर्वेक्षण कहा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से सामाजिक सर्वेक्षण निरीक्षण-परीक्षण की वह वैज्ञानिक पद्धति है जो कि किसी सामाजिक समूह अथवा सामाजिक जीवन के किसी पक्ष या घटना के संबंध में वैज्ञानिक अध्ययन करने में प्रयुक्त होती है। सामाजिक सर्वेक्षण का संबंध किसी सामाजिक दशा, स्थिति अथवा परिस्थिति या समस्या से होता है।

'डिक्शनरी ऑफ सोशियोलॉजी' (Dictionary of Sociology) के अनुसार, "एक समुदाय के संपूर्ण जीवन या उसके किसी एक पहलू जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन के संबंध में तथ्यों के बहुत-कुछ व्यवस्थित व विस्तृत संकलन व विश्लेषण को ही मोटे तौर पर सर्वेक्षण कहते हैं।" वेबस्टर (Webster) शब्दकोश के अनुसार, "वास्तविक जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया आलोचनात्मक निरीक्षण (inspection) ही सामाजिक सर्वेक्षण कहलाता है।"

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि सामाजिक सर्वेक्षण वास्तव में सामाजिक जीवन के किसी पक्ष, विषय या समस्या के संबंध में निर्भरयोग्य तथ्यों के संकलन व विश्लेषण करने की एक प्रणाली है जो कि कुछ वैज्ञानिक सिद्धांतों व मान्यताओं (assumptions) पर आधारित होने के कारण प्रयोगसिद्ध निष्कर्षों को निकालने में सहायक सिद्ध होता है।

17.1 सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषाएँ (Definitions of Social Survey)

सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा के संबंध में विद्वानों में एक-मत नहीं है क्योंकि उसके दृष्टिकोणों में अंतर है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण को (अ) एक समुदाय के सामान्य जीवन के एक अध्ययन के रूप में देखा है, तो कुछ विद्वानों ने उसे (ब) व्याधिकीय समस्याओं व समाज-सुधार से संबंधित माना है, तो अन्य कुछ विद्वानों ने सामाजिक सर्वेक्षण की (स) एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में परिभाषित किया है। अतः सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा की विवेचना उपरोक्त तीनों आधारों पर कर लेना ही उचित होगा—

(अ) सामाजिक सर्वेक्षण सामान्य सामाजिक घटनाओं के एक अध्ययन के रूप में (Social Survey as a study of General Social Phenomena)—प्रथम श्रेणी के अंतर्गत वे विद्वान आते हैं जो कि अपनी परिभाषा में इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण सामान्य सामाजिक घटनाओं का अध्ययन है। श्री वेल्स (Wells) के शब्दों में, "साधारण तौर पर सामाजिक सर्वेक्षण को किसी विशिष्ट क्षेत्र में रहने वाले एक मानव-समूह की सामाजिक संस्थाओं व क्रियाकलापों (activities) के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

नोट्स श्री सिन पाओ यांग (Hsin Pao Yang) के अनुसार, "सामाजिक सर्वेक्षण प्रायः लोगों के एक समूह की रचना, क्रियाकलापों तथा रहन-सहन की दशाओं के संबंध में एक जाँच-पड़ताल है।"

(ब) सामाजिक सर्वेक्षण व्याधिकीय समस्याओं व समाज-सुधार से संबंधित अध्ययन के रूप में (Social Survey as a study of Pathological Problems and Social Reform)—इस दूसरी श्रेणी के अंतर्गत वे विद्वान आते हैं जो कि इस बात पर बल देते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक समस्याओं का अध्ययन समाज सुधार के उद्देश्य से करता है। इस अर्थ में समाज व उसकी समस्याओं का अध्ययन तथा उन समस्याओं के समाधान की खोज करके सामाजिक कल्याण करने के द्विमुखी उद्देश्य की पूर्ति सामाजिक सर्वेक्षण करता है। श्रीमती यंग (P. V. Young) ने स्पष्ट ही लिखा है कि "सामाजिक सर्वेक्षण (1) समाज-सुधार की किसी क्रियात्मक योजना के निरूपण (formulation) और (2) निश्चित भौगोलिक सीमाओं में व्याप्त तथा निश्चित सामाजिक परिणामों व सामाजिक महत्त्व वाली किसी प्रचलित या तात्कालिक व्याधिकीय अवस्था के सुधार से संबंधित है; (3) इन अवस्थाओं की माप व तुलना किसी ऐसी परिस्थितियों के साथ हो सके जिसे कि आदर्श रूप में स्वीकार किया जा सके।" इस अर्थ में माप और तुलना की वैज्ञानिक विधियों द्वारा एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के किसी मानव-समूह या समुदाय के जीवन से संबंधित किसी महत्त्वपूर्ण तात्कालिक व्याधिकीय समस्या का अध्ययन व समाज-सुधार की क्रियात्मक योजना का निरूपण ही सामाजिक सर्वेक्षण है।"

श्री बर्जेस (Burgess) के मतानुसार, "एक समुदाय का सर्वेक्षण सामाजिक विकास की एक रचनात्मक परियोजना प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया गया उस समुदाय की दशाओं व आवश्यकताओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

नोट

(स) सामाजिक सर्वेक्षण एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में (Social Survey as a Scientific Method)—इस श्रेणी के अंतर्गत वे विद्वान आते हैं जो कि सामाजिक सर्वेक्षण की विवेचना एक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में करते हैं। उदाहरणार्थ, श्री मोर्स (Morse) का कथन है, "संक्षेप में : सामाजिक सर्वेक्षण कुछ परिभाषित उद्देश्यों के हेतु किसी विशेष सामाजिक परिस्थिति अथवा समस्या अथवा जनसंख्या का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप में विश्लेषण करने की केवल एक पद्धति है।"

उपरोक्त तीनों श्रेणियों के विद्वानों द्वारा प्रस्तुत सभी परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें सामाजिक सर्वेक्षण की एक सामान्य परिभाषा का आभास भी सरलता से ही होता है। हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक सर्वेक्षण वह वैज्ञानिक पद्धति है जिसके द्वारा एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र के किसी सामाजिक घटनाओं के अथवा सामूहिक जीवन के विषय में निर्भरयोग्य तथ्यों को संकलित किया जाता है ताकि घटना की वास्तविकताओं का अध्ययन, विश्लेषण तथा निष्कर्षीकरण किया जा सके और यदि वह घटना व्याधिकीय है तो उसके समाधान के लिए आवश्यक परियोजना (programme) बनाकर समाज-सुधार की दशा में योगदान दिया जा सके।

17.2 सामाजिक सर्वेक्षण के प्रकार (Types of Social Survey)

विषय-वस्तु, प्रकृति, समयावधि, उद्देश्य आदि के आधार पर सामाजिक सर्वेक्षण के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख अलग-अलग विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से किया है। उदाहरणार्थ, श्री वेल्स (Wells) ने सामाजिक सर्वेक्षण के दो प्रकारों का उल्लेख किया है—(1) प्रचार सर्वेक्षण (Publicity or Sensational Survey)—इस प्रकार के सर्वेक्षण जनता में जागृति उत्पन्न करने अथवा किसी भौतिक या अभौतिक (non-material) वस्तु का प्रचार करने के उद्देश्य से किए जाते हैं। सरकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए इस प्रकार का सर्वेक्षण अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होता है क्योंकि सर्वेक्षण द्वारा जनता के मनोभाव या जन-समाज के रुख का पता चल जाता है और उसी के अनुसार योजना का रूप निश्चित किया जा सकता है। (2) तथ्य-संकलन सर्वेक्षण (Fact-collecting Survey)—जब किसी सामाजिक घटना या समस्या के संबंध में केवल तथ्यों को एकत्रित करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण किया जाता है तो उसे तथ्य-संकलन-सर्वेक्षण कहते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण दो प्रकार के हो सकते हैं—एक तो वैज्ञानिक और दूसरा व्यावहारिक (practical)। वैज्ञानिक सर्वेक्षण में किसी घटना के संबंध में केवल ज्ञान की प्राप्ति अथवा सिद्धांतों के परीक्षण के हेतु तथ्यों का संकलन किया जाता है। जबकि व्यावहारिक सर्वेक्षणों का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या के हल के लिए आवश्यक तथ्यों का संकलन होता है।

श्री हरबर्ट हाईमैन (Herbert Hyman) ने सामाजिक सर्वेक्षण के निम्नलिखित प्रकार बताए हैं—(क) विवरणात्मक सर्वेक्षण (Descriptive Survey)—जो सर्वेक्षण किसी सामाजिक घटना, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक व्यवहार-प्रतिमान, आदत-प्रतिमान (habit pattern) अथवा सामाजिक प्रक्रिया (process) का विवरणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से किया जाता है उसे विवरणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। (ख) व्याख्यात्मक सैद्धांतिक या प्रयोगात्मक सर्वेक्षण (Explanatory Theoretical or Experimental Survey)—किसी सामाजिक घटना या समस्या में अंतर्निहित कार्यों की व्याख्या करने के लिए अथवा सिद्धांतों को प्रतिपादित करने अथवा प्रयोगात्मक विधियों के द्वारा अध्ययन करने वाले सर्वेक्षण इस श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण स्वयं ही चार प्रकार के होते हैं—प्रथम प्रकार को मूल्यांकनात्मक या परियोजनात्मक सर्वेक्षण (Evaluative or Programmative Survey) कहते हैं। ऐसे सर्वेक्षण का तात्कालिक प्रयोजन यह होता है कि अध्ययन द्वारा खोजे गए कारकों के ज्ञान के आधार पर सामाजिक घटना या समस्या में आवश्यक सुधार, परिमार्जन या परिवर्तन के लिए परियोजना का निर्माण किया जा सके। इसलिए इस प्रकार के सर्वेक्षण को परियोजनात्मक सर्वेक्षण भी कहते हैं। दूसरे प्रकार को निदानात्मक सर्वेक्षण (Diagnostic Survey) कहते हैं जिसमें किसी समस्या के निदान की खोज की जाती है। दूसरे शब्दों में, समस्या के समाधान हेतु उस समस्या के कारणों को ढूँढ़ने के लिए जिस सर्वेक्षण का आयोजन किया जाता है उसे निदानात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। तीसरे प्रकार को भविष्य-निर्देशक सर्वेक्षण (Prediction Survey) कहते हैं जिसमें कि अध्ययन का उद्देश्य एक सामाजिक घटना के भविष्य की गतिविधि के संबंध में अनुमान करना होता है। चौथे प्रकार को द्वैतीयक विश्लेषण-सर्वेक्षण (Secondary Analysis Survey) कहते हैं। जब तक सर्वेक्षणकर्ता अपनी समस्या या विषय पर प्रकाश डालने वाले तथ्यों का

संकलन करने के लिए भूतपूर्व सर्वेक्षणों की सामग्री से लाभ उठाता है और उनके आधार पर नए नियम खोजता है तो वह द्वैतीयक विश्लेषण-सर्वेक्षण कहलाता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. प्रचार सर्वेक्षण जनता में ·············· उत्पन्न करते अथवा किसी भौतिक अथवा अभौतिक वस्तु का प्रचार करने के उद्देश्य से किए जाते हैं।
2. सरकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए इस प्रकार का ·············· अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होता है।
3. केवल तथ्यों की एकत्रित करने के उद्देश्य से सर्वेक्षण किया जाता है तो उसे ·············· कहते हैं।

उपर्युक्त प्रकार के सर्वेक्षणों के अतिरिक्त सर्वेक्षण के अन्य कुछ उल्लेखनीय प्रकार निम्नलिखित हैं–

1. जनगणना सर्वेक्षण (Census Survey)–इस प्रकार के सर्वेक्षण में किसी विषय या संबंधित सभी व्यक्तियों अर्थात् समस्त जनसंख्या से संपर्क स्थापित करके सूचना प्राप्त की जाती है। दूसरे शब्दों में, इस प्रकार के सर्वेक्षण में संपूर्ण जनसंख्या में से कुछ निदर्शनों (Samples) को चुनकर अध्ययन करने के स्थान पर सभी को अध्ययन की इकाई मान लिया जाता है और उनसे सूचना एकत्रित करके निष्कर्ष निकाला जाता है। बहुत छोटे या सीमित समुदायों का अध्ययन इसी प्रकार के सर्वेक्षण द्वारा किया जाता है, पर बड़े समुदायों का अध्ययन इस रूप में करने के लिए अत्यधिक, धन समय तथा कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होती है जिसका भार उठाना सरकार या अन्य किसी संपन्न संस्था के द्वारा ही संभव होता है। भारतवर्ष में प्रत्येक दसवें वर्ष इस प्रकार का सर्वेक्षण सरकार द्वारा करवाया जाता है जिसे जनगणना (census) कहते हैं और जिसमें प्रत्येक परिवार तथा व्यक्ति के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की जाती है।

2. निदर्शन सर्वेक्षण (Sample Survey)–यह सर्वेक्षण बहुत-कुछ जनगणना सर्वेक्षण का विपरीत रूप है और वह इस अर्थ में कि इसमें जनसंख्या की प्रत्येक इकाई का अध्ययन न करके केवल कुछ ऐसी इकाइयों का अध्ययन किया जाता है जो कि संपूर्ण जनसंख्या का उचित प्रतिनिधित्व कर सकें और इसीलिए इन निदर्शनों (sample) का अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकलता है उसी को संपूर्ण जनसंख्या पर लागू कर दिया जाता है। आधुनिक जटिल व विराट् समुदायों का अध्ययन करते समय इसी प्रकार का सर्वेक्षण किया जाता है क्योंकि विस्तृत क्षेत्र के सभी मनुष्यों या इकाइयों का अध्ययन करना अत्यंत कठिन है। इसलिए संपूर्ण जनसंख्या से कुछ प्रतिशत इकाइयों को निदर्शन के रूप में चुन लिया जाता है और केवल उनका अध्ययन करके संपूर्ण के विषय में निष्कर्ष निकाल लिया जाता है।

3. नियमित तथा कार्यवाहक सर्वेक्षण (Regular and Addhoc Survey)–जब कोई स्थायी विभाग या संस्था कुछ विषयों पर नियमित रूप से सर्वेक्षण करती रहती है तो उसे **नियमित सर्वेक्षण** कहते हैं। उदाहरणार्थ भारत सरकार के जनगणना विभाग, रिजर्व बैंक आदि के द्वारा जनसंख्या, साख सुविधा, बैंकों की संपत्ति आदि के संबंध में समय-समय पर नियमित रूप से सर्वेक्षण किया जाता है। इसके विपरीत जब किसी तात्कालिक आवश्यकता या उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी अस्थायी बंदोबस्त के द्वारा सर्वेक्षण किया जाता है तो उसे **कार्यवाहक सर्वेक्षण** कहते हैं। इसमें कोई स्थायी प्रबंध किए बिना अस्थायी तौर पर किसी अध्ययन दल (study team) की नियुक्ति करके सामाजिक दृष्टि से किसी तात्कालिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण कराया जाता है। किसी योजना को बनाते समय कई बार ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न बीच में ही उठ खड़े होते हैं जिनके विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त किए बिना योजना को व्यवस्थित व अंतिम (final) रूप प्रदान करना संभव नहीं होता। ऐसी दशा में कार्यवाहक सर्वेक्षण उपयोगी सिद्ध होते हैं।

4. अंतिम और पुनरावर्त्तक सर्वेक्षण (Final and Repetitive Survey)–यदि अध्ययन का विषय बहुत कम परिवर्तनशील तथा अत्यधिक सीमित है तो उसके संबंध में एक बार अध्ययन करके ही कुछ अंतिम निष्कर्ष निकाल लिए जाते हैं। ऐसे सर्वेक्षण को अंतिम सर्वेक्षण कहते हैं। पर अधिकांशत: सामाजिक परिस्थितियाँ, तथ्य या दशाएँ परिवर्तनशील होने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि एक ही विषय पर बार-बार सर्वेक्षण किए जाएँ ताकि परिवर्तितपरिस्थितियों या दशाओं के संदर्भ में पुराने सर्वेक्षणों के निष्कर्षों में आवश्यक सुधार, परिवर्तन या परिवर्द्धन

नोट

किया जा सके। इस उद्देश्य से एक ही विषय पर बार-बार सर्वेक्षण-कार्य के दोहराए जाने वाले सर्वेक्षण को **पुनरावर्त्तक सर्वेक्षण** कहते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण में सर्वेक्षण का आधार वही रहता है जैसा कि उससे पहले किए गए सर्वेक्षण का था जिससे कि दोनों की तुलना की जा सके।

5. गुणात्मक व परिमाणात्मक सर्वेक्षण (Qualitative and Quantitative Survey)–जब किसी गुणात्मक विषय या घटना के संबंध में सर्वेक्षण किया जाता है जैसे जनमत, पक्षपात, प्रथा, संस्कार, मनोवृत्ति आदि तो उसे गुणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं। इसके विपरीत जब सर्वेक्षण का विषय गणनात्मक होता है, तो उसे परिमाणात्मक सर्वेक्षण कहा जाता है। शिक्षा का विस्तार व शिक्षा का स्तर, जातीय संरचना, आर्थिक स्तर, विवाह-विच्छेद की दरें (rates) आदि ऐसे विषय हैं जिनके विषय में संख्यात्मक तौर पर अर्थात् संख्या में तथ्यों को एकत्रित व अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए इस प्रकार के सर्वेक्षण को परिमाणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं।

6. सार्वजनिक और गुप्त सर्वेक्षण (Public and Secret Survey)–सार्वजनिक सर्वेक्षण उसको कहते हैं जिसके किसी भी तथ्य को जनता से छिपाया नहीं जाता है और संपूर्ण सर्वेक्षण-कार्य को खुलेआम करने के पश्चात् उसकी रिपोर्ट को जनता के सूचनार्थ प्रकाशित कर दिया जाता है। शिक्षा-प्रसार, राष्ट्रीय बचत योजना आदि से संबंधित सर्वेक्षण इसी श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इसके विपरीत कुछ इस प्रकार के विषय भी हो सकते हैं जिनसे संबंधित तथ्यों को प्रकाशित करना राष्ट्रीय या प्रशासकीय हित के विपरीत होता है। ऐसे सर्वेक्षण-कार्य में चूँकि गोपनीयता अपनाई जाती है, इस कारण इन्हें गुप्त सर्वेक्षण कहते हैं।

टास्क नियमित तथा कार्यवाहक सर्वेक्षण किसे कहते हैं? उल्लेख करें।

17.3 सर्वेक्षण पद्धति के गुण (Merits of Survey Method)

सामाजिक अनुसंधान के कार्य में एकाधिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनमें से सर्वेक्षण पद्धति एक है। दूसरी पद्धतियों की तुलना में सर्वेक्षण पद्धति के अपने कुछ गुण हैं जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. सर्वेक्षण पद्धति में अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन-विषय के सीधे संपर्क में आता है, ऐसा इसलिए होता है कि इस विधि के अंतर्गत सर्वेक्षणकर्ता को अपने विषय से संबंधित परिस्थितियों तथा व्यक्तियों से सीधे तौर पर तथ्यों को एकत्रित करना पड़ता है और उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनुसंधानकर्ता को उनके साथ निकट व घनिष्ठ संबंध स्थापित करना पड़ता है। सर्वेक्षण की सफलता इसी बात पर निर्भर है कि अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन-विषय से संबंधित परिस्थितियों तथा व्यक्तियों से सीधा संपर्क स्थापित करने में कितना सफल हो सका है। इस अर्थ में हम यह कह सकते हैं कि सर्वेक्षण पद्धति न तो दार्शनिक पद्धति है और न ही कोरी पुस्तकीय अथवा सैद्धांतिक ज्ञान पर आधारित है।

2. सर्वेक्षण पद्धति में किसी विषय के प्रति विशिष्ट झुकाव की संभावना कम हो जाती है। इसका कारण यह है कि इस पद्धति के अंतर्गत अनुसंधानकर्ता अपने विषय से संबंधित आँकड़ों तथा तथ्यों को उनके यथार्थ रूप में एकत्रित करने का प्रयत्न करता है जिसके फलस्वरूप उसका निष्कर्ष प्रातीतिक न होकर अधिकाधिक वैषयिक होता है।

3. सामाजिक सर्वेक्षण इस प्रकार की सामाजिक घटनाओं के विषय में भी अध्ययन-कार्य को संभव बनाता है जिनके विषय में घर बैठे अध्ययन नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए देश-विभाजन के पश्चात् विभिन्न प्रदेशों में बसे शरणार्थियों के जीवन में किसी प्रकार के परिवर्तन हुए हैं या उनके एक प्रदेश-विशेष में बस जाने के कारण वहाँ के मूल निवासियों के जीवन-प्रतिमान में कौन-कौन से प्रभाव पड़े हैं इसका अध्ययन घर बैठे सैद्धांतिक तौर पर नहीं किया जा सकता जब तक कि सामाजिक सर्वेक्षण विधि की सहायता न ली जाए।

4. सर्वेक्षण पद्धति वैज्ञानिक स्थिति को प्राप्त करने में अधिक सफल हुई है। प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयुक्त पद्धतियों के अनुरूप सर्वेक्षण पद्धति में भी अब ऐसी प्रणालियों का विकास किया जा रहा है जिनके अनुसार आवश्यकतानुसार

नोट

एक सामाजिक घटना को नियंत्रित किया जा सकता है। वैसे भी सामाजिक सर्वेक्षणकर्ता अपने अध्ययन-विषय या घटना को जैसी वह है उसी रूप में देखने का प्रयत्न करता है जिससे कि घटना का वास्तविक रूप ज्यों का त्यों बना रहता है और घटना के संबंध में यथार्थ निष्कर्ष निकालना संभव होता है।

5. सर्वेक्षण पद्धति प्रत्यक्ष ज्ञानप्राप्ति का एक अत्यंत निर्भरयोग्य साधन है। इसका कारण यह है कि इसमें सर्वेक्षणकर्ता का अपने विषय से सीधा संपर्क स्थापित हो जाता है। यह सीधा संपर्क काल्पनिक विचारों को अध्ययन-क्षेत्र के अंतर्गत आने नहीं देता अथवा इस प्रकार के विचारों की संभावनाएँ कम हो जाती हैं।

क्या आप जानते हैं यदि हम औद्योगिक नगरों की श्रमिक बस्तियों में बसे श्रमिकों की दशाओं के बारे में अथवा गाँवों के भूमिहीन कृषि-श्रमिकों में व्याप्त निर्धनता के विषय में अथवा गाँवों के भूमिहीन कृषि-श्रमिकों में व्याप्त निर्धनता के विषय में अथवा शिक्षण संस्थाओं में हरिजन बच्चों की वास्तविक स्थिति के संबंध में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति ही सर्वोत्तम पद्धति है।

17.4 सर्वेक्षण पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Survey Method)

सर्वेक्षण पद्धति में उपर्युक्त गुण होने पर भी इसकी कुछ अपनी सीमाएँ भी हैं जिन्हें कि हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

1. सर्वेक्षण पद्धति के द्वारा केवल उन्हीं घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है जो कि दृष्टिगोचर योग्य हैं। परंतु अधिकांश सामाजिक घटनाएँ ऐसी नहीं होती हैं। अर्थात् वे अमूर्त तथा भावात्मक होती हैं। इस प्रकार की भावात्मक व अमूर्त घटनाओं का अध्ययन सर्वेक्षण पद्धति के द्वारा संभव नहीं है।

क्या आप जानते हैं प्रत्येक सामाजिक घटना के स्थल पर उपस्थित रहकर घटनाओं का स्वयं निरीक्षण करना प्रत्येक अवस्था में अनुसंधानकर्ता के लिए संभव नहीं होता है और उस अवस्था में सामाजिक सर्वेक्षण की उपयोगिता स्वत: ही घट जाती है।

2. सामाजिक सर्वेक्षण अधिक व्यय तथा समय-साध्य है। सामाजिक सर्वेक्षण में धन और समय दोनों की बहुत जरूरत पड़ती है। सर्वेक्षण-कार्य के लिए नियुक्त कार्यकर्ताओं के निवास, वेतन, प्रशिक्षण तथा निरीक्षण आदि की व्यवस्था में और साथ ही प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार व चित्रमय प्रदर्शन आदि में धन बहुत व्यय करना पड़ता है और इसीलिए अनेक सर्वेक्षण-कार्य आर्थिक साधन के अभाव के कारण बीच में ही रुक जाते हैं। उसी प्रकार विस्तृत सर्वेक्षणों में कई-कई वर्ष लग जाते हैं और इस लंबे समय के दौरान समान उत्साह व संयम को बनाए रखना कठिन हो जाता है।
3. सर्वेक्षण की प्रक्रिया में एक पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार खोज करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप कभी-कभी संपूर्ण सर्वेक्षण-कार्य यंत्रवत् चलता रहता है और अनुसंधानकर्ताओं के लिए अपनी बुद्धि के स्वतंत्र प्रयोग का क्षेत्र बहुत संकुचित हो जाता है।
4. सामाजिक सर्वेक्षण के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों की विश्वसनीयता (reliability) पर संदेह किया जाता है क्योंकि सर्वेक्षण के दौरान व्यक्तिगत पसंद व नापसंद, पक्षपात, संस्कार व पूर्वधारणाओं से अपने को पूर्णतया अप्रभावित रखना सर्वेक्षणकर्ता के लिए अत्यधिक कठिन होता है। सर्वेक्षण की सफलता सार्वेक्षकों की ईमानदारी, कुशलता, तथ्यों की वैषयिकता, सूचनादाताओं के सहयोग और सर्वेक्षण-प्रविधियों की उपयोगिता पर निर्भर है। परंतु इन सबों को एकसाथ प्राप्ति बहुत ही कठिन है।

5. सामाजिक घटनाएँ अमूर्त तथा अत्यधिक बिखरी हुई होती हैं और इसीलिए एक सर्वेक्षण के द्वारा उन्हें किसी समान सूत्र में बाँधना अत्यंत कठिन होता है। यही कारण है कि सर्वेक्षण स्वयं असंबद्ध तथा बिखरे हुए होते हैं। उन्हें एक कड़ी में पिरोकर किसी निश्चित सिद्धांत का निर्माण स्वयं एक समस्या बन जाता है। इस समस्या के समाधान के प्रति सामाजिक-वैज्ञानिक आज अधिक जागरूक हैं और उनकी सफलता पर ही सामाजिक विज्ञान की प्रगति का पथ अधिक प्रशस्त होने की आशा की जाती है।

17.5 सारांश (Summary)

- एक समुदाय के संपूर्ण जीवन या उसके किसी विशेष पक्ष के संबंध में वैज्ञानिक तौर पर तथ्यों के संकलन, विश्लेषण, निष्कर्षीकरण की वैज्ञानिक प्रणाली को सामाजिक सर्वेक्षण कहा जाता है।
- सर्वेक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन विषय से संबंधित परिस्थितियों तथा व्यक्तियों से सीधा संपर्क स्थापित करने में कितना सफल हो सका है।

17.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **गुणात्मक सर्वेक्षण (Qualitative Survey)**–जब किसी गुणात्मक विषय या घटना के संबंध में सर्वेक्षण किया जाता है जैसे जनमत, प्रथा संस्कार आदि तो उसे गुणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं।
2. **परिमाणात्मक सर्वेक्षण (Quantitative Survey)**–जब सर्वेक्षण का विषय गणनात्मक होता है तो उसे परिमाणात्मक सर्वेक्षण कहते हैं जैसे, शिक्षा का विस्तार, जातीय संरचना, आर्थिक स्तर, विवाह-विच्छेद की दरें आदि।

17.7 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक सर्वेक्षण के गुणों को बताएँ।
2. सामाजिक सर्वेक्षण का अर्थ तथा इसकी सीमाओं का विश्लेषण करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. जागृति
2. सर्वेक्षण
3. तथ्य-संकलन-सर्वेक्षण।

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध व सांख्यिकी–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–18: गुणात्मक शोध की पद्धति एवं तकनीक
(Techniques and Methods of Qualitative Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ (Study Methods of Sociology)

18.2 समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति/वैज्ञानिक पद्धति (General Methods/Scientific Methods of Sociology)

18.3 सारांश (Summary)

18.4 शब्दकोश (Keywords)

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक क्रिया से संबंधित संख्यात्मक तथ्य एकत्रित करना।
- उपकल्पना का निर्माण करना।
- सामग्री एकत्रित कर क्रमबद्ध करना।
- समस्या का निर्धारण करना जिससे अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन को एक बिंदु पर केंद्रित कर ले।

प्रस्तावना (Introduction)

ऑगस्ट कॉम्ट का निश्चित मत है कि वैज्ञानिक अध्ययन में सट्टेबाजी या अनुमान (Speculations) का कोई स्थान नहीं है। दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चिंतन द्वारा प्राप्त निष्कर्ष सत्य भी हो सकता है और काल्पनिक भी, अर्थात् ऐसे निष्कर्षों का सत्य या काल्पनिक होना 'संयोग' की बात है, जबकि वैज्ञानिक अध्ययन 'संयोग' या 'अनुमान' पर निर्भर नहीं हो सकता और न होना चाहिए। इसीलिए प्रत्येक विज्ञान अपने प्रयोगसिद्ध अध्ययन-कार्य के लिए एक या एकाधिक निश्चित एवं सुव्यवस्थित अध्ययन-प्रणालियों को अपनाता है। इन्हीं को पद्धतियाँ कहते हैं और ये पद्धतियाँ ही वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार हैं। ये पद्धतियाँ आधारभूत रूप से सभी विज्ञानों में समान या एक जैसी होती हैं, केवल अध्ययन-वस्तु की प्रकृति के अनुरूप इनके रूप या स्वरूप में कुछ आवश्यक परिवर्तन प्रत्येक विज्ञान में कर लिया जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पद्धति वह प्रणाली है जिसके अनुसार अध्ययन-कार्य का संगठन, तथ्यों की विवेचना तथा निष्कर्षों का निर्धारण किया जाता है।

नोट

18.1 समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियाँ (Study Methods of Sociology)

जहाँ तक समाजशास्त्र की अध्ययन पद्धतियों का प्रश्न है ऐसा कहा जाता है कि समाजशास्त्र की पद्धतियाँ अधिक प्रामाणिक नहीं हैं यद्यपि इनकी संख्या अत्यधिक है। संभवतया इसीलिये फ्रांसीसी गणितज्ञ **हेनरी पॉयनकेयर** (Poincare) ने एक बार समाजशास्त्र को सबसे अधिक पद्धतियों एवं सबसे कम परिणामों वाला विज्ञान कहा था। **श्री पॉयनकेयर** का ऐसा कहना बहुत बड़ा दावा है। **श्री बोटोमोर** ने लिखा है, "पॉयनकेयर की उक्ति में सच्चाई यह है कि समाजशास्त्र की उचित पद्धतियों के बारे में बहुत विवाद रहा है और प्रत्येक समाजशास्त्रीय सिद्धांतकार का (प्रत्येक अध्यात्मवादी की तरह) झुकाव विषय के प्रति नयी पद्धति को प्रस्तावित करने का रहा है।" श्री बोटोमोर का ऐसा लिखने का अभिप्राय यही है कि समाज का अध्ययन अधिक जटिल है और प्रकृति के अध्ययन के समान नहीं है।

नोट्स डिल्थे महोदय के बाद जर्मन इतिहासकारों ने भी इस तथ्य की ओर संकेत किया। वास्तव में समाजशास्त्रीय पद्धतियाँ प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतियों से अध्ययन-विषय, प्रकृति आदि के आधार पर भिन्न होती हैं।

(A) **परिमाणात्मक पद्धतियाँ** (Quantitative Methods)—ये पद्धतियाँ मूर्त तथ्यों को संख्यात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं।

1. **सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति या विधि** (Social Survey Method)—इस विधि का वैज्ञानिक प्रयोग सबसे पहले **लीप्ले** (Leplay) महोदय ने किया था।

अर्थ—श्री **मार्क एब्राम्स** (Mark Abrams) का कहना है, "सामाजिक सर्वेक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक संगठन और सामाजिक क्रिया से संबंधित संख्यात्मक तथ्य एकत्र किए जाते हैं।"

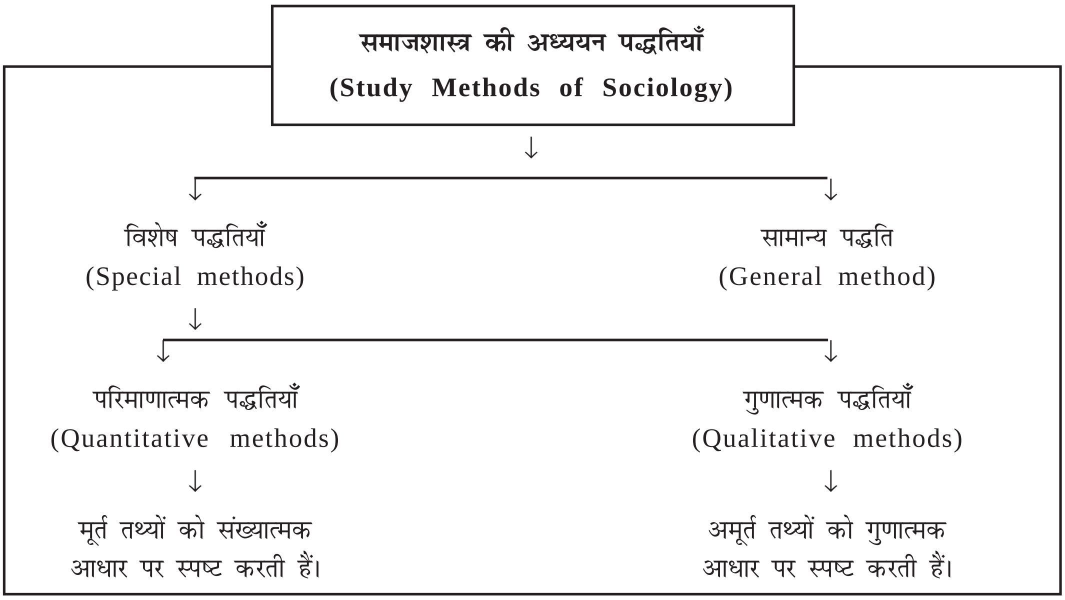

कार्य-विधि—इस विधि में अनेक स्तरों में कार्य करना होता है। सबसे पहले विषय का निर्धारण करना होता है। इसके बाद क्षेत्र में तथ्य संकलित करने से पहले समस्त उपकरणों और साधनों को जानना होता है। सामग्री संकलन के साधन निश्चित हो जाने के बाद **सामग्री संकलन** का कार्य प्रारंभ किया जाता है। सामग्री संकलन का कार्य निरीक्षण (Observation), साक्षात्कार (Interview), प्रश्नावली (Questionnaire), अनुसूची (Schedule) आदि द्वारा संचालित किया जाता है। चौथे स्तर पर **सामग्री का विवेचन** करना होता है। वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण आदि

की प्रक्रियाओं द्वारा सर्वेक्षण के निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अंतिम स्तर पर सर्वेक्षण की रिपोर्ट तैयार करना होता है। रिपोर्ट में तथ्यों को रेखाचित्र, चार्ट आदि के द्वारा भी स्पष्ट किया जाता है।

प्रकार–(1) सामान्य सामाजिक सर्वेक्षण में समग्र रूप से समुदाय की समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जबकि (2) विशिष्ट सामाजिक सर्वेक्षण में एक विशेष सामाजिक समस्या का अध्ययन होता है।

महत्त्व–व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित होने के कारण सामाजिक सर्वेक्षण विधि द्वारा क्षेत्र का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना संभव है। इसी कारण इस विधि का महत्त्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

सीमाएँ–इस विधि या पद्धति की अपनी **सीमाएँ** (Limitations) भी हैं। **भावनात्मक और अमूर्त तथ्यों** का अध्ययन संभव नहीं है। पक्षपातपूर्ण निष्कर्ष की संभावना बनी रहती है और कई बार उचित निदर्शन (Sampling) न होने के कारण भी निष्कर्ष गलत आते हैं। इन सीमाओं के उपरांत भी इस विधि की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है, जो इसके महत्त्व की स्पष्ट परिचायक है।

2. सांख्यिकीय पद्धति (Statistical Method)–**श्री केण्डाल** के अनुसार, "सांख्यिकीय वैज्ञानिक पद्धति की वह शाखा है जो अनेक पदार्थों के समूह की विशेषताओं को मापकर अथवा गणना द्वारा प्राप्त की गयी सामग्री से संबंधित है।" इससे स्पष्ट है कि सामाजिक सांख्यिकीय पद्धति तथ्यों का वैज्ञानिक रूप से सांख्यिकीय अध्ययन करने की विधि है। इसलिये **ओडम** (Odum) महोदय ने सांख्यिकी को अनुसंधान का आवश्यक अंग माना है।

कार्यविधि–सांख्यिकी पद्धति में प्रथम स्तर पर निदर्शनों का चुनाव करना होता है। दूसरे स्तर पर आँकड़ों का संकलन करना होता है। तृतीय स्तर पर वर्गीकरण और सारणीयन होता है। अंतिम स्तर पर विभिन्न माध्यों (Different averages) के द्वारा आवृत्तियों (Frequencies) को सरल बनाया जाता है तथा ग्राफ और चार्ट के रूप में प्रकट किया जाता है।

महत्त्व–संख्यात्मक पद्धति समाजशास्त्रीय अध्ययन में बहुत सहायक है, विशेष रूप से ऐसे प्रश्नों के संबंध में जिनमें माप-तौल, संख्या आदि का संबंध रहता है। उदाहरणार्थ–समुदाय की जनसंख्या, अपराध की दर, देश से होने वाला आयात आदि प्रश्नों का संबंध गणना से है। इसलिये गणना द्वारा इनको हल किया जाता है। **प्रो० गिडिंग्स** (Prof. Giddings) पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र में गणना के महत्त्व की ओर आकर्षित किया।

सीमाएँ–इस विधि में हम आँकड़े तैयार करते हैं, सूचियाँ बनाते हैं। परंतु इस सबसे आंतरिक कारणों पर प्रकाश नहीं पड़ता। इस अपूर्णता को पूरा करने के लिये गुणात्मक विधियों का सहारा लेना पड़ता है।

3. ऐतिहासिक पद्धति (Historical Method)–**श्री बोटोमोर** ने ऐतिहासिक पद्धति या विधि को स्पष्ट करते हुए लिखा है, **"इस विधि में शोध और सिद्धांत के लिए समस्याओं में प्राथमिकता के एक विशेष क्रम का समावेश रहता है। सामाजिक संस्थाओं, समाजों और सभ्यताओं की उत्पत्ति, विकास और रूपांतरण की समस्याओं पर यह ध्यान केन्द्रित करती है। यह मानव-इतिहास के संपूर्ण विस्तार और समाज की समस्त प्रधान संस्थाओं से संबद्ध है जिसका उदाहरण कॉम्टे, स्पेंसर और हॉबहाउस की रचनायें हैं।"** इस प्रकार यह पद्धति सामाजिक घटनाओं या सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन मानवीय इतिहास के सहारे करने पर बल देती है।

बाद में ऐतिहासिक विधि में विकासवादी दृष्टिकोण को स्थान दिया गया और किसी भी सामाजिक संस्था के संपूर्ण विकास के क्रम को प्रामाणिक आधार पर समझाने का अध्ययन करने के लिए इतिहास का सहारा लिया गया। **वेस्टरमार्क** की रचना **'History of Human Marriage'** और **ओपेनहीमर** की रचना **'The State'** ऐतिहासिक विधि में इसी विकासवादी क्रम पर आधारित हैं। **बोटोमोर महोदय** (Bottomore) के अनुसार, **"सामाजिक विकास की समस्याओं के प्रति आधुनिक रुचि लगभग पूर्णतया औद्योगीकरण एवं आर्थिक प्रगति पर केन्द्रित है।"**

ऐसी अवस्था में अनेक विकासवादी योजनाओं में संकुचित व कट्टर स्वरूप का पनप जाना स्वाभाविक ही है। सच तो यह है कि कार्ल मार्क्स (Karl Marx) द्वारा प्रतिपादित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या एवं परिणाम के रूप में पूँजीवाद का उदय इसी संकुचित विकासवादी सिद्धांत का उदाहरण है।

नोट

टास्क ऐतिहासिक पद्धति के बारे में अपना विचार प्रकट करें।

4. तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)–श्री **बोटोमोर** (Bottomore) का कहना है, **"तुलनात्मक पद्धति दीर्घ समय तक समाजशास्त्र में सर्वोत्तम विधि समझी जाती रही। सर्वप्रथम इसका प्रयोग विकासवादी समाजशास्त्रियों ने किया था किंतु इसके प्रयोग में ऐतिहासिक विधि से प्रतिबद्धता आवश्यक नहीं है।" दुर्खीम** महोदय ने भी अपनी कृति **'The Rules of Sociological Method'** में सबसे पहले तुलनात्मक विधि के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयास किया है।

तुलनात्मक पद्धति के द्वारा विभिन्न समाज की संस्थाओं व मान्यताओं के विकास, उत्पत्ति, विनाश आदि के सामान्य कारणों को ढूँढ़ निकाला जाता है और इस प्रकार मानव-समाज में क्रियाशील उन सामान्य प्रेरक तत्वों का पता लग जाता है जिनके कारण समाज की विभिन्न संस्थाओं अथवा समाज के विभिन्न अंगों में एकता या संगठन बना रहता है। वास्तव में तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते समय समाज से संबंधित तथ्यों को संकलित करके वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर तौलना चाहिये एवं इस प्रकार के अध्ययन-कार्य के दौरान किसी भी स्तर पर भावनात्मक, दार्शनिक, उद्वेगात्मक आदि विचारों से दूर रहना चाहिए ताकि तुलनात्मक कार्य और उस पर आधारित नियम-उपनियम (Laws) दोषों से मुक्त रहें।

तुलनात्मक पद्धति का अनुसरण करने में मुख्य रूप से दो कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं–(1) वैज्ञानिक उपकल्पना का अभाव और (2) तुलना की इकाई की परिभाषा की समस्या। उदाहरणार्थ, कॉम्टे (Comte) द्वारा प्रतिपादित 'तीन स्तरों के नियम (Law of Three Stages)' की स्थापना वैज्ञानिक उपकल्पना के स्थान पर मानवता के विकास की दार्शनिक दृष्टि पर आधारित है।

5. प्रकार्यवादी पद्धति (Structural Functional Method)–समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के रूप में **प्रकार्यवादी पद्धति** ऐतिहासिक व तुलनात्मक पद्धतियों की अस्पष्टता व अनिश्चितता को दूर करने के लिए विकसित की गयी। इस पद्धति का उपयोग मैलिनोवस्की (Malinowski), रैडक्लिफ ब्राउन (Radcliffe Brown), दुर्खीम (Durkheim), मर्टन (Merton) आदि विचारकों ने व्यापक रूप से किया है।

प्रकार्यवादी पद्धति कुछ निश्चित आधारों का अनुसरण करती है। ये निश्चित आधार सामाजिक घटना के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए आवश्यक हैं। ये आधार निम्न हैं–

(*i*) सामाजिक संरचना को निर्मित करने वाली अनेक इकाइयाँ होती हैं।

(*ii*) प्रत्येक सामाजिक इकाई कोई-न-कोई प्रकार्य करती है अर्थात् कोई भी निर्मायक इकाई व्यर्थ नहीं होती है।

(*iii*) ये विभिन्न इकाइयाँ अपने-अपने प्रकार्यों द्वारा एक-दूसरे से संबंधित और एक-दूसरे पर आश्रित रहती हैं।

(*iv*) प्रकार्यात्मक संबंध के आधार पर समाज की विभिन्न इकाइयाँ एक सिलसिले अथवा बंधन में बँध जाती हैं और परिणामस्वरूप संबंधित रहते हुए ही कार्य अथवा प्रकार्य करती हैं।

(*v*) विभिन्न निर्मायक इकाइयों के एक-दूसरे से संबंधित रहते हुए कार्य करने से सामाजिक व्यवस्था अथवा संगठन पनपता व विकसित होता है।

(*vi*) इस प्रकार मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार होती है, क्योंकि विभिन्न इकाइयों की स्थितियाँ और कार्य सांस्कृतिक व्यवस्था द्वारा नियमित व प्रभावित होते हैं।

(*vii*) समाज की स्थिरता व निरंतरता विभिन्न इकाइयों के प्रकार्य पर निर्भर है।

इस प्रकार प्रकार्यवादी पद्धति का मुख्य उद्देश्य समाज की संरचना को भलीभाँति समझकर विभिन्न निर्मायक इकाइयों के मध्य प्रकार्यात्मक संबंधों (Functional relations) को ढूँढ़ निकालना, उनका विश्लेषण एवं निरूपण करना है। संभवतया इसीलिए इस पद्धति को संरचनात्मक प्रकार्यवादी (Structural functional) पद्धति के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

(B) **गुणात्मक पद्धतियाँ** (Qualitative Methods)–ये पद्धतियाँ अमूर्त तथ्यों को गुणात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं।

1. आगमन और निगमन पद्धति (Inductive and Deductive Method)–इन पद्धतियों को समाजशास्त्र में प्रयुक्त करने में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रारंभिक समाजशास्त्रियों का है। सच तो यह है कि सामाजिक घटनाओं की जटिल व परिवर्तनशील प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुऐ ही इन पद्धतियों का प्रयोग किया गया। इन पद्धतियों का विवरण निम्नवत् हैं–

(*i*) **आगमन पद्धति या विधि** (Inductive Method)–इस पद्धति में कुछ विशेष तथ्यों के आधार पर सामान्य नियमों को निकाला जाता है। इस प्रकार **आगमन पद्धति वह पद्धति है जो समाज की कुछ विशेष घटनाओं के आधार पर सामान्य नियमों को प्रतिपादित करती है।** इसे एक उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है–मान लीजिये, हम दैनिक जीवन में यह देखते हैं कि सोहन जो कि मानव है, समूह में रहता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है; मटरू भी मानव है और समूह में रहता हुआ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है। इसी प्रकार हरीश भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इन विशेष घटनाओं के आधार पर हम एक सामान्य नियम प्रतिपादित करते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है। वस्तुत: यही आगमन है और आगमन पद्धति है। इस पद्धति के समन्वयात्मक, गणितात्मक, ऐतिहासिक आदि पद्धति के नाम से भी संबोधित किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... के द्वारा विभिन्न समाज की समस्याओं व मान्यताओं के विकास, उत्पत्ति, विनाश इत्यादि के सामान्य कारणों की ढूढ़ निकाला जाता है।
2. वास्तव में तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करते समय समाज से संबंधित तथ्यों को .... कर के वास्तविक निरीक्षण-परिक्षण के आधार पर तौलना चाहिए।
3. इस प्रकार के अध्ययन-कार्य के दौरान किसी भी स्तर पर भावनात्मक, दार्शनिक, उद्वेगात्मक आदि .... से दूर रहना चाहिए।

गुण या लाभ (Merits or Advantages)–

1. इस पद्धति के द्वारा भूतकालीन नियमों की सत्यता को खोजा जा सकता है।
2. इस पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक विश्वसनीय व वास्तविक होते हैं।
3. यह पद्धति निगमन पद्धति की पर्याप्त सहायक है।
4. यह पद्धति मनोवैज्ञानिक क्रम पर आधारित है।

दोष या कमियाँ (Demerits)–

1. अधूरे आंकड़े प्राप्त होने पर निष्कर्ष असत्य हो सकते हैं।
2. यह पद्धति स्थिर नियमों को प्रतिपादित करने में सफल नहीं हो सकती।
3. समाजशास्त्र के जिन क्षेत्रों में आँकड़े सरलता से उपलब्ध नहीं हो सकते, वहाँ यह पद्धति अनुपयोगी रहती है।

(*ii*) **निगमन पद्धति या विधि** (Deductive Method)–इस पद्धति या विधि में सामान्य नियमों के आधार पर विशेष निष्कर्षो तक पहुँचा जाता है। और भी स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि कुछ सामान्य तथ्यों के आधार पर किसी विशिष्ट निष्कर्ष को प्राप्त करना ही निगमन पद्धति है। इसे एक उदाहरण द्वारा सरलता

से समझा जा सकता है–यह एक सामान्य नियम है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रूप में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरों के सहयोग से करता है।" इस सामान्य नियम के आधार पर कुछ विशिष्ट निष्कर्षों को निकाला जा सकता है, जैसे–सोहन, मटरू, हरीश, मोहन आदि सभी सामाजिक प्राणी हैं, इसलिए वे अलग-अलग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति दूसरे व्यक्तियों के सहयोग से करेंगे। वस्तुतः यही निगमन है और निगमन पद्धति है। इस पद्धति को काल्पनिक, विश्लेषणात्मक, अमूर्त पद्धति आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है।

गुण या लाभ (Merits or Advantages)–

1. निकाले गये निष्कर्ष पर्याप्त विश्वसनीय होते हैं।
2. सरल व कम खर्चीली पद्धति है।
3. यह पद्धति सार्वभौमिक नियमों को प्रतिपादित कर सकती है।
4. यह पद्धति आगमन पद्धति को सहायता प्रदान कर उसे पूर्ण बनाती है।

दोष या कमियाँ (Demerits)–

1. आगमन पद्धति के अभाव में यह पद्धति अपूर्ण व अधूरी है।
2. अपूर्ण आँकड़ों की प्राप्ति पर इस पद्धति द्वारा विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते हैं।
3. यदि प्राप्त आँकड़ों या सामग्री (Data) की संख्या अधिक नहीं है तो भी इस पद्धति द्वारा विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त नहीं हो सकते।
4. यह पद्धति काल्पनिक व अमूर्त है।

2. वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति या विधि (Case Study Method)–सबसे पहले **लीप्ले** (Leplay) **और हर्बर्ट स्पेंसर** (Herbert Spencer) ने इस विधि का प्रयोग किया। गुणात्मक अध्ययन के लिए वैयक्तिक जीवन अध्ययन को सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

अर्थ (Meaning)–यह एक ऐसी विधि है कि जिसमें सामाजिक इकाई को (व्यक्ति, संस्था, समुदाय आदि) समग्र रूप में देखा जाता है।

कार्यविधि और आवश्यक बातें–इस पद्धति में सबसे पहले व्यक्ति से व्यक्तिगत संबंध स्थापित किया जाता है। व्यक्ति से भली प्रकार घुलने-मिलने पर ही व्यक्ति के जीवन की सभी बातों को सुविधापूर्वक जाना जा सकता है। बातचीत के दौरान अनुसंधानकर्ता संक्षिप्त नोट लेता जाता है। साक्षात्कार के अतिरिक्त जीवनियाँ, घनिष्ठ मित्रों के पत्र, व्यक्तिगत प्रलेखों आदि से भी सहायता मिल सकती है। इस विधि को काम में लाते हुए निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए–

1. व्यक्ति का अध्ययन उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में होना चाहिए।
2. व्यक्ति के जीवन में परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों के महत्त्व को नहीं भुलाया जाना चाहिए।
3. व्यक्ति के बारे में ऐसे तथ्यों को जानने का प्रयास करना चाहिए जिससे व्यक्ति के संपूर्ण जीवन के बारे में वर्णन किया जा सके।
4. व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया जाना चाहिए।
5. संबंधित भौगोलिक क्षेत्र से ही व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुनना चाहिए।
6. प्रशिक्षित व्यक्ति को ही इस अध्ययन का इंचार्ज बनाना चाहिए।

महत्त्व–व्यक्तिगत समस्याओं को सूक्ष्म रूप से समझने के लिए एकमात्र यही पद्धति है। व्यक्ति की सामाजिक मनोवृत्ति, मूल्यों आदि के बारे में ज्ञान इस विधि द्वारा संभव है।

सीमाएँ–समय व धन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। तथ्यों की पुनर्परीक्षा भी संभव नहीं हो पाती। अध्ययन

नोट

निदर्शन प्रणाली पर आधारित न होने के कारण अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। पक्षपात की भी संभावना बनी रहती है। कुछ भी हो, वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि की समाजशास्त्रीय अध्ययन में लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

3. समाजमिति (Sociometry)—**श्री मोरेनो** (Moreno) पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने विद्वानों का ध्यान इस शास्त्र में इस पद्धति की ओर आकर्षित किया। **श्री जेनिंग्स** (Jenings) का कहना है, "सामान्य रूप से यह पद्धति किसी विशेष अवसर पर किसी समूह के सदस्यों के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने की विधि है।"

गणनात्मक विधि से गणना का पता लग जाता है, बाहर की बातें स्पष्ट हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, गणना करने से यह तो स्पष्ट हो जायेगा कि देश में कितने व्यक्ति बेकार हैं, परंतु वे क्यों बेकार हैं, यह स्पष्ट नहीं हो सकेगा। इस आंतरिक बात का पता लगाने के लिए समाजमिति का सहारा लेना पड़ता है। इस दृष्टि से श्री मोरेनो ने ऐसे पैमाने, कुछ ऐसे मापदंड बनाये जिनसे समाज की आंतरिक प्रक्रियाओं का, राग-द्वेष का केवल वर्णन ही न किया जा सके अपितु इन पैमानों से उसे नापा जा सके।

18.2 समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति/वैज्ञानिक पद्धति (General Method/Scientific Method of Sociology)

समाजशास्त्र ने भी अन्य विज्ञानों द्वारा मान्य पद्धति को स्वीकार कर लिया है। इसे समाजशास्त्र की सामान्य पद्धति या वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के मुख्य चरण निम्न हैं–

1. समस्या का निर्धारण (Formulation of Problem)—जिस विषय पर हम विचार कर रहे होंगे वही मुख्य समस्या कहलायेगी। उदाहरणार्थ, बाल अपराध, बेकारी, विवाह आदि-आदि।

क्या आप जानते हैं मुख्य समस्या का निश्चित कर लेना आवश्यक है ताकि अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन को एक बिंदु पर केंद्रित कर ले और इधर-उधर बिखरने न दे। समस्या का निर्धारण कर लेने से अध्ययन-कार्य में निश्चितता लाई जा सकती है।

2. उपकल्पना का निर्माण (Formulation of Hypothesis)—वर्गीकरण के बाद, आधार में जो नियम काम कर रहा होता है उसे निकाल लिया जाता है क्योंकि अभी इस नियम की पुष्टि बाकी होती है इसलिये इसे अभी नियम नहीं मानते हैं।

3. अवलोकन (Observation)—अवलोकन दो प्रकार का हो सकता है–

(*i*) **सहभागी** (Participant)—जिसमें समूह का सदस्य बनकर निरीक्षण करना होता है।

(*ii*) **असहभागी** (Non-participant)—जिसमें समूह के बाहरी सदस्य के रूप में निरीक्षण किया जाता है।

4. सामग्री संकलन (Collection of data)—अवलोकित तथ्यों को नोट कर लिया जाता है। तथ्यों को नोट कर लेना इसलिये आवश्यक है क्योंकि स्मरण-शक्ति के आधार पर सब तथ्यों को याद नहीं रखा जा सकता है।

5. सामग्री का वर्गीकरण (Classification of Data)—संपूर्ण सामग्री एकत्रित करके उसे क्रमबद्ध रूप दिया जाता है। इसी क्रमबद्धता को वर्गीकरण कहा जाता है। वर्गीकरण का यह परिणाम होता है कि सैकड़ों बातें पाँच, सात मुख्य वर्गों में बँट जाती हैं।

6. परीक्षण (Verification)—इस शास्त्र में परीक्षण घटनाओं पर नहीं किया जाता वरन् इस निकले हुए नियम की व्यापक सिद्धांतों के प्रकाश में परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा के बाद ही उपकल्पना के अंतर्गत जो नियम काम कर रहा होता है उसे नियम मान लिया जाता है।

नोट

18.3 सारांश (Summary)

- समाजशास्त्र में शोध की विधियाँ दो तरह की होती हैं–परिमाणात्मक पद्धतियाँ तथा गुणात्मक पद्धतियाँ।
- परिमाणात्मक अध्ययन पद्धतियाँ मूर्त तथ्यों को संख्यात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं तथा गुणात्मक पद्धतियाँ अमूर्त तथ्यों को गुणात्मक आधार पर स्पष्ट करती हैं।
- गुणात्मक पद्धतियों के अंतर्गत आगमन और निगमन पद्धति या विधि, वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि तथा समाजमिति आते हैं।

18.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **समाजमिति (Sociometry)**–समाजमिति किसी लघु समूह के अंतर्पारस्परिक संबंधों, समूह-संरचना तथा समूह में व्यक्तियों की प्रस्थिति के माप की एक विधि है।
2. **प्रकार्यवादी पद्धति (Structural Functional Method)**–समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति के रूप में प्रकार्यवादी पद्धति ऐतिहासिक व तुलनात्मक पद्धतियों की अस्पष्टता व अनिश्चितता को दूर करने के लिए विकसित की गई।

18.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. समाजशास्त्र में शोध विधियों के कितने प्रकार हैं?
2. आगमन विधि का अर्थ बताएँ।
3. आगमन विधि के गुण दोषों का वर्णन करें।
4. निगमन विधि का क्या-क्या अर्थ है?
5. वैयक्तिक अध्ययन विधि क्या है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. तुलनात्मक पद्धति
2. संकलित
3. विचारों।

18.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।
2. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–19: अवलोकन विधि
(Observation Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 अवलोकन (Observation)

19.2 नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observations)

19.3 सहभागी अवलोकन के गुण (लाभ) (Merits of Participant Observation)

19.4 सहभागी अवलोकन के दोष एवं सीमाएँ (Demerits and Limitations of Participant Observation)

19.5 असहभागी अवलोकन (Non-participant Observation)

19.6 असहभागी अवलोकन के गुण (लाभ) (Merits of Non-participant Observation)

19.7 असहभागी अवलोकन के दोष या सीमाएँ (Demerits or Limitations of Non-participant Observation)

19.8 सहभागी और असहभागी अवलोकन में अन्तर (Distinction between Participant and Non-participant Observation)

19.9 सारांश (Summary)

19.10 शब्दकोश (Keywords)

19.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

19.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अवलोकन के अर्थ को समझना।
- अवलोकन के प्रकारों की जानकारी।
- सहभागी अवलोकन का अर्थ जानना।

प्रस्तावना (Introduction)

अवलोकन विधि अनुसंधान की प्राचीन और प्रचलित विधि है। मनुष्य के पास संचित ज्ञान का अधिकांश भाग अवलोकन का ही परिणाम है। सामान्य ज्ञान से लेकर सृष्टि के रहस्यों तक को जानने में मानव ने अवलोकन विधि

नोट

का सहारा लिया है। विभिन्न विज्ञानों के प्रारंभिक विकास में अवलोकन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ज्ञान की खोज में अवलोकन विधि का योगदान प्राचीन काल से होने के कारण ही मोजर ने इसे वैज्ञानिक अनुसंधान की वैज्ञानिक पद्धति कहा है।

19.1 अवलोकन (Observation)

'अवलोकन' शब्द अंग्रेज़ी भाषा के 'Observation' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ 'देखना', 'प्रेक्षण', 'निरीक्षण', और 'अवलोकन करना' है। दूसरे शब्दों में, 'कार्य-कारण अथवा पारस्परिक संबंधों को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं को सूक्ष्म रूप से देखना ही अवलोकन है।'

ऑक्सफोर्ड कन्साइज शब्दकोश में अवलोकन को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "घटनाएँ कार्य-कारण अथवा पारस्परिक संबंधों के संबंध में, जिस रूप में वे उपस्थित होती हैं, का यथार्थ निरीक्षण एवं वर्णन है।"

श्रीमती पी.वी. यंग के अनुसार, "अवलोकन को नेत्रों द्वारा सामूहिक व्यवहार एवं जटिल सामाजिक संस्थाओं के साथ-ही-साथ संपूर्णता की रचना करने वाली पृथक् इकाइयों के अध्ययन की विचारपूर्ण पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।" **श्रीमती यंग** ने अन्यत्र लिखा है, "अवलोकन स्वत: विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जान-बूझकर किया गया अध्ययन है।"

प्रो.सी.ए. मोजर के अनुसार, "ठोस अर्थ में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों के प्रयोग की स्वतंत्रता है।"

नोट्स अवलोकन प्राथमिक सामग्री संकलित करने की एक प्रत्यक्ष एवं महत्त्वपूर्ण प्रविधि है। इसमें अध्ययनकर्ता घटनाओं को देखता है, सुनता है, समझता है और संबंधित सामग्री का संकलन करता है। अवलोकन के लिए अवलोकनकर्ता समूह अथवा समुदाय के दैनिक जीवन में भाग ले भी सकता है और दूर बैठकर भी ऐसा कर सकता है। अवलोकन में मानव अपनी ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग करता है।

अवलोकन की विशेषताएँ (Characteristics of Observation)

विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर अवलोकन की निम्न विशेषताएँ प्रकट होती हैं–

1. मानव इंद्रियों का प्रयोग (Use of Human Senses)–अवलोकन विधि में मानव इंद्रियों का पूर्ण एवं व्यवस्थित प्रयोग किया जाता है। इसमें अवलोकनकर्ता अपने कान एवं वाणी का प्रयोग भी करता है, किंतु नेत्रों का प्रयोग ही इसमें विशेष रूप से किया जाता है। वह नेत्रों द्वारा घटनाओं का निरीक्षण करता है और उन्हें संकलन हेतु नोट कर लेता है।

2. प्राथमिक सामग्री का संकलन (Collection of Primary Data)–इस विधि में अवलोकनकर्ता स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित होकर घटनाओं के बारे में प्राथमिक स्तर (first hand) की सूचनाएँ एकत्रित करता है, अत: वे अधिक विश्वसनीय होती हैं।

3. सूक्ष्म, गहन एवं उद्देश्यपूर्ण अध्ययन (Minute, Deep and Purposive Study)–अवलोकन विधि में अवलोकनकर्ता स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित होता है, अत: वह घटनाओं का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन कर सकता है और केवल उन्हीं तथ्यों का संकलन करता है जिनका संबंध उसके अध्ययन से है।

4. कार्य-कारण संबंध का पता लगाना (To find out Cause-effect Relationship)–सामान्य अवलोकन एवं वैज्ञानिक अवलोकन में यह मूल अंतर है कि सामान्य अवलोकन में अवलोकनकर्ता केवल घटनाओं को देखता है जबकि वैज्ञानिक अवलोकन में वह घटनाओं को देखकर उनके कारणों और परिणामों

की भी खोज करता है जिनके आधार पर सिद्धांत निर्माण की ओर बढ़ा तथा वास्तविकता का पता लगाया जाता है।

5. व्यावहारिक एवं अनुभवाश्रित अध्ययन (Practical and Empirical study)–**मोजर** का मत है कि अवलोकन एक प्रयोगात्मक एवं अनुभवाश्रित अध्ययन पद्धति है जिसके द्वारा सामूहिक एवं विशेष दोनों ही प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन किया जा सकता है। अवलोकन द्वारा किया जाने वाला अध्ययन काल्पनिक न होकर व्यावहारिक या अनुभवों पर आश्रित होता है।

6. निष्पक्षता (Impartiality)–अवलोकन में अध्ययनकर्ता स्वयं अपनी आँखों से घटनाओं को देखता है और उनकी भलीभाँति जाँच करता है, उन्हें वैज्ञानिक कसौटी पर कसता है। अतः उसका निष्कर्ष निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक होता है और वह अभिनति (Bias) से बच जाता है।

7. प्रत्यक्ष अध्ययन (Direct Study)–अवलोकन विधि में अध्ययनकर्ता घटनाओं को प्रत्यक्ष रूप से देखता है, उनसे संबंधित लोगों से संपर्क करता है तथा तथ्यों का संकलन करता है।

8. सामूहिक व्यवहार का अध्ययन (Study of the Collective Behaviour)–जिस प्रकार से व्यक्तिगत व्यवहार का अध्ययन करने के लिए 'वैयक्तिक अध्ययन पद्धति' (Case Study Method) को श्रेष्ठ माना गया है, उसी प्रकार से सामूहिक व्यवहार का अध्ययन करने के लिए अवलोकन विधि को उत्तम माना गया है।

9. विचारपूर्वक किया जाने वाला अध्ययन (Deliberate Study)–**श्री जहोडा** का मत है कि अवलोकन एक ऐसी विधि है जिसमें अवलोकनकर्ता स्वयं घटनाओं का विचारपूर्वक अध्ययन कर तथ्यों का संकलन करता है। वह दूसरों की कही हुई या सुनी हुई बातों पर निर्भर नहीं रहता।

अवलोकन की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक विधि की एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि माना गया है।

अवलोकन विधि की उपयोगिता (गुण) [Utility (Merits) of Observation Method]

अवलोकन विधि की उपयोगिता, महत्त्व या गुणों को हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं–

1. सरल एवं प्राथमिक पद्धति (Easy and Primary Technique)–सामाजिक अनुसंधान की विभिन्न विधियों में अवलोकन विधि सबसे सरल है क्योंकि अन्य विधियों की तरह इसमें अवलोकनकर्ता के लिए विशेष ज्ञान और प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। मानव प्राचीन काल से ही अवलोकन का प्रयोग स्वाभाविक रूप से करता आया है, अतः यह एक प्राथमिक विधि भी है।

2. यथार्थता एवं विश्वसनीयता (Accuracy and Reliability)–चूँकि अवलोकन पद्धति में अध्ययनकर्ता दूसरों पर निर्भर न रहकर स्वयं अपने नेत्रों द्वारा घटनाओं का अवलोकन करता है, अतः यह विधि अन्य विधियों की तुलना में अधिक विश्वसनीय एवं यथार्थ है।

3. प्राक्कल्पना के निर्माण में सहायक (Helpful in the Formulation of Hypothesis)–अवलोकन में व्यक्ति को कई घटनाओं को देखने, सुनने व समझने का अवसर मिलता है, इससे उसके अनुभवों में वृद्धि होती है और उसे अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है जिसके फलस्वरूप अवलोकनकर्ता विभिन्न प्राक्कल्पनाओं का निर्माण करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

4. सर्वाधिक प्रचलित विधि (Most Popular Technique)–सामाजिक अनुसंधान के लिए प्रचलित विभिन्न पद्धतियों में सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय पद्धति अवलोकन है जिसका प्रचलन अनादि काल से है। अतः यह एक परिष्कृत विधि है।

5. सत्यापन की सुविधा (Possibility of Verification)–अवलोकन विधि में संकलित किये गये तथ्यों की सत्यता की परख सरलता से की जा सकती है। अवलोकनकर्ता एक ही घटना को कई बार घटते देख सकता है जो कि अन्य विधियों में संभव नहीं है।

नोट

6. निरंतर उपयोग की सुविधा (Possibility of Continuous Use)–अवलोकन का प्रयोग निरंतर किया जा सकता है। हम अपने आस-पास की घटनाओं का अवलोकन कर अपने ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं और प्राक्कल्पनाओं का आधार तैयार कर सकते हैं।

अवलोकन पद्धति के दोष या सीमाएँ (Demerits or Limitations of Observation Method)

जहाँ अवलोकन विधि की कई उपयोगिताएँ हैं, वहीं इसमें कुछ कमियाँ भी हैं जो इसकी सीमाएँ तय करती हैं। वे अग्र प्रकार हैं–

1. ज्ञानेन्द्रियों की सीमाएँ (Limitations of Senses)–अवलोकन का कार्य ज्ञानेन्द्रियों, विशेषकर नेत्रों द्वारा किया जाता है, जिनकी शक्ति अचूक नहीं है। ये कई बार विभिन्नतापूर्ण, अनिश्चित एवं पक्षपातपूर्ण ढंग से काम करती हैं। हमारे नेत्र तथा कान कुछ विशेष घटनाओं की ओर शीघ्र आकर्षित होते हैं। ऐसी स्थिति में हमारा अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है।

2. व्यवहार की कृत्रिमता (Artificiality in Behaviour)–जब लोगों को यह पता चलता है कि उनके व्यवहारों का अवलोकन किया जा रहा है तो वे अपने व्यवहार में कृत्रिमता ले आते हैं और स्वाभाविकता नष्ट हो जाती है, अत: अध्ययन दोषपूर्ण हो जाता है।

3. पक्षपात की संभावना (Possibility of Bias)–अवलोकन में अवलोकित घटनाओं का निर्वचन अवलोकनकर्ता पर ही निर्भर करता है। निर्वचन में उसके विचारों, मूल्यों, आदर्शों एवं संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है, अत: अध्ययन के निष्कर्ष दोषपूर्ण हो जाते हैं।

4. कुछ अध्ययनों में अनुपयुक्त (Inadequate in Some Studies)–कई ऐसी घटनाएँ हैं जैसे अपराध, व्यक्तिगत जीवन का इतिहास आदि जो अवलोकन का अवसर नहीं देतीं। **पी.वी. यंग** ने लिखा है, "सभी घटनाओं का निरीक्षण नहीं हो सकता। सभी घटनाओं के घटित होते समय अवलोकनकर्ता वहाँ उपस्थित भी नहीं होता तथा न ही विभिन्न अवलोकन विधियों के द्वारा सभी घटनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।"

पी.वी. यंग के इस कथन के तीन निष्कर्ष निकलते हैं–

(*i*) कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनका अवलोकन निषिद्ध होता है, जैसे प्रेमी-प्रेमिका का व्यक्तिगत जीवन। (*ii*) कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनके घटने का स्थान व समय तय नहीं होता, अत: उनका अवलोकन संभव नहीं है, (*iii*) कुछ घटनाओं की प्रकृति ही ऐसी होती है कि उनका अवलोकन संभव नहीं है, जैसे– व्यक्ति के विचारों, भावनाओं, उद्देश्यों, प्रवृत्तियों एवं भूतकाल में घटी हुई घटनाओं आदि का।

अवलोकन विधि की कुछ सीमाओं के होते हुए भी सामाजिक अनुसंधान में इसका प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है। सरल, विश्वसनीय, उपयोगी एवं सत्यापन की सुविधा प्रदान करने वाली विधि के रूप में इसका महत्त्व सदैव ही बना रहेगा। समय के साथ-साथ इसमें कई सुधार हुए हैं और यह दिनोंदिन अधिक प्रामाणिक एवं विश्वसनीय विधि बनती जा रही है।

अवलोकन के प्रकार (Kinds (Types) of Observation)

सामाजिक घटनाएँ विविध एवं जटिल प्रकृति की होती हैं। सभी प्रकार की घटनाओं का अध्ययन एक ही प्रकार के अवलोकन से नहीं किया जा सकता। इसीलिए ही अवलोकन के विभिन्न प्रकार विकसित हुए। मूलत: अवलोकन को नियंत्रित और अनियंत्रित तथा सहभागी और असहभागी श्रेणियों में बाँटा गया है। अवलोकन के विभिन्न प्रकारों को चार्ट द्वारा हम निम्न प्रकार प्रकट कर सकते हैं–

नोट

अवलोकन के प्रकार

- अनियंत्रित अवलोकन
  - सहभागी अवलोकन
  - असहभागी अवलोकन
  - अर्द्ध-सहभागी अवलोकन
- नियंत्रित अवलोकन
  - घटना पर नियंत्रण
  - अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण
- सामूहिक अवलोकन

हम यहाँ अवलोकन के उपर्युक्त सभी प्रकारों का उल्लेख करेंगे।

अनियंत्रित अवलोकन (Un-controlled Observation)

हम सामाजिक घटनाओं का अध्ययन नियंत्रित और अनियंत्रित दोनों प्रकार के अवलोकनों द्वारा कर सकते हैं। अनियंत्रित अवलोकन में अवलोकनकर्ता एवं अवलोकित किये जाने वाले समूह दोनों में से किसी पर भी किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रखा जाता। अवलोकनकर्ता घटनाओं का उनके वास्तविक एवं स्वाभाविक रूप में ही अध्ययन करता है। अनियंत्रित अवलोकन में किसी प्रकार की विशेष संरचना, औपचारिकता एवं नियोजन नहीं होता है। यह एक साधारण क्रिया होने के कारण **गुडे** एवं **हाट** इसे 'साधारण अवलोकन' (Simple Observation) कहते हैं। **जहोडा** एवं **कुक** इसे 'असंरचित अवलोकन' (Unstructured Observation) कहते हैं। अनियंत्रित अवलोकन को 'स्वतंत्र अवलोकन' (Open Observation), 'अनौपचारिक अवलोकन' (Informal Observation) तथा 'अनिर्देशित अवलोकन' (Undirected Observation) आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में अनियंत्रित अवलोकन एक प्राचीन विधि है। इस बात को प्रकट करते हुए **गुडे** एवं **हाट** लिखते हैं, "सामाजिक संबंधों के विषय में मनुष्य के पास जो कुछ भी ज्ञान है, उसका अधिकांश भाग अनियंत्रित अवलोकन के द्वारा ही प्राप्त किया गया है, चाहे वह सहभागी हो या असहभागी।" इस कथन से अनियंत्रित अवलोकन का महत्त्व एवं उपयोगिता स्वत: स्पष्ट हो जाती है।

अनियंत्रित अवलोकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए **पी.वी. यंग** ने लिखा है, "अनियंत्रित अवलोकन में हम वास्तविक जीवन से संबंधित परिस्थितियों की सतर्कतापूर्वक जाँच करते हैं जिनमें यथार्थता के यंत्रों के प्रयोग अथवा निरीक्षण की हुई घटना की शुद्धता की जाँच का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता।" **यंग** की इस परिभाषा से अनियंत्रित अवलोकन की तीन विशेषताएँ प्रकट होती हैं–(*i*) इस विधि में अवलोकनकर्ता पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रखा जाता, (*ii*) इसमें अध्ययनकर्ता घटनाओं व परिस्थितियों का उनके स्वाभाविक रूप में अध्ययन करता है, तथा (*iii*) अवलोकनकर्ता इस विधि में घटनाओं को परखता नहीं है, अत: यह एक अत्यंत सरल प्रविधि है। अनियंत्रित अवलोकन को उसकी प्रकृति के आधार पर सहभागी, असहभागी एवं अर्द्ध-सहभागी भागों में बांटा गया है। हम यहाँ इन तीनों ही उप-भागों का उल्लेख करेंगे।

1. सहभागी अवलोकन (Participant Observation)

सन् 1924 में **लिण्डमैन** ने अपनी पुस्तक 'सोशल डिस्कवरी' (Social Discovery) में सर्वप्रथम सहभागी अवलोकन शब्द का प्रयोग किया। उन्होंने अनुसूची और प्रश्नावली के द्वारा किये जाने वाले अध्ययनों की कमियों एवं सहभागी अवलोकन की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। **लिण्डमैन** ने सहभागी अवलोकन के बारे में लिखा है, "सहभागी अवलोकन इस सिद्धांत पर आधारित है कि किसी घटना का निर्वचन तभी करीब-करीब शुद्ध हो सकता है जब वह बाह्य तथा आंतरिक दृष्टिकोण से मिलकर बना हो। इस प्रकार उस व्यक्ति का दृष्टिकोण, जिसने घटना में भाग लिया तथा जिसकी इच्छाएँ एवं स्वार्थ उसमें किसी न किसी रूप में निहित थे, व्यक्ति के दृष्टिकोण से निश्चय ही कहीं अधिक यथार्थ व भिन्न होगा जो सहभागी न होकर केवल ऊपरी द्रष्टा या विवेचनकर्ता के रूप में रहता है।"

नोट

टास्क सहभागी अवलोकन से क्या तात्यपर है? वर्णन करें।

सहभागी अवलोकन का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Participant Observation)

सहभागी अवलोकन करने के लिए अवलोकनकर्ता उस समूह अथवा समुदाय में जाकर रहने लगता है जिसकी सामाजिक घटनाओं का वह अध्ययन करना चाहता है। वह लोगों की दैनिक एवं अन्य सभी क्रियाओं में भाग लेता है और उनका निरीक्षण भी करता है। इसमें अवलोकनकर्ता को समूह के लोग अपना लेते हैं और वे उसे अपना एक सदस्य समझने लगते हैं। इस प्रकार अध्ययनकर्ता अस्थायी रूप से समूह का आंतरिक व्यक्ति बन जाता है।

सहभागी अवलोकन को परिभाषित करते हुए **गुडे** एवं **हाट** लिखते हैं, "इस कार्य-प्रणाली का उस समय प्रयोग किया जाता है जबकि अनुसंधानकर्ता अपने को इस प्रकार छिपा लेता है कि वह समूह के एक सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।"

पी.वी. यंग के अनुसार, "अनियंत्रित अवलोकन का प्रयोग करने वाला सहभागी अवलोकनकर्ता साधारणतया उस समूह के जीवन में रहता तथा भाग लेता है जिसका कि वह अध्ययन कर रहा है।"

लुण्डबर्ग के अनुसार, "अवलोकनकर्ता अवलोकित समूह के प्रति यथासंभव पूर्णतया घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है आर्थात् वह समुदाय में बस जाता है तथा उस समूह के दैनिक जीवन में भाग लेता है।"

फोरकेस तथा **रिचर** लिखते हैं, "सहभागिक अवलोकन से अनुसंधानकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह का सदस्य बन जाता है। ऐसा करने के पीछे मूल भावना यही रहती है कि वह समूह की विशेषताओं को निकट से जान सके जो कि समूह के बाहर रहने पर संभव नहीं होती।"

जॉन मेज लिखते हैं, "जब अवलोकनकर्ता के ह्दय की धड़कनें समूह के अन्य व्यक्तियों के ह्दयों की धड़कनों से मिल जाती हैं और वह बाहर से आया हुआ कोई अनजान नहीं रह जाता तो यह समझना चाहिए कि उसने सहभागी अवलोकनकर्ता कहलाने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।"

पी. एच. मान के अनुसार, "सहभागी अवलोकन का तात्पर्य एक ऐसी दशा से है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह की सभी सामान्य गतिविधियों में स्वयं भी भाग लेता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन किये जाने वाले समूह में रहता है और उसका एक अंग बनकर तथ्यों का संकलन करता है।**

अनेक समाज-वैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन में सहभागी अवलोकन विधि का प्रयोग किया है। **जॉन हावर्ड** ने कैदियों का, **लीप्ले** तथा **बूथ** ने श्रमिक परिवारों का, **मैलिनोवस्की** ने ट्रोब्रियाण्डा द्वीप की 'अग्रोनाट जनजाति' का, **रेमण्ड फर्थ** ने 'टिकोपिया' लोगों का, **नेल्स एण्डरसन** ने होबो लोगों का एवं **वाईट** ने सड़कों पर जीवन व्यतीत करने वाले लोगों का सहभागी अवलोकन विधि से ही अध्ययन किया। इस विधि द्वारा सामान्यतः समुदायों, आदिम जातियों एवं उनकी संस्कृति का अध्ययन किया जाता रहा है। किसी भी समूह की प्रथाओं, उत्सवों, विश्वासों, लोकगीतों, धार्मिक क्रियाओं एवं व्यवहारों के अध्ययन के लिए यह एक उपयुक्त विधि मानी जाती है।

इस संदर्भ में ये प्रश्न उठते हैं कि एक अवलोकनकर्ता को किस सीमा तक अपने को अध्ययन किये जाने वाले समूह के साथ घुला-मिला देना चाहिए, किन-किन क्रियाओं में उसे भाग लेना चाहिए और किन में नहीं। क्या उसे समूह के लोगों को अपना उद्देश्य एवं परिचय बता देना चाहिए? अध्ययनकर्ता का समूह में क्या स्थान होना चाहिए?

इनके उत्तर में मत भिन्नता पायी जाती है। **अमेरिकन समाजशास्त्रियों** का मत है कि एक अवलोकनकर्ता

नोट

को अपना परिचय एवं उद्देश्य बताए बिना ही समूह का अध्ययन करना चाहिए। उसे इस चालाकी और सतर्कता से काम करना चाहिए कि समूह के लोग उसे अपना ही व्यक्ति समझने लगें। ऐसा करने पर ही वह समूह का वास्तविक अध्ययन कर सकता है।

दूसरी ओर **भारतीय समाजशास्त्रियों** का मत इसके विपरीत है। वे कहते हैं कि भारत जैसे देश में अवलोकनकर्ता को समूह के लोगों को अपना परिचय एवं उद्देश्य स्पष्ट कर देना चाहिए ताकि लोग उसे शंका की दृष्टि से नहीं देखें और तथ्यों के संकलन में वे अपना सहयोग दे सकें। ऐसा करने से अवलोकनकर्ता को समूह के लोगों का विश्वास प्राप्त हो जायेगा और वे उसे समूह में उचित स्थान प्रदान करेंगे। भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश लोग अशिक्षित हैं, बिना अपना परिचय एवं उद्देश्य बताए लोगों के सामाजिक जीवन में भाग लेना उनमें अनुसंधानकर्ता के प्रति संदेह ही उत्पन्न करता है, तब वे अपने वास्तविक व्यवहार में परिवर्तन कर सकते हैं। नैतिक दृष्टि से भी यह उचित है कि अवलोकनकर्ता **समूह के लोगों को मिथ्या बातें न कहें।**

श्री बी. डी. पाल ने उन कार्यों का उल्लेख किया है जिनमें सहभागी अवलोकनकर्ता भाग ले सकता है, जैसे–खेत जोतने में सहायता देना, मकान बनाने में मदद करना, धनुष-बाण से शिकार करने वाली जनजाति के लिए अपनी बन्दूक से शिकार कर उन्हें भोजन उपलब्ध कराना, अपनी गाड़ी में बिठाकर ले जाना व उनसे बातचीत करना, उनमें चित्र और फोटो का वितरण करना, त्यौहारों पर भोजन व धन बाँटना, वाद्य यंत्र बजाना, लोगों को अपने घर पर गपशप के लिए बुलाना, बच्चों को मिठाइयाँ व खिलौने देना आदि।

सफल सहभागी अवलोकनकर्ता के लिए आवश्यक है कि उसे अपने अध्ययन समूह के लोगों की भाषा, रीति-रिवाज, व्यवहार, प्रथाओं एवं परंपराओं की पूर्ण जानकारी हो। जब वह समूह के लोगों से उनकी भाषा में बात करता है तो वे उसे अपना ही व्यक्ति समझने लगते हैं और उससे किसी बात को साधारणत: छिपाते नहीं। सहभागी अनुसंधानकर्ता को वाकपटु एवं व्यवहारकुशल भी होना चाहिए। एक अनुसंधानकर्ता किस सीमा तक सहभागी बन सकता है, यह समूह के आकार पर भी निर्भर करता है। परिवार में पूर्ण सहभागिता सरल है जबकि एक बड़े नगर में सीमित मात्रा में ही संभव है। इसके अतिरिक्त अनुसंधान के विषय एवं अवलोकनकर्ता के व्यक्तित्व एवं कुशलता पर भी सहभागिता की मात्रा निर्भर है। सहभागी अवलोकनकर्ता को चाहिए कि वह अपने को समूह से इतना घनिष्ठ नहीं बना ले कि समूह के प्रति उसमें पक्षपात की भावना आ जाए।

2. असहभागी अवलोकन (Non-participant Observation)

जब अवलोकनकर्ता किसी समूह के जीवन में भाग लिए बिना समूह की क्रियाओं से अलग रहकर एक वैज्ञानिक की भांति तटस्थ द्रष्टा के रूप में उनका अध्ययन करता है तो इसे असहभागी अवलोकन कहते हैं। इस विधि में अध्ययनकर्ता समूह या समुदाय में जाकर लंबे समय तक निवास नहीं करता और न ही उनकी गतिविधियों में भाग ही लेता है। वह एक अपरिचित और मूकदर्शक होता है। इस प्रकार के अध्ययन में स्वतंत्रता व निष्पक्षता की अधिक संभावना रहती है। लोगों को पूर्व सूचना दिये बिना वह घटनाओं के समय उपस्थित होकर जानकारी प्राप्त कर लेता है। वह जो कुछ देखता है, उसकी गहराई से जानकारी प्राप्त करता है। किंतु पूर्ण असहभागी अध्ययन भी संभव नहीं है। उसे कुछ क्रियाओं व गतिविधियों में तो समूह के लोगों के साथ रहना ही पड़ता है। **गुडे** एवं **हाट** लिखते हैं, ''जैसा कि छात्र समझ सकते हैं, विशुद्ध असहभागी अवलोकन कठिन है।" असहभागी विधि का प्रयोग प्रायोगिक अवलोकन के लिए अधिक होता है। जैसे किसी कारखाने के श्रमिकों एवं स्कूली बच्चों के कार्य एवं अवकाश के क्षणों का अध्ययन इस विधि द्वारा किया जाता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए भी अध्ययनकर्ता दूर बैठकर बालकों की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन करता है। इस विधि में समूह के बाह्य लक्षणों का ही अध्ययन हो पाता है, आंतरिक संबंधों की सूक्ष्म एवं गहन जानकारी इससे संभव नहीं है। असहभागी अवलोकनकर्ता ग्रामों में मंचित नाटकों को दूर बैठकर देख सकता है, लोकगीतों को चुपके से बैठकर टेप कर सकता है या सुन सकता है।

नोट

3. अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant Observation)

किसी भी अध्ययन में पूर्णत: सहभागी और पूर्णत: असहभागी अवलोकन संभव नहीं हो पाता, इसलिए ही **गुडे** एवं **हाट** दोनों के मध्यवर्ती मार्ग को अपनाने का सुझाव है, जिसे 'अर्द्ध-सहभागी अवलोकन' कहा जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में अनुसंधानकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समुदाय के कुछ साधारण कार्यों में भाग भी लेता है। यद्यपि अधिकांशत: वह तटस्थ भाव से बिना भाग लिए उनका अवलोकन करता है।

अनियंत्रित अवलोकन के गुण (लाभ) (Merits (Advantages) of Uncontrolled Observation)

सामाजिक घटनाओं की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि उनका सदैव ही नियंत्रित अवलोकन संभव नहीं हो पाता, अत: स्वाभाविक स्थितियों में ही उनका अवलोकन करना होता है। **पी.वी. यंग** ने उचित ही लिखा है, "ऐसी जीवन की परिस्थितियाँ जिन्हें नियंत्रित तथा कृत्रिम दशाओं में अध्ययन किया जा सकता है, अपेक्षाकृत थोड़ी ही होती हैं। प्राय: ही हमें उस समय अवलोकन करना पड़ता है जब वह संभव होता है तथा उसे वास्तविक सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों में जिनमें घटना घटित हुई है, अवलोकन करना पड़ता है।" संभवत: इसी कारण से अनेक सामाजिक सिद्धांतों का निर्माण और दैनिक जीवन का ज्ञान अनियंत्रित अवलोकन का ही परिणाम है। अनियंत्रित अवलोकन किसी भी समुदाय के संपूर्ण जीवन के अध्ययन की सर्वोत्तम विधि है। **गुडे** एवं **हाट** प्राक्कल्पना की जाँच में इसकी उपयोगिता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "अनियंत्रित अवलोकनों को किसी अनुसंधान योजना के प्रारंभिक स्तर पर संपन्न करना इसलिए महत्त्वपूर्ण बताया है कि इसके द्वारा किसी सूक्ष्म प्राक्कल्पना की भी क्षेत्रीय जाँच की जा सकती है।" **पी. वी. यंग** ने लिखा है, "ध्यानपूर्वक किये गये अवलोकन में अधिक यथार्थता होती है तथा इसमें घटनाओं को भली प्रकार देख सकने की क्षमता का समावेश होता है।" इसकी उपयोगिता को प्रकट करते हुए **मोजर** लिखते हैं, "क्योंकि इस प्रकार संकलित तथ्य प्रतिष्ठा तथा स्मृति के प्रभावों से बचते रहते हैं तथा इनमें प्रश्नोत्तरों जैसी विश्वसनीयता की कमी नहीं रहती है, ये अधिक शुद्ध तथा सही होते हैं।" अनियंत्रित अवलोकन द्वारा (*i*) घटनाओं को उनके वास्तविक घटनास्थल पर यथार्थ में देखा जा सकता है, (*ii*) इसमें अवलोकनकर्ता का प्रभाव अध्ययन पर नहीं पड़ता, (*iii*) इसमें निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता बनी रहती है तथा (*iv*) इस विधि द्वारा परिवर्तनशील एवं गतिशील सामाजिक जीवन का अध्ययन संभव है।

अनियंत्रित अवलोकन के दोष (सीमाएँ) (Demerits Limitations) of Uncontrolled Observation)

अनियंत्रित अवलोकन के दोषों का उल्लेख करते हुए **प्रो. बर्नार्ड** लिखते हैं, "आँकड़े इतने वास्तविक एवं सजीव होते हैं और उनके बारे में हमारी भावनाएँ इतनी दृढ़ होती हैं कि कभी-कभी हम अपनी कल्पना-शक्ति को ही ज्ञान का विस्तार समझ लेने की गलती कर बैठते हैं।" इसके प्रमुख दोष इस प्रकार हैं–(*i*) इसमें अध्ययनकर्ता पर नियंत्रण न होने से त्रुटि की संभावना रहती है, (*ii*) इसमें ऐसे तथ्यों के संकलन की भी संभावना रहती है जिनका संबंध अध्ययन से नहीं होता, (*iii*) तथ्यों का लेखन अवलोकन के बाद में होने से त्रुटिपूर्ण लेखन तथा साथ ही तथ्यों के छूटने की संभावना रहती है, (*iv*) इसमें अवलोकनकर्ता को यह भ्रम पैदा हो जाता है कि वह समूह के बारे में बहुत कुछ जानता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं होता।

19.2 नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observations)

समाज-विज्ञानों के विकास के साथ-साथ सामाजिक अनुसंधान की प्रविधियों में भी परिवर्तन आया। इसी के परिणामस्वरूप अनियंत्रित अवलोकन की कमियों को दूर करने के लिए नियंत्रित अवलोकन विधि का विकास हुआ। नियंत्रित अवलोकन में अध्ययनकर्ता स्वयं या घटना पर योजनाबद्ध रूप से नियंत्रण रखता है। वह वास्तविक स्थिति एवं प्राप्त सामग्री के बीच एक कड़ी या मध्यस्थ की भूमिका निभाता है। वह तो तथ्य संकलन के विभिन्न साधनों का प्रयोग करने का कार्य करता है, ये साधन स्वयं ही सामग्री का संग्रहण करते हैं। इसलिए इस विधि में तटस्थता तथा वैषयिकता बनी रहती है एवं तथ्यों का सत्यापन सरल रहता है। इस विधि को पूर्व नियोजित अवलोकन, संरचित अवलोकन या व्यवस्थित अवलोकन भी कहते हैं। नियंत्रित अवलोकन में तथ्यों का संकलन निश्चित एवं पूर्व नियोजित योजनाओं द्वारा किया जाता है।

क्या आप जानते हैं वर्तमान में नियंत्रित अवलोकन विधि का प्रयोग नेतृत्व, आक्रमण, उद्योगों में काम करने वाले श्रमिकों एवं शिशु-गृहों के बच्चों के अध्ययन आदि के लिए किया जाता है।

नियंत्रित अवलोकन में निम्नांकित बातें स्पष्ट की जाती हैं–(*i*) अवलोकित की जाने वाली इकाइयों को स्पष्टत: परिभाषित किया जाता है, (*ii*) अवलोकन से संबंधित तथ्यों का चुनाव, (*iii*) अवलोकन की दशाओं, व्यक्तियों, समय तथा स्थान का निर्धारण, (*iv*) सूचियों को लेखबद्ध करना, (*v*) अवलोकन में प्रयुक्त होने वाले यंत्रों जैसे फोटोग्राफ, नक्शे, अनुसूचियाँ, टेप रिकार्डर, फिल्म आदि का निर्धारण करना। चूँकि इस विधि में समय, श्रम और धन की बचत होती है तथा अध्ययन में वस्तुनिष्ठता, प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता बनी रहती है, अत: विशेष क्षेत्रों में किये जाने वाले अध्ययनों के लिए इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

नियंत्रित अवलोकन दो प्रकार से किया जा सकता है–1. अवलोकित की जाने वाली घटनाओं पर नियंत्रण रखकर और 2. स्वयं अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण रखकर।

1. घटनाओं पर नियंत्रण (Control over Situations)–जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में वैज्ञानिक भौतिक विश्व की परिस्थितियों को प्रयोगशाला की नियंत्रित अवस्थाओं के अंतर्गत लाकर नियंत्रित करने एवं अध्ययन करने का कार्य करते हैं, उसी प्रकार से समाज-वैज्ञानिक भी सामाजिक घटनाओं को सामाजिक परिस्थितियों के अंतर्गत नियंत्रित करने एवं अध्ययन करने का कार्य करते हैं। इसलिए इसे सामाजिक प्रयोग भी कहा जाता है, यद्यपि भौतिक विज्ञानों की तरह सामाजिक घटनाओं का प्रयोगशाला में अध्ययन सरल नहीं है। इस विधि द्वारा सामाजिक घटनाओं एवं परिस्थितियों पर नियंत्रण लागू किया जाता है और किसी विशेष परिवर्तन एवं उसके प्रभावों को ज्ञात किया जाता है। उदाहरणार्थ, हम समन्वित ग्रामीण विकास योजना तथा पंचायती राज के एक ग्रामीण समुदाय पर पड़ने वाले प्रभावों को इस विधि द्वारा ज्ञात कर सकते हैं। इस विधि की सहायता से थकान का अध्ययन, समय एवं गति का अध्ययन, उत्पादकता एवं बालकों के व्यवहारों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है।

2. अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण (Control on Observer)–नियंत्रित अवलोकन की दूसरी विधि यह है जिसमें अवलोकनकर्ता घटना के बजाय स्वयं अपने पर नियंत्रण लागू करता है। सामाजिक घटना की प्रकृति ही ऐसी है कि उस पर नियंत्रण लागू करना कठिन है। ऐसी स्थिति में अवलोकनकर्ता स्वयं पर ही नियंत्रण लागू कर अध्ययन में आने वाले पक्षपात और व्यक्तिगत प्रभाव से बच सकता है। अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण रखने के लिए साक्षात्कार, अनुसूची, फोटोग्राफ, टेप रिकार्डर, नक्शे, क्षेत्रीय नोट्स, डायरी, कैमरा एवं फिल्म आदि यंत्रों का उपयोग किया जाता है। **गुडे** एवं **हाट** ने अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण के महत्त्व को बताते हुए लिखा है, "सामाजिक अनुसंधान में अध्ययन-विषय पर नियंत्रण रख सकना तुलनात्मक दृष्टि से कठिन होता है, अत: अध्ययनकर्ता को कम-से-कम अपने व्यवहारों पर नियंत्रण अवश्य ही रखना चाहिए।"

3. सामूहिक अवलोकन (Mass Observation)–अवलोकन की इस विधि में अध्ययन कार्य किसी एक व्यक्ति द्वारा न किया जाकर विभिन्न अध्ययनकर्ताओं के एक समूह द्वारा किया जाता है। इसे सामूहिक अवलोकन कहते हैं। **सिने पाओ येंग** ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है, "सामूहिक अवलोकन नियंत्रित तथा अनियंत्रित अवलोकन का एक मिश्रण है। यह अवलोकन अनेक व्यक्तियों द्वारा तथ्यों का अवलोकन करने तथा उनका आलेखन करने पर निर्भर होता है, यद्यपि सूचनाओं का संकलन तथा उनका प्रयोग एक केंद्रीय व्यक्ति द्वारा किया जाता है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि (*i*) सामूहिक अवलोकन में अवलोकन का कार्य कई व्यक्तियों द्वारा एक साथ किया जाता है, (*ii*) इसमें नियंत्रित एवं अनियंत्रित दोनों अवलोकन पद्धतियों का मिश्रण होता है, (*iii*) सभी अवलोकनकर्ताओं में कार्य का बँटवारा होता है और उनके कार्यों का समन्वय एक केंद्रीय अधिकारी द्वारा किया जाता है। इस विधि का प्रयोग कई देशों में हुआ है। सन् 1937 में इंग्लैण्ड के लोगों के स्वभाव, विचार एवं जीवन के अध्ययन हेतु एवं 1944 में जमैका की स्थानीय दशाओं के अध्ययन हेतु इस विधि का प्रयोग किया गया। चूँकि यह विधि एक खर्चीली विधि है और इसमें कुशल प्रशासन की

नोट

आवश्यकता होती है, अतः यह विधि किसी व्यक्ति के बजाय सरकारी या अर्द्ध-सरकारी संगठनों द्वारा प्रयुक्त होती है। इस विधि में कार्य का बँटवारा होने तथा घटना के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक एवं अन्य पक्षों का साथ-साथ अध्ययन होने से उसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने के लाभ प्राप्त होते हैं, यद्यपि इसके एक खर्चीली प्रणाली होने से सामान्यतः इसका प्रयोग बहुत कम ही किया जाता है।

19.3 सहभागी अवलोकन के गुण (लाभ) (Merits of Participant Observation)

सामाजिक अनुसंधान में सहभागी अवलोकन का महत्त्व उसके निम्नांकित गुणों या लाभों से स्पष्ट है:

1. **विस्तृत सूचनाएँ** (Wider Informations)–इस विधि में अध्ययनकर्त्ता समूह की सभी गतिविधियों में भाग लेता है, अतः उसके बारे में विस्तृत सूचनाएँ संकलित कर सकता है। इतनी विस्तृत सूचनाएँ प्रश्नावाली, अनुसूची, साक्षात्कार अथवा अन्य विधियों से ज्ञात नहीं की जा सकतीं।

2. **सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन** (Minute and Intensive Study)–इस अध्ययन विधि में अध्ययनकर्ता स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित होता है और समूह के जीवन में भाग लेता है, अतः वह समूह के बारे में छोटी-से-छोटी बातों का भी गहराई से अध्ययन कर लेता है।

क्या आप जानते हैं इस विधि की गहनता व सूक्ष्मता को प्रकट करते हुए जहोडा एवं कुक लिखते हैं, "सक्रिय सहभागिता उन सूचना स्रोतों के द्वार खोलती है जो अन्यथा बंद ही रह सकते थे।"

3. **प्रत्यक्ष अध्ययन** (Direct Study)–इस विधि में अवलोकनकर्ता सामाजिक व्यवहारों का प्रत्यक्ष रूप से अध्ययन करता है, अतः उसकी जानकारी अधिक सही एवं वैज्ञानिक होती है। अध्ययनकर्ता अस्थायी रूप से समूह में रहता है, लोगों के व्यवहारों, कार्यकलापों, संस्कृति आदि के बारे में प्रत्यक्ष रूप से तथ्यों का संकलन करता है। इसके लिए वह लोगों से घनिष्ठ एवं औपचारिक संबंध भी स्थापित करता है।

4. **वास्तविक व्यवहार का अध्ययन** (Study of Actual Behaviour)–चूँकि सहभागी अवलोकनकर्ता को समूह के सदस्यों द्वारा भी अपना लिया जाता है, अतः वे उसके सामने कृत्रिम व्यवहार नहीं करते जैसा कि अनजान लोगों के समक्ष किया जाता है, अतः इस विधि द्वारा लोगों के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन करना संभव है। जहोडा एवं कुक ने भी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "सामुदायिक जीवन में सहभागिता वास्तव में अवलोकनकर्ता की स्थिति में 'स्वाभाविकता' को बढ़ाती है।"

5. **अधिक विश्वसनीयता** (Greater Reliability)–चूँकि इस विधि में अध्ययनकर्ता स्वयं सूचनाएँ संकलित करता है, अतः वे अधिक विश्वसनीय होती हैं। दूसरों के द्वारा घटनाओं को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने से घटनाएँ विश्वसनीय नहीं रह पातीं, सहभागी अवलोकन इस दोष से मुक्त है।

6. **संग्रहीत सूचनाओं की सत्यापनशीलता** (Verifiability of Collected information)–इस विधि में अवलोकनकर्ता द्वारा संगृहीत सूचनाओं की सत्यता की जाँच भी कर ली जाती है क्योंकि अध्ययनकर्ता स्वयं समुदाय की गतिविधियों में भाग लेता है। अतः आशंका होने पर पुनः वैसी ही परिस्थितियाँ आने पर वह तथ्यों का पुनर्परीक्षण कर सकता है।

7. **सरल अध्ययन** (Easy Study)–चूँकि सहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह का सदस्य बन जाता है, उस पर संदेह एवं अविश्वास नहीं किया जाता, अतः वह बिना रोक-टोक के समूह के सभी कार्यक्रमों में भाग लेता है और सरलता से उनका अध्ययन कर सकता है। चूँकि अध्ययनकर्ता को बार-बार अध्ययन क्षेत्र में नहीं जाना पड़ता है, इसलिए यह एक सुविधापूर्ण अध्ययन विधि भी है।

नोट

8. अध्ययनकर्ता की कुशलता में वृद्धि (Increase in Skillness of observer)–एक लंबे समय तक समूह में रहने एवं उसकी क्रियाओं में भाग लेने के कारण अध्ययनकर्ता अनुभवी एवं कुशल हो जाता है, उसमें प्रत्येक स्थिति को समझने की क्षमता पैदा हो जाती है।

9. स्वयं अवलोकनकर्ता सामुदायिक जीवन का एक दर्पण (Observer Himself is a mirror of Community Life)–सहभागी अवलोकनकर्ता स्थानीय समूह के साथ इतना घुल-मिल जाता है कि वह स्वयं भी समूह के अन्य सदस्यों की भाँति व्यवहार करने लगता है, उसका व्यवहार अवलोकित किए गए समूह का प्रतिनिधित्व करता है। अत: उसके व्यवहार से ही समूह के बारे में कई सूचनाएँ प्रकट हो जाती हैं।

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त सहभागी अवलोकन के कुछ और लाभ भी हैं, जैसे (*i*) इसमें उत्तरदाताओं की संवेगात्मक स्थितियों को सरलता से समझा जा सकता है, (*ii*) अवलोकनकर्ता संवेदनशील प्रश्नों के उत्तर भी ज्ञात कर सकता है, (*iii*) इसमें भावनात्मक एवं गुणात्मक तथ्यों का विश्लेषण सरलता से किया जा सकता है, (*iv*) संग्रहीत तथ्यों को अंकित करना सरल होता है, (*v*) इसमें अवलोकनकर्ता की निगाहें अधिक सूक्ष्म एवं पैनी हो जाती हैं, (*vi*) कम समय में इस विधि द्वारा अधिक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

19.4 सहभागी अवलोकन के दोष एवं सीमाएँ (Demerits and Limitations of Participant Observation)

सहभागी अवलोकन के कई लाभों के होते हुए भी वह एक पूर्ण विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक विधि नहीं कही जा सकती क्योंकि इसकी विश्वसनीय सीमाएँ या कमियाँ भी हैं:

1. पूर्ण सहभागिता संभव नहीं (Full Participation Impossible)–**एम.एन.** बसु कहते हैं, "एक क्षेत्रीय कार्यकर्ता कुछ व्यावहारिक कारणों से, अध्ययन किए जाने वाले समुदाय के जीवन में कभी भी पूर्णतया भाग नहीं ले सकता।" बसु का यह कथन पूर्णतया सत्य है क्योंकि कैदियों या वेश्याओं के अध्ययन में अध्ययनकर्ता उनके मध्य रह तो सकता है किंतु उनकी मनोवृत्तियों, आदतों आदि को अपने में विकसित करना कठिन है। इसी प्रकार से जनजातियों के अध्ययन के दौरान उनके रीति-रिवाजों के अनुसार ही रहना एक अध्ययनकर्ता के लिए सामान्यत: संभव नहीं है। इन कठिनाइयों के कारण ही गडेन और हर्षकोविट्स जैसे अमेरिकन समाज-वैज्ञानिक इस प्रविधि को अव्यावहारिक मानते हैं।

नोट्स लुंडबर्ग का मत है कि संस्तरण वाले समुदाय में भी यह विधि उपयोगी नहीं है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति हरिजन बस्ती में रहकर उसका सहभागी अध्ययन करता है, किंतु यदि वही व्यक्ति ब्राह्मण बस्ती में जाकर भी अध्ययन करना चाहे तो लोग उसे अपनाने एवं सूचना देने से मना कर सकते हैं।

2. वैषयिकता का अभाव (Lack of Objectivity)–अध्ययन किए जाने वाले समूह में निवास करने के कारण अध्ययनकर्ता में समूह के प्रति वफादारी, आत्मीयता, सहयोग एवं लगाव की भावना उत्पन्न हो जाती है, अत: वह निष्पक्षतापूर्वक तथ्यों का संकलन नही कर पाता है। एक तटस्थ अवलोकनकर्ता के स्थान पर वह अपने को एक वर्ग का सदस्य मानने लगता है, उसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण समाप्त हो जाता है और वह घटनाओं को अतिरंजित रूप में देखने लगता है। गुडे एवं हाट ने सच ही कहा है, "जितना अधिक वह भावात्मक रूप से सहभागी बनता है, उतना ही उसकी वैषयिकता, जो उसकी एकमात्र विशाल संपत्ति है, नष्ट हो जाती है।"

3. समूह के व्यवहार में परिवर्तन (Change in Group Behaviour)–कई बार अध्ययनकर्ता समूह में महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त कर लेता है और वह स्वयं ही समूह के लोगों के व्यवहारों को प्रभावित एवं परिवर्तित करने

नोट

लगता है। उदाहरण के लिए, यदि अध्ययनकर्ता किसी पाठशाला का अध्यापक, पंचायत का पंच या सरपंच, सहकारी समिति का अध्यक्ष आदि बना दिया जाता है और वह अपने अधिकारों, गुणों एवं व्यक्तित्व के प्रभाव से लोगों के वास्तविक व्यवहारों में परिवर्तन ला देता है तब उस समूह का वह वैज्ञानिक अध्ययन नहीं कर पाएगा।

4. अत्यधिक खर्चीली प्रणाली (Most Expensive Method)–सहभागी अवलोकन विधि अत्यधिक खर्चीली है क्योंकि इस विधि द्वारा अध्ययन करने में समय लगता है। प्रश्नावली एवं अनुसूची आदि अन्य विधियों की तुलना में इस विधि द्वारा अध्ययन में खर्च भी अधिक होता है।

5. सीमित क्षेत्र में अध्ययन (Study in Limited Area)–सहभागी अवलोकन की एक कमी यह है कि इसके द्वारा एक सीमित क्षेत्र का अध्ययन ही संभव है क्योंकि इसमें समय और धन अधिक लगता है तथा सभी लोगों से संपर्क स्थापित कर सूचनाएँ संकलित करना भी कठिन रहता है। इस प्रकार इस विधि द्वारा क्षेत्र का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

6. धीमा अध्ययन (Slow Study)–चूँकि सहभागी अवलोकन में लोगों से घनिष्ठ संपर्क स्थापित करना पड़ता है और उसमें अधिक समय लगता है, इसलिए इस पद्धति द्वारा अध्ययन धीमी गति से होता है। अत: यह तेज गति से अध्ययन करने एवं निष्कर्ष निकालने में असमर्थ है।

7. साधारण तथ्य छूट जाना (Ignoring Ordinary Matters)–सहभागी अवलोकनकर्ता लंबे समय तक एक सूमह में रहता है, अत: वह कई घटनाओं को साधारण घटना समझकर छोड़ देता है। इसकी तुलना में एक अपरिचित अवलोकनकर्ता उन घटनाओं को नवीन एवं आकर्षक समझकर उनका अध्ययन करता है।

8. आलेखन की समस्या (Problem of Recording)–जब अवलोकनकर्ता स्वयं ही समूह की गतिविधियों में भाग ले रहा हो तो उसके सामने सूचनाओं को लेखबद्ध करने की समस्या पैदा हो जाती है। अवलोकन के साथ-साथ उसे लिखने से लोगों में उसके प्रति संदेह होने लगता है और यदि वह घटना घटने के बाद लिखता है तो किसी तथ्य के भूल जाने या छूट जाने की संभावना रहती है।

9. भूमिका सामंजस्य में कठिनाई (Difficulty in Role Adjustment)–सहभागी अवलोकनकर्ता को एक साथ दो भूमिकाएँ–एक अध्ययनकर्ता की व दूसरे समूह के सदस्य की निभानी पड़ती है। इस सामंजस्य को बनाए रखना बड़ा कठिन होता है।

नोट्स विलियम वाईट लिखते हैं, "यह कोई एक शाम को किसी नाटकीय अभिनय करने की बात नहीं है। इसका मतलब है–सारे समय सफल अभिनय करना। मेरी समझ में ऐसे सफल अभिनेता का मिलना संदेहप्रद ही है जो अनुसंधान में भी रुचि रखता हो।"

19.5 असहभागी अवलोकन (Non-participant Observation)

जब अवलोकनकर्ता किसी समूह के जीवन में भाग लिए बिना समूह की क्रियाओं से अलग रहकर एक वैज्ञानिक की भांति तटस्थ द्रष्टा के रूप में उनका अध्ययन करता है तो इसे असहभागी अवलोकन कहते हैं। इस विधि में अध्ययनकर्ता समूह या समुदाय में जाकर लंबे समय तक निवास नहीं करता और न ही उनकी गतिविधियों में भाग ही लेता है। वह एक अपरिचित और मूकदर्शक होता है। इस प्रकार के अध्ययन में स्वतंत्रता व निष्पक्षता की अधिक संभावना रहती है। लोगों को पूर्व सूचना दिये बिना वह घटनाओं के समय उपस्थित होकर जानकारी प्राप्त कर लेता है। वह जो कुछ देखता है, उसकी गहराई से जानकारी प्राप्त करता है। किंतु पूर्ण असहभागी अध्ययन भी संभव नहीं है। उसे कुछ क्रियाओं व गतिविधियों में तो समूह के

लोगों के साथ रहना ही पड़ता है। **गुडे** एवं **हाट** लिखते हैं, ''जैसा कि छात्र समझ सकते हैं, विशुद्ध असहभागी अवलोकन कठिन है।" असहभागी विधि का प्रयोग प्रायोगिक अवलोकन के लिए अधिक होता है। जैसे किसी कारखाने के श्रमिकों एवं स्कूली बच्चों के कार्य एवं अवकाश के क्षणों का अध्ययन इस विधि द्वारा किया जाता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए भी अध्ययनकर्ता दूर बैठकर बालकों की विभिन्न क्रियाओं का अध्ययन करता है। इस विधि में समूह के बाह्य लक्षणों का ही अध्ययन हो पाता है, आंतरिक संबंधों की सूक्ष्म एवं गहन जानकारी इससे संभव नहीं है। असहभागी अवलोकनकर्ता ग्रामों में मंचित नाटकों को दूर बैठकर देख सकता है, लोकगीतों को चुपके से बैठकर टेप कर सकता है या सुन सकता है।

19.6 असहभागी अवलोकन के गुण (लाभ) (Merits of Non-participant Observation)

सहभागी अवलोकन के दोष ही असहभागी अवलोकन के गुण हैं। प्रमुखतः इसके गुण (लाभ) या उपयोगिता इस प्रकार हैं:

1. **वैषयिकता** (Objectivity)–असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह के साथ अपने को घुलाता-मिलाता नहीं है वरन् एक तटस्थ और निष्पक्ष द्रष्टा के रूप में घटनाओं को देखता है। उसकी उपस्थिति से घटनाएँ प्रभावित नहीं होतीं, अतः अध्ययन में वैषयिकता एवं वैज्ञानिकता बनी रहती है और पक्षपात नहीं आ पाता।

2. **विश्वसनीयता** (Reliability)–इस प्रकार के अध्ययन में अवलोकनकर्ता दूर बैठकर स्वयं ही सभी घटनाओं को नोट कर लेता है, अतः उसके द्वारा एकत्रित सूचनाएँ अधिक विश्वसनीय होती हैं।

3. **अधिक सहयोग** (More Co-operation)–इसमें अवलोकनकर्ता समुदाय के किसी विशिष्ट समूह के साथ घुलता-मिलता नहीं है, अतः उसे सभी लोगों का आदर और सहयोग प्राप्त होता है।

4. **कम खर्चीली** (Less Expensive)–असहभागी अवलोकन में सहभागी अवलोकन की तुलना में कम समय एवं धन खर्च होता है।

5. **दर्शक अभिनेता की तुलना में अधिक आनंद ले सकता है।** (Spectator can enjoy more than the actor)–एक दर्शक के रूप में असहभागी अवलोकनकर्ता दूर बैठकर घटनाओं की विस्तृत, सूक्ष्म एवं यथार्थ जानकारी प्राप्त कर सकता है जो कि सहभागी अध्ययन में संभव नहीं है क्योंकि अभिनेता की अपेक्षा दर्शक ही किसी नाटक की वस्तु-स्थिति को सही रूप में आंक सकते हैं।

19.7 असहभागी अवलोकन के दोष या सीमाएँ (Demerits or Limitations of Non-participant Observation)

असहभागी अवलोकन की विभिन्न उपयोगिताओं के बावजूद भी इसकी निम्नांकित सीमाएँ हैं:

1. **गुडे** एवं **हाट** का मत है कि विशुद्ध असहभागी अवलोकन कठिन है। अध्ययनकर्ता को कुछ न कुछ सीमा तक तो सहभागी होना ही पड़ता है।
2. असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्ता घटनाओं को अपने ही दृष्टिकोण से देखता है, अतः उनकी मौलिकता नष्ट हो जाती है।
3. कई विषय ऐसे हैं जिनकी जानकारी केवल सहभागी अवलोकन से ही प्राप्त की जा सकती है, वहाँ यह विधि सर्वथा अनुपयुक्त है।
4. असहभागी अवलोकन में कभी-कभी और आकस्मिक रूप से घटने वाली घटनाओं का अध्ययन नहीं हो पाता।

नोट

5. असहभागी अवलोकन में समूह के लोग अध्ययनकर्ता को संदेह की दृष्टि से देखते हैं और उसके सम्मुख कृत्रिम व्यवहार करने लगते हैं।
6. इसमें समस्या के बारे में केवल सतही ज्ञान हो पाता है, विस्तृत एवं गहन नहीं।

19.8 सहभागी और असहभागी अवलोकन में अंतर (Distinction Between Participant and Non-participant Observation)

1. सहभागिता के आधार पर—सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्ता समूह व समुदाय का एक अभिन्न अंग बनकर उनकी सभी गतिविधियों में भाग लेता है, जबकि असहभागी अवलोकन में वह एक तटस्थ और मौन द्रष्टा के रूप में अध्ययन करता है।

2. गहनता में अंतर—सहभागी अवलोकन में घटनाओं का गहन सूक्ष्म अध्ययन संभव है और गुप्त सूचनाएँ भी संकलित की जा सकती हैं, जबकि असहभागी अवलोकन में यह संभव नहीं है।

3. समूह के व्यवहार के आधार पर—सहभागी अवलोकन में समूह के लोग अवलोकनकर्ता को अपना ही सदस्य मानते हैं, अत: उसके सम्मुख स्वाभाविक व्यवहार करते हैं, जबकि असहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्ता एक अजनबी और बाहरी व्यक्ति समझा जाता है जिसके सम्मुख कृत्रिम व्यवहार व्यक्त किया जाता है।

4. सत्यापन के आधार पर—सहभागी अवलोकन में अध्ययनकर्ता को घटनाओं की सत्यता की जाँच करने के कई अवसर प्राप्त होते हैं, जबकि असहभागी अवलोकन में सत्यापन के अवसर सीमित होते हैं।

5. समय एवं धन के आधार पर—असहभागी अवलोकन की तुलना में सहभागी अवलोकन में समय एवं धन अधिक लगता है।

6. वस्तुनिष्ठता के आधार पर—सहभागी अवलोकन की तुलना में असहभागी अवलोकन अधिक वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ होता है और उसमें व्यक्ति के पक्षपात के आने की कम संभावना रहती है।

7. अध्ययन यंत्रों के आधार पर—सहभागी अध्ययन में अवलोकनकर्ता अवलोकन कार्ड का प्रयोग नहीं कर सकता है जबकि असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अनुसूची अवलोकन कार्ड आदि का प्रयोग कर सकता है।

8. कुशलता के आधार पर—सहभागी अवलोकन के अध्ययनकर्ता अधिक कुशल व प्रशिक्षित होना चाहिए , जबकि असहभागी में सामान्य अनुभव एवं प्रशिक्षण के आधार पर ही अध्ययन संभव है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. अवलोकर्त्ता समुदाय के किसी .... के साथ घुलता-मिलता नहीं है।
2. असहभागी अवलोकन में समूह के लोग .... को संदेह ही दृष्टि से देखते हैं और उसके सम्मुख कृत्रिम व्यवहार करने लगते हैं।
3. .... में समूह के लोग अवलोकनकर्त्ता को अपना ही सदस्य मानते हैं।

19.9 सारांश (Summary)

- अवलोकन के द्वारा प्राथमिक सामग्री का संकलन, सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन तथा निष्पक्ष अध्ययन किया जाता है।

नोट

- अवलोकन के तीन प्रकार हैं:
  1. अनियंत्रित अवलोकन।
  2. नियंत्रित अवलोकन।
  3. सामूहिक अवलोकन।
- अनियंत्रित अवलोकन के अंतर्गत, सहभागी, असहभागी तथा अर्द्धसहभागी अवलोकन आते हैं।
- "सहभागी अवलोकन का तात्पर्य एक ऐसी दशा से है जिसमें अवलोकनकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह की सभी सामान्य गतिविधियों में स्वयं भी भाग लेता है।" पी.एच.मान

19.10 शब्दकोश (Keywords)

1. **अवलोकन (Observation)** –किसी घटना अथवा वस्तु को व्यवस्थित एवं सूक्ष्म रूप से देखने, परखने तथा आलेखन की विधि अवलोकन कहलाती है।
2. **असहभागी अवलोकन के गुण:**–सहभागी अवलोकन के दोष ही असहभागी अवलोकन के गुण हैं।

19.11 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अवलोकन का अर्थ बताएँ।
2. अनियंत्रित अवलोकन के प्रकारों का संक्षिप्त परिचय दें।
3. सहभागी अवलोकन के गुण-दोषों की विवेचना करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विशिष्ट समूह		2. अध्ययनकर्त्ता
3. सहभागी अवलोकन।

19.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शोध प्रविधि–डा. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।
2. शिक्षा का समाजशास्त्र–तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

नोट

इकाई–20: प्रजातिलेखन (Ethnography)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
20.1 प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य (Ethnography Field Work)
20.2 सारांश (Summary)
20.3 शब्दकोश (Keywords)
20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य की जानकारी प्राप्त होती है।
- वास्तविकता की दैनिक क्रियाकलापों एवं वैज्ञानिक धारणा के बीच अंतर का पता चलता है।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी समाज के प्रथानुगत व्यवहारों, विश्वासों एवं मनोवृत्तियों का विस्तृत वर्णनात्मक लेखा-जोखा तैयार करने की विधा प्रजातिलेखन कहलाती है। यह सांस्कृतिक मानवशास्त्र की एक शाखा है। यह प्राय: क्षेत्र-कार्य यानि फील्ड वर्क (Field work) के माध्यम से तैयार किया जाता है। यह सामान्यत: आदिम अथवा पूर्वशिक्षित समाजों के विवरणात्मक अध्ययनों से संबंधित है। ज्ञान की इस शाखा में विश्लेषण एवं व्याख्या की अपेक्षा वर्णन को ही प्रमुखता दी जाती है। प्रजातिलेखन में बहुधा सहभागी अवलोकन की शोध विधि का प्रयोग किया जाता है।

विभिन्न समाजों के सांस्कृतिक तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाली सांस्कृतिक मानवशास्त्र की एक शाखा प्रजातिशास्त्र के नाम से जानी जाती है। संस्कृतियों में क्या भिन्नता है और इस भिन्नता के क्या कारण है, प्रजातिशास्त्र के अध्ययन की प्रमुख विषय-वस्तु है। प्रजातिलेखन तथा प्रजातिशास्त्र दो भिन्न अवधारणाऐं हैं। जहाँ प्रजातिलेखन में एकाधिक समुदायों का मात्र वर्णन होता है, वहाँ प्रजातिशास्त्र में प्रजातिलेखनों द्वारा उपलब्ध कराई गई सामग्री के आधार पर सिद्धांतों की खोज करने का यत्न किया जाता है। इसके लिए विभिन्न समुदायों की सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

20.1 प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य (Ethnography Field Work)

प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य (field work) के माध्यम से मानव सामाजिक घटना और समुदायों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। इसमें आमतौर पर प्रजातिलेखक (ethnographer) उन लोगों के बीच साधारण जीवन की तरह रहता है

और उन समुदायों का क्षेत्र–कार्य (field work) के माध्यम से अध्ययन करता है तथा उन्हीं समुदायों के ऐसे व्यक्तियों को भी साथ में रखता है जो सही जानकारी एकत्र कर सकें। इस प्रजातिलेखन का समय आमतौर पर एक वर्ष या इससे अधिक भी हो सकता है या कभी–कभी यह कार्य बहुत लंबे समय तक भी चल सकता है। इसमें प्रजातिलेखक क्षेत्र–कार्य (field work) की समाप्ति पर अपने अनुभवों के बारे में लिखता है। यह लेखन दैनिक जीवन की एक सूची होती है जिसमें एक घटना की चर्चा के साथ–साथ, कई अनुष्ठानों, घटनाओं का एक वर्गीकरण (assortment) भी शामिल है।

नोट्स इसमें कई लोग हैं जो नृवंश विज्ञान या नृजाति वर्णन के कई विषयों पर काम कर रहे हैं जैसे जीव विज्ञान के लिए उपलब्ध भोजन को आपूर्ति या भूमिज्ञान के लिए उस इलाके और पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है।

एक नृवंश विज्ञानशास्त्री पूरे मानवीय अनुभवों का अध्ययन करता है प्रजातिलेखन सांस्कृतिक मानवशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। कुछ मानवशास्त्री दूसरे व्यक्ति को कार्य–क्षेत्र में भेजकर अनुसंधान कराता है। कुछ विज्ञापन एजेंसियाँ भी, प्रजातिलेखक के कार्यो का उपयोग करती है, इस संदर्भ में कि उस क्षेत्र की जनसंख्या या समुदाय के लिए किस तरह का विज्ञापन अधिक प्रभावी होगा।

व्यक्ति, जो इस क्षेत्र में कैरियर बनाना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले सांस्कृतिक मानवशास्त्र का अध्ययन करना पड़ेगा। अगर संभव हो, ऐसे बच्चों को स्कूल के द्वारा कराए जाने वाले क्षेत्रीय कार्यों में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। एक अच्छा प्रजातिलेखक सांख्यिकीय गणना में कुशल होता है। तुरंत किसी स्थिति को नए भाषा में लिखने की क्षमता होनी चाहिए। सबसे अधिक उसमें अवलोकन और नामावली (Cataloging) तथा भाषा को समझकर लिखने की कुशलता सुदृढ़ होनी चाहिए।

एक नृवंश विज्ञानशास्त्री ऐसा व्यक्ति होता है जो मानव संस्कृति और समाज के बारे में डाटा का रिकार्ड इकट्ठा करता है। विभिन्न प्रकार की अनुसंधान विधियाँ हैं जो सामाजिक अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रीय डिजाईन या दृश्य को कई उप–श्रेणियों के लिए लागू किया जा सकता है। एक नृवंशविज्ञानशास्त्री भूगोल, शिक्षा, भाषाविज्ञान, अर्थशास्त्र और सामाजिक कार्य के रूप में विभिन्न क्षेत्रों के लिए काम करते हैं। समाज को बेहतर ढंग से समझने के लिए नृवंश विज्ञानशास्त्री का इस्तेमाल किया जा सकता है।

क्षेत्रीय नृवंशविज्ञानी इस विषय का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। कुछ प्रजातिलेखक फीटर बैंड मेथड का प्रयोग करते हैं। वे विभिन्न स्थानों में घूम–घूम कर व्यक्ति के साथ अंत:क्रिया करते हैं और उनके विचारों को रिकार्ड करते हैं। वे किसी विशिष्ट शहरों या जगहों पर जाकर सरकारी नीतियों का उन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इसका भी अध्ययन करते हैं।

नृवंशविज्ञान विधि का प्रयोग मुख्यतया तो मानवशास्त्रियों द्वारा किया जाता है लेकिन अक्सर समाजशास्त्री भी इसका प्रयोग करते हैं। इस विधि का प्रयोग मुख्यतया सांस्कृतिक अध्ययन, अर्थशास्त्र, सामाजिक कार्य, शिक्षा, लोककथाओं, धार्मिक अध्ययन, भूगोल, इतिहास, भाषा विज्ञान, संचार अध्ययन, प्रदर्शन का अध्ययन, विज्ञापन, मनोविज्ञान, अपराध आदि क्षेत्रों के लिए किया जाता है।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. व्यक्ति जो इस क्षेत्र में .... बनाना चाहते हैं उन्हें सबसे पहले सांस्कृतिक मानवशास्त्र का अध्ययन करना पड़ेगा।
2. सबसे अधिक उसमें अवलोकन और नामावली तथा भाषा को समझकर लिखने की .... होनी चाहिए।
3. .... ऐसा व्यक्ति होता है जो मानव संस्कृति और समाज के बारे में डाटा का रिकार्ड इकट्ठा करता है।

नोट

सामान्यतया नृवंशविज्ञान पद्धति का मूल्यांकन दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। वास्तव में, यह सामाजिक जीवन के किसी टुकड़े या छोटे भाग के बारे में हमारी समझ को विकसित करने में योगदान करता है। यह हमारे सौंदर्यशास्त्र को समृद्ध करता है। इसमें अध्ययनकर्त्ता की जागरूकता अत्यधिक होनी चाहिए क्योंकि स्वयं के बारे में निर्णय करने के संबंध जोखिम अत्यधिक रहता है इसलिए किसी भी संस्कृतिक या विषय का अध्ययन करते समय स्वयं को मूल्य-निरपेक्ष रखना चाहिए। नृवंशविज्ञान की जाँच करने की प्रकृति की माँग है कि अनुसंधान के क्षेत्र में गुणात्मक एवं मात्रात्मक दृष्टिकोण से औपचारिक एवं आदर्शवादी नियम या नैतिकता को समय के साथ अनुकूलित किया जाए। इस पूरी प्रक्रिया में नैतिक दुविधाएँ मौजूद रहती है। भ्रामक व्यावसायिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने और संभवत: अधिक तीखे परिणामों से बचने की आवश्यकता है।

टास्क प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

नृवंश विज्ञानी की स्वभावगत विशेषताएँ अनुसंधान के मूल्य को प्रभावित करती हैं, इसलिए सैंपलिंग डाटा को डिजाइन, अवलोकन एवं रिकार्ड करने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों का पालन किया जाना चाहिए।

- किसी भी समूह का अध्ययन करते समय उसके प्रतीकात्मक अर्थ एवं बातचीत के पैटर्न को आपस में जोड़कर देखना चाहिए।
- किसी भी तथ्य का निरीक्षण विषय केंद्रित दृष्टिकोण से करना चाहिए। वास्तविकता की दैनिक क्रियाकलापों एवं वैज्ञानिक धारणा के बीच अंतर बनाए रखना चाहिए।
- समूह के प्रतीक एवं उसके अर्थ का सामाजिक संबंधों के साथ संबंध स्थापित कराने की कोशिश करनी चाहिए।
- समूह या समुदाय के सभी सदस्यों के व्यवहारों का रिकॉर्ड रखना चाहिए।
- अध्ययन की प्रक्रिया में परिवर्तन एवं स्थिरता के विभिन्न चरणों को स्पष्ट करना चाहिए।
- प्रतीकात्मक कार्यों को अन्त: क्रिया का ही एक भाग माना जाना चाहिए।
- आकस्मिक स्पष्टीकरण से बचने के लिए अवधारणाओं का उपयोग करना चाहिए।

20.2 सारांश (Summary)

- प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य (field work) के माध्यम से मानव सामाजिक घटना और समुदायों का वैज्ञानिक अध्ययन करता है।
- सामान्यतया नृवंशविज्ञान पद्धति का मूल्यांकन दार्शनिक दृष्टिकोण के रूप में नहीं किया जाना चाहिए।
- भ्रामक व्यावसायिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने और संभवत: अधिक तीखे परिणामों से बचने की आवश्यकता है।

20.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **प्रजातिलेखन क्षेत्र-कार्य (Ethnography Field Work)** –मुख्यतया सांस्कृतिक अध्ययन, अर्थशास्त्र कार्य, शिक्षा, लोककथाओं, धार्मिक अध्ययन, भूगोल, इतिहास इत्यादि क्षेत्रों की जानकारी ही प्रजातिलेखन कहलाता है।

20.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. प्रजातिलेखन के विषय में क्या जानते हैं? वर्णन करें।

नोट

2. नृवंशविज्ञानशास्त्री सबसे पहले किन–किन चीजों के डाटा का रिकार्ड इकट्ठा करता है?

3. वास्तविकता की दैनिक क्रियाकलापों एवं वैज्ञानिक धारणा के बीच क्या अंतर पाया जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. कैरियर
2. कुशलता सुदृढ़
3. नृवंशविज्ञानशास्त्री।

20.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।
2. शोध प्रविधि–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–21: वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति (Case Study Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की परिभाषा व अर्थ (Definition and Meaning of Case Study Method)

21.2 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Case Study Method)

21.3 वैयक्तिक जीवन अध्ययनों की कार्य-प्रणाली (Procedure in Case Studies)

21.4 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति के प्रकार (Types of Case Study Method)

21.5 वैयक्तिक जीवन अध्ययन के सूचना-स्रोत (Sources of Data of Case Study)

21.6 वैयक्तिक अध्ययन में ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ (Precautions Taken in Case Study)

21.7 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व (Utility or Importance of Case Study)

21.8 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Case Study Method)

21.9 मूल्यांकन (Evaluation)

21.10 सारांश (Summary)

21.11 शब्दकोश (Keywords)

21.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

21.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- वैयक्तिक जीवन अध्ययनों की कार्यप्रणाली की जानकारी।
- वैयक्तिक जीवन अध्ययन की उपयोगिता।
- वैयक्तिक अध्ययन में ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक विज्ञानों की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं के गहन अध्ययन के लिए वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति या विधि का प्रारंभ हुआ। यह एक ऐसी पद्धति है जिसमें सामाजिक इकाई (व्यक्ति, संस्था, समुदाय आदि) को समग्र

रूप में देखा जाता है। सबसे पहले लीप्ले (Leplay) और हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने इस पद्धति का प्रयोग किया। गुणात्मक अध्ययन के लिए वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति को सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है।

21.1 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की परिभाषा व अर्थ (Definition and Meaning of Case Study Method)

1. श्रीमती पी० वी० यंग (Pauline V. Young)–"वैयक्तिक जीवन अध्ययन किसी सामाजिक इकाई–चाहे वह एक व्यक्ति, एक परिवार, संस्था, सांस्कृतिक वर्ग अथवा समस्त समुदाय हो–के जीवन के अनुसंधान व विश्लेषण करने की पद्धति को कहते हैं।"

2. सर्वश्री गुडे तथा हाट (Goode and Hatt)–"यह सामाजिक तथ्यों को संगठित करने का एक ऐसा तरीका है जिससे अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक विषय के एकात्मक स्वभाव की रक्षा हो सके। थोड़े भिन्न रूप से यह एक पद्धति है जिसमें सामाजिक इकाई को समग्र रूप में देखा जाता है।"

3. सर्वश्री बीसेंज और बीसेंज (Biesanz and Biesanz)–"वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का वह रूप है जिसमें व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यंत सावधानीपूर्वक पूर्ण निरीक्षण किया जाता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति सामाजिक अध्ययन की वह पद्धति है जिसमें अनुसंधानकर्ता किसी इकाई (व्यक्ति, परिस्थिति, समुदाय, संस्था आदि) का अध्ययन सभी प्राप्त स्रोतों के आधार पर इतनी गहनता व समीपता से करता है कि विषय का आंतरिक ज्ञान संभव हो पाता है।

21.2 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की विशेषताएँ (Characteristics of Case Study Method)

उपरोक्त वर्णित परिभाषाओं के आधार पर इस पद्धति की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है–

1. अनुसंधान का आधार व्यक्तिगत (Individual Basis of Research)–इस पद्धति में अनुसंधानकर्ता एक ही इकाई को लेकर उसका अध्ययन करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि अध्ययन की यह इकाई व्यक्ति, संस्था, परिस्थिति, जाति समुदाय आदि कुछ भी हो सकती है लेकिन इसका अध्ययन व्यक्तिगत या एक इकाई के रूप में ही किया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति में अनुसंधान का आधार व्यक्तिगत होता है।

2. गहन अध्ययन (Intensive Study)–इस पद्धति में समस्या से संबंधित इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है। इस गहन अध्ययन में कितना ही समय लग सकता है और यह एक लंबे समय तक चल सकता है। इस प्रकार इस पद्धति के द्वारा गहन-से-गहन सूचनाएँ संकलित की जाती हैं।

3. पूर्ण अध्ययन (Whole Study)–यह पद्धति किसी भी सामाजिक इकाई का समग्र या पूर्ण रूप से अध्ययन करती है। समग्रता या पूर्णता का अभिप्राय यही है कि इकाई के जीवन का अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक, धार्मिक, प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से संपन्न किया जाता है। इस संबंध में सर्वश्री गुडे एवं हाट ने ठीक ही लिखा है, "इस विधि में सामाजिक इकाई को समग्र रूप में देखा जाता है। (It is an approach which views any social unit as a whole.)"

4. गुणात्मक अध्ययन (Qualitative Study)–इस पद्धति में गुणात्मक अध्ययन किया जाता है–वास्तव में इकाइयों का अध्ययन ही गुणात्मक होता है और तथ्यों का विश्लेषण भी संख्याओं के रूप में नहीं होता है। सच तो यह है कि इस पद्धति में एक कहानी के रूप में विस्तृत जीवन-इतिहास तैयार किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. यह सामाजिक तथ्यों को .... करने का एक ऐसा तरीका है जिससे अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक विषय के एकात्मक स्वभाव की रक्षा हो सके।

नोट

2. वैयक्तिक अध्ययन गुणात्मक विश्लेषण का वह रूप है जिसमें व्यक्ति, परिस्थिति अथवा संस्था का अत्यंत ·
.... पूर्ण निरीक्षण किया जाता है।

3. .... का अभिप्राय यही है कि इकाई के जीवन का अध्ययन सामाजिक, राजनीतिक, भौगोलिक, मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टि से संपंन्न होना चाहिए।

21.3 वैयक्तिक जीवन अध्ययनों की कार्य-प्रणाली (Procedure in Case Studies)

वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति में व्यक्तिगत स्थिति का सर्वांगीण अध्ययन हर संभव उपाय द्वारा किया जाता है। वास्तव में यह सार्वांगीण अध्ययन काफी कठिन है फिर भी इसे व्यवस्थित क्रम में संपन्न करने के लिए निम्न कार्य-प्रणाली को अपनाया जाता है–

1. समस्या की व्याख्या (Statement of the problem)–वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति को प्रयोग में लाने के लिए सबसे पहले अध्ययन-साध्य समस्या के विभिन्न पहलुओं की विवेचना या व्याख्या कर देना आवश्यक है ताकि संपूर्ण अध्ययन के लिए भूत एवं वर्तमान की सभी सूचनाएँ संकलित की जा सकें। इस स्तर पर निम्न बातों का निश्चय करना आवश्यक है–

(अ) **वैयक्तिक विषयों का चुनाव (Selection of Cases)–**इसमें 'वैयक्तिक विषय' के चुनाव का निश्चय करना होता है ताकि समस्या पर प्रकाश पड़ सके। समस्या के अनुसार यह 'वैयक्तिक विषय' साधारण, सामान्य या विशिष्ट कोई भी हो सकता है।

(ब) **इकाइयों के प्रकार (Types of Units)–**इसमें यह निश्चय करना होता है कि किस प्रकार की इकाई का अध्ययन करना है। क्या अध्ययन व्यक्ति का है, जाति का है, संस्था अथवा समुदाय का है? इसका निश्चय करना उचित व आवश्यक है।

(स) **वैयक्तिक स्थितियों की संख्या (Number of Cases)–**इकाइयों के प्रकार के निश्चय के बाद अध्ययन की जाने वाली उचित वैयक्तिक स्थितियों की संख्या का निश्चय कर लेना भी ठीक व आवश्यक है।

(द) **विश्लेषण का क्षेत्र (Field of Analysis)–**इसमें यह निश्चय करना होता है कि वर्तमान अध्ययन में किन-किन पहलुओं पर प्रकाश डाला जाना आवश्यक है।

2. घटनाओं के क्रम का वर्णन (Description of the course of events)–समय की व्याख्या कर लेने के बाद समस्या के स्वरूप में एक निश्चित काल में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं तथा भविष्य में क्या-क्या परिवर्तन सम्भावित है, इसका व्यवस्थित वर्णन करना भी आवश्यक है।

3. निर्धारक कारक (Determinant factors)–इस स्तर पर उन निर्धारक कारकों का अध्ययन करना आवश्यक होता है जिनके कारण यह घटना या समस्या घटी है। उदाहरणार्थ, एक बाल-अपराधी का जीवन-वृत्तांत जान लेने के बाद उन मूल कारणों को भी जान लेना आवश्यक है जिनके आधार पर अमुक बच्चा बाल-अपराधी बना है।

4. संबंधित प्रभावी कारक (Related influential Factors)–निर्धारक कारकों के अतिरिक्त अन्य संबंधित प्रभावी कारकों का भी पता लगाना आवश्यक रहता है, क्योंकि ये प्रभावी कारक भी घटना के स्वरूप को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित करते हैं। वस्तुत: अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से यह आवश्यक है।

5. विश्लेषण एवं मूल्यांकन (Analysis and Evaluation)–इस स्तर पर प्राप्त सामग्री का विश्लेषण करके मूल्यांकन अथवा निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

वैयक्तिक जीवन अध्ययन की कार्य-प्रणाली की यही संक्षिप्त रूपरेखा है।

21.4 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति के प्रकार (Types of Case Study Method)

वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति को दो भागों में बाँटा जा सकता है। निम्न रेखाचित्र से इनके बारे में स्पष्ट हो जायेगा–

वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति

(1) व्यक्ति का वैयक्तिक अध्ययन
↓
किसी एक व्यक्ति अथवा उसके जीवन की घटना का व्यक्तिगत अध्ययन।

(2) समुदाय का वैयक्तिक अध्ययन
↓
वर्ग, जाति, समुदाय आदि में से किसी एक का व्यक्तिगत अध्ययन।

21.5 वैयक्तिक जीवन अध्ययन के सूचना-स्रोत (Sources of Data of Case Study)

वैयक्तिक जीवन अध्ययन के सूचना स्रोतों को दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(अ) लिखित या द्वैतीयक सामग्री। (ब) संकलित या प्राथमिक सामग्री।

(अ) लिखित सामग्री–लिखित सामग्री आत्मकथा-डायरी, जीवन-इतिहास, पत्रों, साहित्यिक रचनाओं, लेख आदि के रूप में होती है। इनके द्वारा वैयक्तिक जीवन अध्ययन के बारे में काफी मसाला (matter) मिल जाता है। डायरियाँ व्यक्तियों द्वारा स्वयं लिखी जाती हैं। इसमें व्यक्ति अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण व प्रभावी घटनाओं, संस्मरणों आदि को स्वयं लिखते हैं। आलपोर्ट (Allport) का कहना है, "डायरियाँ स्वयं प्रकाशित रिकार्ड होते हैं जो जानबूझकर या अनायास ही लेखक के मानसिक जीवन की गतिशीलता का वर्णन करते हैं।" पत्रों के द्वारा यों तो व्यवस्थित सामग्री प्राप्त नहीं हो पाती परंतु फिर भी कुछ मामलों पर महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है जिसके अन्य स्रोतों से मिलने की संभावना नहीं होती है। जीवन-इतिहास में व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का चित्रण होता है। अत: इस दृष्टि से जीवन-इतिहास का इस पद्धति में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नोट्स वैयक्तिक जीवन अध्ययन विधि में कुछ अन्य प्रलेखों का भी सहारा लिया जाता है। इन प्रलेखों के अंतर्गत समस्या से संबंधित पुस्तकें, पत्रिकाएँ, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थानों के रिकार्ड एवं विज्ञप्तियाँ, भूत एवं वर्तमान से संबंधित अनुसंधानों की रिपोर्टें, सरकारी तथा गैर-सरकारी प्रकाशन आदि आ जाते हैं।

(ब) संकलित सामग्री–कभी-कभी सूचनाओं को विशेष तौर पर संकलित भी करना पड़ता है। ऐसी सूचनाओं को संबंधित व्यक्ति से साक्षात्कार या प्रत्यक्ष अवलोकन द्वारा संकलित किया जा सकता है। किस स्रोत से कौन-सी सूचना प्राप्त की जाए इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। आवश्यकता अनुसार किसी भी स्रोत का प्रयोग किया जा सकता है।

21.6 वैयक्तिक अध्ययन में ध्यान रखने योग्य सावधानियाँ (Precautions Taken in Case Study)

वैयक्तिक जीवन अध्ययन में निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिएँ–

1. व्यक्ति का अध्ययन उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि में होना चाहिए।
2. व्यक्ति के जीवन में परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों के महत्त्व को नहीं भुलाया जाना चाहिए।

नोट

3. व्यक्ति के बारे में ऐसे तथ्यों को जानने का प्रयास करना चाहिए जिनसे व्यक्ति के संपूर्ण जीवन के बारे में वर्णन किया जा सके।
4. व्यक्ति के जीवन की घटनाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया जाना चाहिए।
5. संबंधित भौगेलिक क्षेत्र से ही व्यक्तियों को अध्ययन के लिए चुना जाना चाहिए।
6. प्रशिक्षित व्यक्ति को ही इस अध्ययन का इंचार्ज बनाना चाहिए।

21.7 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व (Utility or Importance of Case Study)

वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की उपयोगिता या महत्त्व निम्नलिखित विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा–

1. **समस्या का गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन** (Intensive and microscopic study of the problem)–यद्यपि इस पद्धति द्वारा सीमित वैयक्तिक स्थितियों (Cases) का ही अध्ययन हो पाता है परंतु उनका विभिन्न दृष्टिकोणों से संपूर्ण, गहन एंव सूक्ष्म अध्ययन करना इस पद्धति का ही कार्य है।

क्या आप जानते हैं यह पद्धति अपनी गहन व सूक्ष्म प्रकृति के कारण ही सामाजिक अनुसंधान (social research) में अत्यंत उपयोगी है।

2. **विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन** (Study of unique aspects)–डायरी, जीवन-इतिहास, पत्रों, साक्षात्कार, निरीक्षण आदि स्रोतों के द्वारा व्यक्तिगत स्थितियों के विशिष्ट पहलुओं का अध्ययन इस पद्धति के द्वारा संभव है।

3. **सामूहिक लक्षणों का अध्ययन** (Study of group characteristics)–विभिन्न वैयक्तिक स्थितियों (individual cases) का अध्ययन करके और प्राप्त तथ्यों को सम्मिलित करके संपूर्ण समूह के सामूहिक लक्षणों के बारे में सरलतापूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है।

4. **अनुसंधानकर्ता के अनुभवों का स्रोत** (Source of experience for social investigator)–इस पद्धति में अनुसंधानकर्ता को अनुभवों का एक विस्तृत क्षेत्र प्राप्त होता है क्योंकि इसमें सामाजिक इकाई के बारे में सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू का अध्ययन किया जाता है और इसी रूप में अनुसंधानकर्ता को स्वत: ही अनेकों प्रकार के अनुभव प्राप्त होते हैं जो संभवतया अन्य पद्धतियों में संभव नहीं है। इस प्रकार अनुसंधानकर्ता अपने अनुभवों का लाभ आगे के अध्ययनों के अनुसंधानों में उठा सकता है।

5. **जीवन के प्रभावी कारकों का अध्ययन** (Study of dominant factors in life)–गहन व सूक्ष्म अध्ययन होने के कारण अध्ययन के दौरान ये तथ्य भी सामने आ जाते हैं या स्पष्ट हो जाते हैं कि व्यक्ति या केस की क्रियाओं में कौन-कौन-से प्रभावी या निर्धारक कारक हैं।

6. **व्यक्तिगत भावनाओं तथा मनोवृत्तियों का अध्ययन** (Study of personal feelings and attitudes)–सूक्ष्म, गुणात्मक व गहन अध्ययन की पद्धति होने के कारण व्यक्ति की भावनाओं, मूल्यों व मनोवृत्तियों का अध्ययन भी स्वत: होता रहता है। इस प्रकार व्यक्ति की भावनाओं, मूल्यों आदि की प्रवृत्ति को जानकर सामाजिक परिवर्तन का अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में सामाजिक अनुसंधान में भावनाओं व मनोवृत्तियों का अध्ययन काफी सहायक होता है।

7. **सांख्यिकीय अध्ययन का प्राथमिक रूप** (Primary form of statistical study)–वैयक्तिक जीवन अध्ययन एक प्रकार से सांख्यिकीय अध्ययन का प्राथमिक रूप है। सामाजिक इकाइयों का वैयक्तिक अध्ययन करके आगे होने वाले सांख्यिकीय अध्ययनों के लिए आधार प्रस्तुत किया जा सकता है क्योंकि इसके अनुभव के आधार पर सांख्यिकीय अध्ययन को अधिक व्यवस्थित बनाया जा सकता है।

नोट

8. सामग्री की संपूर्णता (Completeness of the material)–इस पद्धति द्वारा प्राप्त सामग्री अपने-आप में संपूर्ण होती है। इतनी संपूर्णता व पर्याप्त मात्रा में सामग्री प्राप्त करना अन्य पद्धतियों द्वारा संभव नहीं है। यह इस पद्धति की अनुपम उपयोगिता ही है।

9. प्रश्नावली, अनुसूची व अन्य प्रपत्रों को बनाने में सहायक (Helpful in the perparation of questionnaire, schedule and other forms)–वैयक्तिक अध्ययन के द्वारा महत्त्वपूर्ण बातों पर सूचनाएँ प्राप्त होती हैं और इन प्राप्त सूचनाओं व अनुभवों के आधार पर प्रश्नावली, अनुसूची व अन्य प्रपत्रों को व्यवस्थित ढंग से तैयार किया जा सकता है।

10. वर्गीकृत सैम्पल निकालने में सुविधा (Easy in finding group sample)–इस पद्धति द्वारा समूह की विभिन्न इकाइयों के गुणों का पता लग जाता है और इसके आधार पर इकाइयों को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत व विभाजित करना सरल होता है। इतना हो जाने पर वर्गीकृत सैम्पल का सुविधापूर्वक पता लगाया जा सकता है।

11. उपकल्पनाओं का स्त्रोत (Source of Hypothesis)–अनेक इकाइयों के गहन, विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा निष्कर्षों तक पहुँचा जा सकता है अर्थात् सामान्यीकरण (generalisation) किया जा सकता है। इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर भविष्य में होने वाले अनुसंधान के लिए महत्त्वपूर्ण उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

21.8 वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Case Study Method)

सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में वैयक्तिक जीवन अध्ययन की काफी उपयोगिता व महत्त्व है, फिर भी इस पद्धति की अपनी कुछ सीमाएँ हैं। ये सीमाएँ, दोष या कमियाँ निम्न प्रकार हैं–

1. केवल कुछ इकाइयों के आधार पर ही निष्कर्ष (Conclusion on the basis of few units)–इस पद्धति की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसमें कुछ ही इकाइयों के अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस प्रकार प्राप्त निष्कर्षों को सभी इकाइयों पर लागू करना धोखे के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा।

2. दोषपूर्ण रिकार्ड (Defective records)–इस पद्धति के अध्ययन में पूर्व रिकार्डों पर अधिक बल दिया जाता है लेकिन साधारणतया पूर्व रिकार्डों का यथार्थ व ठीक होना संदेहजनक रहता है।

टास्क एक व्यक्ति पुलिस द्वारा बार-बार पकड़ा जाता है तो हो सकता है कि उसका पुलिस रिकार्ड यथार्थ न होकर पक्षपात पर आधारित हो। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक अध्ययन द्वारा सही निष्कर्ष पर कैसे पहुँचा जा सकता है?

3. अवैज्ञानिक एवं असंगठित पद्धति (Unscientific and unorganised Method)–इस विधि में इकाइयों के चुनाव व सूचना-संकलन करने पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहता और न ही किसी वैज्ञानिक व संगठित पद्धति का सहारा लिया जाता है। इस दृष्टि से यह अवैज्ञानिक व असंगठित पद्धति है।

4. पक्षपात की संभावना (Possibility of bias)–इस पद्धति की एक सीमा यह भी है कि अनुसंधानकर्ता द्वारा उन्हीं घटनाओं का अध्ययन किये जाने के कारण, जो स्वयं उसके जीवन में आती हैं, पक्षपात आने की संभावना बनी रहती है।

5. सैम्पल विधि पर आधारित नहीं (Not based on sampling method)–इस पद्धति में केवल कुछ चुनी हुई इकाइयों का अध्ययन किया जाता है लेकिन इन चुनी हुई इकाइयों का चुनाव सैम्पल विधि पर आधारित नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधिपूर्ण इकाइयों का अध्ययन नहीं हो पाता है।

6. अप्रामाणिक तथ्य (Unverified facts)–इस पद्धति में अनुसंधानकर्ता एक व्यक्ति के जीवन से संबंधित जो भी सूचनाएँ या सामग्री संकलित करता है उनका प्रमाणीकरण इसलिए संभव नहीं है क्योंकि अन्य व्यक्ति के जीवन

में जिसका कि वह अध्ययन कर रहा होता है, वही घटनाएँ व परिस्थितियाँ घटित नहीं होती हैं। इस प्रकार अप्रामाणिक निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

7. अधिक समय व धन (More time and money)—इस पद्धति में कुछ व्यक्तिगत स्थितियों (individual cases) या व्यक्तियों के अध्ययन में काफी समय लगता है। इतना ही नहीं, समय के साथ-साथ होने वाला व्यय भी अधिक होता है। इसलिए यह विधि अत्यधिक खर्चीली व समय लेने वाली है।

8. सीमित अध्ययन (Limited study)—अत्यधिक समय व धन लगने के बावजूद भी इस विधि द्वारा सीमित इकाइयों का केवल गुणात्मक अध्ययन ही हो पाता है। इस दृष्टि से यह सीमित अध्ययन वाली पद्धति है।

9. दोषपूर्ण जीवन-इतिहास (Defective life history)—जीवन-इतिहास इस विधि में सूचना-संकलन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं लेकिन जीवन-इतिहास भी कभी-कभी दोषपूर्ण व अवैज्ञानिक होते हैं। व्यक्तियों द्वारा स्वयं लिखे जाने के कारण घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है और साधारणतया व्यक्ति अपनी पसंद की घटनाओं को लिखता है। ऐसी स्थिति में सामान्यीकरण व निष्कर्ष में अवैज्ञानिकता का समावेश होना स्वाभाविक है।

10. श्री रीड बेन (Read bain)—ने वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति के निम्न दोष बताये हैं–

(अ) यह घटना के बारे में अवैयक्तिक, सर्वमान्य नैतिक आधार से युक्त अव्यावहारिक, आवृत्तियुक्त सूचना नहीं देती है।

(ब) संबंधित व्यक्ति सही सूचना देने के स्थान पर वह सूचना दे देता है जो उसकी समझ में अनुसंधानकर्ता चाहता है।

(स) उत्तरदाता तथ्य बतलाने के स्थान पर आत्मसमर्थन की ओर विशेष तौर से प्रवृत्त हो सकता है।

(द) लोगों की साहित्यिक भावना उन्हें तथ्यों को अतिरंजित करके वास्तविक तथ्यों को छोड़ देने तथा काल्पनिक तथ्यों को सम्मिलित करने के लिए प्रेरित कर सकती है।

(य) इसके आंकड़े प्राय: तुलनात्मक नहीं होते।

टास्क वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति की सीमाएँ क्या है? विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

21.9 मूल्यांकन (Evaluation)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सामाजिक अनुसंधान में वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति का महत्त्वपूर्ण स्थान है लेकिन इस महत्त्वपूर्ण स्थान के साथ-साथ इस पद्धति की अपनी कुछ सीमाएँ व दोष भी हैं। सीमाओं या दोषों को अनुभवी व कुशल अनुसंधानकर्ता काफी सीमा तक दूर भी कर सकता है। सर्वश्री रोजर्स (Carl Rogers), मेयो (Elton Mayo), कोमारोवस्की (Mirra Komarovsky), किन्से (Kinsey), डोलार्ड (Dollard) आदि विद्वानों ने इस पद्धति में संबंधित आंकड़ों के संकलन, संपादन विधियों, लेखन आदि में अनेकों महत्त्वपूर्ण सुधार किये हैं और इस विधि में निरंतर सुधार हो रहे हैं।

अपने देश में इस पद्धति के दोषों को देखकर प्राय: अनुसंधानकर्ता इस पद्धति को अपनाने में हिचकिचाते हैं। वास्तव में यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है क्योंकि इसके दोषों को काफी सीमा तक प्रशिक्षित, कुशल एवं अनुभवी अनुसंधानकर्ताओं द्वारा दूर किया जा सकता है। कुछ भी हो, इसे सामाजिक अनुसंधान की एक पद्धति के रूप में अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सामाजिक घटनाओं की गुणात्मक पद्धति को देखते हुए, गहन व सूक्ष्म अध्ययन करने वाली यही एकमात्र प्रणाली है। अत: यह कहना ही अधिक उपयुक्त है–"वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के विरोध में चाहे कुछ भी कहा गया हो, पर यह सत्य है कि सामाजिक वातावरण के अध्ययन में यह प्रणाली आधारभूत रहेगी।"

नोट

21.10 सारांश (Summary)

- सामाजिक विज्ञानों के अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं के गहन अध्ययन के लिए वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति का प्रारंभ हुआ। इसे सबसे पहले लीप्ले और हर्बर्ट स्पेन्सर ने इस पद्धति का प्रयोग किया।
- वैयक्तिक जीवन अध्ययन के सूचना स्रोतों को दो भागों में बाँटा जाता है–1. लिखित या द्वैतीयक सामग्री 2. संकलित या प्राथमिक सामग्री।
- इस पद्धति में व्यक्ति के बारे में ऐसे तथ्यों को जानने का प्रयास करना चाहिए जिनसे व्यक्ति के संपूर्ण जीवन के बारे में वर्णन किया जा सके।

21.11 शब्दकोश (Keywords)

1. **वैयक्तिक जीवन अध्ययन**–यह वह पद्धति है जिसमें अनुसंधानकर्ता किसी इकाई (व्यक्ति, परिस्थिति, समुदाय आदि) का अध्ययन सभी प्राप्त स्रोतों के आधार पर इतनी गहनता से करता है कि विषय का आंतरिक ज्ञान संभव हो पाता है।
2. **समग्रता या पूर्णता**–इकाई के जीवन का अध्ययन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक, धार्मिक, प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक आदि सभी दृष्टियों से संपन्न किया जाता है।

21.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति का क्या अर्थ है?
2. वैयक्तिक जीवन अध्ययन के सूचना के स्रोत कौन-कौन से हैं?
3. वैयक्तिक जीवन अध्ययन के लिए किस कार्यप्रणाली को अपनाया जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. संगठित
2. सावधानीपूर्वक
3. समग्रता या पूर्णता।

21.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. सामाजिक शोध व सांख्यिकी–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।

2. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–22: अंतर्वस्तु विश्लेषण (Content Analysis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
22.1 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की परिभाषाएँ एवं विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Content Analysis Technique)
22.2 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का महत्त्व (Importance of Content Analysis Technique)
22.3 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ (Limitations of Content Analysis Technique)
22.4 सारांश (Summary)
22.5 शब्दकोश (Keywords)
22.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अंतर्वस्तु विश्लेषण के अर्थ की जानकारी।
- अतंर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि के महत्त्व को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

इस सत्य को सभी लोग स्वीकार करते हैं कि भौतिक घटनाओं की तुलना में सामाजिक घटनाएँ अधिक जटिल, परिवर्तनशील, अमूर्त तथा गुणात्मक होती हैं, जिनके कारण सामाजिक विज्ञानों के लिए अपना निष्कर्ष निकालने व नियमों को प्रतिपादित करने में कठिनाई होती है। इस कठिनाई को कम करने की दिशा में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है क्योंकि इसकी सहायता से गुणात्मक तथ्यों का परिमाणात्मक (Quantitative) व वस्तुनिष्ठ वर्णन संभव होता है। कुछ शोधकर्ता अध्ययन-विषय से संबंधित तथ्यों के अंतर्वस्तु को उचित श्रेणियों में विभाजित करके, उनके वस्तुनिष्ठ विश्लेषण को ही "अन्तर्वस्तु विश्लेषण" मानते हैं।

इस प्रविधि का श्रीगणेश आज से प्राय: 75 वर्ष पहले सन् 1926 में सर्वप्रथम **श्री मेल्कोम विल्ली** ने समाचार-पत्रों के अपने अध्ययन के माध्यम से किया था। उसके बाद सन् 1930 में **श्री बुडलैण्ड** आदि ने एक अध्ययन *Foreign News in American Morning Newspaper* शीर्षक के अंतर्गत किया था। इस अध्ययन में समाचार पत्रों की भाषा का विश्लेषण करके कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गये थे। इन अध्ययनों में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का ही उपयोग किया गया था। यद्यपि उस समय यह प्रविधि अपने आरंभिक स्तर पर होने के कारण कोई निश्चित स्वरूप व आधार को प्राप्त नहीं था क्योंकि इन अध्ययनों को करने वाले कोई प्रशिक्षित सामाजिक

नोट

वैज्ञानिक नहीं अपितु समाचार पत्रों से संबंधित कार्यकर्ता ही थे। इसी प्रकार विभिन्न समाचार पत्रों से संबंधित अन्य कार्यकर्ताओं ने भी घरेलू मामलों, राजनीति, श्रम, अपराध, विवाह-विच्छेद, खेलकूद आदि विषयों से संबंधित जो सूचनाएँ या खबरें समाचार पत्रों में छपी थीं उनके अंतर्वस्तु का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उनका अनुकरण करते हुए कुछ साहित्यकारों ने साहित्यिक शैली के अध्ययन में भी इस प्रविधि का प्रयोग किया। धीरे-धीरे राजनीतिशास्त्र व जनमत अध्ययनों में भी इस प्रविधि का प्रयोग होने लगा और सन् 1930 से 1940 की अवधि में **हैराल्ड लेस्वेल** व अन्य विद्वानों ने प्रचार व जनमत से संबंधित अपने अध्ययनों में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि को और भी विकसित करने का प्रयास किया। इसके पश्चात् धीरे-धीरे समाजशास्त्र में भी इस प्रविधि का उपयोग होने लगा। द्वितीय महायुद्ध के बाद इस प्रविधि को शोधकर्ता कम प्रयोग में लाने लगे। अब फिर से इसका प्रयोग बढ़ रहा है एवं संगीत, शिक्षा, साहित्य, रेडियो कार्यक्रम, समाचारपत्र आदि के अंतर्वस्तुओं के अध्ययन में यह प्रविधि लोकप्रिय होती जा रही है।

22.1 'अतर्वस्तु विश्लेषण' प्रविधि की परिभाषाएँ व विशेषताएँ (Definition and Characteristics of Content Analysis Technique)

अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की परिभाषा देते हुए सर्वश्री **वैपिल्स** तथा **वेरेल्सन** (Weples and Barelson) ने लिखा है, "सुव्यवस्थित अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि सामग्री के विवरण मात्र को प्रस्तुत करने के स्थान पर उससे अधिक स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास करती है जिससे कि पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की प्रकृति व सापेक्षिक सत्य को वस्तुनिष्ठ रूप में प्रकट करना संभव हो।"

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि विश्लेषण प्रविधि उस सामग्री का विश्लेषण है जिसे कि पाठकों या श्रोताओं के लिए प्रस्तुत किया जाता है। यह प्रविधि इस सामग्री का विवरणात्मक व्याख्या नहीं, अपितु इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत करता है जो अधिक स्पष्ट व वस्तुनिष्ठ हो और जिसके माध्यम से पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं की प्रकृति व वास्तविकताएँ वैज्ञानिक तौर पर प्रगट हों।

श्री बर्नार्ड बेरेल्सन (Bernard Berelson) ने अपने संचार शोधों (Communication researches) में अंतर्वस्तु विश्लेषण के एक अति उत्तम परिभाषा को विकसित किया है। उनके अनुसार, "अंतर्वस्तु विश्लेषण संचार के प्रगट अंतर्वस्तु का वस्तुनिष्ठ, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक वर्णन के लिए अपनाई जाने वाली एक शोध प्रविधि है।"

प्रो० बेरेल्सन की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का प्रयोग हम संचार के उस अंतर्वस्तु का वैज्ञानिक वर्णन के लिए करते हैं जो कि अंतर्निहित (latest) न होकर प्रगट (manifest) हो अर्थात् बाह्य तौर पर निरीक्षण योग्य हो।

श्रीमती यंग (P.V. Young) के शब्दों में, "अंतर्वस्तु विश्लेषण साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों तथा अन्य लिखित या मौखिक भाषागत अभिव्यक्तियों (linguistic expressions) द्वारा प्राप्त शोध तथ्यों के अंतर्वस्तु का क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा परिमाणात्मक वर्णन के लिए अपनाई जाने वाली एक शोध प्रविधि है।"

स्पष्ट है कि श्रीमती यंग की परिभाषा प्रो० बर्नार्ड बेरेल्सन (Bernard Berelson) द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त परिभाषा का ही बहुत कुछ संशोधित रूप है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से ही अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की मुख्य विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं, फिर भी उन्हें हम क्रमबद्ध रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(1) इस प्रविधि का संबंध संचार के अथवा भाषागत अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्वस्तु से होता है।

(2) इस प्रविधि में उस अंतर्वस्तु का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है जो कि प्रगट (manifest) हो अर्थात् जो वैज्ञानिक के लिए बाहरी तौर पर निरीक्षण योग्य हो।

(3) इस प्रविधि द्वारा हम उन शोध तथ्यों के अंतर्वस्तु का विश्लेषण करते हैं जिन्हें कि संचार के किन्हीं साधनों या भाषागत अभिव्यक्तियों, चाहे वे लिखित हों या मौखिक, के माध्यम से प्राप्त किया जाता है।

नोट

(4) इस प्रविधि का उद्देश्य इस अंतर्वस्तु का वस्तुनिष्ठ, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक वर्णन प्रस्तुत करना होता है। इस प्रकार यह प्रविधि अपने को तथ्यों के गुणात्मक (qualitative) वर्णन से दूर रखता है।

(5) इस रूप में इस प्रविधि का आधार वैज्ञानिक है और यह ऐसे परिणामों को खोज निकालता है जिसकी सत्यता के विषय में परीक्षा और पुन:परीक्षा संभव है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. यह प्रविधि इस सामग्री का .... व्याख्या नहीं, अपितु इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत करता है जो अधिक स्पष्ट और वस्तुनिष्ठ हो।
2. पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली .... की प्राकृतिक व सापेक्षिक सत्य को वस्तुनिष्ठ रूप में प्रकट करना संभव हो।
3. इस प्रविधि का संबंध संचार के अथवा भाषागत .... द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्गत से होता है।

22.2 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का महत्त्व (Importance of Content Analysis Technique)

सामाजिक अनुसंधान व शोध के क्षेत्र में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का अपना अनूठा महत्त्व है और यह बात निम्नलिखित विवेचना से स्वत: ही स्पष्ट हो जाएगी–

(1) गुणात्मक विषयों का परिमाणात्मक अध्ययन करना इस प्रविधि की सहायता से संभव होता है। उदाहरण के लिए, उपन्यास के पात्र अथवा एक भाषण अथवा एक समाचार-पत्र का संपादकीय (editorials)– ये सब गुणात्मक विषय हैं। पर अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि इन गुणात्मक विषयों की प्रकृति व विशेषताओं का परिमाणात्मक व्याख्या सारणी, ग्राफ आदि के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

(2) संचार के विभिन्न साधनों की प्रकृति को स्पष्ट करने में अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। संचार के साधन (means of communication) जैसे पुस्तक, भाषण, समाचार-पत्र, रेडियो कार्यक्रम आदि हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित व निर्देशन करने में महत्त्वपूर्ण हैं, पर उनकी प्रकृति व प्रभाव दोनों ही अमूर्त होने के कारण उनके बारे में सामान्यत: सही ज्ञान हमें नहीं मिल पाता है। अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि इस कमी को पूरा करता है। इस प्रविधि की सहायता से हम न केवल विभिन्न संचार के साधनों की प्रकृति को समझ पाते हैं अपितु हमें जनता पर पड़ने वाले इन साधनों के प्रभाव की प्रकृति व सीमा के संबंध में भी वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होता है।

(3) संचार के अंतर्राष्ट्रीय आधारों का तुलनात्मक अध्ययन भी इस पद्धति की सहायता से संभव होता है। प्रत्येक देश के संचार साधनों के अंतर्वस्तु एक समान नहीं होते, पर उनका विस्तार अंतर्राष्ट्रीय हो सकता है। इस कारण उनका प्रभाव भी देश की सीमा पार कर जाता है।

नोट्स स्वस्थ आधारों पर परिसीमित करना बहुत आवश्यक होता है। यह काम तभी हो सकता है जबकि संचार के अंतर्राष्ट्रीय आधारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए। अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि हमें वह अवसर प्रदान करता है जिससे विभिन्न देश के संचार साधनों का हम तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं।

(4) प्रचार की विधियों का जनता पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रकृति के संबंध में अध्ययन भी इस प्रविधि की सहायता से वैज्ञानिक रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन से प्रचार के साधनों को अधिक प्रभावशाली बनाने तथा प्रचार के नवीन साधनों व प्रविधियों को खोज निकालने में मदद मिल सकती है।

(5) जनमत को जानना भी इस प्रविधि की मदद से आज सरल हो गया है। समाचार-पत्रों के संपादक के नाम जनता के सदस्यों द्वारा लिखे गए पत्रों का अंतर्वस्तु विश्लेषण करके कई शोधकर्ता जनमत के रुख का पता लगाने में सफल हुए हैं।

(6) व्यक्तित्व के अध्ययन में भी यह प्रविधि सहायक सिद्ध हुई है। एक व्यक्ति विशेष के द्वारा दिए गए भाषण अथवा उसके द्वारा लिखी गई किताब, लेख आदि का अंतर्वस्तु विश्लेषण करने पर स्वयं उस व्यक्ति के व्यक्तित्व में अंतर्निहित विचार, आदर्श, मूल्य, मनोवृत्ति, उद्वेग, स्थायी भाव (sentiments) आदि स्पष्ट हो जाते हैं। इन्हीं विलक्षणताओं के आधार पर विभिन्न व्यक्तित्वों का श्रेणी-विभाजन (categorisation) भी संभव होता है।

(7) समूह या समुदाय के मनोवैज्ञानिक झुकाव का अध्ययन भी इस प्रविधि के द्वारा संभव होता है। समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख, कहानी, रेडियो कार्यक्रम, विज्ञापन आदि विषयों के अंतर्वस्तु का विश्लेषण करने पर एक समूह या समुदाय-विशेष के मनोवैज्ञानिक झुकाव का स्वत: ही पता चल सकता है। इससे प्रशासकों, समाज-सुधारकों, योजना बनाने वालों तथा देश के नेताओं को अपने-अपने कार्य को संबोधित व व्यवस्थित करने में बहुत मदद मिलती है।

22.3 अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ (Limitations of Content Analysis Technique)

उपरोक्त महत्त्व होते हुए भी अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएँ हैं और उनमें सबसे प्रमुख यह है कि अध्ययन-विषय स्वयं गुणात्मक होने के कारण इसके परिमाणात्मक परिणामों को निकालना स्वयं में एक समस्या बन जाती है। अध्ययन इकाइयों की प्रकृति गुणात्मक होने के कारण इनसे संबंधित तथ्यों की विश्वसनीयता की जाँच बहुत कठिन होती है। इस समस्या से बचने के लिए अध्ययन कार्य के दौरान अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है। गुणात्मक प्रकृति के कारण ही विश्लेषणात्मक व्याख्या व निष्कर्ष की यथार्थता को प्राप्त करना सरल नहीं होता। स्वयं संचार के साधनों में इतनी भिन्नताएँ हैं कि यह कहना कठिन हो जाता है कि जो निष्कर्ष हमने एक अध्ययन के आधार पर निकाला है, उसे सभी समान विषयों पर लागू किया जा सकता है अथवा नहीं। साथ ही साथ इन साधनों के अंतर्वस्तु में परिवर्तन की गति इतनी तेज है कि आज का निष्कर्ष कुछ समय के बाद ही व्यर्थ सिद्ध हो जाता है।

क्या आप जानते हैं इस प्रविधि की एक सीमा यह है कि क्षेत्र-अध्ययन कार्य (Field work) में इस प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इन सब सीमाओं के होते हुए भी इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रविधि की सहायता से अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं एवं उन अध्ययनों से हमारे ज्ञान की श्रीवृद्धि ही हुई है।

22.4 सारांश (Summary)

- इस प्रविधि का संबंध संचार के अथवा भावागत अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त तथ्यों के अंतर्वस्तु से होता है।
- गुणात्मक विषयों का परिमाणात्मक अध्ययन करना इस प्रविधि की सहायता से संभव होता है।

22.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **अंतर्वस्तु विश्लेषण (Content analysis)**–संचार के लिखित, मौखिक अथवा दृश्यात्मक साधनों में अभिव्यक्ति अंतर्वस्तु के वस्तुपरक, व्यवस्थित एवं परिमाणात्मक विश्लेषण की विधि को अंतर्वस्तु

नोट

विश्लेषण कहते हैं। इसका प्रयोग रेडियो, दूरदर्शन, साहित्य कला की विधाओं, संगीत, शिक्षा के क्षेत्र में किया जा रहा है।

2. **अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की परिभाषा**–श्रीमती यंग ने इस बात पर बल दिया है कि अंतर्वस्तु विश्लेषण का संबंध भाषागत अभिव्यक्तियों द्वारा प्राप्त शोध-तथ्यों (research data) के अंतर्वस्तु से होता है और इस शोध प्रविधि द्वारा हम इसी अंतर्वस्तु का क्रमबद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा परिमाणात्मक (quantitative) वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

22.6 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की क्या विशेषतायें हैं?
2. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि की सीमाएँ क्या हैं? उल्लेख करें।
3. अंतर्वस्तु विश्लेषण प्रविधि का क्या महत्त्व है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. विवरणात्मक
2. प्रेरणाओं
3. अभिव्यक्तियों।

22.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध की पद्धतियाँ–संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–23: मौखिक इतिहास, आख्यान
(Oral History, Narratives)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
23.1 मौखिक इतिहास (Oral History)
23.2 आख्यान (Narratives)
23.3 सारांश (Summary)
23.4 शब्दकोश (Keywords)
23.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
23.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- लिखित प्रमाणों के अतिरिक्त तथ्यों का मौखिक रूप से विश्लेषण करना।
- मौखिक विश्लेषण लोककथाओं, स्मृति पर आधारित तथ्यों जैसे स्रोतों पर आधारित।
- गुणात्मक शोध पद्धति के रूप में आख्यान शोध का विश्लेषण करना।

प्रस्तावना (Introduction)

मौखिक इतिहास प्रविधि की एक सीमा यह होती है कि इस प्रविधि में पूर्णरूप से साक्षात्कारकर्ता को अपनी स्मरणशक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्ता इस स्थिति में नहीं होता कि वह सभी सूचनाओं को नोट कर सके। वह साक्षात्कार समाप्त करने के बाद घर लौटने पर ही सूचनाओं को लिखता है।

23.1 मौखिक इतिहास (Oral History)

मौखिक इतिहास साक्षात्कार, इतिहास, मानवशास्त्र व लोककथाओं आदि में रुचि रखने वालों की प्रदर्शनों की सूची में एक और उपकरण है। यह अतीत में अवलोकनों एवं सहभागिता से अतीत के बारे में सूचनाएँ एकत्रित करने का माध्यम है। घटनाओं, लोगों, विभिन्न निर्णयों एवं प्रक्रियाओं के बारे में लिखित दस्तावेजों में अनुपलब्ध आँकड़ों एवं तथ्यों को एकत्रित करता है।

नोट्स मौखिक इतिहास साक्षात्कार की जड़ें स्मृति से जुड़ी होती हैं तथा स्मृति द्वारा अतीत के बारे में रिकार्ड करने का एक व्यक्तिनिष्ठ उपकरण है जिससे वर्तमान क्षणों एवं व्यक्तिगत मनोविज्ञान द्वारा आकार प्रदान किया जाता है।

नोट

मौखिक इतिहास व्यक्तिगत मूल्यों एवं क्रियाओं का उद्घाटन कर सकता है जिससे अतीत निर्मित हुआ और यह भी स्पष्ट करता है कि अतीत किस प्रकार वर्तमान मूल्यों एवं क्रियाओं को आकार प्रदान करता है। प्रत्येक साक्षात्कार अनुभव अपने आपमें अनूठा होता है जो कार्यक्षेत्र के आकर्षण का अंग है। इसलिए प्रचलित कहावत में कुछ सीमा तक इसकी वैधता है कि किसी काम को कैसे किया जाए इसे सीखने का एकमात्र तरीका उस काम को करना होता है। यही कारण है कि किसी साक्षात्कार के बाद लिया जाने वाला प्रत्येक साक्षात्कार अधिक सफल होता है।

अध्ययन की जो नई विधा विकसित हो रही है उसमें लोक साहित्य का बड़ी मात्रा में उपयोग किया जा रहा है एक जो विवरण का इतिहास था, 'नेरेटिव हिस्ट्री' उससे अलग इतिहास में प्रयोग हो रहे हैं। ऐसे विवरण मौखिक विवरण पर आधारित होते हैं।

जहाँ तक वाक्शक्ति की बात है मानव स्तंभ प्राणी जो पूरी तरह से मानव नहीं बन सका था सीमित वाक् शक्ति उसको विकसित कर गई। वैसे बड़े मानव के कंठ की संरचना, मस्तिष्क की संरचना और स्पीच शक्ति इनमें संबंध होते-होते रह गया। पर वाक्शक्ति वाणी शब्दों को अर्थ दे सकने की क्षमता को हमने धरोहर में पाया था। मौखिकता पहले आई लिपिबद्धता बाद में। पर मौखिकता आज भी लिपिबद्धता से अधिक महत्त्वपूर्ण है। हमें जो कहना है वह हम लिखकर भी कहते हैं पर संप्रेषण की दृष्टि से मौखिकता का हमेशा आश्रय लेना पड़ता है। अपने विचारों के प्रसारण के लिए।

निरंतरता के दृष्टिकोण से और परिवर्तन के दृष्टिकोण से हमें मौखिक परंपरा को गंभीर रूप से देखना होगा। यह भी सच है कि जो लिपिबद्ध परंपरा है उसके निर्माण में मौखिक परंपरा का बहुत जबरदस्त हाथ रहा है। आखिर पंचतंत्र, हितोपदेश या उससे अलग हटकर सहस्र रजनी-चरित इनका मौखिक परंपरा में विकास हुआ। ये लिपिबद्ध हुए और आश्चर्य की बात यह है कि इस लिपिबद्ध परंपरा ने नई मौखिक परंपरा को जन्म दिया। अलीगढ़ के एक लोकप्रिय कवि हैं वो कविता का जब पाठ करते हैं तब तो वह बहुत अच्छी लगती है पर जब हम उसे पढ़ते हैं तो वह कुछ जँचती नहीं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. मौखिक इतिहास व्यक्तिगत मूल्यों और क्रियाओं का .... कर सकता है। जिससे अतीत निर्मित हुआ।
2. प्रचलित कहावतों में कुछ सीमा तक इसकी .... है कि किसी काम को कैसे किया जाए इसे सीखने का एकमात्र तरीका उस काम को करना होता है।
3. अध्ययन की जो नई विद्या .... हो रही है उसमें लोक साहित्य का बड़ी मात्रा में उपयोग किया जा रहा है।

23.2 आख्यान (Narratives)

आख्यान शोध किसी ऐसे अध्ययन को इंगित करता है जो आख्यान सामग्रियों का विश्लेषण करता है और इसकी सीमा शोध उद्देश्यों के लिए स्वाभाविक रूप से घटित आख्यानों से जीवन की मौखिक कहानियों तक विस्तृत हो सकती है। इसका उद्देश्य निजी, सार्वजनिक या राजनीतिक क्षेत्रों में लिखित आख्यानों में पाया जाता है। दिए गए मुख्य कारणों में एक की अनेक सामाजिक विज्ञानी आख्यान अध्ययन में रुचि क्यों रखते हैं क्योंकि आख्यान विश्व की चेतना को निर्मित करने का आधारभूत मानवीय तरीका है। आख्यान विश्लेषण मुख्यत: लिखित या मौखिक पाठ्यों पर केंद्रित होता है लेकिन इसे फोटोग्राफ, फिल्म या नृत्य प्रदर्शनों का विश्लेषण करने में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। आख्यान विश्लेषण अनिवार्यत: अंतर्विषयक दृष्टिकोण में निहित होता है। क्षेत्र अपेक्षाकृत असमान होते हैं तथा विश्लेषण की कोई एक एकल पद्धति नहीं होती जिसका आख्यान प्रयोग शोधकर्ता प्रयोग करे।

आख्यान विश्लेषण की वर्तमान लोकप्रियता का सबसे प्रमुख कारण सामाजिक विज्ञानों में आख्यान या भाषागत प्रवृत्ति है। इसमें सामाजिक अंत:क्रिया एवं समाज में एक पुनर्नवीनीकृत रुचि को सामने लाया है जिसमें भाषा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भाषा तटस्थ नहीं होती बल्कि सामाजिक उद्देश्यों में असमानता लाने का माध्यम होती है और

नोट

इस तरह सत्ता की संरचनाओं में फंसी होती है। इस प्रकार एक व्याख्यात्मक दृष्टिकोण उल्लेखनीय घटनाओं तक पहुँचने के क्रम में आख्यानों के विश्लेषण की माँग नहीं करती बल्कि अर्थ-निर्माण पर केंद्रित होती है।

क्या आप जानते हैं अधिकांश आख्यान विश्लेषण इस धारणा (Notion) पर आधारित होते हैं कि किस प्रकार अनुभव स्वयं में ही पुनर्संरचित एवं व्याख्यायित होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं।

23.3 सारांश (Summary)

- मौखिक इतिहास विश्लेषण स्मृति पर आधारित तथ्यों, लोककथाओं जैसे स्रोतों पर आधारित होता है।
- लिपिबद्ध परंपरा के निर्माण में मौखिक परंपरा का बहुत बड़ा हाथ है।
- आख्यान विश्लेषण अनिवार्यत: अंतर्विषयक दृष्टिकोण में निहित होता है।
- आख्यान विश्व की चेतना को निर्मित करने का आधारभूत मानवीय तरीका है।

23.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **साक्षात्कार विधि (Interview Method)**–एक व्यक्ति अथवा समूह के साथ विशिष्ट प्रयोजन से आयोजित औपचारिक वार्तालाप की प्रक्रिया साक्षात्कार विधि कहलाती है।
2. **अंतर्विज्ञानीय शोध (Interdisciplinary Research)**–सामाजिक घटनाएँ बहुकारकीय होती हैं जिनका माध्यम विज्ञान की सीमा से परे है। इन घटनाओं की जटिलता के कारण विभिन्न विद्वान मिलकर एक दल के रूप में जब शोधकार्य करते हैं तो इसे अंतर्विज्ञानीय शोध कहते हैं।

23.5 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. गुणात्मक शोध पद्धति के अंतर्गत मौखिक इतिहास शोध पद्धति का विश्लेषण करें।
2. गुणात्मक शोध पद्धति के अंतर्गत आख्यान शोध कैसे किया जाता है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. उद्घाटन
2. वैधता
3. विकसित।

23.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. शास्त्रीय सामाजिक चिन्तन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

2. शोध प्रविधि–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–24: सामाजिक शोध में पद्धतीय दुविधाएँ एवं मुद्दे
(Methodological Dilemmas and Issues in Qualitative Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
24.1 सामाजिक घटनाओं की जटिलता (The Complexity of Social Phenomena)
24.2 सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता व अमूर्तता (Subjectivity and Intangibility of Social Phenomena)
24.3 सामाजिक घटनाओं की गुणात्मकता (Qualitativeness of Social Phenomena)
24.4 समरूपता का अभाव (Lack of Homogeneity)
24.5 सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव (Lack of Universality in Social Phenomena)
24.6 सामाजिक घटनाओं की गतिशील प्रकृति (Dynamic Nature of Social Phenomena)
24.7 सामाजिक घटनाओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती (Unpredictability of Social Phenomena)
24.8 सारांश (Summary)
24.9 शब्दकोश (Keywords)
24.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
24.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सामाजिक शोध में पद्धतीय दुविधाओं की जानकारी।
- सामाजिक घटनाओं की जटिलताओं को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

यह सच है कि सामाजिक घटना और प्राकृतिक घटना की प्रकृति एक-सी नहीं है, इनमें कुछ आधारभूत भिन्नताएँ हैं। उदाहरणार्थ, आम के पौधों के एक विशेष समूह में जितने भी पौधे आते हैं उनकी विशेषताएँ प्राय: एक-सी होंगी, परंतु शिक्षक वर्ग में जितने भी शिक्षक हैं उनकी विशेषताएँ भी प्राय: एक-सी होंगी–इस प्रकार की आशा दुराशा मात्र है। ऋतुओं का क्रम एक निश्चित ढंग से व्यवहार करेगा, इस संबंध में हम निश्चिंत हो सकते हैं, पर कालेज के विद्यार्थियों का व्यवहार कालेज संघ के चुनाव के दौरान ठीक किस ढंग का होगा यह कोई कह नहीं सकता।

नोट

यह हो नहीं सकता कि रात में हमें सूरज का प्रकाश मिले, पर यह हो सकता है कि ममतामयी पालिका कहलाने वाली माँ अपने बच्चे की हत्या स्वयं कर दे। सामाजिक घटनाएँ इसी प्रकार के अनेक अनोखेपन से, अनेक विचित्रताओं व विविधताओं से भरपूर हैं।

24.1 सामाजिक घटनाओं की जटिलता (The Complexity of Social Phenomena)

सामाजिक घटनाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता इनकी जटिलता है। श्री लुंडबर्ग (Lundberg) ने लिखा है कि संभवत: मानव-समूह-व्यवहार संबंधी एक वास्तविक विज्ञान के विकास में सर्वाधिक उल्लेखनीय बाधा इसकी विषय-सामग्री की जटिलता है। अपने भौतिक एवं सामाजिक प्रभावों के प्रति अत्यंत संवेदनशील तथा अपने असंख्य सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा मन-मिज़ाज संबंधी विशेषताओं सहित मानव-समूह इतना अधिक जटिल, इतना अधिक दुर्बोध प्रतीत होता है कि हमारा मस्तिष्क ही चकरा जाता है और उस अथाह जटिलता की दुनिया में प्रवेश कर मानव-समूह के व्यवहार के क्रमों, व्यवस्थाओं और नियमों को ढूँढ़ने का दुस्साहस ही हम नहीं कर पाते हैं। सामाजिक घटनाओं की अथाह जटिलता के दो-एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं: एक पति अपनी पत्नी के लिए एक आज्ञाकारी सेवक बन सकता है, पर हो सकता है कि दूसरा पति 'देवता' से निम्न किसी स्थिति को स्वीकार करने से इंकार करता है; तो यह भी हो सकता है कि तीसरा पति व्यावहारिक तौर पर पति-पत्नी के संबंध को 'प्रिय बांधव व बांधवी' के समान संबंध मानकर ही अपनी पत्नी के साथ व्यवहार करता है; पर एक चौथा पति अपनी पत्नी को खाना पकाने और बच्चा उत्पन्न करने वाली मात्र समझकर यार-दोस्तों को लेकर ही मौज उड़ाता है तो एक दुराचारी, पत्नी को मारने-पीटने वाला पाँचवाँ पति क्या मालूम किस यंत्रबल से रातोंरात 'अच्छा पति' बन जाता है; एक पति को काली बीवी का गम है तो दूसरा पति घर पर अति सुंदर पत्नी को रोता छोड़कर क्लब व पार्टियों में दूसरों की बहू-बेटियों के साथ प्रेम का नाटक खेलता फिरता है; एक पति अपनी पत्नी के प्यार में जीता है, तो दूसरा पति उसी के प्यार के लिए तरसकर मरता है। इसी क्रम से इस पुस्तक के सभी पृष्ठों को भरा जा सकता है, फिर भी पतियों की जटिलता अधिकाधिक बढ़ती ही जाएगी। इस जटिलता के सागर में डुबकी लगाने का साहस 'शायद' कम लोग ही पसंद करेंगे।

केवल इस एक उदाहरण से यह स्पष्ट है कि सामाजिक संबंध व घटनाएँ अति जटिल हैं। प्रत्येक मानव-व्यवहार या संबंध अनेक प्रकार के भौतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक आदि कारकों द्वारा निर्धारित एवं प्रभावित होता है। अत: किस कारक का कितना प्रभाव है, यह जानना अत्यंत कठिन है। ये कारक केवल अनेक ही नहीं हैं, अपितु इनमें परिवर्तनशीलता भी है—क्या मालूम कौन सी चीज़ उस दुराचारी पति को खटक गई कि वह दुराचारी से एकाएक अच्छा पति बन गया। इतना ही नहीं, यदि किसी सामाजिक संबंध या व्यवहार की सभी शक्तियों या कारकों को मालूम भी कर लिया जाए तो भी उसके सापेक्ष (relative) प्रभाव अथवा महत्त्व को निर्धारित करना अत्यंत कठिन है।

परंतु इन कठिनाइयों का तात्पर्य यह नहीं है कि इन जटिलताओं के बीच वैज्ञानिक पद्धति को उचित स्थान दिया ही नहीं जा सकता। इन जटिलताओं की दुनिया में भी सत्य का अन्वेषण संभव है। ऐसी आशा श्री लुंडबर्ग (Lundberg) ने निम्नलिखित आधारों पर व्यक्त की है—

(क) यह सच है कि सामाजिक घटनाएँ जटिल हैं। किसी भी सामाजिक समूह की व्यवहार संबंधी इन समस्त जटिलताओं के बीच भी कुछ प्रतिमानों (patterns), अनुक्रमों (sequences) तथा व्यवस्था (order) को देखा जा सकता है। उसका व्यवहार ऊपरी तौर पर जटिल अवश्य है, पर इस जटिलता का अर्थ अव्यवस्था, आकस्मिकता व अनिश्चितता नहीं है कि उसके संबंध में कोई भविष्यवाणी संभव ही न हो। इसके विपरीत अगर ध्यान से देखा जाए तो हम यही पाएँगे कि सामाजिक मनुष्य व समूह के व्यवहार में भी नियमितता, व्यवस्था, क्रमबद्धता और समरूपता का नितांत अभाव नहीं है। इसीलिए एक निश्चित अवस्था के अंतर्गत उसका व्यवहार किस प्रकार का होगा इसका वैज्ञानिक अध्ययन करना और उसके संबंध में बहुत-कुछ निश्चित भविष्यवाणी करना हमारे लिए संभव है।

नोट

हम यह बता सकते हैं कि अमुक समय पर एक अमुक व्यक्ति अमुक निश्चित कार्यों को करेगा—वह आधी रात को उठकर नहीं, सोने जाने से पहले रात्रि के प्रथम पहर में भोजन करेगा; दिन में नहीं (या बहुत कम), रात में सोएगा; दोपहर को नहीं, सुबह पूजा-पाठ करेगा; कम-से-कम अपने निकट के रक्त-संबंधियों को छोड़कर विवाह-संबंध स्थापित करेगा, इत्यादि। इस प्रकार का अवलोकन सामाजिक समूहों के संबंध में भी किया जा सकता है जो कि किन्हीं निर्दिष्ट अवस्थाओं में (under given conditions) कुछ निश्चित प्रकार के व्यवहारों को करते हैं। अत: सामाजिक घटनाएँ या सामाजिक समूहों का व्यवहार अव्यवस्थित, जटिल तथा अर्थहीन केवल उनके लिए है जो कि घटनाओं का अवलोकन केवल ऊपरी तौर पर करते हैं। जितना अधिक हम उसका अध्ययन करते हैं और उसकी गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं उतना ही वह व्यवस्थित, नियमित तथा भविष्यवाणी करने योग्य बन जाता है।

(ख) श्री लुंडबर्ग (Lundberg) ने आगे और लिखा है कि अधिकाधिक गहन अध्ययन से सामाजिक व्यवहार की निराशाजनक जटिलता व अव्यवस्था स्वत: ही गायब हो जाती है। यह तथ्य जटिलता की वास्तविक प्रकृति का भी स्पष्टीकरण करता है। आपके शब्दों में, "कोई भी परिस्थिति या व्यवहार की घटना तब जटिल होती है जब हम उसे समझते नहीं हैं। जटिलता सदैव सापेक्षिक (relative) है: एक व्यवहार-विषय के संबंध में हमारी जानकारी अथवा पूर्ण नियंत्रण (mastery) के संदर्भ में। .... दूसरे शब्दों में, मानव-समाज की जटिलता अधिकांशत: उसके संबंध में हमारी अज्ञानता का ही परिणाम है।" एक रेडियो के कलपुर्जे (Machinery) हमारे लिए अत्यधिक जटिल हो सकते हैं क्योंकि उसके संबंध में हम कुछ नहीं जानते, पर एक रेडियो मैकेनिक के लिए वही कल-पुर्जे बिल्कुल जटिल नहीं हैं क्योंकि उनके विषय में उसे पूर्ण जानकारी है। यह बात सामाजिक घटनाओं की जटिलता के संबंध में कही जा सकती है। इसीलिए जटिलता की समस्या को सुलझाने के लिए वैज्ञानिकों ने दो तरीकों को अपनाया है—प्रथम तो परिस्थिति का सरलीकरण और द्वितीय अधिक-संख्या तथ्यों का अध्ययन करने के लिए आवश्यक प्रविधियों का विकास। किसी विज्ञान की परिपक्वता (maturity) का नाप इस आधार पर किया जाता है कि उपर्युक्त किसी एक या दोनों तरीकों को अपनाने में उसे कितनी सफलता मिली है। भौतिक विज्ञान ने जो अभूतपूर्व प्रगति की है उसका रहस्य यह है कि भौतिकशास्त्री अनेक छोटी-छोटी, पर परस्पर संबद्ध समस्याओं का अध्ययन कर संतुष्ट रहे हैं, जबकि समाज-वैज्ञानिक सीमित समस्याओं का विस्तृत अध्ययन इतिहास की दर्शनशास्त्रीय पद्धति द्वारा करने के प्रलोभन से अपने को अब भी पूर्णतया विमुक्त नहीं कर पाए हैं।

24.2 सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता व अमूर्तता (Subjectivity and Intangibility of Social Phenomena)

भौतिक तथा सामाजिक घटनाओं या तथ्यों के बीच पाए जाने वाले जिस अंतर का सर्वाधिक उल्लेख किया जाता है वह यह है कि भौतिक घटनाओं का अवलोकन हम प्रत्यक्ष रूप से अपनी इंद्रियों (senses) के द्वारा कर सकते हैं जबकि अनेक सामाजिक घटनाओं का इस प्रकार प्रत्यक्ष निरीक्षण संभव नहीं है क्योंकि वे अमूर्त होते हैं। उदाहरणार्थ, संपूर्ण सामाजिक संबंधों को ही लीजिए। सामाजिक संबंध अमूर्त होते हैं। उन्हें हम देख या छू नहीं सकते। उन्हें चखकर या सूँघकर समझा नहीं जा सकता। मानवीय भावनाएँ, विचार, आदर्श मूल्य, प्रथा, परंपराएँ, पक्षपात, प्रेम, स्नेह—ये सब व्यक्तिनिष्ठ (subjective) व अमूर्त (intangible) हैं, इस कारण उन्हें शब्दों के माध्यम से केवल प्रतीकात्मक रूप से (symbolically) ही समझा जा सकता है। इस प्रतीकात्मकता व अमूर्तता का परिणाम यह होता है कि सामाजिक घटनाओं का कोई निश्चित वस्तुनिष्ठ (objective) स्वरूप नहीं होता जिसके कारण सामाजिक घटनाओं का दर्शन लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से करते हैं और इसीलिए उसमें वह वस्तुनिष्ठता अथवा तटस्थता पनप नहीं पाती है जो कि एक वैज्ञानिक अध्ययन के लिए परमावश्यक है।

सामाजिक घटनाओं का अध्ययन किसी-न-किसी रूप में स्वयं व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों का ही अध्ययन होता है। इसके कारण भी हमारे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता पनप नहीं पाती है। यदि हम किसी जीव-जंतु का या पेड़-पौधे

नोट

का या रसायन पदार्थ का या नक्षत्र का अध्ययन कर रहे हैं तो इनसे हमारा अपना कोई लगाव नहीं होता है और न ही इनके प्रति हमारे मन में कोई पक्षपात, द्वेष, पूर्वधारणा या घृणा की भावना होती है क्योंकि ये जीव-जंतु, पेड़-पौधे हमारे 'अपने' या 'पराए' नहीं हैं। इसीलिए इनका अध्ययन करते हुए हम तटस्थता (neutrality), अलगाव (detachment) और निष्पक्षता को बनाए रखने में सफल होते हैं और हमारा अध्ययन वस्तुनिष्ठ (Objective) होता है। इसके विपरीत जब हम सामाजिक घटना के रूप में मनुष्यों के व्यवहारों का अध्ययन करते हैं तो वह मनुष्य या तो हमारे 'अपने' हैं या 'पराए'–यदि 'अपने' हैं तो उनके प्रति हमारा लगाव स्वाभाविक है और यदि 'पराए' हैं तो उनके प्रति पक्षपात, द्वेष, घृणा या केवल नापसंदी की भावना हो सकती है। अपनी ही प्रथा, परंपरा, आदर्श मूल्य, धर्म या परिवार-संगठन को उत्तम या श्रेष्ठ मान लेने की गलती कर बैठने की संभावना रहती ही है। अन्य लोगों के प्रति हमारा मनोभाव विपरीत होना भी स्वाभाविक है। इन समस्त परिस्थितियों में वैज्ञानिक अध्ययन संभव होते हुए भी यथार्थ नहीं होता है। श्री चार्ल्स वियर्ड ने लिखा है कि सामाजिक वैज्ञानिक कभी भी अपने सामाजिक संसार में तटस्थ नहीं रह सकता क्योंकि समाजशास्त्री समाज की प्रथाओं, परंपराओं, धर्म, परिवार, संस्थाओं, मूल्यों आदि का अध्ययन करता है और स्वयं इन सबमें भाग भी लेता है और इसीलिए इन सबको अपने स्वयं के दृष्टिकोण से देखने या समझने का प्रयत्न करता है।

ये आपत्तियाँ कुछ सीमा तक सच हैं, पर उस सच्चाई का यह अर्थ नहीं है कि सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता व अमूर्तता वैज्ञानिक अध्ययन में एक अभेद्य बाधा है। यदि इन आपत्तियों को पूर्णतया सच मान लिया जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि चूँकि भौतिक घटनाएँ वैषयिक व मूर्त होती हैं जबकि सामाजिक घटनाएँ व्यक्तिनिष्ठ व अमूर्त होती हैं; इसीलिए इन दोनों प्रकार की घटनाओं के अध्ययन के लिए भिन्न-भिन्न पद्धतियों की आवश्यकता है। पर मनोवैज्ञानिक अनुसंधान से यह पता चलता है कि सामाजिक या भौतिक घटनाओं के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने का तरीका अलग-अलग नहीं है। उदाहरणार्थ, दोनों ही प्रकार की घटनाओं के संबंध में ज्ञान हमें भाषा के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

श्री लुंडबर्ग के अनुसार, इस संबंध में स्मरणीय बात यह है कि प्रथा, परंपरा, विचार, अनुभव आदि सभी एक-न-एक प्रकार के निरीक्षण-योग्य मानवीय व्यवहार (observable human behaviour) ही हैं और अन्य किसी भी प्रकार के व्यवहार की भाँति इनका भी उसी सामान्य पद्धति द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। यह सच है कि विभिन्न प्रकार के व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रविधियों (Techniques) तथा उपकरणों (instruments) का प्रयोग करना ही होगा। उदाहरणार्थ, कुछ व्यवहारों को हम प्रत्यक्षत: आँखों से देखते हैं, कुछ को हम अनुवीक्षण-यंत्र आदि की सहायता से देखते हैं और कुछ व्यवहारों को थर्मामीटर के माध्यम से या मस्तिष्क की लहरों (brain-waves) को दर्शाने वाली मशीन के माध्यम से देखते हैं। इन समस्त निरीक्षणों के परिणामों को विशेष शब्दों द्वारा अभिव्यक्त व संचारित किया जाता है। यही नियम सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में भी लागू होता है।

इस संबंध में कुछ लोग यह संदेह प्रकट करते हैं कि क्या स्वयं अपने का ही अवलोकन (जैसा कि समाजशास्त्री करता है) वैज्ञानिक तथ्य के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है? इसका उत्तर 'हाँ' में ही होगा यदि निरीक्षणकर्ता अपने निरीक्षण के परिणामों को इस रूप में या ऐसी भाषा में अभिव्यक्त व संचारित करता है जिसकी जाँच संभव है। यही कारण है कि जब डॉक्टर थर्मामीटर की सहायता से स्वयं अपना ही बुखार (जो कि आवश्यक रूप में एक व्यक्तिनिष्ठ व अमूर्त घटना है) नापकर कहता है तो उसके उस कथन पर कोई संदेह नहीं करता है क्योंकि उसकी पुन: परीक्षा संभव है। यदि समाजशास्त्री भी ऐसा कर सकें तो उनका भी हर निरीक्षण वैज्ञानिक तथ्य बन सकता है, चाहे अध्ययन-विषय प्रथा, परंपरा, आदर्श, मूल्य, धर्म या उनके अपने ही आंतरिक विचार या भावनाएँ क्यों न हों? श्री लुंडबर्ग ने सच ही कहा है कि जब हम 'व्यक्तिनिष्ठ' (subjective) घटनाओं के निरीक्षण व अभिव्यक्त करने की प्रविधियों (Techniques) को इस भाँति विकसित कर लेते हैं कि निरीक्षणों के परिणामों का संचारण और पुन: परीक्षा-द्वारा-पुष्टिकरण संभव है तो वे सभी परिणाम अन्य किसी भी प्रकार के तथ्यों की भाँति वैज्ञानिक अध्ययन की उचित सामग्री होते हैं।

नोट

> नोट्स 'वस्तुनिष्ठ' या 'व्यक्तिनिष्ठ' ये शब्द दो विभिन्न प्रकार की घटनाओं के आंतरिक गुणों की ओर संकेत नहीं करते, अपितु यह बताते हैं कि हम किस स्तर तक अपने निरीक्षण के परिणामों को अभिव्यक्त करने के लिए परीक्षण-योग्य साधनों को विकसित कर पाए हैं।

उचित प्रविधियों के अभाव में जो घटना आज तक व्यक्तिनिष्ठ थी, कल को वही घटना सही प्रविधि के विकसित होने से वस्तुनिष्ठ बन सकती है। उदाहरणार्थ, थर्मामीटर के आविष्कार होने से पहले ज्वर-ताप को डॉक्टर कम, ज्यादा या बहुत ज्यादा जैसे गुणात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा अभिव्यक्त करते थे और उस अवस्था में ज्वर-ताप (temperature) एक व्यक्तिनिष्ठ (subjective) घटना थी, पर ज्वर-ताप नापने और उसे संख्यात्मक रूप में अभिव्यक्त करने का यंत्र थर्मामीटर का आविष्कार होते ही वह ज्वर-ताप जो तब एक व्यक्तिनिष्ठ था अब एक वस्तुनिष्ठ (objective) घटना बन गई है।

अत: हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र के तथ्यों तथा भौतिक विज्ञानों के तथ्यों में पाए जाने वाले अंतर स्पष्ट होते हुए भी वास्तविक नहीं है। हम समाजशास्त्र की तुलना में भौतिक विज्ञान के तथ्यों को अधिक प्रत्यक्ष व वस्तुनिष्ठ रूप में इसीलिए नहीं जानते हैं कि इनमें कोई अंतर्निहित भेद है, अपितु इसीलिए जानते हैं कि प्राकृतिक विज्ञान की प्रविधियाँ अधिक उन्नत हैं। श्री लुंडबर्ग (Lundberg) के शब्दों में, "स्वयं तथ्यों में पाए जाने वाले कोई आंतरिक भेद नहीं, अपितु हमारे अध्ययन की अविकसित प्रविधि (technique) व पद्धतिशास्त्र (methodology) और उसके कारण तथ्यों से हमारी अपरिचितता वास्तव में वे कठिनाइयाँ हैं जो कि समाज के एक यथार्थ विज्ञान की संभावना को रोकती हैं।"

24.3 सामाजिक घटनाओं की गुणात्मकता (Qualitativeness of Social Phenomena)

भौतिक घटनाओं तथा सामाजिक घटनाओं के बीच एक और अंतर, जिसका कि उल्लेख अत्यधिक किया जाता है, यह है कि भौतिक घटनाएँ परिमाणात्मक (quantitative) होती हैं जबकि सामाजिक घटनाएँ गुणात्मक (qualitative)। घटनाओं की गुणात्मकता वैज्ञानिक अध्ययन के पथ पर एक बाधा बन जाती है क्योंकि भौतिक या प्राकृतिक घटनाओं की भाँति सामाजिक घटनाओं को परिमाणात्मक रूप से नापा नहीं जा सकता। नाप, तौल या घटनाओं की गणनात्मक अभिव्यक्ति अनुभवाश्रित (empirical) अध्ययन के लिए परमावश्यक है। हम सहयोग, संघर्ष, संस्कृतीकरण, धार्मिक द्वेष, पक्षपात आदि की बातें कर सकते हैं, लेकिन परिमाणात्मक रूप से उन्हें नाप नहीं सकते। इसी प्रकार समाजशास्त्री को मूल्य, आदर्श, परंपरा, विचार, मनोभाव आदि गुणात्मक विषयों का अध्ययन करना पड़ता है और उनका परिमाणात्मक नाप संभव नहीं होता है। उदाहरणार्थ, पति-पत्नी में पाए जाने वाले सहयोग व प्रेम-भाव का, दो दोस्तों के बीच पाई जाने वाली घनिष्ठता व आंतरिकता का अथवा दो विरोधी दलों के बीच में तनावपूर्ण संबंधों का विवरणात्मक विवरण प्रस्तुत कर सकते हैं, पर उनको परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत करना हमारे लिए कठिन होता है। गुणात्मक घटनाओं की एक बहुत बड़ी कमी यह है कि उन्हें प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी दृष्टिकोण से देखता है और समझता है। यदि हम यह कहते हैं कि हमारे मकान का क्षेत्र (area) 'बड़ा' है तो इससे एक व्यक्ति मकान के क्षेत्र के विषय में जो 'अनुमान' लगाएगा वह दूसरे व्यक्ति के अनुमान से बिल्कुल भिन्न हो सकता है और तीसरे व्यक्ति का अनुमान इन दोनों व्यक्तियों से निराला हो सकता है। अतएव वास्तविकता का पता लगाना मुश्किल हो जाता है।

> नोट्स यद्यपि अनेक कठिनाई का सामना समाजशास्त्री को करना पड़ता है फिर भी इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है।

वास्तविकता तो यह है कि परिमाणात्मक और गुणात्मक तथ्यों के बीच का अंतर अवैज्ञानिक है। यह भेद वास्तव में अध्ययन की प्रविधियों में होने वाली या न होने वाली उन्नति का ही द्योतक है। यदि प्रविधियाँ उन्नत स्तर की नहीं हैं तो हमारे लिए घटनाओं का गुणात्मक वर्णन करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं होता, पर यदि प्रविधियाँ उन्नतशील हैं तो उन्हीं घटनाओं का गणनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना हमारे लिए संभव हो जाता है। अत: कमी स्वयं घटनाओं की नहीं, प्रविधियों (techniques) की होती है। इस प्रकार यदि हम किसी घटना का वर्णन 'गर्म', 'ठंडा', 'लाल', 'पीला' आदि शब्दों का प्रयोग करके करें तो इनका अर्थ विभिन्न लोगों के लिए अलग-अलग होगा। पर वैज्ञानिक वर्णन की एक परमावश्यक यह शर्त है कि जो कुछ भी कहा जाए उसका सबके लिए ही एक अर्थ हो–इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही विभिन्न प्रविधियों को विकसित करने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। इसीलिए 'गर्म' या 'ठंडे' को थर्मामीटर के पैमाने की सहायता से तथा 'लाल' या 'पीले' को रोशनी की लहरों (light waves) द्वारा अभिव्यक्त करने की व्यवस्था की गई है। इसी प्रकार सामाजिक मनोवृत्ति (social attitude) आदि गुणात्मक घटनाओं का नाप करने के लिए समाजशास्त्री विभिन्न प्रकार के पैमानों (Scales) का प्रयोग आज करते हैं। इससे यह प्रमाणित हो गया है कि उचित प्रविधियों के उपलब्ध होने से गुणात्मक घटनाओं की भी परिमाणात्मक व्याख्या संभव है। वैसे भी वैज्ञानिक व्याख्या कितनी ही परिमाणात्मक (quantitative) क्यों न हो, उसमें गुणात्मक (qualitative) तत्व किसी-न-किसी रूप में अवश्य होगा। श्री मिटशेल (Mitchell) ने लिखा है कि "अत्यधिक संख्यात्मक (परिमाणात्मक) दृष्टिकोण वाले वैज्ञानिक की कृति में भी गुणात्मक विश्लेषण का अपना एक स्थान होगा। हमारे विचारों का क्षेत्र सदा ही हमारे नापतौलों से अधिक विस्तृत होगा; पूर्व धारणाएँ (pre-conceptions), जो कि हमारे लक्ष्यों को, नई समस्याओं के संबंध में हमारी पहली झलक को, हमारे विस्तृत निष्कर्षीकरण या सामान्यीकरण (generalisation) को आकार प्रदान करती है: वे सदैव गुणात्मक ही होंगी। वास्तव में, हम जैसे-जैसे अधिक विस्तृत यथार्थ और निर्भरयोग्य नापों का प्रयोग करेंगे वैसे-वैसे गुणात्मक कृति (qualitative work) को स्वयं बल, क्षेत्र तथा रुचि प्राप्त होगी।" पर इस कथन का तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि गुणात्मकता विज्ञान का कोई प्रशंसनीय गुण है। इसके विपरीत विज्ञान की यथार्थता इस बात पर निर्भर करती है कि वह अध्ययन-वस्तु को कितना अधिक परिमाणात्मक (qualitative) रूप में समझा सकता है। पर साथ ही यह भी स्मरणीय है कि विशेषकर नए विज्ञानों में गुणात्मकता या गुणात्मक दृष्टिकोण का पाया जाना स्वाभाविक ही है और इसलिए यह कोई आलोचना का विषय नहीं हो सकता। आलोचना तो तब उचित है जब वैज्ञानिक यह मान बैठता है कि गुणात्मक पद्धति ही उसके अध्ययन की एकमात्र पद्धति है और इसलिए उसका गुणात्मक वर्णन ही एकमात्र संभावित वर्णन है। उसे तो गुणात्मक पद्धति व गुणात्मक वर्णन से गणनात्मक प्रविधि एवं गणनात्मक वर्णन की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते जाने का प्रयत्न करना चाहिए। उसके विज्ञान की अधिकाधिक प्रगति उसकी इस जागरूकता व प्रयत्नशीलता पर ही निर्भर होगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. वास्तविकता तो यह है कि परिमाणात्मक और गुणात्मक .... के बीच का अंतर अवैज्ञानिक है।
2. इस प्रकार हम किसी .... का वर्णन, गर्म, ठंडा, लाल, पीला आदि शब्दों का प्रयोग करके करें तो अर्थ भी भिन्न-भिन्न होगा।
3. वास्तव में जैसे-जैसे अधिक विस्तृत यथार्थ और निर्भर योग्य .... का प्रयोग करेंगे वैसे-वैसे गुणात्मक कृति को स्वयं बल, क्षेत्र तथा रुचि प्राप्त होगी।

24.4 समरूपता का अभाव (Lack of Homogeneity)

सामाजिक घटनाओं की एक और विशेषता यह है कि कोई भी दो इकाइयाँ समान नहीं होतीं। इस समरूपता के अभाव

नोट

के कारण भी वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग यथार्थ रूप में नहीं हो पाता है। पर समाज का गहन अध्ययन करने वाले समाजशास्त्री यह स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि समाज में समानताएँ और भिन्नताएँ दोनों ही निहित हैं (Society involves both likenesses and differences)। समाज के निर्माण व व्यवस्था के लिए समानता का होना परमावश्यक है क्योंकि समानता के आधार पर ही सामाजिक संबंध पनपता है और सामाजिक संबंधों से ही समाज का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ, राम और श्याम का आपसी संबंध बहुत ही घनिष्ठ है, तो यह भी निश्चित है कि इन दोनों में किसी-न-किसी बात में अत्यधिक समानता है और उसी समानता के आधार पर उन दोनों की मित्रता इतनी गहरी है। हो सकता है कि दोनों ही अच्छे खिलाड़ी हों या सिनेमा के अत्यधिक शौकीन हों या दोनों ही जुआरी या शराबी हों। यह हो नहीं सकता कि किसी भी समानता के बिना ही उनमें घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया हो। जो बात राम और श्याम के लिए सच है, वही बात सामाजिक घटनाओं के किसी भी वर्ग के लिए सच होगी। सतर्क अध्ययन करने पर एक विशेष प्रकार की सामाजिक घटनाओं की विभिन्न इकाइयों में पाई जाने वाली समानता को ढूँढ़ा जा सकता है। सर्वश्री मैकाइवर और पेज (MacIver and Page) ने लिखा है कि "यदि हम 'एक विश्व' (One world) की कल्पना को सत्य या वास्तविक रूप देना चाहते हैं तो उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की है कि हम समग्र मानव-जाति की मौलिक समानता को स्वीकार कर लें।

साथ ही, सामाजिक जीवन में पाई जाने वाली विभिन्नताएँ भी कोई दोष नहीं है। यदि मानव-समाज में केवल समानता ही पाई जाती तो हम लोगों का सामाजिक जीवन भी उतना ही सीमित व संकुचित हो जाता जितना कि चींटियों और मधुमक्खियों का जीवन है। हम एक ऐसे समाज की कल्पना नहीं कर सकते जिसमें कि केवल स्त्रियाँ या पुरुष हों अथवा जिसमें कि सब लोग केवल किसान हों या सब लोग मज़दूर हों या सब लोग केवल ज़ज या केवल इंजीनियर या केवल शिक्षक हों। अत: सामाजिक घटनाओं की समरूपता या असमरूपता के चक्कर में न पड़कर सामाजिक वैज्ञानिकों को ऐसी उन्नतशील प्रविधियों को खोज निकालने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि सामाजिक जीवन में अंतर्निहित समानता व असमानता दोनों का ही वैज्ञानिक अध्ययन संभव हो सके।

यह तर्क भी गलत है कि भौतिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन अधिक यथार्थ इसलिए होता है क्योंकि भौतिक घटनाओं में समरूपता होती है। पूर्ण समरूपता की कल्पना ही अवास्तविक है। यहाँ तक कि मशीनों द्वारा बनी चीजों में भी पूर्ण समरूपता असंभव है।

अत: समरूपता का अभाव स्वाभाविक है और किसी भी विज्ञान में इसका होना उसकी वैज्ञानिक प्रकृति के प्रतिकूल नहीं है। इस अर्थ में समाजशास्त्र की समस्या अन्य किसी भी विज्ञान की समस्या से भिन्न नहीं है। क्या समरूपता के अभाव की समस्या का सामना एक डॉक्टर को भी करना नहीं पड़ता? उसके कोई भी दो मरीज सर्वप्रकार से बिल्कुल समान नहीं होते। फिर भी वास्तविक निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर डॉक्टर उनका इलाज वैज्ञानिक ढंग से करता ही है और दवाओं के प्रति मरीज की प्रतिक्रिया को देखकर इलाज को बदलता भी है। इस पर भी कोई यह नहीं कहता कि डॉक्टर एक वैज्ञानिक नहीं है और वह वैज्ञानिक विधि को अपना नहीं रहा है। तो फिर उस आधार पर कि सामाजिक घटनाओं में समरूपता का अभाव है केवल समाजशास्त्री को या उसकी अध्ययन पद्धति को अवैज्ञानिक क्यों कहा जाए?

क्या आप जानते हैं प्रसिद्ध व्यवसायी श्री हेनरी फोर्ड (Henry Ford) ने अपनी आत्मकथा में इस सत्यता को अति रोचक ढंग से प्रमाणित किया है। उन्होंने लिखा है, "फोर्ड कंपनी से निकलने वाली दो मोटरकारें एक-दूसरे के बिल्कुल समान होती हैं: यहाँ तक कि एक कार का कोई भी पुर्जा दूसरी में लगाया जा सकता है, परंतु यदि कोई थोड़े दिन भी उसको चलावे तो तुरंत समझ जाएगा कि कोई भी दो कारें एक-दूसरे के बिल्कुल समान नहीं हैं; उनकी प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं और कोई भी चालक आँख मूँदकर उनका अंतर बता सकता है।"

24.5 सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव (Lack of Universality in Social Phenomena)

कहा जाता है कि वैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से सामाजिक घटनाओं की एक और कमी यह है कि उनमें सार्वभौमिकता का अभाव है, जबकि सार्वभौमिकता भौतिक घटनाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता है। उदाहरणार्थ, आग में जलाने की शक्ति सार्वभौम है, पानी की सड़ा देने की शक्ति और धूप की सुखा देने की शक्ति सार्वभौम है। पर यह गुण सामाजिक घटनाओं में देखने को नहीं मिलता है। उदाहरणार्थ, विद्यार्थी में अनुशासित व्यवहार करने का गुण या पत्नी में पतिव्रता का गुण अथवा बच्चों में आज्ञाकारिता का गुण सार्वभौम नहीं है। एक डकैत निर्दयी ही होगा ऐसी बात नहीं वह दयालु भी हो सकता है। एक राजा रक्षक ही होगा इसकी कोई निश्चितता नहीं है, वह उत्तम श्रेणी का भक्षक भी हो सकता है। इसका परिणाम यह होता है कि समाजशास्त्री सामाजिक व्यवहार के संबंध में जो भी निष्कर्ष निकालता है वह यथार्थ नहीं हो पाता है अथवा एक समाज के संबंध में जो ठीक होता है वह दूसरे समाज के संबंध में गलत साबित होता है। दूसरे शब्दों में, उसके द्वारा प्रतिपादित नियम उस तरह सार्वभौमिक सत्य नहीं होते जैसे प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों में होते हैं।

उपर्युक्त आरोप लगाने वाले विद्वान शायद वैज्ञानिक नियम का गलत अर्थ लगाते हैं। वैज्ञानिक नियम वह नियम नहीं है जो कि सभी अवस्था में और सभी स्थानों में समान रूप से लागू होगा ही। इस प्रकार सार्वभौम व अंतिम (absolute) वैज्ञानिक नियम की कल्पना शायद ही की जा सकती है। वैज्ञानिक नियम सदैव कुछ निर्दिष्ट अवस्थाओं में (under certain given conditions) ही लागू होता है। इस विषय में अध्याय के आरंभ में ही विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं।

24.6 सामाजिक घटनाओं की गतिशील प्रकृति (Dynamic Nature of Social Phenomena)

सामाजिक घटनाओं की एक और उल्लेखनीय विशेषता या कमी यह है कि इनमें अत्यधिक परिवर्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है। मनुष्य या मानव-समूह के व्यवहार में तथा सामाजिक परिस्थितियों में, विशेषकर आधुनिक गतिशील समाजों में परिवर्तन अत्यधिक तेजी से होता रहता है। सामाजिक घटनाओं की इस अस्थिरता के कारण इनके विषय में कोई निश्चित निरीक्षण-परीक्षण करना अथवा निष्कर्ष निकालना यदि असंभव नहीं हो तो अत्यधिक कठिन अवश्य ही होता है। आज जिस समूह के बारे में अध्ययन किया गया वह समूह अपनी उन्हीं विशेषताओं के साथ कुछ दिन बाद भी वैसा बना रहेगा इसकी कोई निश्चितता नहीं होती। यही बात व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में भी कही जा सकती है। मानव अपने अनुभव, शिक्षा-प्रशिक्षण आदि से बराबर सीखता रहता है और उसी के साथ-साथ उसके व्यवहार-प्रतिमान (behaviour pattern) में परिवर्तन होता रहता है। इतना ही नहीं, कोई आकस्मिक घटना व्यक्ति और समाज दोनों की ही जीवन-व्यवस्था को रातोंरात बिल्कुल पलट सकती है। उदाहरणार्थ, पंद्रह-बीस कप चाय रोज पीने वाला एक प्रख्यात पुलिस अफसर अयोध्याजी दौरे पर जाता है, अकस्मात एक पंडा अयोध्याजी आकर कुछ चीज भगवान के नाम पर छोड़ने की परंपरा की याद दिलाता है और पुलिस अफसर जाने-पहचाने सब आत्म-परिजन, बंधु-बांधव, यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी आश्चर्यचकित करने वाला निर्णय ले लेता है—चाय छोड़ देता है। सब लोग यह सोचते थे कि उस पुलिस अफसर के लिए दुनिया को छोड़ना संभव है, पर चाय को नहीं, वही सब लोग अब उसके विषय में सोचते हैं कि जो चाय छोड़ सकता है वह सब-कुछ छोड़ सकता है—मानव-मस्तिष्क का क्या ठिकाना! इसीलिए अब उस पुलिस अफसर के 'अपने लोगों' का उनसे विनम्र निवेदन यही है कि वे और कहीं दौरे पर जाएँ पर अयोध्याजी न जाएँ—क्या मालूम दोबारा वहाँ जाने पर किसे त्याग आएँ। यही बात मानव-समाज के बारे में भी सच है। अब तक जो समाज एक हँसता-खेलता संगठित समाज है, रातोंरात बाढ़ या भूकंप का शिकार बन वही समाज एक हृदय-स्पर्शी विघटित समाज के रूप में बदल सकता है। इस प्रकार की परिवर्तनशीलता के फलस्वरूप वैज्ञानिक अध्ययन का कार्य कठिन हो जाता है।

नोट

ऊपरी तौर पर इस तर्क में पर्याप्त बल मालूम पड़ता है। पर परिवर्तनशीलता का गुण तो भौतिक और प्राकृतिक घटनाओं में भी देखने को मिलता है। पर परिवर्तनशीलता का तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि सामाजिक घटनाएँ अव्यवस्थित, आकस्मिक और अनियमित रूप में घटित होती रहती हैं। सभ्य समाजों की बात तो दूर रही जंगली समाज में भी इस प्रकार की स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। थोड़ा-सा सतर्क निरीक्षण करने पर यह स्पष्टत: पता चलता है कि परिवर्तनशीलता के बीच भी सामाजिक घटनाओं में निश्चितता, क्रमबद्धता व नियमितता होती है जिसके कारण इनका भी वैज्ञानिक अध्ययन उसी रूप में संभव है जिस रूप में कि प्राकृतिक या भौतिक घटनाओं का।

24.7 सामाजिक घटनाओं की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती (Unpredictability of Social Phenomena)

पूर्व-ज्ञान या भविष्य-दृष्टि विज्ञान की कसौटी है। वैज्ञानिक नियम हमें इस बात का ज्ञान करवाते हैं कि भविष्य की संभावित प्रक्रियाएँ किस प्रकार की होंगी। कहा जाता है कि सामाजिक घटनाओं की प्रकृति ही कुछ इस प्रकार की होती है कि इनके संबंध में भविष्यवाणी करना संभव नहीं होता। सामाजिक घटनाओं की जटिलता, अमूर्तता, व्यक्तिनिष्ठता, गुणात्मकता, असमरूपता और परिवर्तनशीलता ये सब ऐसी विशेषताएँ हैं जो कि भविष्यवाणी करने की शक्ति को अत्यधिक कम कर देती हैं। श्री जॉन ए० मैज (John A. Madge) ने लिखा है कि एक बात, जिस पर सर्वश्री कॉम्ट और स्पेंसर से लेकर वर्तमान समय के वैज्ञानिक तक सभी एकमत हैं, यह है कि भौतिक व प्राकृतिक घटनाओं की तुलना में मानवीय व्यवहार के संबंध में भविष्यवाणी करना कहीं अधिक कठिन है। सामाजिक घटनाओं की इस अनिश्चितता के दो विपरीत कारण बताए जाते हैं–(1) कुछ विद्वानों के मतानुसार मानवीय व्यवहार स्वयं अपने चारों ओर की परिस्थितियों से भी पूर्णतया प्रभावित नहीं होता; मानव में स्वयं सोचने-विचारने की शक्ति होती है। अत: वह किसी परिस्थिति विशेष में सदा एक-सा व्यवहार नहीं करता। (2) अन्य विद्वानों का मत यह है कि मानवीय व्यवहार स्वतंत्र न होकर विशिष्ट घटनाओं से प्रभावित होता है, पर ये घटनाएँ स्वयं ही इतनी विविध और जटिल होती हैं कि उनका प्रभाव मानवीय व्यवहार पर क्या और कितना होगा इस संबंध में कोई भी भविष्यवाणी करना असंभव ही होता है। यही कारण है कि मानवीय व्यवहार भी अनिश्चित एवं पूर्वकल्पना के अयोग्य बन जाता है। उसी प्रकार सामाजिक घटनाओं में भौतिक घटनाओं की अपेक्षा चूँकि तेजी से परिवर्तन होता रहता है, इस कारण भी उनके विषय में हमारी पूर्वकल्पना अनिश्चित ही रह जाती है।

मानवीय व्यवहारों के संबंध में आधुनिक समय में जो मनोवैज्ञानिक अध्ययन हुए हैं उनसे यह पता चलता है कि उपर्युक्त आरोप भी निराधार हैं। वास्तव में आरोप लगाने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जिन मानवीय व्यवहारों या तथ्यों को चुना जाता है वे व्यक्तिगत व्यवहार (Individual behaviour) नहीं हैं अपितु अधिकांश सामूहिक व्यवहार होते हैं और सामूहिक या समूह-व्यवहार (collective or group behaviour) में अनिश्चितता, परिवर्तनशीलता आदि की विशेषता इतनी अधिक नहीं होती कि उसके संबंध में हम कोई भविष्यवाणी कर ही नहीं सकते। साथ ही, हमें यह भी भूल नहीं जाना चाहिए कि भविष्यवाणी करने की शक्ति का तात्पर्य यह नहीं है कि विज्ञान जो कुछ भी पूर्व-कल्पना कर रहा है वह सदा के लिए और समस्त परिस्थितियों में ठीक ही होगी। ऐसी क्षमता भौतिक विज्ञान भी नहीं रखते। एक प्राकृतिक या भौतिक वैज्ञानिक यह निश्चित रूप से नहीं कह सकता है कि कब वर्षा होगी, कब भूकंप आएगा, कब तूफ़ान या ज्वार-भाटे का प्रकोप होगा अथवा बच्चा किस समय पैदा होगा, बच्चा लड़का होगा या लड़की अथवा रोग के आरंभ होते ही मरीज की परीक्षा कर डॉक्टर यह नहीं बता सकता कि वह मर ही जाएगा। जो कुछ वह कहता है वह सच हो सकता है, पर जो कुछ वह कहता है वह झूठ भी हो सकता है। अर्थात् उसकी भविष्यवाणी में या पूर्व-कल्पना में एक 'शायद' का तत्व (Element of probability) सदैव ही विद्यमान रहेगा और जो कुछ वह कहता है उसका ठीक या गलत होना कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। आज का पानी कल भी पानी रहेगा, यह भविष्यवाणी तब ही सही प्रमाणित होगी 'यदि'

कल अत्यधिक ठडंक या अत्यधिक गर्मी न हुई। अत्यधिक ठंड होने पर पानी फिर पानी न रहकर बर्फ हो जाएगा या अत्यधिक गर्मी होने पर भाप बनकर उड़ जाएगा।

क्या आप जानते हैं प्रत्येक विज्ञान की भविष्यवाणी में 'अन्य अवस्थाएँ यदि समान रहीं' (other conditions/things remaining the same) यह शर्त अनिवार्यतः होती है और होनी भी चाहिए।

वास्तविकता तो यह है कि भविष्यवाणी करने की शक्ति विज्ञान के अध्ययन वस्तु की प्रकृति पर नहीं अपितु इस बात पर निर्भर करती है कि वह विज्ञान घटनाओं का अध्ययन करने के लिए कितनी उन्नतशील प्रविधियों को विकसित करने में सफल हुआ है। अगर समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं के विषय में भौतिक विज्ञानों की तुलना में भविष्यवाणी करने की क्षमता कम रखता है तो उसका कारण स्वयं सामाजिक घटनाओं में अंतर्निहित कोई कमी नहीं है। वास्तव में उन्नतशील प्रविधियों की कमी इन त्रुटि-विच्युतियों के लिए अधिक उत्तरदायी है। पर इस ओर प्रयत्न जारी है और इसीलिए उज्ज्वल भविष्य की आशा स्वतः ही की जाती है। वह दिन बहुत दूर नहीं जबकि हम भी सामाजिक घटनाओं के संबंध में बहुत-कुछ निश्चित भविष्यवाणी कर सकेंगे। यह हमारी भविष्यवाणी है।

टास्क सामाजिक घटनाओं की भविष्यवाणी क्यों नहीं की जा सकती?

24.8 सारांश (Summary)

- सामाजिक शोध में पद्धतीय दुविधाओं के अनेक मुद्दे हैं, जैसे–सामाजिक घटनाओं की जटिलता, सामाजिक घटनाओं की व्यक्तिनिष्ठता एवं अमूर्तता, सामाजिक घटनाओं की गुणात्मकता, समरूपता का अभाव आदि।
- सामाजिक घटनाओं की प्रकृति के कारण इसमें भविष्यवाणी करना संभव नहीं होता। सामाजिक घटनाओं की जटिलता अमूर्तता, व्यक्तिनिष्ठता, गुणात्मकता आदि अनेक ऐसी विशेषताएँ हैं जो भविष्यवाणी करने की शक्ति को कम कर देती हैं।

24.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **व्यक्तिपरकता (Subjectivity)**–व्यक्ति या प्रयोज्य के आत्म चेतन परिप्रेक्ष्य या दृष्टिकोण को व्यक्तिपरकता या व्यक्तिनिष्ठता कहते हैं।
2. **समग्र (Universe)**–शोध की दृष्टि से, अध्ययन की इकाइयों के समुच्चय को समग्र कहते हैं।

24.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सामाजिक शोध में पद्धतीय दुविधा या कठिनाइयाँ क्या-क्या होती हैं? संक्षेप में बताएँ।
2. सामाजिक घटनाओं की जटिलता से आप क्या समझते हैं?

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. तथ्यों 2. घटना 3. नापों।

24.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें 1. शिक्षा का समाजशास्त्र—तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।

2. व्यावहारिक शोध की विधियाँ—डॉ. जय भगवान, फ्रेन्ड पब्लिकेशन (इंडिया)।

इकाई–25: गुणात्मक शोध में प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता (Validity and Reliability in Qualitative Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 विषय-वस्तु (Subject-Matter)

25.2 सारांश (Summary)

25.3 शब्दकोश (Keywords)

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- गुणात्मक शोध में प्रामाणिकता की स्थिति।
- गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता की स्थिति।

प्रस्तावना (Introduction)

कई बार हम पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर कुछ और कर देते हैं। वास्तव में हमें जो करना चाहिए, इससे शोध में अविश्वसनीयता आ जाती है। कई बार निरीक्षणकर्ता पक्षपातपूर्ण व्यवहार करने लगता है, इससे भी अध्ययन में विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की समस्या आने लगती है।

25.1 विषय-वस्तु (Subject-Matter)

गुणात्मक शोध जैसे निरीक्षण आदि में भी प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता की स्थिति बहुत सुदृढ़ नहीं होती क्योंकि सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के साथ ही यह समस्या जुड़ी रहती है–

1. **निरीक्षण योजना** (Observation Plan)–निरीक्षण को अधिक प्रामाणिक बनाने के लिए अनुसंधानकर्ता को निरीक्षण की योजना तैयार करने के बाद ही निरीक्षण-कार्य शुरू करना चाहिए। अनुसंधानकर्ता को अपनी इस निरीक्षण योजना में सारी बातें पहले से ही निश्चित कर लेनी चाहिए जैसे उसे किन-किन तथ्यों का निरीक्षण करना है एवं किस प्रकार। साथ ही, घटना को अनेक पहलुओं में विभाजित कर लेना चाहिये और उनका अध्ययन प्रयोग-सिद्ध पद्धतियों द्वारा समान रूप से किया जाना चाहिए। इस रूप में यदि निरीक्षण संपन्न किया जाए तो अवश्य ही निरीक्षण अधिक यथार्थ होगा।

2. **अनुसूची का प्रयोग** (Use of Schedules)–यदि निरीक्षणकर्ता निरीक्षण करते समय अनुसूची जैसे साधनों

नोट

की सहायता से निरीक्षण संपन्न करता है तो अवश्य ही निरीक्षण अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होगा। निरीक्षण कार्य के लिए अनुसूची, सामान्य अनुसूची से भिन्न होती है। इस अनुसूची में रिक्त तालिकाएँ होती हैं। निरीक्षणकर्ता उसमें सूचना भरता जाता है। इस अनुसूची में केवल इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि निरीक्षण की योजना इस प्रकार की हो कि वह संबंधित विषय पर पूर्ण सूचना प्राप्त करने में समर्थ हो। इसीलिए प्राप्त की जाने वाली सूचना का समुचित वर्गीकरण कर लिया जाता है और विभिन्न तालिकाएँ इस प्रकार बनाई जाती हैं कि सूचना दर्ज करने तथा बाद में उसका विवेचन करने में आसानी हो।

नोट्स जहाँ अनेक (एक से अधिक) कार्यकर्ता अनुसंधान कार्य में लगे हुए हों वहाँ पर निरीक्षण को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए अनुसूची का प्रयोग अत्यावश्यक है।

3. प्राक्कल्पना का निर्माण (Formulation of Hypothesis)—वास्तव में प्राक्कल्पना के निर्माण से भी विधिवत् निरीक्षण में सहायता मिलती है, क्योंकि इससे अनुसंधान विशिष्ट तथा केंद्रित हो जाता है। कार्यकर्ता इधर-उधर नहीं भटकता। यदि कभी निश्चित प्राक्कल्पना का निर्माण किसी कारणवश न भी हो सके तो एक निश्चित समस्या एवं निश्चित अध्ययन-क्षेत्र का चुनाव तो अवश्य ही कर लेना चाहिए क्योंकि इससे अध्ययन में निश्चितता (certainty) आ जाती है।

4. वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग (Use of Scientific Tools)—विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग से भी निरीक्षण अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक हो सकता है। फोटो फिल्म, टेपरिकार्ड, सिनेमा आदि अनेक यंत्र ऐसे हैं जिनका प्रयोग करने से व्यक्तिगत पूर्वाग्रह (Bias) आने की संभावना नहीं रहती है। साथ ही निरीक्षणकर्ता की गलती भी इससे मालूम हो सकती है।

क्या आप जानते हैं इसमें यह कमी है कि यदि लोगों को यह पता चल जाता है कि उनके व्यवहारों एवं कार्यों की फिल्म ली जा रही है तो वह अपने व्यवहार में कृत्रिमता ले आते हैं जिससे कि निष्कर्ष गलत भी हो सकते हैं।

5. समाजमितिक पैमानों का प्रयोग (Use of Socio-metric Scales)—सामाजिक अनुसंधान-कार्यों में अब समाजमितिक पैमानों का भी प्रयोग होने लगा है जिससे परिणामों में अधिक सत्यता एवं शुद्धता आने की संभावना रहती है। इन पैमानों द्वारा विभिन्न प्रकार के गुणात्मक सामाजिक तथ्यों की ठीक-ठीक माप बना ली गई है जिनसे कि निरीक्षण में निरीक्षणकर्ता का व्यक्तिगत पक्षपात नहीं आने पाता।

6. सामूहिक निरीक्षण (Mass Observation)—सामूहिक निरीक्षण द्वारा भी निरीक्षण के अधिकाधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होने की संभावना रहती है क्योंकि इसमें अनेक क्षेत्रों के विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण किया जाता है। अत: अधिक त्रुटियाँ हो नहीं पातीं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—

1. निरीक्षण को अधिक .... बनाने के लिए अनुसंधानकर्त्ता को निरीक्षण की योजना तैयार करने के बाद ही निरीक्षण कार्य शुरु करना चाहिए।

नोट

2. .... निरीक्षण करते समय अनुसूची जैसे साधनों की सहायता से निरीक्षण संपन्न करता है तो निरीक्षण आवश्य ही विश्वसनीए एवं प्रामाणिक होगा।
3. वास्तव में .... के निर्माण से भी विधिवत् निरीक्षण में सहायता मिलती है।

25.2 सारांश (Summary)

- गुणात्मक शोध में निरीक्षण की योजना बनाने के बाद ही निरीक्षण कार्य शुरू करना चाहिए।
- इसे विश्वसनीय बनाने के लिए समाजमिती पैमाने का प्रयोग किया जाना चाहिए।

25.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामूहिक अवलोकन (Mass observation)**–इसमें कई व्यक्तियों द्वारा एक ही घटना का साथ-साथ अध्ययन किया जाता है।

25.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. गुणात्मक शोध के अंतर्गत प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता की स्थिति स्पष्ट करें।
2. वैज्ञानिक उपकरण क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. प्रामाणिक
2. निरीक्षणकर्त्ता
3. प्राक्कल्पना।

25.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक सर्वेक्षण एवं शोध–वंदना वोहरा, राधा पब्लिकेशन।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

नोट

इकाई–26: पद्धति : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Methods : Meaning and Characteristics of Statistical Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
26.1 विषय-वस्तु : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Subject-Matter : Meaning and Characteristics of Statistical Method)
26.2 सारांश (Summary)
26.3 शब्दकोश (Keywords)
26.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
26.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- सांख्यिकीय पद्धति का समाजशास्त्र में प्रयोग।
- सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ।

प्रस्तावना (Introduction)

पद्धति का तात्पर्य उस प्रणाली से है जिसे कि एक वैज्ञानिक अपनी अध्ययन वस्तु के संबंध में तथ्ययुक्त (factual) निष्कर्ष निकालने के लिए उपयोग में लाता है। तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालने का कोई संक्षिप्त मार्ग (short-cut) नहीं है। इसके लिए निरीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, परीक्षण, तुलना तथा निष्कर्षीकरण के कठिन मार्ग को ही अपनाना पड़ता है। इन सबको मिलाकर जिस अध्ययन-प्रणाली की प्राप्ति होती है उसी को वैज्ञानिक पद्धति कहते हैं। यह प्रणाली अथवा पद्धति सभी विज्ञानों में एक सी होती है क्योंकि प्रत्येक विज्ञान को आधारभूत कार्य (function) तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालना और उसी आधार पर नियमों को प्रतिपादित करना होता है और ऐसा करने के लिए निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण, तुलना आदि के कठिन मार्ग से गुजरना ही पड़ता है। श्री उल्फ (Wolfe) ने लिखा है कि 'कोई भी अनुसंधान प्रणाली जिसके द्वारा विज्ञान का निर्माण हुआ हो और उसका विकास हो रहा हो, वैज्ञानिक पद्धति कहलाने को अधिकारी हैं।'

26.1 विषय-वस्तु : सांख्यिकीय पद्धति का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Subject-Matter : Meaning and Characteristics of Statistical Method)

वर्तमान में समाजशास्त्र में सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग काफी मात्रा में किया जाने लगा है। समाजशास्त्र में इस पद्धति

नोट

की सहायता से सामाजिक तथ्यों को परिमाणात्मक या संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस पद्धति के प्रयोग से समाजशास्त्र को अब बहुत से लोग एक यथार्थ विज्ञान मानने लगे हैं। यह सामाजिक घटनाओं या तथ्यों को गणितीय रूप में मापने की एक प्रणाली है।

क्या आप जानते हैं समाज में संख्यात्मक पहलुओं से संबंधित समस्याओं के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम **गिडिंग्स** ने इस पद्धति का प्रयोग प्रारंभ किया।

सांख्यिकी पद्धति का अर्थ स्पष्ट करते हुए **सेलिगमेन** ने लिखा है, "सांख्यिकी वह विज्ञान है जो उन संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, प्रस्तुतीकरण, तुलना तथा निर्वचन की विधियों से संबंधित है जिनको जाँच के किसी भी क्षेत्र पर प्रकाश डालने के लिए एकत्रित किया गया है।"

नोट्स **लॉविट** के अनुसार, "सांख्यिकी वह विज्ञान है जो घटनाओं की व्याख्या, वर्णन तथा तुलना के आधार के रूप में संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण तथा सारणीयन से संबंधित है।"

राबर्टसन ने लिखा है, "सांख्यिकी एक ऐसा उपकरण या साधन है जिसे आनुभविक अनुसंधान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर आक्रमण करने या उनके निराकरण के लिए काम में लिया जा सकता है।" **केण्डल** ने बताया है कि सांख्यिकी वैज्ञानिक पद्धति की वह शाखा है जो कई पदार्थों के समूह की विशेषताओं को मापकर अथवा गणना द्वारा प्राप्त की गयी सामग्री से संबंधित है। उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सांख्यिकी वह पद्धति है जो तथ्यों को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत कर परिमाणात्मक निष्कर्ष प्रदान करती है।

समाजशास्त्र में विभिन्न घटनाओं को गुणात्मक के अतिरिक्त परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत करना भी आवश्यक रहता है। उदाहरण के रूप में, जनसंख्या के आकार और बनावट, पारिवारिक विघटन, तलाक की दर, अपराध व बाल-अपराध की घटनाएँ, संयुक्त परिवारों की संख्या का घटना या बढ़ना, गाँवों और नगरों की जनसंख्या, शिक्षा का प्रतिशत, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रवृत्ति आदि का अध्ययन सांख्यिकी पद्धति की सहायता से सुगमता से किया जा सकता है। ऐसे अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष संख्या, औसत, प्रतिशत या परिमाणात्मक रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं। यह पद्धति गुणात्मक प्रकृति के सामाजिक तथ्यों की परिमाणात्मक व्याख्या करने में भी सफल हुई है।

यदि हम सांख्यिकी पद्धति की कार्यप्रणाली पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि इसमें सबसे पहले क्षेत्र का निर्धारण कर समग्र (Universe) में से निदर्शन प्रणाली की सहायता से कुछ प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव किया जाता है। फिर प्रश्नावली या अनुसूची विधि की सहायता से आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। आंकड़ों का संकलन करते समय काफी सावधानी रखने की आवश्यकता पड़ती है ताकि सही जानकारी प्राप्त हो सके। इसके बाद एकत्रित आंकड़ों का वर्गीकरण एवं सारणीयन किया जाता है। यहाँ कार्य-कारण संबंधों की व्याख्या संख्या या प्रतिशत के आधार पर की जाती है। इसके बाद विभिन्न औसतों की सहायता से आवृत्तियों को सरल बनाया तथा उन्हें ग्राफ व चार्ट के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार इस पद्धति की सहायता से निकाले गये निष्कर्ष अधिक प्रामाणिक एवं स्पष्ट होते हैं। बेकारी, निर्धनता, अपराध, बाल-अपराध आदि सामाजिक समस्याओं को समझने में सांख्यिकी पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्ष काफी योग देते हैं। इस पद्धति में पक्षपात की संभावना बहुत कम हो जाती है। यह पद्धति कई समस्याओं पर एक साथ प्रकाश डालने में सफल सिद्ध हुई है।

इस पद्धति की **सबसे बड़ी कमी** यह है कि इसके द्वारा केवल सामाजिक घटनाओं के संख्यात्मक या परिमाणात्मक पक्ष पर ही जोर दिया जाता है, गुणात्मक पक्ष पर नहीं। यदि हम वर्तमान में लोगों के विश्वासों, मूल्यों और मनोवृत्तियों

नोट

में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना चाहें तो यह पद्धति उपयोगी नहीं होगी। सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के कार्य-कारण संबंधों को गहराई के साथ समझने में भी यह पद्धति विशेष सहायक नहीं है। इसके लिए हमें गुणात्मक पद्धतियों का सहारा लेना पड़ेगा। इन सीमाओं के बावजूद भी गणित पर आधारित होने के कारण इसे वैज्ञानिक पद्धति माना जाता है और समाजशास्त्र में इसका प्रयोग बढ़ता ही जा रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. .... एक ऐसा उपकरण या साधन है जिसे अनुभविक अनुसंधान के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर आक्रमण करने या उनके निराकरण के लिए काम में लाया जाता है।
2. समाजशास्त्र में विभिन्न घटनाओं को गुणात्मक के अतिरिक्त .... रूप में प्रस्तुत करना भी आवश्यक रहता है।
3. सांख्यिकी पद्धति की कार्य-प्रणाली पर ध्यान दें तो पता चलेगा कि इनमें सबसे पहले क्षेत्र का निर्धारण कर .... में से निदर्शन प्रणाली की सहायता से कुछ-प्रतिनिधि इकाइयों का चुनाव किया जाता है।

26.2 सारांश (Summary)

- समाजशास्त्र में इस पद्धति की सहायता से सामाजिक तथ्यों को परिमाणात्मक या संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
- ऐसे अध्ययनों से प्राप्त निष्कर्ष संख्या, औसत, प्रतिशत या परिमाणात्मक रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं।
- सांख्यिकी प्रविधियों का मुख्य उद्देश्य विशाल तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान कर बोधगम्य बनाना तथा उसके आधार पर सामान्यीकरण प्रदान करना है।

26.3 शब्दकोश (Keywords)

1. **सांख्यिकी** (Statistics)–संख्यात्मक आंकड़ों के संकलन, वर्गीकरण, सारणीकरण, विश्लेषण एवं विवेचन की विधियों के समूह को सांख्यिकी कहते हैं।

26.4 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सांख्यिकी पद्धति का अर्थ क्या है?
2. सांख्यिकी पद्धति का समाजशास्त्र में क्या उपयोग है?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. सांख्यिकी 2. परिमाणात्मक 3. समग्र।

26.5 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध की पद्धतियाँ–संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

इकाई–27: केंद्रीय प्रवृत्ति की माप: माध्य, माध्यिका, बहुलक (Measures of Central Tendency : Mean, Median, Mode)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 सामान्य प्रवृत्तियों की माप (Measures of General Tendencies)

27.2 सांख्यिकीय माध्य (Statistical Average)

27.3 माध्यों के प्रकार (Types of Averages)

27.4 खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य निकालना (Calculation of Mean in Discrete Series)

27.5 अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना (Calculation of Mean in Continuous Series)

27.6 समान्तर माध्य के गुण (Merits of Arithmetic Average or Mean)

27.7 समान्तर माध्य के दोष (Demerits of Arithmetic Average)

27.8 माध्यिका या मध्याँक (Median)

27.9 मध्यांक निकालने की विधि (Method of Calculating Median)

27.10 बहुलक (Mode)

27.11 सारांश (Summary)

27.12 शब्दकोश (Keywords)

27.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

27.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- जटिल श्रेणियों तथा अंकों की श्रेणियों का संक्षिप्तीकरण करना।
- विशाल समूह को संक्षिप्त चित्रों द्वारा विश्लेषण करना।
- विशाल संख्याओं की तुलना करने में आसानी होती है।
- दो या अधिक श्रेणियों या समूहों के बीच पाए जाने वाले संबंधों तथा अनुपात का अनुमान लगाना।।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक अनुसंधान के दौरान जो सांख्यिकीय तथ्य एकत्रित किए जाते हैं उनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं जा सकता। इसके लिए उन तथ्यों या आँकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करना अनिवार्य होता है। इसके बाद भी उन्हें और सरस एवं बोधगम्य बनाने के लिए चित्रों एवं ग्राफों की सहायता ली जाती है। लेकिन चित्रों एवं ग्राफों के माध्यम से तथ्यों का अध्ययन कितना परिशुद्ध होगा, यह अनुसंधानकर्ता की दृष्टि पर निर्भर करता है, जो व्यक्तिनिष्ठ कारक है। इसीलिए हमें तथ्यों की श्रेणी में से एक ऐसी संख्या का पता लगाना अनिवार्य है, जो उस श्रेणी का उपयुक्त प्रतिनिधित्व कर सके। इससे तुलनात्मक अध्ययन करना आसान हो जाता है। वह मूल्य जो हमें समूह की योग्यता को संक्षिप्त रूप से एक ही अंक में बता देते हैं, केंद्रीय प्रवृत्ति के माप कहलाते हैं। इन मूल्यों को सांख्यिकी में माध्य कहते हैं। इस इकाई में हम इसी की विवेचना करेंगे।

27.1 सामान्य प्रवृत्तियों की माप (Measures of General Tendencies)

सामाजिक अनुसन्धान के दौरान जो सांख्यिकीय तथ्य (statistical data) एकत्रित किये जाते हैं। उनसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं जा सकता। इसके लिए उन तथ्यों या आँकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करना आवश्यक होता है। इसके बाद भी उन्हें और सरल व बोधगम्य बनाने के लिये चित्रों (diagrams) तथा ग्राफों की सहायता ली जाती है। पर चित्रों तथा ग्राफ के माध्यम से तथ्यों का अध्ययन परिशुद्ध होगा अथवा नहीं, यह बात अनुसन्धानकर्ता की निगाहों की यथार्थता पर निर्भर करती है। पर निगाह, जैसा कि हम जानते हैं, एक अनिश्चित कारक (uncertain factor) है। इसलिए इसकी सहायता से किए गए अध्ययन व निकाले गए निष्कर्ष अविश्वसनीय भी हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त, तथ्यों या आँकड़ों को, वर्गीकरण तथा सारणीयन के बाद भी, और अधिक संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना सम्भव है। यदि हमें तथ्यों की एक श्रेणी में से कोई ऐसा अंक या संख्या पता लग जाये जो कि उस श्रेणी का उचित प्रतिनिधित्व कर सके तो विभिन्न श्रेणियों का तुलनात्मक अध्ययन करना हमारे लिए वास्तव में सरल हो जाए। यह स्वीकार किया जाता है कि यद्यपि अनुसन्धानकर्ता को जो आँकड़े प्राप्त होते हैं उनके मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं, फिर भी सभी आँकड़ों में से एक ऐसी 'योग्यता' मूल्य अथवा अंक मालूम किया जा सकता है जो कि सभी व्यक्ति आँकड़ों का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। ऐसी योग्यता या मूल्य को ही माध्य प्रवृत्ति (central tendency) कहते हैं। माध्य प्रवृत्ति अलग-अलग आँकड़ों या तथ्यों या व्यक्तियों की योग्यता या मूल्य पर प्रकाश नहीं डालती, बल्कि वह सामूहिक रूप से सम्पूर्ण वर्ग या श्रेणी की योग्यता का प्रतिनिधित्व करती है और इस प्रकार वह पूरे समूह की प्रवृत्ति या मूल्य की ओर संकेत करती है। उदाहरणार्थ, यदि किसी परीक्षण में पाँच छात्रों को क्रमश: 7, 9, 5, 6 और 8 अंक प्राप्त होते हैं तो ऊपरी तौर पर यही कहा जाएगा कि पाँच छात्रों की योग्यता एक-दूसरे से भिन्न है। परन्तु इन प्राप्तांकों को ध्यानपूर्वक देखने से मालूम होगा कि 7 एक ऐसा अंक है जिसके आसपास अन्य अंक स्थित हैं। दो अंक 7 से छोटे और दो 7 से बड़े हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि 7 इस पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला अंक है। इसलिए यद्यपि इस समूह के प्रत्येक छात्र की अलग-अलग योग्यता एक-दूसरे से भिन्न है, फिर भी सामूहिक रूप में उनकी योग्यता 7 ही समझी जायेगी क्योंकि यह मूल्य सभी मूल्यों के केन्द्र में स्थित है और अन्य मूल्यों का झुकाव इसी केन्द्रीय मूल्य 7 की ओर है। इसलिये हम 7 को उपरोक्त पाँचों प्राप्तांकों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहेंगे।

नोट्स हम यह कह सकते हैं कि वह मूल्य जो हमें समूह की योग्यता को संक्षिप्त रूप से एक अंक में ही बतला देते हैं केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप (measures of central tendency) कहलाते हैं। इन मूल्यों को सांख्यिकी में माध्य (average) कहते हैं।

27.2 सांख्यिकीय माध्य (Statistical Average)

माध्य का अर्थ (Meaning of Average)

सर्वश्री घोष और **चौधरी** (Ghosh and Chaudhry) के अनुसार, "माध्य एक ऐसी अकेली सरल अभिव्यक्ति है जिसमें एक जटिल समूह अथवा विशाल संख्याओं का वास्तविक परिणाम या सार केन्द्रित है।"

श्री एलहान्स (Elhance) के मतानुसार, "यह स्पष्ट है कि एक ऐसी संख्या जिसका कि प्रयोग सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है वह श्रेणी में न तो न्यूनतम मूल्य रखती है और न ही उच्चतम मूल्य, अपितु वह मूल्य तो इन दोनों सीमाओं के बीच का एक मूल्य होता है और सम्भवत: इस मूल्य की स्थिति वह केन्द्र होता है जहाँ श्रेणियों की अधिकांश इकाइयाँ एकत्रित हो जाती हैं। ऐसे अंक केन्द्रीय प्रवृत्ति का माप अथवा माध्य कहलाते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि माध्य सम्पूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला और केन्द्रीय मूल्य को प्रगट करने वाला एक अंक होता है जो कि उन श्रेणियों के न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्य के बीच की एक स्थिति में होता है। इस प्रकार माध्य को देखकर ही सम्पूर्ण श्रेणियों की केन्द्रीय विशेषता या मूल्य का पता लगाना हमारे लिए सरल होता है। इस अर्थ में माध्य विशाल संख्याओं का संक्षिप्तीकरण करने का एक साधन बन जाता है।

माध्यों की उपयोगिता एवं उद्‌देश्य (Utility and Objectives of Averages)

सामाजिक अनुसन्धान में तथ्यों की विवेचना, विश्लेषण या निष्कर्षीकरण में माध्यों की उपयोगिता उल्लेखनीय है। निम्नलिखित विवेचना से माध्यों की उपयोगिता एवं उद्देश्य और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

(1) माध्यों का सर्वप्रथम उद्देश्य जटिल श्रेणियों तथा अंकों की श्रेणियों का संक्षिप्तीकरण करना है। माध्य के द्वारा बिखरे हुए विभिन्न गुणों वाले तथ्यों को संक्षिप्त रूप प्रदान किया जा सकता है। अंकों के ढेरों से कुछ भी पता नहीं चलता, पर माध्य एक अंक में होते हुए भी अंकों के ढेरों के केन्द्रीय गुण या मूल्य को प्रगट करता है।

(2) माध्यों का एक और उद्देश्य या उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा तथ्यों की तुलना अत्यधिक सरल हो जाती है। अनेक अंकों वाली श्रेणियों की तुलना बहुत कठिन होती है परन्तु यदि उन्हें एक अंक का रूप प्रदान कर दिया जाए तो तुलना का काम स्वत: ही सरल हो जाता है। वास्तव में जटिल व विशाल संख्याओं की तुलना करने के उद्देश्य से ही माध्य निकाले जाते हैं।

(3) जैसा कि सर्वश्री घोष तथा चौधरी ने लिखा है कि विशाल समूह का एक संक्षिप्त चित्र प्रदर्शित करना है जिससे विश्लेषण का काम हमारे लिए सरल हो जाए। वास्तविकता तो यह है कि विशाल समूह का एक संक्षिप्त रूप प्रगट करके विश्लेषण व व्याख्या के कार्य को सरल बनाना माध्य का एक उल्लेखनीय उद्देश्य है।

(4) माध्य के द्वारा अंकों की दो या अधिक श्रेणियों का समूहों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों तथा अनुपात का अनुमान लगाया जाता है। वैज्ञानिक विश्लेषण व व्याख्या के लिए इस प्रकार के संबंधों व अनुपात की जानकारी आवश्यक होती है। माध्य इस कार्य में हमारी मदद करता है।

(5) माध्यों की एक उपयोगिता यह भी है कि ये हमारे अध्ययन-कार्य को संक्षिप्त बनाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। एक समुदाय की समग्र इकाइयों का अध्ययन हमारे लिए सम्भव नहीं होता और इसीलिए हम निदर्शन-प्रणाली (Sampling Method) के द्वारा कुछ इकाइयों से सम्बन्धित तथ्यों को एकत्रित करते हैं। इन तथ्यों को और आगे संक्षिप्त करने के लिए माध्यों का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार निदर्शन तथ्यों की सहायता से माध्य सम्पूर्ण समूहों का चित्र उपस्थित करने में सहायक होते हैं।

नोट

टास्क सांख्यिकीय माध्य किसे कहते हैं? विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

27.3 माध्यों के प्रकार (Types of Averages)

सर्वश्री घोष और चौधरी (Ghosh and Chaudhry) ने माध्यों के अग्रलिखित प्रकारों का उल्लेख किया है–

I. स्थिति माध्य (Average of Position)

(1) बहुलक (Mode)

(2) मध्यांक (Median)

II. गणितीय माध्य (Mathematical Averages)

(1) समान्तर माध्य (Arithmetic Averages or Mean)

(2) ज्यामितीय या गुणोत्तर माध्य (Geometric Mean)

(3) हरात्मक माध्य (Harmonic Mean)

(4) सर्मीकरण माध्य (Quadratic Mean)

III. अन्य व्यावहारिक माध्य (Other of Business Averages)

(1) भ्रमित माध्य (Moving Average)

(2) प्रगतिशील माध्य (Progressive Average)

उपरोक्त प्रकार के माध्यों में से केवल उन्हीं विषय में विवेचना करेंगे जिनका कि सामाजिक अनुसन्धान-कार्य से तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या के लिए विशेष रूप में प्रयोग किया जाता है।

समान्तर माध्य (Arithmetic Average or Mean)

सर्वश्री घोष तथा चौधरी के अनुसार, ''समान्तर माध्य जिसे कि समान्तर माध्य या केवल माध्य भी कहते हैं वह परिणाम है जो कि किसी चल (variable) में पदों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य वास्तव में औसत निकालना है जिसके विषय में छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है। यदि हमें प्रत्येक इकाई का मूल्य अलग-अलग मालूम है तो समान्तर माध्य या औसत निकालने के लिए उन सभी इकाइयों को जोड़कर इकाइयों की संख्या से भाग दे देंगे। भाग देने से जो परिणाम प्राप्त होगा उसे औसत या समान्तर माध्य कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समान्तर माध्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(अ) समान्तर माध्य कुल पदों के माप के योग को पदों की संख्या से भाग देकर निकाला जाता है।

(ब) इसमें समस्त पद मूल्यों का उपयोग किया जाता है अर्थात् समस्त पदों को समान महत्त्व दिया जाता है। किसी मूल्य की न तो उपेक्षा की जाती है और न महत्त्व दिया जाता है। पद की गणना केवल एक बार होती है।

(स) यदि समान्तर माध्य तथा पदों की संख्या ज्ञात हो तो कुल पदों का वास्तविक योग जाना जा सकता है। इसी प्रकार पदों की संख्या भी जानी जा सकती है।

(द) समान्तर माध्य आवृत्तियों पर निर्भर नहीं रहता बल्कि समस्त पदों के मूल्य पर निर्भर रहता है।

समान्तर माध्य निकालने की विधि (Method of Calculating Mean)

समान्तर माध्य दो सम्भावित प्रणालियों द्वारा निकाला जा सकता है–(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) और (ब) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method)। हम एक-एक करके यहाँ दोनों विधियों के सम्बन्ध में विवेचना करेंगे।

सरल श्रेणी में माध्यक निकालना (Calculation of Mean in Simple Series)

(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)–इस विधि के द्वारा समान्तर माध्य निकालने के लिये सर्वप्रथम समस्त पदों के मूल्यों को जोड़ लिया जाता है। फिर उसमें पदों की संख्या को भाग दिया जाता है। प्राप्त उपलब्धि समान्तर माध्य होता है। निम्नलिखित उदाहरण से इस बात का स्पष्टीकरण किया जा सकता है–

उदाहरण 1. नीचे 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का विवरण दिया गया है। उनका समान्तर माध्य प्रत्यक्ष विधि द्वारा ज्ञात कीजिये–

लम्बाई (सेन्टीमीटर में)–155, 153, 168, 160, 162, 166, 164, 180, 157 और 165 ।

हल–उपरोक्त लम्बाइयों के आधार पर समान्तर माध्य निकालने के लिये प्रत्यक्ष विधि इस प्रकार होगी–

लम्बाइयों का योग $6 \times \sum x = 155 + 153 + 168 + 160 + 162 + 166 + 164 + 180 + 157 + 165 = 1630$

$\therefore \qquad 6 \times \sum x = 1630$

विद्यार्थियों की संख्या (n) $= 10$

समान्तर माध्य (M) का सूत्र $= \dfrac{6 \times \sum x}{n}$

$$\therefore \qquad M = \frac{6 \times \sum x}{n}$$

$$= \frac{1630}{10} = 163$$

अत: समान्तर माध्य (M) $= 163$ सेन्टीमीटर

(ब) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method)–यदि श्रेणियाँ लम्बी हों और मूल्य भिन्न-भिन्न हों तो प्रत्यक्ष विधि से समान्तर माध्य निकालने में जोड़ने आदि के काम में काफी परेशानी होती है। इसीलिये परिश्रम तथा समय बचाने के उद्देश्य से एक संक्षिप्त विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि में दिये गये किसी मूल्य को भी माध्य मान लिया जाता है, फिर प्रत्येक दिये हुये मूल्य का इस कल्पित माध्य से विचलन (deviation) ज्ञात कर लिया जाता है। अर्थात् कल्पित माध्य और पदों के मूल्यों में जो अन्तर है उसे अलग-अलग मालूम किया जाता है। यदि पद का मूल्य कल्पित माध्य के मूल्य से कम है तो इस अन्तर को ऋण चिह्न (–) से दिखाया जाता है पर यदि पद का मूल्य कल्पित माध्य के मूल्य से ज्यादा है तो अन्तर को धन चिह्न (+) से प्रदर्शित किया जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पद मूल्य का विचलन या अन्तर मालूम कर लिया जाता है। फिर इन समस्त विचलनों के योग को पदों की संख्या से भाग देकर जो लब्धि आती है उसे कल्पित माध्य में जोड़ दिया जाता है, यही वास्तविक माध्य होता है। निम्नलिखित उदाहरण से इस विधि का और भी स्पष्टीकरण हो सकेगा।

उदाहरण 2. उदाहरण 1 में 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का समान्तर माध्य संक्षिप्त विधि द्वारा ज्ञात कीजिये।

नोट

हल–संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम किसी भी लम्बाई का कल्पित माध्य लेना होगा और फिर अन्य सभी लम्बाइयों के इस कल्पित माध्य से विचलन को ज्ञात करना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है जिसमें कि लम्बाई 160 को कल्पित माध्य माना गया है।

सारणी 27.1
संक्षिप्त विधि द्वारा समांतर माध्य ज्ञात करना

लम्बाई (x)	कल्पित माध्य 160 से विचलन (d)
155	(155−160) = − 5
153	(153−160) = − 7
168	(168−160) = + 8
160 A	(160−160) = 0
162	(162−160) = + 2
166	(166−160) = + 6
164	(164−160) = + 4
180	(180−160) = + 20
157	(157−160) = − 3
165	(165−160) = + 5
n = 10	**$\sum d$ = (45−15) = 30**

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = A + \frac{\sum d}{n}$$

यहाँ कल्पित माध्य $A = 160$

$\sum d = 30$

$n = 10$ (क्योंकि लम्बाई 10 विद्यार्थियों के हैं)

अत:

$$M = 160 + \frac{30}{10}$$

$$= 160 + 3 = 163$$

अत: 10 विद्यार्थियों की लम्बाई का समान्तर माध्य = 163 सेंटीमीटर

नोट्स यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि किसी भी प्रश्न का हल प्रत्यक्ष विधि अथवा संक्षिप्त विधि द्वारा किया जाये, तो दोनों का ही उत्तर एक जैसा होगा, जैसा कि उदाहरण 1 और 2 में हुआ है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. समांतर माध्य वास्तव में .... निकालना है जिसके विषय में छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पढ़ाया जाता है।
2. भाग देने से जो परिणाम प्राप्त होगा उसे .... कहते हैं।
3. .... तथा पदों की संख्या ज्ञात हो तो कुल पदों का वास्तविक योग जाना जा सकता है।

27.4 खण्डित श्रेणी में समान्तर माध्य निकालना (Calculation of Mean in Discrete Series)

(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)–समांतर माध्य उस अवस्था में निकाला जा सकता है जबकि विभिन्न पद खण्डित श्रेणियों में हों। ऐसी स्थिति में माध्य ज्ञात करने की विधि के निम्नलिखित चरण हैं–

(क) प्रत्येक आवृत्ति को उसके सम्बन्धित पद के मूल्य से गुणा कीजिये।

(ख) इस प्रकार सभी गुणनफल के योग को मालूम कीजिये।

(ग) इन गुणनफलों के योगों को आवृत्तियों के योग से भाग दीजिये।

(घ) प्राप्त लब्धि समान्तर माध्य होगा।

इस विधि को विभिन्न चिह्नों द्वारा एक सूत्र के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

यदि हम यह मान लें कि–

पद का मूल्य = x

आवृत्ति = f

पद का मूल्य × आवृत्ति = fx

आवृत्तियों का योग = $\sum f$

(पद का मूल्य × आवृत्ति) का योग = $\sum fx$

तो उपरोक्त विधि के अनुसार–

$$M = \frac{\sum fx}{\sum f}$$

अर्थात् माध्य (M) = $\dfrac{\text{पदों के मूल्य और आवृत्तियों के गुणनफल का योग}}{\text{आवृत्तियों का योग}}$

उदाहरण 3. कुछ परिवारों में प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या निम्नवत् है। आप प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना कीजिये।

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या	परिवारों की संख्या
0	96
1	108
2	154
3	126
4	95
5	62
6	45
7	20
8	11
9	6
10	5
11	5
12	1
13	1

हल–प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये पद मूल्य (प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या) और उस पद से सम्बन्धित आवृत्ति (परिवारों की संख्या) के गुणनफल का योग तथा आवृत्तियों का योग मालूम करना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है–

सारणी 27.2

प्रत्यक्ष विधि द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या (*x*)	परिवारों की संख्या Frequency (*f*)	*f x* गुणनफल
0	96	(0 × 96) = 0
1	108	(1 × 108) = 108
2	154	(2 × 154) = 308
3	126	(3 × 126) = 378
4	95	(4 × 95) = 380
5	62	(5 × 62) = 310
6	45	(6 × 45) = 270
7	20	(7 × 20) = 140
8	11	(8 × 11) = 88
9	6	(9 × 6) = 54

नोट

10	5	$(10 \times 5) = 50$
11	5	$(11 \times 5) = 55$
12	1	$(12 \times 1) = 12$
13	1	$(13 \times 1) = 13$
कुल योग	Σf = **735**	Σfx = **2166**

समान्तर माध्य (M) का सूत्र $= \dfrac{\Sigma fx}{\Sigma f}$

यहाँ परिवारों की कुल संख्या $(\Sigma f) = 735$

इन परिवारों में पैदा हुए बच्चों की कुल संख्या $(\Sigma fx) = 2166$

$$\therefore \quad M = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

$$= \frac{2166}{735} = 2.9 \text{ अर्थात् } 3 \text{ बच्चे}$$

अतः प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य = 3 बच्चे।

(ब) संक्षिप्त विधि (Shor-cut Method)–संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य निकालने के लिए निम्नलिखित चरण होते हैं–

(क) सर्वप्रथम खण्डित श्रेणियों (discrete series) में से किसी भी एक पद को कल्पित माध्य मानकर पद मूल्यों का उस कल्पित माध्य से विचलन (deviation) मालूम किया जाता है।

(ख) तत्पश्चात् प्रत्येक आवृत्ति से उससे सम्बन्धित विचलन को गुणा करके सभी गुणनफलों के योग को मालूम किया जाता है।

(ग) इस प्रकार प्राप्त योग को आवृत्ति के योग से भाग देकर लब्धि को ज्ञात किया जाता है। इस उपलब्धि को कल्पित माध्य में जोड़ दिया जाता है।

(घ) यही जोड़ समांतर माध्य होता है।

यदि कल्पित माध्य को A, आवृत्तियों के योग को n, आवृत्ति (f) व विचलन (d) के गुणनफलों के योग को Σfd मान लिया जाए तो उपरोक्त संक्षिप्त विधि को एक सूत्र के रूप में हम इस प्रकार लिख सकते हैं–

$$M = A + \frac{\Sigma fx}{n}$$

अगर आवृत्तियों के योग को संकेताक्षर n के स्थान पर Σf के रूप में दर्शायें तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$$

$$\text{अर्थात् माध्य} = \text{कल्पित माध्य} + \frac{\text{आवृत्ति व विचलन के गुणनफलों का योग}}{\text{आवृत्तियों का योग}}$$

नोट

उदाहरण 4. उदाहरण 3 में दी गई सारणी के आधार पर प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य संक्षिप्त विधि द्वारा ज्ञात कीजिये।

हल–संक्षिप्त विधि द्वारा प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या के समान्तर माध्य की गणना।

प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या (x)	**परिवारों की संख्या (f)**	**कल्पित माध्य (A = 6) से विचलन (d)**	**कुल विचलन ($f.d$)**
0	96	(0–6) = – 6	(96 ×–6) = – 576
1	108	(1–6) = – 5	(108 ×–5) = – 540
2	154	(2–6) = – 4	(154 ×–4) = – 616
3	126	(3–6) = – 3	(126 ×–3) = – 378
4	95	(4–6) = – 2	(95 ×–2) = – 190
5	62	(5–6) = – 1	(62 ×–1) = – 62
6(A)	45	(6–6) = 0	(45 × 0) = 0
7	20	(7–6) = + 1	(20 × 1) = 20
8	11	(8–6) = + 2	(11 × 2) = 22
9	6	(9–6) = + 3	(6 × 3) = 18
10	5	(10–6) = + 4	(5 × 4) = 20
11	5	(11–6) = + 5	(5 × 5) = 25
12	1	(12–6) = + 6	(1 × 6) = 6
13	1	(13–6) = + 7	(1 × 7) = 7
कुल योग	Σf = **735**		Σfd = **(–2362 + 118) = – 2244**

संक्षिप्त विधि से समान्तर माध्य (M) निकालने का सूत्र–

$$M = A + \frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$$

यहाँ कल्पित माध्य $A = 6$

$\Sigma fd = -2244$

$\Sigma f = 735$ (अर्थात् परिवारों की कुल संख्या)

अत: $$M = 6 + \frac{-2244}{735}$$

$= 6 - 3.05$

$= 2.94$ अर्थात् 3 बच्चे

अत: प्रति परिवार पैदा हुए बच्चों की संख्या का समान्तर माध्य = 3 बच्चे।

टास्क खंडित श्रेणी में समातंर माध्य कैसे निकाला जाता है? उल्लेख करें।

27.5 अखण्डित (सतत) श्रेणी का माध्य निकालना (Calculation of Mean in Continuous Series)

यदि वर्गान्तरों (class intervals) की आवृत्ति या बारम्बारता (frequency) दी हुई है तो भी माध्य निकालने की दो विधियाँ हैं–एक तो प्रत्यक्ष विधि और दूसरी संक्षिप्त या लघु विधि। इन दोनों विधियों के सम्बन्ध में यहाँ अलग-अलग विवेचना की जा सकती है।

(अ) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)–प्रत्यक्ष विधि द्वारा अखण्डित श्रेणियों का माध्य बिल्कुल उसी तरह निकाला जाता है।

क्या आप जानते हैं प्रत्यक्ष विधि द्वारा खण्डित श्रेणियों का माध्य निकाला जाता है। केवल इसमें एक चरण अधिक इस रूप में हो जाता है कि इसमें वर्गान्तरों (class intervals) का मध्य-मूल्य या मध्यमान निकाल लिया जाता है और इस प्रकार अखण्डित श्रेणी खण्डित श्रेणी में बदल जाती है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष विधि को हम निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) प्रत्येक वर्गान्तर का मध्यमान मालूम कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गान्तर की उच्चतर सीमा (upper limit) तथा निम्नतर सीमा (lower limit) के योग का आधा होता है। इस प्रकार यदि कोई वर्गान्तर सीमा (class interval) 10–15 है तो इसका मध्यमान $\frac{10+15}{2}$ = 12.5 होगा।

(ख) प्रत्येक वर्गान्तर की आवृत्ति (f) से उसी वर्गान्तर के मध्यमान (x) को गुणा कीजिए और उनका गुणनफल (fx) मालूम कीजिए।

(ग) तत्पश्चात् उपरोक्त गुणनफलों का योग ($\sum fx$) तथा आवृत्तियों का योग ($\sum f$) अर्थात् n ज्ञात कीजिए।

(घ) गुणनफलों के योग ($\sum fx$) का आवृत्तियों के योग (n) से भाग देकर लब्धि मालूम कीजिए।

(ङ) यही लब्धि माध्य होगा।

अत: संक्षिप्त विधि के सूत्र को हम इस प्रकार लिख सकते हैं–

माध्य $$M = \frac{\sum fd}{\sum n}$$

यदि संकेताक्षर n के स्थान पर $\sum f$ का प्रयोग किया जाये तो माध्य का सूत्र इस प्रकार होगा–

$$M = \frac{\sum fx}{\sum n}$$

उपरोक्त दो सूत्रों में से किसी भी सूत्र की सहायता से माध्य की गणना की जा सकती है। उत्तर या परिणाम एक ही होगा।

उदाहरण 5. निम्न सारणी में भारत इलैक्ट्रोनिक्स लि० के 65 कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी का आवृत्ति बंटन दिया हुआ है। प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य की गणना कीजिए।

नोट

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या
50−60	8
60−70	10
70−80	16
80−90	14
90−100	10
100−110	5
110−120	2

हल—प्रत्यक्ष विधि (जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है) द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिये हमें सर्वप्रथम मध्यमान (x) ज्ञात करके उसी आधार पर fx और फिर Σfx एवं Σf अर्थात् n मालूम करना होगा। यह कार्य उपरोक्त सारणी को इस प्रकार करने पर सम्भव होगा—

सारणी 27.3

मजदूरी (रुपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (f)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (x)	मजदूरी (मध्यमान) और कर्मचारियों का गुणनफल (fx)
50−60	8	$\left(\frac{50+60}{2}\right) = 55$	(8 × 55) = 440
60−70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right) = 65$	(10 × 65) = 650
70−80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right) = 75$	(16 × 75) = 1200
80−90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right) = 85$	(14 × 85) = 1190
90−100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right) = 95$	(10 × 95) = 950
100−110	5	$\left(\frac{100+110}{2}\right) = 105$	(5 × 105) = 525
110−120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right) = 115$	(2 × 115) = 230
योग	Σf **अर्थात्** n **= 65**		Σfx = **5185**

प्रत्यक्ष विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = \frac{\sum fx}{\sum n} \text{ अथवा } M = \frac{\sum fx}{\sum n}$$

$$= \frac{5185}{66}$$

$$= 79.77$$

अत: औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपए

संक्षिप्त विधि (Short-Cut Method or Step Deviation Method)**–**यह संक्षिप्त विधि भी खंडित श्रेणियों का माध्य निकालने के लिए प्रयोग की जाने वाली संक्षिप्त विधि के ही समान है, केवल इसमें भी वर्गांतरों का मध्यमान निकाल दिया जाता है। अत: इस संक्षिप्त विधि को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(क) प्रत्येक वर्गांतर (Class interval) का मध्यमान (x) ज्ञात कीजिए। यह मध्यमान किसी वर्गांतर की उच्चतर सीमा तथा निम्नतर सीमा के योग का आधा होगा।

(ख) किसी वर्गांतर के मध्यमान को कल्पित माध्य (A) मान लीजिए। पर ऐसा करते समय दो बातों का ध्यान रखिए–प्रथम तो यह कि वह कल्पित माध्य उस वर्गांतर का मध्यमान हो जिसकी बारंबारता अर्थात् आवृत्ति (frequency) सबसे अधिक हो और द्वितीय वह कल्पित माध्य उस वर्गांतर का मध्यमान हो जो दिए हुए वर्गांतरों के लगभग माध्य में हों।

(ग) प्रत्येक वर्गांतर (Class interval) के मध्यमान (x) तथा कल्पित माध्य (A) का अंतर ($x–A$) ज्ञात कीजिए अर्थात् कल्पित माध्य से वर्गांतर के मध्यमानों का विचन (d) मालूम करना होगा।

(घ) तत्पश्चात् प्रत्येक आवृत्ति (f) से उससे संबंधित विचलन (d) को गुणा करके सभी गुणनफलों (fd) के योग (Σfd) को मालूम कीजिए।

(ङ) इस प्रकार प्राप्त योग (Σfd) को आवृत्तियों के योग (Σf अर्थात् n) से भाग देकर लब्धि ज्ञात कीजिए। इस लब्धि को कल्पित माध्य (A) के साथ जोड़ दीजिए।

(च) यही जोड़ समानांतर माध्य होगा।

इसी विधि को यदि सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जाए तो वह इस प्रकार होगा–

$$M = A + \frac{\sum fd}{N}, \text{ अथवा } A + \frac{\sum f\, d}{\sum f}$$

उदाहरण 6. उदाहरण 5 में दिए गए प्रश्न को ध्यान में रखते हुए, संक्षिप्त विधि द्वारा सामांतर माध्य ज्ञात कीजिए।

हल–प्रस्तुत प्रश्न को ऊपर बताए गए विधि के अनुसार हल करने के लिए हमें उदाहरण 5 की सारणी को इस रूप में प्रस्तुत करना होगा–

नोट

सारणी 27.4

मजदूरी (रूपयों में)	कर्मचारियों की संख्या (f)	मजदूरी वर्गों के मध्यमान (x)	कल्पित माध्य (A = 75) से मध्यमानों (x) का विचलन ($x - A = d$)	विचलन तथा कर्मचारियों की संख्या (आवृत्ति) का गुणनफल (fd)
50–60	8	$\left(\frac{50+60}{2}\right) = 55$	(55–75) = – 20	8 × –20 = – 160
60–70	10	$\left(\frac{60+70}{2}\right) = 65$	(65–75) = – 10	10 × –10 = – 100
70–80	16	$\left(\frac{70+80}{2}\right) = 75A$	(75–75) = + 0	16 × 0 = 0
80–90	14	$\left(\frac{80+90}{2}\right) = 85$	(85–75) = + 10	14 × 10 = + 140
90–100	10	$\left(\frac{90+100}{2}\right) = 95$	(95–75) = + 20	10 × 20 = + 200
100–110	15	$\left(\frac{100+110}{2}\right) = 105$	(105–75) = + 30	5 × 30 = + 150
110–120	2	$\left(\frac{110+120}{2}\right) = 115$	(115–75) = + 40	2 × 40 = + 80
	Σ अर्थात्			Σfd = (+ 570
	$n = 65$			– 260) = 310

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्व (M) का सूत्र–

$$M = A + \frac{\Sigma f d}{\Sigma f} \text{ अथवा } A + \frac{\Sigma f d}{n}$$

यहाँ $A = 75$ (कल्पित माध्य)

$$\Sigma f d = +310$$

Σf या $n = 65$ (कर्मचारियों की कुल संख्या)

नोट

$$\therefore \quad M = 75 + \frac{310}{65}$$

$$= 75 + 4.77$$

$$= 79.77$$

अत: औसत साप्ताहिक मजदूरी = 79.77 रुपये।

उदाहरण 7. अनाज की उपज के निम्न आंकड़ों से संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्या ज्ञात कीजिए।

उपज	0.5–4.5	4.5–8.5	8.5–12.5	12.5–16.5	16.5–20.5	20.5–24.5
खेतों की संख्या	4	8	5	10	8	9

हल–उपरोक्त प्रश्न को हल करने के लिए हमें दिये गये आंकडों के आधार पर निम्नलिखित सारणी तैयार करनी होगी–

सारणी 27.5

उपज	खेतों की संख्या (f)	उपज वर्गों के मध्यमान (x)	कल्पित माध्य (A=10.5) से मध्यमानों का विचलन (x–A) = d	विचलन तथा खेतों की संख्या (आवृत्ति) का गुणनफल (fd)
0.5–4.5	4	$\left(\frac{4.5+8.5}{2}\right) = 2.5$	(2.5–10.5) = – 8	(8 × –4) = – 32
4.5–8.5	8	$\left(\frac{4.5+8.5}{2}\right) = 6.5$	(6.5–10.5) = – 4	(8 × –4) = – 32
8.5–12.5	5	$\left(\frac{8.5+12.5}{2}\right) = 10.5$	(10.5–10.5) = 0	(5 × 0) = 0
12.5–16.5	10	$\left(\frac{12.5+16.5}{2}\right) = 14.5$	(14.5–10.5) = + 4	(10 × 4) = + 40
16.5–20.5	8	$\left(\frac{16.5+20.5}{2}\right) = 18.5$	(18.5–10.5) = + 8	(8 × 8) = + 64
20.5–24.5	9	$\left(\frac{20.5+24.5}{2}\right) = 22.5$	(22.5–10.5) = + 2	(9 × 12) = + 108
	Σf अर्थात् = + 148		Σfd = (212–64)	n = 44

नोट

संक्षिप्त विधि द्वारा समान्तर माध्य (M) का सूत्र–

$$M = A + \frac{\Sigma f d}{n} \text{ अथवा } A + \frac{\Sigma f d}{\Sigma f}$$

यहाँ $A = 10.5$ (कल्पित माध्य)

$$\Sigma f d = +148$$

$$\Sigma f \text{ या } n = 44 \text{ (खेतों की कुल संख्या)}$$

$$\therefore \quad M = 10.5 + \frac{148}{44} = 10.5 + \frac{37}{11} = 10.5 + 3.36$$

$$= 13.86$$

27.6 समान्तर माध्य के गुण (Merits of Arithmetic Average or Mean)

माध्य प्रवृत्ति को मापने के साधन के रूप में समान्तर माध्य के महत्त्व को सभी स्वीकार करते हैं क्योंकि इसके निम्न गुण हैं–

(1) समान्तर माध्य स्पष्टतः परिभाषित होता है और इसीलिये उसके सम्बन्ध में किसी को भी कोई सन्देह नहीं होता।

(2) समान्तर माध्य की गणना अत्यन्त सरल होती है और इसीलिये माध्य निकालने के लिये गणित सम्बन्धी उच्चस्तरीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) चूँकि समान्तर माध्य की गणना अत्यन्त सरल होती है। इसलिये इससे अधिकाधिक व्यक्ति लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि सामान्य गणित जानने से भी वे माध्य निकाल सकते हैं।

(4) समान्तर माध्य निकालने के लिये विभिन्न श्रेणियों के अंकों को किसी व्यवस्थित क्रम में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अंक जैसे भी दिए होते हैं उसी रूप में उनका प्रयोग करके माध्य निकाला जा सकता है। क्योंकि इसमें जोड़ने, भाग देने और घटाने का ही काम केवल करना पड़ता है।

(5) समान्तर माध्य निकालने के लिए श्रेणियों (series) के सभी पदों के बारे में जानकारी आवश्यक नहीं है। यदि अंकों का अथवा पद के परिणामों का कुल योग एवं उनकी संख्या भी मालूम है तो उनके द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि दो या दो से अधिक श्रेणियों में प्रत्येक का समान्तर माध्य ज्ञात हो तो सभी श्रेणियों का सम्मिलित (combined) समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।

(6) समांतर माध्य में श्रेणियों के छोटे एवं बड़े सभी प्रकार के पदों के परिणामों को महत्त्व दिया जाता है और प्रत्येक पद की गणना केवल एक बार होती है। किसी पद मूल्य की न तो उपेक्षा की जाती है और न अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(7) समांतर माध्य तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।

27.7 समान्तर माध्य के दोष (Demerits of Arithmetic Average)

उपरोक्त गुणों के होते हुए भी समान्तर माध्य के कुछ अपने दोष हैं जो कि इस प्रकार हैं–

(अ) यह सम्भव है कि समांतर माध्य ऐसे परिणामों को प्रस्तुत करें जो कि वास्तव में असम्भव हों जैसे किसी स्टेशन पर प्रतिदिन उतरने वाले यात्रियों की संख्या का समान्तर माध्य 200.45 हो सकता है। किंतु वास्तव में 200.45 व्यक्ति किसी भी स्टेशन पर कभी भी नहीं उतरते होंगे। उसी प्रकार प्रति माँ बच्चों की

संख्या का माध्य 2.7 हो सकता है जो कि वास्तव में असम्भव है क्योंकि बच्चों की संख्या पूर्णांक में ही होती है, न कि .7 ।

> *नोट्स* एक बार प्रसिद्ध हास्य पत्रिका 'पंच' ने लिखा था कि एक शाही कमीशन को प्रतिमाह 2.2 सन्तानों की संख्या बहुत ही बेतुकी लगी और इसका सम्भावित कारण मध्यम वर्ग की बिगड़ी हुई आर्थिक दशा समझा गया; इसीलिये शाही कमीशन ने सिफारिश की थी कि मध्यम वर्ग के लोगों को कुछ आर्थिक सहायता इस बात के लिये दी जाए कि वे सन्तानों का औसत पूर्णांक तथा अधिक सुविधाजनक संख्या तक बढ़ा सकें।

(ब) समान्तर माध्य पर असाधारण इकाई का अनुचित प्रभाव पड़ता है, विशेषकर यदि ऐसी असाधारण इकाइयाँ बहुत बड़ी या बहुत छोटी हैं। उदाहरणार्थ, किसी कक्षा में यदि एक विद्यार्थी ने गणित में 100 अंक प्राप्त किए तथा शेष 6 विद्यार्थियों ने 20, 25, 19, 24, 15 आदि 28 अंक प्राप्त किए हों तो इसका समान्तर माध्य = 100 + 20 + 25 + 19 + 24 + 15 + 28 = 231 ÷ 7 = 33 होगा। यदि 100 अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को सम्मिलित न किया जाए तो समान्तर माध्य = 20 + 25 + 19 + 24 + 15 + 28 = 131 ÷ 6 = 22 के लगभग होगा। अत: स्पष्ट है कि यदि श्रेणियों में कोई बहुत बड़ी या बहुत छोटी आ जाए तो समान्तर माध्य समूह का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है।

(स) यदि पदों की संख्या अधिक है तो इसे निरीक्षण मात्र से ही ज्ञात नहीं किया जा सकता। बड़ी संख्या में बड़े-बड़े जोड़, गुणा, भाग आदि करने की आवश्यकता होती है जो कि साधारण व्यक्ति के लिए सरल नहीं होता है।

(द) समांतर माध्य निकालने के लिये यह आवश्यक है कि पदमाला के समस्त पदों के मापों का योग अथवा अलग-अलग माप मालूम हो। यदि थोड़े से पद छूट जाएँ तो माध्य ज्ञात नहीं किया जा सकता जबकि माध्यिका अथवा मध्यांक (Median) और बहुलक (Mode) ज्ञात किया जा सकता है।

(य) समान्तर माध्य प्रगतिशील (progressive) तथा प्रतीयगामी (regressive) प्रवृत्तियों अर्थात् बढ़ती हुई या घटती हुई प्रवृत्तियों की ओर संकेत नहीं करता है और कभी-कभी तो इससे भ्रामक परिणाम प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ, यदि एक विद्यार्थी को तिमाही, छमाही तथा वार्षिक परीक्षा में क्रमश: कुल अंक 381, 427 और 502 मिले और एक अन्य विद्यार्थी को यही अंक क्रमश: 502, 427, और 381 मिले तो दोनों का माध्य प्राप्तांक यद्यपि एक ही होगा पर उससे यह पता नहीं चलेगा कि एक के प्राप्तांक क्रमश: बढ़ते गए। इस प्रकार घटने-बढ़ने की प्रवृत्तियाँ माध्य द्वारा स्पष्ट नहीं हो सकतीं।

27.8 माध्यिका या मध्याँक (Median)

माध्यिका या मध्यांक किसी पद श्रृंखला से वह बिन्दु होता है जो सम्पूर्ण श्रृंखला व श्रेणी (series) को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। इस प्रकार 50 प्रतिशत पद मूल्य मध्यांक के ऊपर और शेष 50 प्रतिशत पद मूल्य उसके नीचे होते हैं। परन्तु ऐसा होने के लिये यह आवश्यक है कि सभी पद मूल्यों या चलराशि के मानों (values of variable quantities) को आरोही या अवरोही क्रमों (ascending or descending order) में रखा जाए। इस सन्दर्भ में यह स्मरणीय है कि मध्यांक कभी कोई विशिष्ट पद नहीं होता बल्कि मध्य पद का परिणाम अथवा माप ही मध्यांक है।

मध्यांक का अर्थ व विशेषताएं (Meaning and Characteristics of Median)

डॉ० चतुर्वेदी (Chaturvedi) के अनुसार, ''यदि एक श्रेणी (series) के पदों को उनके परिणामों के आधार पर आरोही अथवा अवरोही क्रमों से लगाया जाए तो बिलकुल बीच वाली राशि के मान या माप को माध्यिका या मध्यांक कहते हैं।''

नोट

सर्वश्री घोष तथा **चौधरी** (Ghosh and Chowdhury) के अनुसार, ''मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि श्रेणी को दो बराबर भागों में बाँटता है जिसमें से एक भाग में मध्यांक से कम और दूसरे भाग में मध्यांक से अधिक मूल्य होते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि मध्यांक दी हुई चलराशि के मानों के बीच वाली राशि का मान होता है। उदाहरणार्थ, किसी कक्षा के 31 विद्यार्थियों को उनकी ऊँचाई के अनुसार एक पंक्ति में खड़ा करने पर 16वाँ विद्यार्थी बिल्कुल बीच का विद्यार्थी होगा और उसी की ऊँचाई उन 31 विद्यार्थियों की ऊँचाई की माध्यिका होगी क्योंकि ऊँचाई यहाँ पर चल राशि (variable quantity) है। स्मरण रहे कि 16वाँ विद्यार्थी यद्यपि बिल्कुल बीच का विद्यार्थी है, पर 16 संख्या या राशि मध्यांक नहीं है बल्कि इस 16वें राशि के मान या माप को मध्यांक कहेंगे। इस प्रकार बीच वाला पद या राशि स्वयं मध्यांक का नहीं होता, उसे तो मध्यांक का मापदण्ड (scale of measurement) समझना चाहिए।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर मध्यांक की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट हैं–

(अ) मध्यांक बिलकुल बीच वाला पद नहीं होता है बल्कि उस पद का मान या मूल्य होता है।

(ब) मध्यांक सम्पूर्ण श्रेणी को दो भागों में विभाजित कर देता है जिसमें से एक भाग में इससे कम और दूसरे भाग में इससे अधिक मूल्य होते हैं।

(स) मध्यांक निकालने के लिये पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम से सजा लेना जरूरी होता है।

27.9 मध्यांक निकालने की विधि (Method of Calculating Median)

मध्यांक ज्ञात करने की सामान्य विधि यह है कि पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में लगा लिया जाये जैसे–1, 2, 3, 4, 5 अथवा 5, 4, 3, 2, 1. इसके बाद मध्य पद को मालूम किया जाता है; इस मध्य पद का मूल्य, मान अथवा माप ही मध्यांक होता है। अथवा यदि पदों की संख्या सम (even number) में है तो मध्य में कोई पद न होने के कारण मध्य के पदों के मूल्यों को जोड़कर आधा करने से मध्यांक ज्ञात होता है।

सरल श्रेणी का मध्यांक (Median of Simple Series)

सरल श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये निम्नलिखित दो सूत्रों का प्रयोग किया जाता है।

यदि किसी श्रेणी में कुल पदों की संख्या को n मान लिया जाये, तो मध्यांक का सूत्र इस प्रकार होगा–

(अ) यदि n सम संख्या (odd number) में है तो

$$\text{मध्यांक } Me = \frac{n+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

(ब) यदि n विषम संख्या (even number) में है तो

$$\text{मध्यांक } Me \ \frac{1}{2}\left[\frac{n}{2} \text{ वें पद का मान } + \left(\frac{n}{2}+1\right) \text{ वें पद का मान}\right]$$

उदाहरण 8. एक परीक्षा में 9 विद्यार्थियों के निम्न प्राप्तांकों का मध्यांक निर्धारित कीजिए–

25, 15, 23, 40, 27, 25, 23, 25, 20

हल–उपरोक्त प्रश्न के आधार पर मध्यांक ज्ञात करने के लिये हम सर्वप्रथम उक्त प्राप्तांकों को आरोही क्रम (Ascending order) में रखेंगे। ऐसा तब किया जायेगा जबकि कुल पदों की संख्या (n) विषम (odd number) में हो। प्राप्तांकों को आरोही क्रम में रखने से स्थिति इस प्रकार होगी–

नोट

क्रम संख्या	पद-मूल्य
1	15
2	20
3	23
4	23
5	25
6	25
7	25
8	27
9	40
$n = 9$	

चूँकि यहाँ पदों की कुल संख्या विषम (odd) अर्थात् 9 है, इसलिये मध्यांक निर्धारित करने का सूत्र होगा–

$$Me = \frac{n+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

$$= \frac{9+1}{2} \text{ वें पद का मान}$$

$$= \frac{10}{2} \text{ वें पद का मान} = 5 \text{ वें पद का मान अर्थात् } 25$$

मध्यांक $Me = 25$

खण्डित श्रेणी का मध्यांक (Median of Discrete Series)

खण्डित श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये उसी सूत्र का प्रयोग किया जाता है जिसका कि सरल श्रेणी (विषम संख्या) में। अर्थात् $Me = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान होता है। इसमें केवल पदों की कुल संख्या (n) मालूम करने के लिये संचयी आवृत्ति (cumulative frequency) निकालनी पड़ती है। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी–

उदाहरण 9. एक कारखाने के श्रमिकों की साप्ताहिक मजदूरी निम्नवत है। आप उससे मजदूरी का मध्यांक ज्ञात कीजिए–

साप्ताहिक मजदूरी (डालरों में)	श्रमिकों की संख्या
25	25
26	70
27	210
28	275

नोट

29	430
30	550
31	340
32	130
33	90
34	55
35	25

हल–चूँकि उपरोक्त सारणी में साप्ताहिक मजदूरी आरोही क्रम (ascending order) से दिया हुआ है, इसलिये मजदूरी का मध्यांक निकालने के लिये हमें केवल श्रमिकों की संख्या की संचयी आवृत्ति निकालनी होगी। अंतिम संचयी आवृत्ति स्वभावतः ही आवृत्तियों का कुल योग (n) होगा। इस प्रकार n मालूम हो जाने के बाद सूत्र $\frac{n+1}{2}$ के आधार पर हम उस पद को मालूम कर लेंगे जिसका मान या मूल्य ही मजदूरी का मध्यांक होगा। यह पद मालूम हो जाने के बाद हम यह देखते हैं कि उस पद की स्थिति संचयी आवृत्ति की किस संख्या में है। उसी संख्या के सामने जो मजदूरी है, वही उस पद का मान अर्थात् मजदूरी का मध्यांक होगा। निम्नलिखित हल (solution) से इस स्थिति का और भी स्पष्टीकरण हो सकेगा–

सूत्र– $Me = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{2200+1}{2} = \frac{2201}{2}$ वें पद का मान

$= 1100.5$ वें पद का मान

सारणी 27.6

साप्ताहिक मजदूरी (डालरों में)	**श्रमिकों की संख्या (आवृत्ति)**	**संचयी आवृत्ति**
25	25	25
26	70	(25 + 70) = 95
27	210	(95 + 210) = 305
28	275	(305 + 275) = 580
29	430	(580 + 430) = 1010
30	550	(1010 + 550) = 1560
31	340	(1560 + 340) = 1900
32	130	(1900 + 130) = 2030
33	90	(2030 + 90) = 2120
34	55	(2120 + 55) = 2175
35	25	(2175 + 25) = 2200
	n = 2200	

चूँकि 1100.5वां पद संचयी आवृत्ति के 1.560 वाले पद में सम्मिलित है (क्योंकि उससे ऊपर 1010 है जो कि 1100.5 से छोटा है), इसीलिये इसी 1560वें पद से संबंधित मजदूरी अर्थात् 30 डॉलर मध्यांक हुआ।

इस रूप में मजदूरियों का मध्यांक = 30 डॉलर

अखण्डित श्रेणी का मध्यांक (Median of Continuous Series)

अखण्डित श्रेणी का मध्यांक निकालने के लिये सर्वप्रथम खण्डित श्रेणी की तरह $\frac{n}{2}$ (formula) के आधार पर न कि $\frac{n+1}{2}$ सूत्र के आधार पर वर्गान्तर में मध्यांक की स्थिति ज्ञात की जाती है। जिस वर्गान्तर में मध्यांक स्थित होता है उसे मध्यांक वर्गान्तर कहते हैं। मध्यांक वर्गान्तर (Median class interval) पता लग जाने के बाद अखण्डित श्रेणी का मध्यांक निम्न सूत्र द्वारा निकाला जाता है–

$$Me = L + \frac{\frac{n}{2} - F}{f} \times i$$

उपरोक्त सूत्र में Me = मध्यांक

L = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा

n = आवृत्तियों का कुल योग

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति

F = मध्यांक वर्गान्तर से पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति

t = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर

उदाहरण 10. अग्रलिखित बंटन में मध्यांक के मान ज्ञात कीजिये–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या
100–200	15
200–300	33
300–400	63
400–500	83
500–600	100

हल–उपरोक्त सारणी के आधार पर मध्यांक की गणना करने के लिये सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति का पता लगाना होगा, जैसा कि निम्नलिखित सारणी में दिखलाया गया है–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या (आवृत्ति)	संचयी आवृत्ति
100–200	15	15
200–300	33	(15 + 33) = 48
300–400	63	(48 + 63) = 111

नोट

400–500	83	(111 + 83) = 194
500–600	100	(194 + 100) = 294
	n = 294	

उपरोक्त गणना के आधार पर अब हम मध्यांक वर्गान्तर का पता लगा सकते हैं अर्थात् उस वर्गान्तर को ज्ञात कर सकते हैं जिसमें कि मध्यांक की स्थिति है।

मध्यांक, वर्गान्तर $= \frac{n}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{294}{2} = 147$वें पद का मान

इस 147वें पद की स्थिति संचयी आवृत्ति में 194 में है जिसका कि वर्गान्तर 400–500 है। यही मध्यांक वर्गान्तर है। अब मध्यांक की गणना हम निम्न सूत्र के आधार पर कर सकते हैं–

$$Me = L + \frac{\frac{n}{2} - F}{f} \times i$$

उपरोक्त गणना के आधार पर–

L = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा = 400

n = आवृत्तियों का कुल योग = 294

F = मध्यांक वर्गान्तर से पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति = 111

i = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर

= (500–400) = 100

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति = 83

$$\therefore \quad Me = 400 + \frac{\frac{294}{2} - 111}{83} \times 100$$

$$= 400 + \frac{147 - 111}{83} \times 100$$

$$= 400 + \frac{36}{83} = 400 + \frac{3600}{83}$$

$$= 400 + 43.37 = 443.37$$

अत: आय का मध्यांक = 443.37 रुपये।

उदाहरण 11. उपरोक्त उदाहरण में दिये गये प्रश्न को हम मध्यांक गणना के एक अन्य लोकप्रिय सूत्र के आधार पर भी हल कर सकते हैं। इस सूत्र को ही आजकल अधिक प्रयोग में लाया जाता है जो कि इस प्रकार है–

$m = l + \frac{i}{f}(m - c)$ अथवा $Me = l + \frac{i}{f}\left(\frac{n}{2} - c\right)$ उपरोक्त सूत्र में

l = मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा (lower limit of median class)

नोट

t = मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर (class interval of median class)

f = मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति (frequency of the median class)

m = मध्यांक संख्या (median number *i.e.*, $n/2$)

c = मध्यांक वर्गान्तर से तुरंत पूर्व वर्ग की संचयी आवृत्ति स्मरण रहे कि अखण्डित श्रेणी में वर्गान्तर में मध्यांक की स्थिति $\frac{n+1}{2}$ सूत्र के आधार पर नहीं अपितु $n/2$ सूत्र के आधार पर ज्ञात की जाती है।

हल–अब हम उपरोक्त आधार पर दिये गये प्रश्न को निम्न प्रकार से हल कर सकते हैं–

आय (रुपयों में)	व्यक्तियों की संख्या (आवृत्ति)	संचयी आवृत्ति
100–200	15	15
200–300	33	48
300–400	63	111
400–500	83	194
500–600	100	294
	n = 294	

∴ मध्यांक वर्गान्तर = $\frac{n}{2}$ वें पद का मान

= $\frac{294}{2}$ = 147वें पद का मान

इस 147वें पद की स्थिति संचयी आवृत्ति में 194 में है जिसका कि वर्गान्तर 400–500 है। यही मध्यांक वर्गान्तर होगा। अब मध्यांक की गणना उपरोक्त सूत्र के आधार पर इस प्रकार की जायेगी–

$$Me = l + \frac{i}{f}(m - c)$$

यहाँ l = 400 (मध्यांक वर्गान्तर की निम्नतर सीमा)

i = 100 (मध्यांक वर्गान्तर की उच्चतर व निम्नतर सीमाओं का अंतर)

(500–400 = 100)

f = 83 (मध्यांक वर्गान्तर की आवृत्ति)

m = 147 (मध्यांक संख्या $\frac{n}{2}$)

c = 111 (मध्यांक वर्गान्तर से तुरंत पूर्व वर्गान्तर की संचयी आवृत्ति)

$$\therefore \quad Me = 400 + \frac{100}{83}(147 - 111)$$

$$` = 400 + \frac{100}{83} \times 36 = 400 + \frac{3600}{83}$$

$$= 400 + 43.37 = 443.37$$

अतः आय का मध्यांक =443.37 रुपये।

मध्यांक के गुण (Merits of Median)

मध्यांक के कुछ गुण निम्नलिखित हैं–

(1) मध्यांक बहुत सरलता से मालूम किया जा सकता है; और साथ ही इसे समझना भी आसान है। पदों को एक क्रम से लगा देने पर मध्यांक की स्थिति का मान आसानी से ज्ञात हो सकता है क्योंकि इसकी स्थिति बीचोंबीच में होती है।

(2) मध्यांक दिये हुए पदों का ही एक अंश होता है। इसलिये वह सम्पूर्ण समूहों का उचित प्रतिनिधित्व करता है। इसका मान सभी पदों पर आधारित होता है।

(3) यदि पदों की संख्या मालूम हो तो बिना समस्त पदों का परिणाम जाने ही मध्यांक ज्ञात किया जा सकता है। मध्यांक मालूम करने के लिये अन्तिम पदों की आवृत्तियाँ जानना भी आवश्यक नहीं है, केवल पदों की संख्या मालूम होनी चाहिये।

(4) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक पर किसी बहुत बड़ी संख्या या छोटी संख्या का अनुचित प्रभाव नहीं पड़ता है।

(5) कुछ अधिक पदों को जोड़ देने पर भी मध्यांक का आकार अधिक बदल नहीं जाता है।

(6) मध्यांक उस समय अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है जबकि अध्ययन का विषय या तथ्य की प्रकृति ऐसी हो जिसे कि निश्चित इकाइयों में मापा नहीं जाता है; जैसे कि बच्चे की बुद्धि आदि।

मध्यांक के दोष (Demerits of Median)

उपरोक्त गुण होते हुए भी मध्यांक के कुछ अपने दोष निम्नवत् हैं–

(क) बीजगणितीय तरीकों से मध्यांक ज्ञात नहीं किया जा सकता अर्थात् यदि दो या दो से अधिक श्रेणियों का केवल मध्यांक अलग-अलग ज्ञात हो तो उनका सम्मिलित मध्यांक ज्ञात नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, उन विभिन्न मध्यांकों से कोई एक ऐसा सामान्य मध्यांक नहीं निकाला जा सकता जो उन सभी श्रेणियों का उचित प्रतिनिधित्व कर सके। इसका कारण यह है कि एक श्रेणी का मध्यांक, जो उस श्रेणी का मध्य मूल्य होता है, दूसरी श्रेणी के मध्य मूल्य से पूर्णतया पृथक् होगा।

(ख) समान्तर माध्य की भाँति मध्यांक भी कभी-कभी वास्तविक स्थिति का निरूपण नहीं करता है अर्थात् मध्यांक किसी भी इकाई पर पूर्णरूप से लागू न हो क्योंकि श्रेणी में मध्यांक की स्थिति एक ऐसे स्थान पर हो सकती है जहाँ पर बहुत कम या कोई भी पद उसे मिलता-जुलता न हो।

(ग) पदमाला में बहुत ज्यादा अन्तर या विचलन होने पर कभी-कभी मध्यांक प्रतिनिधि मात्र नहीं होता अर्थात् पदों के विस्तार में बहुत ज्यादा भिन्नता होने पर परिणाम भ्रामक हो सकता है।

27.10 बहुलक (Mode)

किसी पदमाला या श्रेणी शृंखला में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसी मूल्य को बहुलक (Mode) कहते हैं। इस प्रकार बहुलक पदमाला का सर्वाधिक सामान्य मूल्य होता है। यह पदमाला का ऐसा मूल्य या परिणाम है जो दिए हुए आँकड़ों में सबसे अधिक बार आता है अथवा वह परिमाण है जिसके आसपास पदमाला के मूल्य अधिक बार एकत्रित रहते हैं। बहुलक का सबसे सरल अभिप्राय यह है कि उस मूल्य को प्राप्त करने वाले सबसे अधिक व्यक्ति हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी परीक्षा में दस विद्यार्थियों को क्रमशः 7, 9, 7, 5, 8, 12, 7, 6, 8 अंक प्राप्त हुए हों तो 7 बहुलक कहलाएगा क्योंकि यह संख्या सबसे अधिक बार प्राप्त की गई है या इसे प्राप्त करने वाले बालकों की संख्या सबसे अधिक है। निम्नलिखित परिभाषाओं से बहुलक का अर्थ और भी स्पष्ट हो जाएगा।

बहुलक की परिभाषा (Definition of Mode)

श्री गिलफोर्ड (Gilford) ने बहुलक की परिभाषा इस प्रकार दी है– "बहुलक माप के पैमाने पर वह बिन्दु है जहाँ कि एक वितरण में सर्वाधिक आवृत्ति होती है।"

डॉ० चतुर्वेदी (Chaturvedi) ने लिखा है कि "बहुलक को चल (variable) का वह आकार जो सर्वाधिक बार आया है या सर्वाधिक आवृत्ति की बिन्दु अथवा सर्वाधिक घनत्व की बिन्दु कहकर परिभाषित किया जाता है। किसी श्रेणी (series) में बहुलक उस पद का वह मूल्य है जो कि सबसे अधिक विशिष्ट (characteristic) या सामान्य है।"

अपने दैनिक जीवन में हम लोगों को कहते हुए सुनते हैं कि एक भारतीय की औसत ऊँचाई 5' 6'' है; भारतीयों का रंग काला होता है; औसतन आदमी ईमानदार होता है; औसतन पृष्ठ में 300 शब्द होते हैं इत्यादि। इन सभी वाक्यों में 'औसत' शब्द वास्तव में बहुलक को ही प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि भारतीय की औसत ऊँचाई 5' 6'' होती है तो उसका तात्पर्य यह है कि भारतवासियों की ऊँचाई सबसे अधिक बार सम्मिलित है अथवा 5' 6'' ऊँचाई वाले भारतवासियों की संख्या भारत में सबसे अधिक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. किसी .... या श्रेणी शृंखला में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसी मूल्य को बहुलक कहते हैं।
5. बहुलक माप के पैमाने पर वह बिंदु है जहाँ कि एक वितरण में सर्वाधिक .... होती है।
6. अपने दैनिक जीवन में हम लोगों को कहते हुए सुनते हैं कि एक भारतीय की औसत-ऊँचाई .... होती है।

बहुलक की विशेषतायें (Characteristics of Mode)

उपरोक्त परिभाषाओं व विवेचना के आधार पर बहुलक की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है–

(1) बहुलक एक श्रेणी (series) के सभी पदों पर आधारित होता है अत: उस पर पदमाला की बहुत छोटी या बहुत बड़ी संख्या (मूल्य) का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) बहुलक आवृत्ति पर निर्भर है। इसीलिये पदों की अपेक्षा आवृत्ति का पदमूल्य होता है जिसकी आवृत्ति या बारम्बारता (frequency) सर्वाधिक है। अत: यह सबसे छोटा अधिक महत्त्व बहुलक ज्ञात करने में होता है।

(3) बहुलक पदमाला का सबसे अधिक मूल्य वाला पद नहीं होता, अपितु वह पदमूल्य भी हो सकता है।

(4) एक पदमाला में अधिकतम समान आवृत्ति वाले कई पदमूल्य होने पर बहुलक ज्ञात करना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में एक से अधिक बहुलक का उल्लेख करना पड़ता है। जैसे– 1, 3, 4, 4, 6, 7, 6, 10, 7, 4, 7 में दो बहुलक 4 तथा 7 हैं।

बहुलक निकालना (Computation of Mode)

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि बहुलक की गणना अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि यह उस पद का मूल्य है जिसकी आवृत्ति एक पदमाला में सबसे अधिक है। अत: किसी भी पदमाला को व्यवस्थित ढंग से सजा लेने पर यह पता लग सकता है कि किस पद की आवृत्ति सबसे अधिक है। निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा हम बहुलक निकालने की विधियों पर प्रकाश डालेंगे।

नोट

सरल श्रेणी का बहुलक (Mode of Simple Series)

सरल श्रेणी का बहुलक निकालना अत्यन्त सरल है क्योंकि इसके लिये केवल विभिन्न पदों के मान अनुसार पदों को क्रम से लगा लेना होता है और जिस पद की बारम्बारता या आवृत्ति सबसे अधिक होती है वही बहुलक कहलाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा–

उदाहरण 12. निम्न पद-मूल्यों से बहुलक ज्ञात कीजिए–

33, 20, 35, 50, 37, 33, 35, 25, 35, 34 और 35

हल–पद-मूल्यों को एक क्रम से रखने पर स्थिति इस प्रकार होगी–

20, 25, 33, 33, 34, 35, 35, 35, 35, 37, 50

उपरोक्त क्रम से यह स्पष्ट है कि 35 सबसे अधिक बार प्रयोग हुआ है अर्थात् इसकी आवृत्ति सर्वाधिक है। अत: उपरोक्त पद-मूल्यों का यही 35 बहुलक होगा।

$\therefore \qquad Mo = 35$

नोट्स बहुलक (mode) के लिये संकेताक्षर *Mo* के स्थान पर Z का प्रयोग भी किया जाता है।

खण्डित श्रेणी का बहुलक (Mode of Discrete Series)

खण्डित श्रेणी में बहुलक को दो रीति या विधि से हल किया जा सकता है–

(अ) निरीक्षण या परिदर्शन विधि (Inspection Method)

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि (Grouping Method)

निरीक्षण या परिदर्शन विधि–इस विधि में आवृत्तियों पर नजर डालकर यह देख लिया जाता है कि कौन-सी आवृत्ति सबसे अधिक है। उस सर्वाधिक आवृत्ति का जो मान या मूल्य होता है, वही बहुलक होता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी।

समूहीकरण विधि को लागू करते हुए खण्डित श्रेणी का बहुलक निकालने के लिए सबसे पहले पदों को एक क्रम से लगा लिया जाता है, उसके पश्चात् इनके सम्मुख आवृत्तियाँ लिख दी जाती हैं। पहले आवृत्तियों को दो-दो करके, फिर तीन-तीन करके, फिर अधिक जोड़कर विभिन्न कालमों (खानों) में लिख देते हैं। इस प्रकार वर्गों में बाँट देने से यह पता लग जाता है कि किस पद की आवृत्ति सबसे अधिक है।

उदाहरण 13. निम्नलिखित सारणी से बहुलक की गणना कीजिए–

पदों का मान	आवृत्ति
5	1
9	7
13	11
17	5
7	2

11	9
19	4
15	8

(अ) निरीक्षण या परिदर्शन विधि (Inspection Method) द्वारा बहुलक की गणना करने के लिये, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हम सर्वप्रथम यह देखेंगे कि कौन-सी आवृत्ति (frequency) सबसे अधिक है। जो आवृत्ति सबसे अधिक होगी उसका जो मान या मूल्य दिया होगा, वही बहुलक भी होगा। उपरोक्त प्रश्न में 11 आवृत्ति सबसे अधिक है। अत: आवृत्ति 11 का जो पद-मान 13 × है, वही हमारा बहुलक होगा।

अत: $Mo = 13$ **उत्तर**

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि (Grouping Method) द्वारा बहुलक की गणना निम्नलिखित रूप में की जायेगी। पर यहाँ यह स्मरणीय है कि बहुलक की गणना चाहे वह निरीक्षण (परिदर्शन) विधि से किया जाए अथवा समूह (समूहीकरण) विधि से; दोनों ही दशा में उत्तर एक-सा ही होगा। यह बात निम्नलिखित गणना से स्पष्ट हो जाएगी–

आवृत्तियाँ

	1	2	3	4	5	6
5	1					
		3		10		
7	2					
			9		18	
9	7					
		16				27
11	9					
			[20]	[28]		
13	[11]					
		[19]			24	
15	8					
			13			
17	5					17
		9				
19	4					

(1) सबसे पहले दिए हुए पदों के मान को एक क्रम से (जैसे 5, 7, 9, 11 इत्यादि) सजाकर लिख लिया और उनके प्रत्येक के सामने संबंधित आवृत्ति को लिख दिया जैसे कि कालम 1 में किया गया है।

(2) फिर आवृत्तियों के दो-दो के जोड़े लेकर उनके योग को कालम 2 में लिख दिया। जैसे – 1 + 2 = 3; 7 + 9 = 16; 11 + 8 = 19 आदि।

(3) तत्पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर दो-दो के जोड़े लेकर उन आवृत्ति के योग को कालम

नोट

3 में लिख दिया। जैसे प्रथम आवृत्ति 1 है, उसे छोड़कर दो-दो का जोड़ा 2 + 7 = 9, 9 + 11 = 20, 8 + 5 = 13 कालम 3 में लिखा गया है। चूँकि अंत की आवृत्ति 4 का कोई जोड़ा नहीं है इसलिये उसे छोड़ दिया गया है।

(4) इसके बाद आवृत्तियों के तीन-तीन के जोड़े लेकर उनके योग को कालम 4 में रख दिया। जैसे 1 + 2 + 7 = 10, 9 + 11 + 8 = 28 कालम 4 में लिखे गये हैं। चूँकि आवृत्ति 5 और 4 का तीसरा जोड़ा नहीं है इसलिये इसको छोड़ दिया गया है।

(5) तत्पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़ों का योग कालम 5 में लिख दिया। जैसे प्रथम आवृत्ति 1 है, उसे छोड़कर तीन-तीन का जोड़ा 3 + 7 + 9 = 19, 11 + 8 + 5 = 24 कालम 5 में लिखा गया है। अंत की आवृत्ति 4 का जोड़ा न बनने के कारण छोड़ दिया गया है।

(6) इसके बाद प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़े का योग कालम 6 में लिख दिया। जैसे प्रथम दो आवृत्ति 1 और 2 को छोड़ दिया और फिर तीन-तीन का जोड़ा बनाकर 7 + 9 + 11 = 27, 8 + 5 + 4 = 17 कालम 6 में लिख दिया गया।

(7) इस प्रकार पूर्ण सारणी बन जाने के बाद हम उससे यह पता कर सकते हैं कि प्रत्येक कालम में आवृत्तियों की कौन-सी संख्या सबसे बड़ी है। कालम 1 में 11 सबसे बड़ी संख्या है, कालम 2 में 19 सबसे बड़ी संख्या है, कालम 3 में 20, कालम 4 में 28; कालम 5 में 24 और कालम 6 में 27 सबसे बड़ी संख्या हैं जिन्हें कि हमने उपरोक्त सारणी में एक कोष्ठक के अंदर दिखाया है। इनमें से प्रत्येक संख्या के सामने पदों के जो मान हैं उन्हें हम निम्नलिखित सारणी में इस प्रकार दिखा सकते हैं–

सारणी 27.7

विश्लेषण सारणी (Analysis Table)

कालम नं०	**अधिकतम आवृत्ति वाले पद का मान**				
1			13		
2			13	15	
3		11	13		
4		11	13	15	
5			13	15	17
6	9	11	13		
आवृत्ति संख्या	1	3	6	3	1

उपरोक्त सारणी 17 B इस प्रकार तैयार की गई है–

सारणी के कालम 1 की आवृत्तियों को देखने से पता चलता है कि 11 सबसे बड़ी संख्या है इसलिये उपरोक्त सारणी में उसके सामने वाले पद का मान 13 सारणी के कालम 1 के सामने लिख दिया गया है। कालम 2 में 19 सबसे बड़ी संख्या है जोकि 11 और 8 का योग है और इन 11 और 8 के सामने के पदों का मान क्रमशः 13 और 15 है। इसीलिये उपरोक्त सारणी में कालम 2 के सामने 13 और लिखा गया है। कालम 3 में 20 सबसे बड़ी संख्या है जोकि 9 और 11 का योग है और उनसे संबंधित पदों का मान क्रमशः 11 और 13 है जिसे सारणी में कालम 3 के सामने लिख दिया गया है। सारणी के कालम 4 में आवृत्तियों की सबसे बड़ी संख्या 28 है जो कि 9, 11 और 8 का योग है और इनसे संबंधित पदों का मान 11, 13 और 15 है जिन्हें कि सारणी में कालम 4 के सामने लिख दिया गया है। इसी प्रकार कालम

5 और 6 को भी भर लिया गया है और फिर आवृत्ति संख्याओं के योग को सारणी के सबसे नीचे दिखाया गया है। इस योग से पता चलता है कि 13 की आवृत्ति सबसे अधिक 6 बार हुई है। अत: 13 बहुलक है।

बहुलक की गणना प्रस्तुत करने का एक दूसरा तरीका–

उदाहरण 14. निम्नलिखित वितरण का बहुलक ज्ञात कीजिये–

आकार : 10 12 18 30 32 35 27 33 36 45 50

आवृत्ति : 4 7 3 2 5 9 8 3 5 2 6

उपरोक्त प्रश्न का हल एक ही सारणी के माध्यम से इस प्रकार भी प्रस्तुत किया जा सकता है–

आकार	आवृत्ति (f)	दो-दो के जोड़े (दो बार)		तीन-तीन के जोड़े (तीन बार)			विश्लेषण (Analysis)
	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
10	4						
		11					
12	7		10	14			
18	3				12		
		5				10	I = 1
30	2						III = 3
32	5		7				~~IIII~~ = 6
		14		16			IIII = 4
35	9				22	20	
27	8		17				II = 2
		11					
33	3			16			I = 1
		7			10	13	
37	5		8				
45	2						
			8				
50	6						

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि आवृत्तियों का विश्लेषण करने पर आवृत्ति 9 की विश्लेषण संख्या 6 बार आती है, जो कि सबसे अधिक है, अत: आवृत्ति 9 का मूल्य ही बहुलक होगा।

$\therefore \quad Mo = 35$

उपरोक्त रूप में प्रश्न को हल करने की विधि–

(1) सर्वप्रथम आवृत्ति के दो-दो जोड़े लेकर उनके योग को कालम 2 में लिखना होगा, जैसे 4 + 7 = 11, 3 + 2 = 5 आदि। यदि अंत में दो का जोड़ा नहीं बन पाये, तो उप पद या संख्या को छोड़ दिया जायेगा। जैसे अंतिम संख्या 7 को छोड़ दिया गया है।

नोट

(2) इसके पश्चात् प्रथम आवृत्ति को छोड़कर दूसरी बार फिर दो-दो के जोड़े लेकर उसके योग को कालम 3 में लिखा जायेगा। जैसे उपरोक्त सारणी में प्रथम आवृत्ति 4 है, तो उसे छोड़कर आगे की आवृत्तियों का दो-दो का जोड़ा अर्थात् 2 + 5 = 7 आदि कालम 3 में लिखेंगे। इसमें भी यदि अंत में जोड़ा नहीं गया तो उसे छोड़ देंगे।

(3) उसके बाद आवृत्तियों के तीन-तीन के जोड़े लेकर उनका योग कालम 4 में लिखेंगे, जैसे 4 + 7 + 3 = 14, 2 + 5 + 9 = 16 इत्यादि। ऐसा करते हुए यदि अंत में तीन का जोड़ा नहीं बनता, अर्थात् आवृत्ति केवल एक या दो ही रह जाती है, तो उसे छोड़ दिया जायेगा।

(4) इसके बाद प्रथम आवृत्ति को छोड़कर फिर तीन-तीन के जोड़े लेकर उसका योग कालम 5 में लिखा जायेगा जैसे 7 + 3 + 2 = 12 आदि। इसमें भी यदि अंत में तीन-तीन का जोड़ा नहीं बनता है, तो उसे छोड़ दिया जायेगा।

(5) इसके बाद प्रथम दो आवृत्तियों को छोड़कर तीसरी बार फिर तीन-तीन के जोड़े लेकर उसके योग को कालम 6 में लिखा जायेगा जैसे 3 + 2 + 5 = 10, 9 + 8 + 3 = 20 आदि। इसमें भी यदि अंत में तीन-तीन का जोड़ा न बन पाये तो उसे छोड़ देंगे।

(6) तत्पश्चात् विश्लेषण करते समय कालम 1 से कालम 6 तक की आवृत्तियों को ध्यान में रखना होगा। कालम 1 में जो आवृत्ति सबसे अधिक होगी, विश्लेषण करते समय कालम 7 में उसके सामने एक निशान लगायेंगे। उदाहरणार्थ, कालम 1 में 9 आवृत्ति सबसे अधिक है, अतः 9 के सामने कालम 7 में एक निशान लगायेंगे। इसके बाद कालम 2, 3, 4, 5, 6 में जिन आवृत्तियों का योग सबसे अधिक होगा और वह जोड़ कालम 1 में दिये गये जिन आवृत्तियों के सामने कालम 7 में एक-एक निशान लगायेंगे। उदाहरणार्थ, कालम 2 में योग 14 सबसे अधिक है और यह योग कालम 1 के 5 और 9 का है, इसलिये 5 और 9 के आगे कालम 7 में एक-एक निशान लगायेंगे। उसी प्रकार कालम 3 में योग 17 सबसे अधिक है और यह योग कालम 1 के 9 और 8 का है, इसलिये 9 और 8 के आगे कालम 7 में एक-एक निशान लगाया जायेगा।

(7) इस प्रकार विश्लेषण करने के पश्चात् कालम 7 में जिस आवृत्ति के सामने अधिक निशान होंगे, उसका जो पद-मूल्य या मान (Value) होगा, वही हमारा बहुलक होगा। उदाहरणार्थ, उपरोक्त सारणी में विश्लेषण वाले कॉलम में सर्वाधिक 6 निशान 9 आवृत्ति के सामने लगाये गये हैं। अतः 9 का मूल्य जोकि उपरोक्त सारणी में 35 है, वही बहुलक होगा।

अखण्डित श्रेणी का बहुलक (Mode of Continuous Series)

अखण्डित श्रेणी का बहुलक मालूम करने के लिये सबसे पहले निरीक्षण द्वारा उस वर्गान्तर (class interval) का पता लगाना चाहिये जिसमें बहुलक स्थित है। यदि बहुलक एक से अधिक है या निरीक्षण द्वारा बहुलक का पता नहीं चल रहा है तो उपरोक्त विधि, जैसा कि सारणी में दिखाया गया है, से बहुलक के वर्गान्तर का पता लगाना चाहिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र द्वारा बहुलक ज्ञात करना चाहिए।

$$Mo = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times i$$

इस सूत्र में–

Mo = बहुलक

L = बहुलक वर्गान्तर की निम्न सीमा

i = बहुलक वर्गान्तर की उच्चतम और निम्नतम सीमाओं का अंतर

f = बहुलक वर्गान्तर की आवृत्ति

f_1 = बहुलक वर्गान्तर से पहले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

f_2 = बहुलक वर्गान्तर से अगले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति

उदाहरण 15. निम्नांकित तालिका में एक कक्षा के 40 विद्यार्थियों के प्राप्तांक दिये गये हैं। आप निरीक्षण विधि (Inspection Method) तथा समूहीकरण विधि (Grouping Method) द्वारा बहुलक ज्ञात कीजिये।

प्राप्तांक	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
विद्यार्थियों की संख्या	5	4	8	6	2	6	7	2

हल–(अ) निरीक्षण विधि द्वारा बहुलक की गणना इस प्रकार की जाएगी–

प्राप्तांक	**विद्यार्थियों की संख्या** (f)
0–10	5
10–20	4 (f_1)
20–30	8 (f)
30–40	6 (f_2)
40–50	2
50–60	6
60–70	7
70–80	2

प्रस्तुत प्रश्न में सबसे अधिक आवृत्ति 8 है, और इस आवृत्ति का मूल्य 20–30 वर्गान्तर में दिया हुआ है। अतः इस वर्गान्तर का वास्तविक मूल्य निकालने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा।

$$Mo = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times i$$

इस प्रकार L = 20 (बहुलक वर्गान्तर की निम्नतम सीमा)

f = 8 (बहुलक वर्गान्तर की आवृत्ति)

f_1 = 4 (बहुलक वर्गान्तर से पहले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति)

f_2 = 6 (बहुलक वर्गान्तर से अगले वाले वर्गान्तर की आवृत्ति)

i = 10 (बहुलक वर्गान्तर का अंतर (30 – 20 = 10)।

उपरोक्त मान को सूत्र में रखने पर–

$$Mo = 20 + \frac{8-4}{28-4-6} \times 10$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{4}{16-4-6} = 10$$

नोट

$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{41}{6}$

$\therefore \quad Mo = 20 + 6.67 = 26.67$

अतः बहुलक $(Mo) = 26.67$

(ब) समूहन या समूहीकरण विधि द्वारा बहुलक की गणना इस प्रकार की जायेगी–

प्राप्तांक	विद्यार्थियों की संख्या		दो-दो के जोड़े (दो बार)		तीन-तीन के जोड़े (तीन बार)			विश्लेषण (Analysis)
	(f)	(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
0–10	5							I = 1
			9					
10–20	4	(f_1)			17			II = 2
				12				
20–30	8	(f)				18		~~IIII~~ I = 5
			14					
30–40	6	(f_2)		8			16	III = 3
40–50	2		8		4			I = 1
50–60	6					15		I = 1
60–70	7			13				
70–80	2						15	I = 1

उपरोक्त सारणी में आवृत्ति 8 का विश्लेषण 5 बार आया है, जो कि सबसे अधिक है। अतः इसका मूल्य 20–30 (जोकि वर्गान्तर में है) में वास्तविक मूल्य ज्ञात करने के लिये अग्रांकित सूत्र का प्रयोग किया जायेगा।

$$MoL = L + \frac{f - f_1}{2f - f_1 - f_2} \times i$$

$$Mo = 20 + \frac{8-4}{8 \times 2 - 4 - 6} \times 10$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + \frac{4}{16-4-6} \times 10$$

$$Mo = 20 + \frac{40}{6}$$

$$\therefore \quad Mo = 20 + 6.67$$

अतः बहुलक $(Mo) = 26.67$

> *नोट्स* समूहीकरण (Grouping) करने के लिए यहाँ वही नियम लागू होगा जोकि खण्डित श्रेणी (Discrete series) में समूहीकरण करते समय लागू हुआ था। साथ ही, यह भी स्मरणीय है कि बहुलक की गणना चाहे निरीक्षण विधि से की जाए अथवा समूहीकरण विधि से, दोनों ही दशाओं में उत्तर एक ही होगा।

बहुलक के गुण (Merits of Mode)

(1) बहुलक पदमाला का सर्वाधिक प्रतिनिधि मान होता है क्योंकि बहुलक वही होता है जिसकी आवृत्ति पदमाला में सर्वाधिक होती है।

(2) इसका अर्थ सरलता से समझा जा सकता है। बहुलक वह अंक है जो कि सबसे अधिक मात्रा में एक पदमाला में पाया जाता है।

(3) बहुलक की गणना शीघ्रता, सरलता एवं यथार्थता से की जा सकती है।

(4) बहुलक का एक उल्लेखनीय गुण यह है कि इस पर श्रेणी माला में विद्यमान कोई बहुत बड़ी संख्या या बहुत छोटी संख्या का कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि बहुलक तो वह है जो सबसे अधिक बार एक श्रेणी में सम्मिलित है।

(5) न्यूनतम एवं अधिकतम पदों की संख्या व मान को मालूम किये बिना ही बहुलक मालूम किया जा सकता है बशर्ते कि वे पद बहुलक वर्ग के पद नहीं हैं।

(6) बहुलक की गणना ग्राफ की सहायता से बहुत सरलता से की जा सकती है।

(7) बड़े पैमाने में उत्पादन करने वाले उत्पादकों के लिये बहुलक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि बहुलक के आधार पर ही वह उत्पादन के आकार को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिये, बाजार में हमें उन मापों के जूते ही देखने को मिलते हैं जोकि अधिकांश लोगों के पैर में फिट हो सकते हैं। यदि किसी का पैर अस्वाभाविक रूप से बड़ा है तो उसे बाजार में जूता नहीं मिलता। यही बात सिले-सिलाये कपड़े के बारे में कही जा सकती है।

बहुलक के दोष (Demerits of Mode)

(1) बहुलक पर बीजगणित का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी गणना आवृत्तियों के आधार पर की जाती है।

(2) बहुलक में न्यूनतम और अधिकतम पदमूल्यों की अवहेलना की जाती है जिसके फलस्वरूप बहुलक से इनके विषय में कोई अनुमान नहीं लगाया जाता।

(3) कभी-कभी बहुलक का निश्चित माप सरलता से ज्ञात नहीं होता है। कठिनाई उस अवस्था में विशेष रूप से पड़ती है जबकि एक पदमाला में एक से अधिक बहुलक होते हैं।

(4) बहुलक पदमाला के सभी पदमूल्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता बल्कि उन्हीं का करता है जिनकी कि आवृत्ति सबसे अधिक हो। उदाहरणार्थ, 100 विद्यार्थियों में 5 विद्यार्थियों के अंक तीन-तीन हैं जबकि अन्य सभी विद्यार्थियों के अंक एक-दूसरे से अलग-अलग हैं, परन्तु तीन से बहुत अधिक हैं। उस अवस्था में बहुलक 3 होगा जोकि केवल 5 विद्यार्थियों के अंकों का प्रतिनिधित्व करेगा, न कि शेष 95 विद्यार्थियों का।

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि माध्य, मध्यांक तथा बहुलक उन प्रतिनिधि अंकों के द्योतक हैं जोकि अनेक आंकड़ों के बीच की स्थिति को व्यक्त करते हैं और इस बात की ओर संकेत करते हैं कि उन आँकड़ों की माध्य प्रवृत्ति क्या है। जब अनेक आँकड़ों के बीच हमारा निष्कर्ष एक ठोस स्थिति को प्राप्त करने में हिचकिचाता है। उस अवस्था में माध्य प्रवृत्तियाँ हमारे लिये मार्गदर्शक का कार्य करती हैं, हमें अपनी सुनिश्चित निष्कर्ष से विचलित होने से बचाती हैं तथा भ्रमपूर्ण ज्ञान से और अवैज्ञानिकता के अन्धकार से बचाती हैं। एक वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये यह कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह तो वही जानते हैं जोकि वास्तव में वैज्ञानिक हैं, वैतालिक नहीं।

27.11 सारांश (Summary)

- माध्य संपूर्ण श्रेणियों का प्रतिनिधित्व करने वाला और केंद्रीय मूल्य को प्रकट करने वाला एक अंक

नोट

होता है जोकि उन श्रेणियों के न्यूनतम एवं अधिकतम मूल्य के बीच की एक स्थिति में होता है।

- माध्यों के प्रकार–(*a*) स्थिति माध्य-बहुलक, मध्यांक (*b*) गणितीय माध्य–समान्तर माध्य, ज्यामितीय या गुणोत्तर माध्य, हरात्मक माध्य, समीकरण माध्य (*c*) अन्य व्यावहारिक माध्य, भ्रमित माध्य, प्रगतिशील माध्य।
- समान्तर माध्य कुल पदों के माप के योग को पदों की संख्या से भाग देकर निकाला जाता है।
- मध्यिका या मध्यांक किसी पद शृंखला से वह बिन्दु होता है जो संपूर्ण शृंखला व श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है।
- किसी पदमाला व श्रेणी या शृंखला में जिस मूल्य की आवृत्ति सबसे अधिक होती है उसी मूल्य को बहुलक कहते हैं।

27.12 शब्दकोश (Keywords)

1. **माध्य (Mean)**–माध्य वह मूल्य है जो किसी संख्यात्मक पदों के मूल्य के योग में श्रेणी के पदों की संख्या का भाग देने से प्राप्त होता है।
2. **माध्यिका (Median)**–मध्यका एक समंक माला का वह चल-मूल्य है जो समूह को बराबर भागों में इस प्रकार बाँटता है कि एक भाग के सारे मूल्य दूसरे भाग से कम होते हैं।
3. **बहुलक या भूयिष्ठिक (Mode)**–श्रेणी में सर्वाधिक आने वाले मूल्य को भूयिष्ठिक या बहुलक कहते हैं।

27.13 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सांख्यिकीय माध्य का अर्थ एवं उपयोगिता को बताएँ।
2. सांख्यिकीय माध्य के उद्देश्य तथा प्रकारों का वर्णन करें।
3. समान्तर माध्य निकालने की विधियों को बताएँ।
4. समान्तर माध्य के गुण तथा दोषों को बताएँ।
5. माध्यिका का अर्थ तथा मध्यांक निकालने की विधियों का वर्णन करें।
6. मध्यांक के गुण तथा दोषों का वर्णन करें।
7. बहुलक का अर्थ तथा विशेषताओं को बताएँ।
8. बहुलक निकालने की विधियों को बताएँ।
9. बहुलक के गुण तथा दोषों को बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. औसत	2. औसत या समांतर माध्य
3. समांतर माध्य	4. पदमाला
5. आवृत्ति	6. 5' 6"।

27.14 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शोध प्रविधि–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।
2. शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

इकाई–28: विचलन की माप : मानक विचलन
(Measures of Dispersion : Standard Deviation)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 विचलन या विक्षेपण की माप (Measures of Variation or Dispersion)

28.2 चतुर्थांशीय विचलन (Quartile Deviation)

28.3 चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक (Coefficient of Quartile Deviation)

28.4 माध्य विचलन (Mean Deviation)

28.5 माध्य विचलन की गणना (Calculation of Mean Deviation)

28.6 सरल श्रेणी (Simple Series)

28.7 खंडित श्रेणी (Discrete Series)

28.8 मानक विचलन (Standard Deviation)

28.9 विचलन का महत्त्व (Importance of Variability)

28.10 सारांश (Summary)

28.11 शब्दकोश (Keywords)

28.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

28.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- विचलन के अर्थ की जानकारी।
- विचलन की माप किस प्रकार की जाती है? इसके बारे में जानकारी।
- माध्य विचलन तथा मानक विचलन की गणना विधि की जानकारी।

प्रस्तावना (Introduction)

विचलन तथ्यों की एक श्रेणी में पाए जाने वाले समान, अभिन्न व स्थिर तथ्यों को प्रकट करता है। विचलन की सहायता से ही सामाजिक अनुसंधान में इस सामाजिक घटनाओं के समान व स्थिर तत्वों की जानकारी करते हैं और उसी के आधार पर भिन्नताओं के संबंध में भी एक स्पष्ट धारणा को पनपाते हैं।

विचलन हमारी भविष्यवाणी करने की शक्ति को बढ़ा देता है अर्थात् विचलन का ज्ञान हो जाने पर एक तथ्य के

नोट

भविष्य के विषय में अनुमान लगाना हमारे लिए सरल हो जाता है। विचलन हमें अपने सुनिश्चित निष्कर्ष से विचलित होने से बचाता है, बचाता है भ्रमपूर्ण ज्ञान से।

28.1 विचलन या विक्षेपण की माप (Measures of Variation or Dispersion)

विचलन का अर्थ (Meaning of Variation)

विचलन अथवा विक्षेपण (Dispersion) वह गुण है जिससे यह ज्ञात होता है कि पदों के मान उनके मध्यमानों (या माध्य, मूल्यों) से किस सीमा तक विचलित हैं। यह सच है कि माध्य मूल्यों (माध्य, मध्यांक व बहुलक) से सम्पूर्ण श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का पता लग जाता है। परन्तु इसके द्वारा श्रेणी के विभिन्न पदमूल्यों का पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान विशेषकर उस अवस्था में नहीं हो पाता है जबकि मध्यमान तथा अन्य पदमूल्यों में अधिक अन्तर होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो अनेक स्थल ऐसे आते हैं जहाँ मध्यमान भ्रामक परिणाम प्रदान करता है। उदाहरणार्थ : यदि किसी परिवार के पांच व्यक्तियों की आमदनी क्रमश: 20, 60, 200, 50 और 70 रुपये हो तो उनकी आमदनी का मध्यमान 80 रु० हुआ। यदि हमें इन पांचों आंकड़ों का पृथक्-पृथक् ज्ञान न हो तो मध्यमान के आधार पर हम यही समझेंगे कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की आमदनी 80 या 80 रुपये के आसपास होगी जबकि वास्तविक स्थिति इससे कहीं भिन्न है। अत: ऐसी दशाओं में किसी ऐसे माप (Measure) की आवश्यकता पड़ती है जो अधिक-से-अधिक पदमूल्यों की जानकारी करा दे अर्थात् पदमूल्यों का मध्यमान से कितना विचलन है। इन्हीं मापों को विचलन के माप कहा जाता है।

विचलन के अर्थ को एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए, दो विद्यार्थियों के चार विषयों में प्राप्तांक 28, 60, 60, 92 और 56, 60, 60, 64 हैं जबकि प्रत्येक विषय में पूर्णांक 100 और पास होने के लिये 33 अंक आवश्यक हैं। इन विद्यार्थियों के स्तर को जानने के लिए यदि समान्तर माध्य ज्ञात करें तो उसका मान दोनों विद्यार्थियों के लिए 60 आता है। अत: इस आधार पर दोनों विद्यार्थियों का स्तर समान प्रतीत होता है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है क्योंकि पहला विद्यार्थी पहले विषय में अनुत्तीर्ण (failed) है, जबकि दूसरा विद्यार्थी प्रत्येक विषय में उत्तीर्ण है। अत: स्पष्ट है कि केवल मध्यमान के आधार पर ही श्रेणी के स्परूप का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता।

क्या आप जानते हैं यह भी जानना आवश्यक है कि श्रेणी का प्रत्येक पद माध्य से कितनी दूरी पर है या कितना बिखरा हुआ है। इस बिखराव को ही विचलन या विक्षेपण कहते हैं।

विचलन की मापें (Measuring of Dispersion)

विचलन की मुख्य मापें इस प्रकार हैं–

(1) परिसर (Range)

(2) चतुर्थांशीय विचलन (Quartile Deviation)

(3) माध्य विचलन (Mean Deviation)

  (क) समान्तर माध्य से

  (ख) मध्यांक से

  (ग) बहुलक से

(4) मानक विचलन (Standard Deviation)

परिसर (Range)

किसी श्रेणी या पदमाला के उच्चतम तथा निम्नतम पदों के अन्तर को परिसर कहते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी समूह में 17, 10, 13, 5, 8, 20 और 25 अंक हैं तो उच्चतम पद अर्थात् 25 और निम्नतम पद अर्थात् 5 का अन्तर (25–5)=20 अंक इस श्रेणी का परिसर है।

परिसर की अपनी उपयोगिताएं हैं, जैसे (1) किसी श्रेणी से उसका प्रसार बहुत ही शीघ्रता से ज्ञात किया जा सकता है। केवल उच्चतम व न्यूनतम अंकों को ही ढूँढ़ना पड़ता है। (2) प्रसार के आधार पर यह जाना जा सकता है कि श्रेणी के पदमूल्य किन-किन अंकों के बीच फैले हुए हैं। इतना होते हुए भी परिसर का प्रयोग शीघ्रता व सरलता की दृष्टि से तो किया जा सकता है, परन्तु परिणाम की शुद्धता इससे प्राप्त नहीं की जा सकती। इसीलिये परिसर को विचलन-मापन का एक मोटा (crude or rough) साधन समझा जाता है। साथ ही, परिसर पर श्रेणी में विद्यमान बहुत बड़े या बहुत छोटे अंक (मान) का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

28.2 चतुर्थांशीय विचलन (Quartile Deviation)

दी हुई चल (variable) राशि के N मानों को यदि आरोही (ascending) अथवा अवरोही (descending) क्रम में रख दिया जाये तो श्रेणी के $\frac{N+1}{4}$ वें पद के मान को प्रथम चतुर्थांशीय मान Q_1 (first quartile), $2\frac{(N+1)}{4}$ वें पद के मान को द्वितीय चतुर्थांशीय मान (Q_2) अथवा मध्यांक तथा $3\frac{(N+1)}{4}$ वें पद के मान को तृतीय चतुर्थांशीय मान (Q_3) कहते हैं। प्रथम तथा तृतीय चतुर्थांशीय मानों के अंतर का आधा चुतर्थांशीय विचलन (Quartile Deviation) होता है जिसे कि निम्न सूत्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है–

$$\text{चतुर्थांशीय विचलन} = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

उदाहरण 1. निम्नलिखित प्राप्तांकों का चतुर्थांशीय विचलन ज्ञात कीजिये–

10, 17, 12, 28, 24, 22, 15, 30, 35, 38, 20

हल–प्राप्तांकों को आरोही क्रम से रखने पर–

10, 12, 15, 17, 20, 22, 24, 28, 30, 35, 38

चूँकि उपरोक्त प्राप्तांकों के 11 पद हैं इसलिये यहाँ $N = 11$

∴ $Q_3 = \frac{11+1}{4}$ वें पद का मान

$= 3$ वें पद का मान

अर्थात् $Q_1 = 15$

तथा $Q_2 = \frac{3\,(11+1)}{4}$ वें पद का मान

$= \frac{3 \times 12}{4}$ वें पद का मान

$= 9$ वें पद का मान

नोट

अर्थात् $Q_3 = 30$

अर्थात् चतुर्थांशीय विचलन $= \frac{Q_3 - Q_1}{2}$

$= \frac{30-15}{2}$

$=$ 7.5 अंक

28.3 चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक (Coefficient of Quartile Deviation)

विभिन्न श्रेणियों के विचलनों की तुलना करने के लिये चतुर्थांशीय विचलन का उपयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह एक निरपेक्ष (absolute) माप है। इसके आधार पर बनाया गया सापेक्ष माप (relative measure) चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक है जिसका सूत्र इस प्रकार है–

चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक $= \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार–

चतुर्थांशीय विचलन का गुणांक $= \frac{30-15}{30+15}$

$= \frac{15}{45}$

$= \frac{1}{3}$

28.4 माध्य विचलन (Mean Deviation)

माध्य विचलन माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का समांतर माध्य (Mean) होता है। इसीलिए सर्वश्री घोष तथा चौधरी (Ghosh and Chowdhury) ने लिखा है कि माध्य से विचलनों के योग को पदों की संख्या से भाग देने पर जो परिणाम प्राप्त होता है उसे माध्य विचलन कहते हैं। अर्थात् एक माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का विचलन निकाला जाए, फिर उनके योग को मालूम किया जाए और अंत में उस योग को पदों की संख्या से भाग दिया जाए तो जो परिणाम निकलेगा वही माध्य विचलन होगा। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) यह गणितीय विधि से प्राप्त किया जाता है तथा श्रेणी की प्रत्येक इकाई को लेकर निकाला जाता है।

(2) विचलन माध्य से निकाला जाता है चाहे वह माध्य समांतर माध्य (Mean), मध्यांक (Median) या बहुलक (Mode) हो। यदि विचलन समांतर माध्य से ज्ञात किया गया है तो उसे समांतर माध्य से माध्य विचलन कहते हैं। उसी प्रकार यदि विचलन मध्यांक अथवा बहुलक से मालूम किया गया है तो उसे क्रमशः मध्यांक से माध्य विचलन अथवा बहुलक से माध्य विचलन कहते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. माध्य विचलन माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का .... होता है।
2. एक माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का विचलन निकाला जाए, फिर उनके योग को मालूम किया जाए और अंत में उस योग को पदों की संख्या से भाग दिया जाए तो जो परिणाम निकलेगा वही .... होगा।
3. .... से निकाला जाता है चाहे वह माध्य समांतर माध्य, मध्यांक या बहुलक हो।

28.5 माध्य विचलन की गणना (Calculation of Mean Deviation)

माध्य विचलन की गणना निम्नलिखित सूत्रों द्वारा की जाती है–

(अ) यदि सरल श्रेणी का माध्य निकालना है तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$\delta = \frac{\sum d}{n}$$

उपरोक्त सूत्र में संकेताक्षर δ = माध्य विचलन

$\sum d$ = माध्य (चाहे वह समांतर माध्य हो अथवा मध्यांक या बहुलक) से पद मूल्यों के विचलनों का योग।

n = पदों का कुल योग।

(ब) यदि खंडित श्रेणी अथवा अखंडित श्रेणी का माध्य निकालना है तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$\delta = \frac{\sum f\, d}{n} \quad \text{अथवा} \quad \frac{\sum fd}{\sum f}$$

उपरोक्त सूत्र में संकेताक्षर δ = माध्य विचलन

f = पदों की आवृत्ति

d = माध्य (चाहे वह समांतर माध्य हो अथवा मध्यांक या बहुलक) से प्रत्येक पद मूल्य का विचलन

$f\, d$ = पदों की आवृत्ति तथा विचलन का गुणनफल

$\sum fd$ = उपरोक्त गुणनफलों का योग

$\sum f$ या n = आवृत्तियों का कुल योग।

आइये, उपरोक्त सूत्रों के आधार पर अब कुछ सवालों को वास्तविक रूप में हल करके देखें।

28.6 सरल श्रेणी (Simple Series)

सरल श्रेणी का माध्य विचलन निकालने के लिए–

(क) सर्वप्रथम माध्य (प्रश्न के अनुसार समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) की गणना करनी होगी।

(ख) प्रत्येक पद मूल्य से समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक का विचलन (जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर d से दर्शाया जाता है) मालूम करना होगा।

(ग) इसके पश्चात् उपरोक्त विचलनों का योग ($\sum d$) ज्ञात करना होगा।

(घ) फिर पदों की कुल संख्या का योग (जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर n से दर्शाया जाता है) निकालना होगा।

(ङ) अंत में $\sum d/n$ सूत्र लगाकर माध्य विचलन की गणना करनी होगी।

> *क्या आप जानते हैं* समांतर माध्य से माध्य विचलन निकालने के लिए सर्वप्रथम समांतर माध्य निकालना होगा।

प्रश्न हल करने के उपरोक्त नियम निम्नलिखित उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

उदाहरण 2. एक कारखाने के कुछ कर्मचारियों की साप्ताहिक मजदूरी निम्न तालिका में दिये हुए हैं। आप समांतर माध्य मध्यांक तथा बहुलक को आधार मानते हुए माध्य विचलन अलग-अलग ज्ञात कीजिए।

साप्ताहिक मजदूरी (रुपयों में) –120, 135, 142, 135, 140, 155, 135, 125, 146, 160, 150

नोट

हल– (*i*) समांतर माध्य को आधार मानकर–प्रस्तुत प्रश्न में समांतर माध्य से माध्य विचलन निकालने के लिए सर्वप्रथम समांतर माध्य निकालना होगा, जो कि निम्न प्रकार होगा–

मजदूरी का योग– $\sum x = 120 + 135 + 142 + 135 + 148 + 155 + 135 + 125 + 146 + 160 + 150 = \sum x = 1551$।

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$\therefore$ समांतर माध्य $(M) = \frac{\sum x}{n} = \frac{1551}{11} = 141$

$\therefore$ $M = 141$ रुपये

अब इस समांतर माध्य को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न तालिका बनानी होगी–

मजदूरी (रु० में) (*X*)	**समांतर माध्य (*M*)**	**(*X* – *M*) = '*d*'***
120	141	(120 – 141) = 21
135	141	(135 – 141) = 6
142	141	(142 – 141) = 1
135	141	(135 – 141) = 6
148	141	(148 – 141) = 7
155	141	(155 – 141) = 14
135	141	(135 – 141) = 6
125	141	(125 – 141) = 16
146	141	(146 – 141) = 5
160	141	(160 – 141) = 19
150	141	(150 – 141) = 9
$n = 11$		$\sum d = 110$

नोट्स इसके गणना में + अथवा – का कोई ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं।

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन निम्न रूप में ज्ञात करेंगे–

माध्य विचलन (M.D.) or $\delta = \frac{\sum d}{n}$

यहाँ, $\sum d = 110$

$\delta = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$\therefore$ $\delta = \frac{110}{11} = 10$

$= 10$

अत: माध्य विचलन $(\delta) = 10$ रुपये

***(ii)* मध्यांक को आधार मानकर–**प्रस्तुत प्रश्न में मध्यांक से माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम मध्यांक ज्ञात करना होगा, जो इस प्रकार होगा–

मजदूरियों का आरोही क्रम (Ascending Order) में लगाने पर–

120, 125, 135, 135, 135, 142, 146, 148, 150, 155, 160

$\therefore$ मध्यांक (Me) $= \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

यहाँ, $n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$\therefore$ $Me = \frac{11+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{12}{2} = 6$ वें पद का मान

यहाँ 6वें पद का मान = 142

अत: मध्यांक (Me) = 142 रुपये

अब इस मध्यांक को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए हमें निम्न तालिका बनानी होगी–

मजदूरी (रु० में) (*X*)	**समांतर माध्य (*Mo*)**	**(*X* – *Mo*) = (*d*)***
120	142	(120 – 142) = 22
125	142	(125 – 142) = 17
135	142	(135 – 142) = 7
135	142	(135 – 142) = 7
135	142	(135 – 142) = 7
142	142	(142 – 142) = 0
146	142	(146 – 142) = 4
148	142	(148 – 142) = 6
150	142	(150 – 142) = 8
155	142	(155 – 142) = 13
160	142	(160 – 142) = 18
$n = 11$		$\Sigma d = 109$

नोट्स इसके गणना में + अथवा – का कोई ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं।

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन ज्ञात करेंगे–

$$\delta = \frac{\Sigma d}{n}$$

यहाँ, $\Sigma d = 109$

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$$\therefore \quad \delta = \frac{\Sigma d}{n}$$

नोट

$$= \frac{109}{11}$$

$$= 9.91$$

अतः माध्यम विचलन (δ) = 9.91 रुपये

***(iii)* बहुलक को आधार मानकर–**प्रस्तुत प्रश्न में बहुलक से माध्य विचलन ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम बहुलक ज्ञात करना होगा, जो निम्न प्रकार से ज्ञात किया जायेगा–

मूल्यों को एक क्रम में रखने पर–

120, 125, 135, 135, 135, 142, 146, 148, 150, 155, 160 ।

उपरोक्त क्रमों से स्पष्ट है, कि यहाँ पर 135 सबसे अधिक बार प्रयोग हुआ है, और इसकी आवृत्ति सर्वाधिक अर्थात् तीन बार है। अतः यही बहुलक होगा–

$\therefore \qquad Mo = 135$ रुपये

अब इस बहुलक को ध्यान में रखते हुए माध्य विचलन ज्ञात करने के लिये हमें निम्न तालिका बनाना होगा–

मजदूरी रु० में (*x*)	**बहुलक मूल्य (*Mo*)**	**(*x* – *Mo*) = (*d*)***
120	135	(120 – 135) = 15
125	135	(125 – 135) = 10
135	135	(135 – 135) = 0
135	135	(135 – 135) = 0
135	135	(135 – 135) = 0
142	135	(142 – 135) = 7
146	135	(146 – 135) = 11
148	135	(148 – 135) = 13
150	135	(150 – 135) = 15
155	135	(155 – 135) = 20
160	135	(160 – 135) = 25
***n* = 11**		**Σ*d* = 116**

नोट्स इसके गणना में + अथवा – का कोई ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं।

अब माध्य विचलन का सूत्र लगाते हुए माध्य विचलन ज्ञात करेंगे–

$$\delta = \frac{\sum d}{n}$$

यहाँ, $\sum d = 116$

$n = 11$ (मजदूरों की संख्या)

$$\therefore \qquad \delta = \frac{116}{11}$$

$$= 10.54$$

अत: माध्य विचलन (δ) = 10.54 रुपये

> *नोट्स* यदि माध्य विचलन, चाहे उसकी गणना समांतर माध्य, मध्यांक या बहुलक को आधार मानकर की जाए, तो यह आवश्यक नहीं कि हर हालत में सबका उत्तर एक ही होगा–उत्तर एक भी हो सकता है और अलग-अलग भी।

28.7 खंडित श्रेणी (Discrete Series)

खंडित श्रेणी में माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए–

(अ) सर्वप्रथम माध्य (सवाल के अनुसार समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) की गणना करनी होगी।

(ब) फिर प्रत्येक पद-मूल्य से माध्य (समांतर माध्य अथवा मध्यांक या बहुलक) का विचलन जिसे कि सूत्र में संकेताक्षर d के रूप में दर्शाया जाता है, मालूम करना होगा।

(स) इसके बाद प्रत्येक पद (आवृत्ति) (जिसे कि सूत्र में f के रूप में दर्शाया गया है) तथा उससे संबंधित विचलन (d) के गुणनफल (fd) को ज्ञात करना होगा।

(द) फिर इन समस्त गुणनफलों को जोड़कर उनका योग (Σfd) मालूम करना होगा।

(य) इसके बाद आवृत्तियों (f) के कुल योग Σf अथवा n को ज्ञात करना होगा।

(इ) अंत में $\frac{\Sigma fd}{\Sigma f}$ अथवा $\frac{\Sigma fd}{n}$ का सूत्र लगाकर माध्य विचलन की गणना करनी होगी।

प्रश्न हल करने के उपरोक्त नियम निम्नलिखित उदाहरणों से और भी स्पष्ट हो जायेंगे–

उदाहरण 3. सांख्यिकी के कुछ विद्यार्थियों ने निम्न प्राप्तांक प्राप्त किये हैं–आप माध्य विचलन, समांतर माध्य, मध्यांक तथा बहुलक को आधार मानते हुए निकालिये।

प्राप्तांक–	12	25	27	30	35	15	40	45	50	35
विद्यार्थियों की संख्या–	4	3	2	2	5	8	9	6	7	4

हल– (*i*) समांतर माध्य को आधार मानकर–उपरोक्त प्रश्न को समांतर माध्य द्वारा माध्य विचलन निकालने के लिये सर्वप्रथम समांतर माध्य की गणना करनी होगी, जो इस प्रकार होगी–

सारणी 28.1

प्राप्तांक (x)	विद्यार्थियों की संख्या (f)	$f.x$ (गुणनफल)
12	4	(12 × 4) = 48
25	3	(25 × 3) = 75
27	2	(27 × 2) = 54
30	2	(30 × 2) = 60
35	5	(35 × 5) = 175
15	8	(15 × 8) = 120

नोट

40	9	(40 × 9) = 360
45	6	(45 × 6) = 270
50	7	(50 × 7) = 350
35	4	(35 × 4) = 140
योग	Σf = 50	Σdx = 1652

समांतर माध्य का सूत्र–

$$= M \frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$$

$$= \frac{1652}{50}$$

$$= 33.04$$

अत: समांतर माध्य = 33 लगभग

अब इस समांतर माध्य (M) 33 को आधार मानते हुए इसका प्राप्तांक (x) से विचलन ($x - M$) = d मालूम करना होगा। इसके बाद विद्यार्थियों की आवृत्ति (f) तथा विचलन (d) को गुणा करके $f. d$ ज्ञात करना होगा। अंत में $\Sigma fd/\Sigma f$ अथवा $\Sigma fd/n$ सूत्र का उपयोग करते हुए माध्य विचलन की गणना करनी होगी। निम्नलिखित सारणी में इसी का स्पष्टीकरण है–

प्राप्तांक (x)	**विद्यार्थियों की संख्या (f)**	**प्राप्तांक से माध्य का विचलन ($x - m$) = d***	**विद्यार्थियों की संख्या तथा विचलन का गुणनकल ($f. d$)**
12	4	(12 – 33) = 21	(4 × 21) = 84
25	3	(25 – 33) = 8	(3 × 8) = 24
27	2	(27– 33) = 6	(2 × 6) = 12
30	2	(30 – 33) = 3	(2 × 3) = 6
35	5	(35 – 33) = 2	(5 × 2) = 10
15	8	(15 – 33) = 18	(8 × 18) = 144
40	9	(40 – 33) = 7	(9 × 7) = 63
45	6	(45 – 33) = 12	(6 × 12) = 72
50	7	(50 – 33) = 17	(7 × 17) = 119
35	4	(35 – 33) = 2	(4 × 2) = 8
योग	**Σf = 50**		**Σfd = 542**

माध्य विचलन (M. D.) का सूत्र–

$$\delta = \frac{\Sigma f d}{\Sigma f} = \frac{542}{50} = 10.84$$

अत: माध्य विचलन = 10.84

***(ii)* मध्यांक को आधार मानकर**–उपरोक्त प्रश्न में माध्य विचलन की गणना यदि मध्यांक को आधार मानकर की जाए, तो सर्वप्रथम हमें मध्यांक ज्ञात करना होगा जिसकी गणना निम्न प्रकार से की जायेगी–

सारणी 28.2

प्राप्तांक (*x*)	विद्यार्थियों की संख्या (*f*)	संचयी आवृत्ति (*f f f*)
12	4	4
25	3	(4 + 3) = 7
27	2	(7 + 2) = 9
30	2	(9 + 2) = 11
35	5	(11 + 5) = 16
15	8	(16 + 8) = 24
40	9	(24 + 9) = 33
45	6	(33 + 6) = 39
50	7	(39 + 7) = 46
35	4	(46 + 4) = 50
योग	***n* = 50**	

मध्यांक का सूत्र– $Me = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

$= \frac{50+1}{2} = \frac{51}{2} = 25.5$वें पद का मान

चूँकि यह 25.5वाँ पद संचयी आवृत्ति के 33 वाले पद में सम्मिलित है (क्योंकि उससे ऊपर 24 है जो कि 25.5 से छोटा है), इसलिये इसी 33वें पद से संबंधित प्राप्तांक का मान अर्थात् 40 मध्यांक होगा।

$\therefore \quad Me = 40$

अब हम इस मध्यांक (Me) 40 को आधार मानकर इससे प्राप्तांक (x) के विचलन ($x - Me$) = d ज्ञात करेंगे। अंत में माध्य विचलन का सूत्र लगाकर माध्य विचलन (δ) की गणना करेंगे। निम्न गणनात्मक विवरण इसी का स्पष्टीकरण है–

प्राप्तांक (*x*)	विद्यार्थियों की संख्या (*f*)	प्राप्तांक से मध्यांक का विचलन (*x* – *Me*) = *d**	विद्यार्थियों की संख्या तथा विचलन का गुणनकल (*f*. *d*)
12	4	(12 – 40) = 28	(4 × 28) = 112
25	3	(25 – 40) = 15	(3 × 15) = 45
27	2	(27– 40) = 13	(2 × 13) = 26
30	2	(30 – 40) = 10	(2 × 10) = 20
35	5	(35 – 40) = 5	(5 × 5) = 25
15	8	(15 – 40) = 25	(8 × 25) = 200
40	9	(40 – 40) = 0	(9 × 0) = 0

नोट

28.8 मानक विचलन (Standard Deviation)

इसको प्रमाप विचलन भी कहा जाता है। संकेत के रूप में इसे S. D. अथवा σ (Small sigma) से व्यक्त किया जाता है। माध्य विचलन निकालने में एक बड़ा दोष यह रह जाता है कि हम विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिह्न पर कोई ध्यान नहीं देते और विचलन को धनात्मक मान लेते हैं। मानक विचलन में इस दोष को दूर किया जाता है। विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिह्नों के अंतर को समाप्त करने के लिये विचलन का वर्ग (Square) निकाल लिया जाता है और तब मानक विचलन ज्ञात करते हैं।

टास्क मानक विचलन किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

मानक विचलन की गणना (Compution of Standard Deviation)

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये हम निम्नलिखित गणना करते हैं।

(1) सर्वप्रथम हम समांतर माध्य से प्राप्त विचलनों का वर्ग (d^2) ज्ञात कर लेते हैं।

(2) विचलनों के वर्गों का योग ज्ञात करते हैं (Σd^2)

(3) इस योग को पदों की संख्या (N) से भाग देते हैं $\frac{\Sigma d^2}{N}$

(4) प्राप्त संख्या का वर्गमूल ज्ञात कर लेते हैं $\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$

इस प्रकार मानक विचलन का सूत्र है–

$$\text{S. D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$$

हम d को और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसे $(x - M)$ लिख सकते हैं इस प्रकार

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma (x - M)^2}{N}}$$

यहाँ σ = मानक विचलन

x = चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

M = पदों का समांतर माध्य

N = पदों की कुल संख्या

d = $(x - M)$

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$ से मानक विचलन ज्ञात करने को प्रत्यक्ष विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात करना कहा जाता है। यदि दिये गये पदों का समांतर माध्य पूर्ण संख्या नहीं आती तो d का मान दशमलव में आता है अत: गणना कठिन हो जाती है। इस स्थिति से बचने के लिये हम संक्षिप्त विधि का प्रयोग करते हैं।

संक्षिप्त विधि का सूत्र–

$$\text{S. D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma(x-A)^2}{N} - \left\{\frac{\Sigma(x-A)}{N}\right\}^2}$$

इस सूत्र में

x = चल राशि अर्थात् पद माला के विभिन्न पद का मान

A = कल्पित माध्य

N = पदों की कुल संख्या

यदि हम $(x - A)$ को d' से व्यक्त करें तो सूत्र इस प्रकार हो जायेगा–

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d'^2}{N}\left(\frac{\Sigma d'}{N}\right)^2}$$

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये सूत्र (i) और सूत्र (ii) का प्रयोग सरल श्रेणी (Simple Series) के लिये किया जाता है। खंडित श्रेणी (Discrete Series) तथा सतत श्रेणी (Continuous Series) में मानक विचलन (S.D.) ज्ञात करने के लिये इन सूत्रों में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है–

खंडित श्रेणी (Discrete Series) में सूत्र–

(*i*) प्रत्यक्ष विधि में

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f d^2}{N}}$$

उपरोक्त सूत्र में

σ = मानक विचलन

f = पदों की आवृत्तियाँ

$d = (x - M)$ जहाँ M समांतर माध्य है

N = आवृत्तियों का कुल योग

(*ii*) संक्षिप्त विधि का सूत्र–

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f' d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma f' d}{N}\right)^2}$$

उपरोक्त सूत्र में

σ = मानक विचलन

f' = पदों की आवृत्तियाँ

$d = (x - A)$ जहाँ A एक कल्पित माध्य है

N = आवृत्तियों का कुल योग

सतत श्रेणी (Continuous Series) में सूत्र–

(*i*) प्रत्यक्ष विधि

$$\sigma = \frac{\Sigma f d^2}{N}$$

नोट

σ = मानक विचलन

f = पदों की आवृत्तियाँ

d = प्रत्येक वर्गांतर के मध्य बिंदु (x) से समांतर माध्य का अंतर अर्थात् ($x - M$) जहाँ x प्रत्येक वर्गांतर (Class Interval) का मध्य बिंदु है।

N = आवृत्तियों का कुल योग

(*ii*) संक्षिप्त विधि का सूत्र

$$\sigma = i\sqrt{\frac{\Sigma f d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma f d}{N}\right)^2}$$

इस सूत्र को और अधिक सरल करने पर इसका रूप इस प्रकार भी हो सकता है–

$$\sigma = \frac{i}{N}\sqrt{N\Sigma f d^2 - (\Sigma f d)^2}$$

उपरोक्त सूत्र में

σ = मानक विचलन

t = वर्ग विस्तार

f = पदों की आवृत्तियाँ

d = प्रत्येक वर्गांतर के मध्य बिंदु (x) से समांतर माध्य का अंतर अर्थात् ($x - M$) जहाँ x प्रत्येक वर्गान्तर (Class interval) का मध्य बिंदु है।

मानक विचलन ज्ञात करने के लिये इन सूत्रों के प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिये हम यहाँ प्रत्येक प्रकार की श्रेणी का उदाहरण लेंगे।

(अ) सरल श्रेणी (Simple Series)

उदाहरण 4. निम्नलिखित प्राप्तांकों का मानक विचलन ज्ञात कीजिए–

10, 12, 14, 16, 18, 20, 22, 24, 26, 28, 30, 32

हल–प्रत्यक्ष विधि से इस प्रश्न को इस प्रकार हल किया जायेगा–

सूत्र– $\sigma = \frac{\Sigma d^2}{N}$

प्राप्तांक (X)	माध्य (M) से विचलन (d) यहाँ माध्य = 21	विचलन का वर्ग (d^2)
10	–11	121
12	–9	81
14	–7	49
16	–5	25
18	–3	9
20	–1	1
22	+1	1

नोट

24	+3	9
26	+5	25
28	+7	49
30	+9	81
32	+11	121
$\Sigma x = 252$ $N = 12$		$\Sigma d^2 = 572$

समांतर माध्य $(M) = \frac{\Sigma x}{N}$

$$M = \frac{25^2}{12} = 21$$

मानक विकलन $(\sigma) = \sqrt{\left(\frac{\Sigma d^2}{N}\right)}$

यहाँ $\Sigma d^2 = 572$

$N = 12$

सूत्र में मान रखने पर

$$\sigma = \sqrt{\frac{572}{12}}$$

$$= \sqrt{47.66}$$

$\therefore$ $\sigma = 6.9$ लगभग

यदि इस प्रश्न को हम संक्षिप्त विधि (Short-cut Method) से हल करना चाहें तो हल (Solution) इस प्रकार होगा–

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d'}{N}\right)^2}$

माना दिए गए प्राप्तांकों का कल्पित माध्य (A) 20 है।

प्राप्तांक (x)	**कल्पित माध्य (A) = 20 से प्राप्तांक (x) का विचलन d'**	**विचलन (d') का वर्ग d'^2**
10	− 10	100
12	− 8	64
14	− 6	36
16	− 4	16
18	− 2	4
20	− 0	0

नोट

22	+ 2	4
24	+ 4	16
26	+ 6	36
28	+ 8	64
30	+ 10	100
32	+ 12	144
$N = 12$	$\sum d' = 12$	$\sum d^2 = 584$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\sum d'^2}{N} - \left(\frac{\sum d'}{N}\right)^2}$$

प्रश्न में

$$\sum d'^2 = 584$$
$$\sum d' = 12$$
$$N = 12$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{584}{12} - \left(\frac{12}{12}\right)^2}$$

$$\sigma = \sqrt{48.66 - (1)^2}$$

$$= \sqrt{48.66 - 1}$$

$$= \sqrt{47.66}$$

$\sigma = 6.9$ (लगभग)

(ब) खंडित श्रेणी (Discrete Series)

उदाहरण 5. निम्नलिखित प्राप्तांक और उनके नीचे उनकी आवृत्ति दी गई हैं। मानक विचलन (Standard Deviation) की गणना कीजिए।

प्राप्तांक:	21	20	19	18	17	16	15	14	13	12	11	10	9	8	7	6	5 (Score)
आवृत्ति (frequency)	1	0	0	2	1	2	3	2	3	4	6	8	7	5	2	1	3

हल–(Solution)

प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)

सूत्र $\sigma = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$

नोट

प्राप्तांक (x)	आवृत्ति (f)	$f \times x$ $= fx$	विचलन $d(x-M)$ $M=11$	$f \times d$ $= fd$	fd^2 $fd \times d$
21	1	21	10	10	100
20	0	0	9	0	0
19	0	0	8	0	0
18	2	36	7	14	98
17	1	17	6	6	36
16	2	32	5	10	50
15	3	45	4	12	48
14	2	28	3	6	18
13	3	39	2	6	12
12	4	48	1	4	4
11	6	66	0	0	0
10	8	80	– 1	– 8	8
9	7	63	– 2	– 14	28
8	5	40	– 3	– 15	45
7	2	14	– 4	– 8	32
6	1	6	– 5	– 5	25
5	3	15	– 6	– 18	108
N (Σf) = 50		Σfx = 550		Σfd^2 = 612	

समांतर माध्य M $= \frac{\Sigma fx}{N}$

$\Sigma fx = 550, \quad N = 50$

$$M = \frac{550}{50}$$

$M = 11$

मानक विचलन $(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$

$\Sigma fd^2 = 612, \quad N = 50$

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{612}{50}}$$

$$(\sigma) = \sqrt{12.4}$$

$= 3.5$ (लगभग)

नोट

संक्षिप्त विधि द्वारा हल

सूत्र–

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2}$$

माना दिए गए प्राप्तांकों का कल्पित माध्य $(A) = 10$ है।

प्राप्तांक (x)	**आवृत्ति** (f)	**कल्पित माध्य** $A = 10$ **से प्राप्तांकों का विचलन** d'	$fxd' = fd'$	$fd' \, xd' = fd'^2$
21	1	11	11	121
20	0	10	0	0
19	0	9	0	0
18	2	8	16	128
17	1	7	7	49
16	2	6	12	72
15	3	5	15	75
14	2	4	8	32
13	3	3	9	27
12	4	2	8	16
11	6	1	6	6
10	8	0	0	0
9	7	– 1	– 7	7
8	5	– 2	– 10	20
7	2	– 3	– 6	18
6	1	– 4	– 4	16
5	3	– 5	– 15	75
$(N\Sigma f) = 50$		$\Sigma fd' = 50$	$\Sigma fd'^2 = 662$	

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2}$$

$\Sigma fd'^2 = 662,$

$\Sigma fd' = 50, \qquad N = 50$

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{662}{50} - \left(\frac{50}{50}\right)^2}$$

$$= \sqrt{13.24 - 1}$$

नोट

$= \sqrt{12.24}$

$= 3.5$ (लगभग)

(स) अखंडित या सतत श्रेणी (Continuous Series)

उदाहरण 6: निम्नलिखित सारिणी में एक नगर में विभिन्न में आयु वर्ग में जनसंख्या वितरण को प्रदर्शित किया गया है। इसका मानक विचलन (S.D.) ज्ञात कीजिए।

आयु वर्ग	संख्या (हजारों में)
0–10	18
10–20	16
20–30	15
30–40	12
40–50	10
50–60	5
60–70	2
70 से ऊपर	1

प्रत्यक्ष विधि द्वारा हल–प्रत्यक्ष विधि में हमको सतत श्रेणी को खंडित श्रेणी में बदलना होता है इसके लिए दिए गए वर्ग अंतरालों के मध्य-बिंदु ज्ञात कर लेते हैं और फिर $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$ सूत्र का प्रयोग करते हैं।

आयु वर्ग *C.T.*	वर्गांतरों का मध्यमान (*x*)	आवृत्ति (*f*)	*B* × *x*	माध्य = 27 से वर्गान्तरों के मध्यमान का विचलन (*d*)	*fd* = *f* × *d*	*fd*² = *fd* × *d*
0–10	5	18	90	– 21	– 378	7938
10–20	15	16	240	– 11	– 176	1926
20–30	25	15	375	– 1	– 15	15
30–40	35	12	420	+ 9	108	972
40–50	45	10	450	+ 19	190	3610
50–60	55	5	275	+ 29	145	4205
60–70	65	2	130	+ 39	78	3042
70–80	75	1	75	+ 49	49	2401
		$N (\Sigma f) = 79$	$\Sigma fx = 2055$			$\Sigma fd^2 = 24119$

नोट

मध्यमान $(M) = \frac{\sum fx}{N} = \frac{2055}{79}$

$= 26$ (लगभग)

मानक विचलन (σ) $\sigma = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}} = \sqrt{\frac{24119}{79}}$

$\sigma = \sqrt{305.30}$

$\sigma = 17.47$

संक्षिप्त विधि द्वारा हल—मध्यमान पूर्ण संख्या में न होने पर deviation का मान दशमलव में आयेगा जिससे आगे की गणना कठिन हो जाती है और गलती की संभावना हो जाती है। अत: ऐसी स्थिति में संक्षिप्त विधि द्वारा मानक विचलन की गणना की जानी चाहिये। इसको हम निम्नलिखित विधि द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं।

उदाहरण 7. निम्नलिखित सारणी से मानक विचलन की गणना कीजिये—

वजन (पौण्ड में)	**व्यक्तियों की संख्या**
70–80	12
80–90	18
90–100	35
100–110	49
110–120	50
120–130	45
130–140	20
140–150	8

इस प्रश्न को संक्षिप्त विधि से हल करने के लिये हम बीच के किसी वर्ग अंतराल के मध्यमान माध्य के रूप में मान लेते हैं।

माना कल्पित माध्य $\frac{110+120}{2} = 115$ है। अब निम्नलिखित सारणी की रचना की जायेगी।

नोट

वजन (पौण्ड में) C.I.	व्यक्तियों की संख्या f	x वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु	$(X-A)$ पदों के मध्य-मान से कल्पित माध्य का विचलन	$(X-A/i)$ वर्ग विस्तार से भाग देकर कल्पित माध्य 115 से मध्य बिंदुओं का विचलन d	$fdxd$ $f \times d$	$= fd^2$
70–80	12	75	−40	−4	−48	192
80–90	18	85	−30	−3	−54	162
90–100	35	95	−20	−2	−70	140
100–110	49	105	−10	−1	−49	49
110–120	50	115	0	0	0	0
120–130	45	125	10	1	45	45
130–140	20	135	20	2	40	80
140–150	8	145	30	3	24	72
	$N = 237$				$\Sigma fd = -112$	$\Sigma fd^2 = 740$

सूत्र–

$$\sigma = i\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2} = 10\sqrt{\frac{740}{237}\left(\frac{-112}{237}\right)^2}$$

$$\sigma = 10\sqrt{3.12 - (-\cdot 47)^2} = 10\sqrt{3.12 - \cdot 211}$$

$$\sigma = 10\sqrt{2.909}, \ \sigma = 17 \text{ (लगभग)}$$

इस प्रश्न में दी गई सारिणी में वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु (x) तथा वर्ग अंतराल के मध्य-बिंदु व कल्पित माध्य के बीच विचलन प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं है। हमने इनको केवल पाठकों को समझाने हेतु उपयोग किया है।

28.9 विचलन का महत्त्व (Importance of Variability)

सांख्यिकीय अनुसंधान को एक यथार्थ स्तर तक ले जाने के लिये विचलन की गणना वास्तव में महत्त्वपूर्ण है। माध्य, मध्यांक या बहुलक से पद-मूल्यों की समस्त विशेषताओं का ज्ञान नहीं होता है और इसीलिये यह संभावना सदा बनी रहती है कि हमारा निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हो। इस भ्रम को दूर करने में विचलन की देन वास्तव में उल्लेखनीय है। वास्तव में माध्य और विचलन दोनों एक-दूसरे के पूरक होते हैं और एक के बिना दूसरा कुछ अधूरा-सा ही रह जाता है। माध्य और विचलन की संयुक्त गणना ही सही स्थिति का परिचय दे सकती है। उदाहरणार्थ, जब हम किसी देश के निवासियों के प्रतिव्यक्ति औसत आय ज्ञात करते हैं तो हमें उस देश के लोगों की गरीबी या अमीरी का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है। यदि देश में कुछ लोगों के हाथों में धन या संपत्ति का केंद्रीकरण हो गया है और वे बहुत अमीर हैं तो प्रतिव्यक्ति औसत आय जो कुछ गणना के द्वारा हमें पता लगेगा वह अधिकांश लोगों की वास्तविक

नोट

आय से कहीं अधिक ज्यादा होगी। अतः वास्तविक स्थिति का ज्ञान तब तक नहीं हो सकता जब तक विचलन का भी ध्यान न रखा जाए। अतः विचलन माध्य का पूरक है।

28.10 सारांश (Summary)

- विचलन अथवा विक्षेपण वह गुण है जिससे यह ज्ञात होता है कि पदों के मान उनके मध्यमानों (या माध्य, मूल्यों) से किस सीमा तक विचलित हैं।
- विचलन की माप के चार प्रकार हैं– (*a*) परिसर (*b*) चतुर्थांशीय विचलन (*c*) माध्य विचलन तथा (*d*) मानक विचलन।
- माध्य विचलन, माध्य से श्रेणी के प्रत्येक पद का समांतर माध्य होता है।

28.11 शब्दकोश (Keywords)

1. **मानक या प्रमाप विचलन (Standard deviation)**–विचलन के धन (+) और ऋण (–) चिह्नों के अंतर को समाप्त करने के लिए विचलन का वर्ग (square) निकाल लिया जाता है तब मानक विचलन ज्ञात किया जाता है।

28.12 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. विचलन का अर्थ क्या है?
2. माध्य विचलन समान्तर माध्य से कैसे निकाला जाता है?
3. मानक विचलन की गणना की संक्षिप्त विधि का सूत्र बताएँ तथा मानक विचलन से क्या अभिप्राय है? बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. समांतर माध्य
2. माध्य विचलन
3. विचलन माध्य।

28.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. सामाजिक शोध की पद्धतियाँ–संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. सैद्धांतिक समाजशास्त्र–डॉ. गणेश पाण्डेय, अरूण पाण्डेय, राधा पब्लिकेशन।

इकाई–29: सह-संबंध विश्लेषण
(Correlational Analysis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)
प्रस्तावना (Introduction)
29.1 विषय-वस्तु : सह-संबंध क्या है ? (Subject-Matter : What is Correlation?)
29.2 सह-संबंध की परिभाषाएँ (Definitions of Correlation)
29.3 सह-संबंध के प्रकार (Kinds of Correlation)
29.4 सह-संबंध माप करने की विधियाँ (Methods of Measurement of Correlation)
29.5 प्रकीर्ण या विक्षेप आरेख (चित्र) (Scatter Diagram or Dotogram)
29.6 सह-संबंध बिंदु-रेखीय चित्र (Correlation Graph)
29.7 सह-संबंध का गुणांक (Coefficient of Correlation)
29.8 सारांश (Summary)
29.9 शब्दकोश (Keywords)
29.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)
29.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- तथ्यों की विभिन्न श्रेणियों के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करना।
- सह-संबंध के प्रकार तथा माप करने की विधियों को समझना।

प्रस्तावना (Introduction)

तथ्यों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों को एक संक्षिप्त और स्पष्ट रूप देना तथा उनकी तुलनात्मक स्थिति को स्पष्ट करना है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति केंद्रीय प्रवृत्तियों की माप के द्वारा भी की जाती है। माध्य, मध्यांक तथा बहुलक तथ्यों की माध्य प्रवृत्तियों को सही-सही तौर पर मापता है और साथ ही उनको एक अत्यंत संक्षिप्त रूप दे देता है। परंतु केवल एकत्रित तथ्यों को संक्षिप्त कर देने से ही तथ्यों का विश्लेषण और निष्कर्षीकरण हमारे लिये सरल नहीं हो जाता है क्योंकि इसके द्वारा केवल निरपेक्ष परिणाम प्राप्त होते हैं जो अधिक उपयोगी नहीं होते हैं। इन्हें अधिक उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि तथ्यों की विभिन्न श्रेणियों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक संबंध को भी स्पष्ट किया जाए। सह-संबंध की प्रविधि इस उद्देश्य की पूर्ति करती है, पर इस संबंध में और कुछ लिखने से पहले सह-संबंध के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

नोट

29.1 विषय-वस्तु : सह-संबंध क्या है? (Subject-Matter : What is Correlation?)

सह-संबंध के अर्थ को स्पष्ट करते हुए प्रोफेसर कटारिया ने लिखा है कि हम प्राय: यह जानना चाहते हैं कि दो पद-श्रेणियों के बीच क्या संबंध है। प्राय: यह देखा जाता है कि किसी वस्तु की माँग में वृद्धि होने पर उसके मूल्य में भी वृद्धि होती है; वर्षा अधिक होने पर उत्पादन अधिक होता है; मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने से मूल्यों में भी वृद्धि होती है; बच्चों की आयु बढ़ने के साथ-साथ उनकी ऊँचाई भी बढ़ती है और धूप के साथ गर्मी बढ़ती है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि वस्तु की माँग और उसके मूल्य; वर्षा और उत्पादन; मुद्रा की मात्रा और वस्तु के मूल्य; आयु और ऊँचाई तथा धूप और गर्मी में आपस में कुछ-न-कुछ संबंध अवश्य है क्योंकि एक में कोई भी परिवर्तन होने पर उसका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है; इसीलिये यह कहा जा सकता है कि कभी-कभी तथ्यों की दो श्रेणियों में परस्पर अंत:निर्भरता (inter-dependence) रहती है। एक श्रेणी के परिवर्तन का प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है। अत: जब "दो पद-श्रेणियाँ परस्पर इस प्रकार संबंधित हों कि एक पद-श्रेणी में होने वाले परिवर्तनों की सहानुभूति में दूसरी श्रेणी में भी परिवर्तन हो जाये अर्थात् एक में वृद्धि या कमी होने पर दूसरी में भी उसी दिशा में या विपरीत दिशा में परिवर्तन हो जाए और साथ ही उनमें कार्य-कारण संबंध (casual relationship) हो तो वे सह-संबंधी कहलाएँगी।

इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि दो पद-श्रेणियों में संबंध होने के लिए उनमें परस्पर परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह परिवर्तन एक-दूसरे के कारण होना आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो चलों (variables) अथवा श्रेणियों के परिवर्तन संबंधित प्रतीत होते हुए भी उनमें सह-संबंध (correlation) नहीं होगा। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि, "यदि एक चल के मूल्य में परिवर्तन होने से दूसरे चल के मूल्य में भी परिवर्तन हो तो कहा जा सकेगा कि दोनों में सह-संबंध है।" उदाहरण के लिए, यदि घासलेट के भावों में वृद्धि होने से पेट्रोल के भावों में भी वृद्धि हो जाये तो कार्य-कारण संबंध होने से ये दोनों सह-संबंधित कहलायेंगे। किंतु यदि घासलेट के भावों में वृद्धि होने के साथ-साथ चावल के मूल्यों में भी वृद्धि हो जाये तो यहाँ कार्य-कारण संबंध के अभाव में ये दोनों सह-संबंधित नहीं कहलायेंगे क्योंकि दोनों के मूल्य-वृद्धि के कारण अलग-अलग हैं।

इसीलिये प्रोफेसर एलहान्स ने लिखा है कि सह-संबंध दो चलों में ऐसे संबंध का संकेत करता है जिसके अंतर्गत किसी एक चल के मूल्यों में परिवर्तन होने पर दूसरे चल के मूल्यों में भी परिवर्तन होता है। इस सह-संबंध का अर्थ निम्नलिखित विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं से और भी स्पष्ट हो जायेगा।

टास्क विषय-वस्तु सह-संबंध क्या है? संक्षिप्त वर्णन करें।

29.2 सह-संबंध की परिभाषाएँ (Definitions of Correlation)

प्रोफेसर किंग (King) के अनुसार, "दो पद-मालाओं अथवा समूहों के बीच पाए जाने वाले कार्य-कारण संबंध को सह-संबंध कहते हैं।" इन्होंने एक अन्य स्थान पर सह-संबंध को दूसरे ढंग से परिभाषित किया है और लिखा है कि, "यदि यह सच प्रमाणित हो कि अधिकांश क्षेत्रों में दो चल सदैव एक ही दिशा में या विपरीत दिशा में घटते-बढ़ते हैं तो हम यह मानते हैं कि तथ्य निर्धारित हो गया और उनमें संबंध विद्यमान है। इस संबंध को ही सह-संबंध कहते हैं।"

> *नोट्स* **प्रोफेसर बाउले** (Bowley) के शब्दों में, "जब दो परिमाण इस प्रकार संबंधित हों कि एक का परिवर्तन दूसरे के परिवर्तन की सहानुभूति में पाया जाता हो, ताकि एक की वृद्धि या कमी दूसरे की वृद्धि या कमी या विपरीत के संबंध में हो, और एक के परिवर्तन की मात्रा जितनी अधिक हो उतनी ही दूसरे की हो, तब दोनों परिमाण सह-संबंधित कहलाते हैं।"

श्री कॉनर (Conner) ने लिखा है कि, "जब दो या अधिक परिमाण सहानुभूति में परिवर्तित होते हैं ताकि एक के परिवर्तन के परिणामस्वरूप दूसरे में भी परिवर्तन होता है तो वे सह-संबंधित कहलाते हैं।"

29.3 सह-संबंध के प्रकार (Kinds of Correlation)

सह-संबंध के प्रकारों का उल्लेख हम निम्नलिखित दो तरह से कर सकते हैं–

1. धनात्मक और ऋणात्मक सह-संबंध (Positive and Negative Correlation)–प्रोफेसर कटारिया के अनुसार, "जब दो चलों या पद-श्रेणियों का परिवर्तन एक ही दिशा में होता है तो वह प्रत्यक्ष या धनात्मक सह-संबंध होता है। उदाहरण के लिए, यदि वस्तु के मूल्य में वृद्धि के साथ-साथ उस वस्तु की पूर्ति में भी वृद्धि होती है तो उसके बीच के संबंध को धनात्मक सह-संबंध कहते हैं।" इसी बात को दूसरे शब्दों में समझाते हुए प्रोफेसर एलहान्स ने लिखा है कि "जब दो चलों (variables) के मूल्य एक ही दिशा में घटते-बढ़ते हैं, जैसे किसी चल के मूल्य में वृद्धि का संबंध दूसरे चल के मूल्य में वृद्धि से हो तो और किसी चल के मूल्य ह्रास का संबंध दूसरे चल के मूल्य में कमी से स्थापित हो तो सह-संबंध धनात्मक कहा जायेगा। इसके विपरीत यदि दो चलों के मूल्य विपरीत दिशाओं में घटते-बढ़ते हैं, जैसे किसी चल के मूल्य में वृद्धि का संबंध दूसरे चल के मूल्य में कमी से हो और उसी प्रकार किसी चल के मूल्य में कमी का संबंध दूसरे चल के मूल्य में वृद्धि से स्थापित होता है तो सह-संबंध ऋणात्मक होता है।" दूसरे शब्दों में, "यदि दो पद-श्रेणियों के परिवर्तन एक ही दिशा में न होकर दो विपरीत दिशाओं में होते हैं तो उनका सह-संबंध अप्रत्यक्ष या ऋणात्मक कहलाता है।"

> *क्या आप जानते हैं* वस्तु के मूल्य में वृद्धि के साथ-साथ उसकी माँग में कमी होती है। इस प्रकार माँग और मूल्य में ऋणात्मक सह-संबंध होता है।

2. रेखीय और अरेखीय सह-संबंध (Linear and Non-linear Correlation)–प्रोफेसर एलहान्स ने इनके अर्थ को समझाते हुए लिखा है कि, "जब दो चलों के मूल्यों में विचरण स्थिर अनुपात (constant ratio) में होता है, तो उसे रेखीय सह-संबंध कहा जाता है। अर्थात्, यदि प्रत्येक बार मूल्य में दस प्रतिशत (10%) वृद्धि हो तो पूर्ति में 20% की वृद्धि रेखीय संबंध का प्रमाण देगी। इसे एक सीधी रेखा के रूप में दिखाया जा सकता है। आर्थिक व सामाजिक आंकड़ों में ऐसे संबंध बहुत ही कम उत्पन्न होते हैं, विशेषकर सामाजिक तथ्यों में दो चलों में परिवर्तन का अनुपात साधारणतया स्थिर नहीं होता है। अत: उनके परिवर्तन को एक सीधी रेखा के द्वारा दिखाया नहीं जा सकता। इस प्रकार के सह-संबंध को वक्ररेखीय (curilinear) या अरेखीय (non-linear) कहा जायेगा।

> *नोट्स* प्रो० एलहान्स के शब्दों में, "रेखीय सह-संबंध उसे कहते हैं जहाँ संबंधित चलों में विचरणों के अनुपात स्थिर होते हैं और अरेखीय सह-संबंध वे हैं जहाँ ऐसे अनुपात घटते-बढ़ते रहते हैं।

नोट

29.4 सह-संबंध माप करने की विधियाँ (Methods of Measurement of Correlation)

दो या अधिक श्रेणियों में सह-संबंध निम्न विधियों द्वारा मालूम किया जा सकता है–

(*i*) प्रकीर्ण आरेख (Scatter Diagram)

(*ii*) सह-संबंध बिंदु-रेखीय चित्र (Correland Graph)

(*iii*) सह-संबंध का गुणांक (Coefficient of Correlation)

(*iv*) सह-संबंध सारणी (Correlation Table)

29.5 प्रकीर्ण या विक्षेप आरेख (चित्र) (Scatter Diagram or Dotogram)

इसमें सह-संबंध चित्रों की सहायता से प्रदर्शित किया जाता है परंतु इनमें सह-संबंध संख्यात्मक रूप में न होकर केवल अनुमान के रूप में प्राप्त होता है। इसके बनाने की विधि ठीक बिंदु-रेखीय विधि की भाँति है। इसके लिये एक ओर x श्रेणी और दूसरी ओर y श्रेणी का पैमाना मान लिया जाता है। इसके बाद x श्रेणी के प्रत्येक पद-मूल्य और y श्रेणी के प्रत्येक पद-मूल्य को बिंदुओं के रूप में दिखाया जाता है। एक पद के दोनों मूल्यों (x तथा y श्रेणी) के लिये एक-एक बिंदु होता है। इस प्रकार जितने पदयुग्म (Pairs of items) होते हैं उतने ही बिंदु हो जाते हैं।

29.6 सह-संबंध बिंदु-रेखीय चित्र (Correlation Graph)

सह-संबंध के विषय में जानने के लिये बिंदु-रेखीय चित्रों (Graph) का भी प्रयोग किया जाता है। इस विधि में दोनों पद-श्रेणियों (x तथा y) की कोटि (Ordinate) अथवा खड़ी रेखा (Vertical Line) पर तथा संख्या, समय अथवा स्थान को पड़ी रेखा (Horizontal Line) पर अंकित किया जाता है। यदि दोनों श्रेणियों के बिंदु-रेखा एक ही दिशा में आगे बढ़ते हैं तो धनात्मक सह-संबंध होगा। इसके विपरीत यदि दोनों पद-श्रेणियों के बिंदु-रेखा दो विपरीत दिशाओं में जाते हैं तो ऋणात्मक सह-संबंध होता है। यदि दोनों श्रेणियों में अधिक अंतर न हो तो दोनों बिंदु-रेखाएँ एक ही पैमाने और आधार-रेखा पर खींची जा सकती हैं। यदि उनमें बहुत अधिक अंतर हो तो दोनों के लिये अलग-अलग पैमानों का प्रयोग आवश्यक है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. इस सह-संबंध चित्रों की सहायता से .... किया जाता है, परंतु इसमें सह-संबंध संख्यात्मक रूप में न होकर केवल अनुमान के रूप में प्राप्त होते हैं।
2. इसमें बनाने की विधि ठीक .... विधि की भाँति हैं।
3. यदि दोनों श्रेणियों के बिंदु-रेखा एक ही दिशा में आगे बढ़ते हैं तो .... होगा।

29.7 सह-संबंध का गुणांक (Coefficient of Correlation)

दो चलों के बीच के सह-संबंध का परिमाण (degree) अथवा विस्तार (extent) जानने के लिये सह-संबंध के गुणांक की गणना की जाती है। सह-संबंध के गुणांक की गणना कई विधियों के द्वारा की जा सकती है, पर उनमें कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) का सूत्र सबसे अच्छा और लोकप्रिय है।

29.8 सारांश (Summary)

- कॉनर ने लिखा है कि "जब दो या अधिक परिमाण सहानुभूति में परिवर्तित होते हैं ताकि एक में परिवर्तन के परिणामस्वरूप दूसरे में भी परिवर्तन होता है तो वे सह-संबंधित कहलाते हैं।
- जब दो पद-श्रेणियों का परिवर्तन एक ही दिशा में होता है तो उसे धनात्मक तथा जब p विपरीत दिशा में होता है तो उसे ऋणात्मक सह-संबंध कहते हैं।

29.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **सह-संबंध (Correlation)**–यदि एक चल के मूल्य में परिवर्तन होने से दूसरे के मूल्य में भी परिवर्तन हो तो कहा जाएगा कि दोनों में सह-संबंध है।
2. **रेखीय और अरेखीय सह-संबंध (Linear and Non-linear Correlation)**–रेखीय सह-संबंध उसे कहते हैं जहाँ संबंधित चलों में विचरणों के अनुपात स्थिर होते हैं तथा अरेखीय सह-संबंध वे हैं जहाँ ऐसे अनुपात घटते-बढ़ते रहते हैं।

29.10 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. सह-संबंध का क्या अर्थ है?
2. सह-संबंध कितने प्रकार के होते हैं?
3. सह-संबंध के माप की विधियाँ बताएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. प्रदर्शित   2. बिंदु-रेखीय
3. धनात्मक सह-संबंध।

29.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. सामाजिक शोध व सांख्यिकी–रवीन्द्रनाथ मुखर्जी।
2. शास्त्रीय सामाजिक चिंतन–अग्रवाल गोपाल क्रिशन, भट्ट ब्रदर्स।

नोट

इकाई–30: शोध रिपोर्ट लेखन
(Writing a Research Report)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 शोध रिपोर्ट लेखन (Research Report Writing)

30.2 रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य (Objective of Preparing the Report)

30.3 रिपोर्ट तैयार करने की समस्याएँ (Problems of Preparing the Report)

30.4 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु (Contents of the Report)

30.5 एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Report)

30.6 रिपोर्ट का महत्त्व (Importance of Report)

30.7 सारांश (Summary)

30.8 शब्दकोश (Keywords)

30.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

30.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- शोध रिपोर्ट लेखन के महत्त्व की जानकारी।
- शोध रिपोर्ट लेख की तैयारी की जानकारी।
- एक अच्छी रिपोर्ट में क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं, इसकी जानकारी देना।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान या शोध-कार्य में सिर्फ तथ्यों का ढेर एकत्रित कर लेने से ही अध्ययन वाले विषय का वास्तविक अर्थ, कारण तथा परिणाम स्पष्ट नहीं हो सकता, जब तक कि उन एकत्रित तथ्यों को सुव्यवस्थित करके उनका विश्लेषण एवं व्याख्या न की जाए। तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या करके कुछ निष्कर्षों को निकालना एवं उन्हें लिखित रूप देना आवश्यक है जिससे वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके। दूसरे अनुसंधानकर्ता उसी विषय के संबंध में फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों एवं सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना एवं सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संपूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है, जिसे रिपोर्ट कहा जाता है।

30.1 शोध रिपोर्ट लेखन (Research Report Writing)

प्रत्येक सामाजिक सर्वेक्षण अथवा शोध का आधार वैज्ञानिक पद्धति प्रविधियों द्वारा संकलित तथ्य हैं। पर तथ्यों का ढेर स्वयं कुछ नहीं कर सकता जब तक कि उनका वर्गीकरण व सारणीयन न किया जाए। पर केवल वर्गीकरण व सारणीयन भी निरर्थक है जबकि इनके आधार पर तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या करके कुछ वैज्ञानिक निष्कर्षों को न निकाला जाए। इन निष्कर्षों को यदि सर्वेक्षणकर्ता या शोधकर्ता अपने दिमाग में ही भरकर रख दे तो उससे न तो विज्ञान का और न ही और किसी का कोई भला हो सकता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि संपूर्ण सर्वेक्षण व शोध-कार्य के उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों, संकलित तथ्यों का विवरण, विश्लेषण व व्याख्या तथा निष्कर्षों व सुझावों को एक लिखित रूप दिया जाए जिससे कि वह विज्ञान की एक धरोहर बन सके, दूसरे वैज्ञानिक उसी विषय के संबंध में फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की पुनर्परीक्षा कर सकें तथा निष्कर्षों व सुझावों के आधार पर सामाजिक योजना व सुधार की रूपरेखा तैयार की जा सके।

नोट्स उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संपूर्ण सर्वेक्षण शोध का एक लिखित विवरण तैयार किया जाता है। यही सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट कहलाता है।

30.2 रिपोर्ट तैयार करने का उद्देश्य (Objective of Preparing the Report)

सर्वश्री गूड एवं हॉट ने लिखा है कि शोध-प्रक्रिया वैज्ञानिक के लिए बड़ी ही रोचक तथा आकर्षक होती है। फिर भी आगे-पीछे कभी-न-कभी एक ऐसी स्थिति आती है जबकि रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो ही जाता है। किसी भी प्रकार के अध्ययन में एक स्थिति ऐसी आती ही है जबकि उसके पश्चात् अध्ययन-कार्य को चालू रखना अनुपयोगी एवं संकलित तथ्यों का और अधिक विश्लेषण व व्याख्या अनावश्यक प्रतीत होने लगती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किन्हीं पूर्व शर्तों के अनुसार वैज्ञानिक या आरंभिक विद्यार्थी के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह एक निर्धारित समय के अंदर शोध-कार्य को समाप्त कर उसके निष्कर्षों को प्रस्तुत करे। साथ ही शोध या सर्वेक्षण के दौरान में प्राप्त सामग्री एवं नवीन तथ्य इतने रुचिकर होते हैं कि अनुसंधानकर्ता उसके परिणामों को अन्य लोगों तक पहुँचाने के लिए स्वयं उत्सुक रहता है। अंत में, जिन-जिन लोगों ने अध्ययन-कार्य में अर्थ, सुझाव, सहायता व समय के रूप में योग दिया है, वे यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि उनके सहयोग या सहायता का क्या परिणाम निकला। इन सब आवश्यकताओं व माँगों की पूर्ति करने के उद्देश्य से ही सर्वेक्षण के अंतिम चरण में एक रिपोर्ट तैयार की जाती है।

इस प्रकार, रिपोर्ट तैयार करना शोध-कार्य का अंतिम चरण है जिसका कि उद्देश्य 'अमेरिकन मार्केटिंग सोसाइटी' के अनुसार, "अध्ययन के संपूर्ण परिणामों को रुचि रखने वाले व्यक्तियों के समक्ष पर्याप्त विस्तार में प्रस्तुत करना और उन परिणामों को इस प्रकार व्यवस्थित करना कि प्रत्येक पाठक तथ्यों को समझने और निष्कर्षों की वैधता स्वयं निर्धारित करने में समर्थ हो सके।"

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक सर्वेक्षण या शोध की रिपोर्ट तैयार करने के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. ज्ञान का एक प्रलेख प्रस्तुत करना (To present Document of Knowledge)–प्रत्येक सर्वेक्षण या शोध -कार्य का निष्कर्ष निश्चित ही किसी-न-किसी प्रकार के ज्ञान का एक स्रोत होता है। इसमें पर्याप्त समय, धन तथा परिश्रम भी लग जाता है। इसके बाद भी अगर अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को शोधकर्ता केवल अपने ही दिमाग में रख लें तो उस ज्ञान की वास्तविक उपयोगिता स्वत: ही नष्ट हो जाएगी और दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं होगा। अत: उसे एक क्रमबद्ध लिखित रूप प्रदान करना परमावश्यक है जिससे कि वह ज्ञान का एक लिखित प्रलेख बन जाए और विज्ञान की एक धरोहर के रूप में उसे सुरक्षित रखना सरल हो जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण या शोध की एक रिपोर्ट अवश्य ही तैयार की जाती है।

नोट

2. ज्ञान के विस्तार के लिए (For the Extension of Knowledge)—रिपोर्ट तैयार करने का यह भी कम महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नहीं है। पिछले अध्याय में हम लिख चुके हैं कि तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या से न केवल अध्ययन-विषय का ही स्पष्टीकरण होता है और न केवल उस विषय से संबंधित ही कुछ निष्कर्ष निकलते हैं, अपितु इस बात की भी खोज हो जाती है कि उस विषय से संबंधित अन्य कौन-कौन-सी समस्याएँ हैं जिनके विषय में आगे और गहन अध्ययन किया जा सकता है। जब अपने शोध-कार्य तथा उसके निष्कर्षों को अनुसंधानकर्ता एक लिखित रूप देने बैठता है तो वह स्वत: ही अन्य ऐसी अनेक नई समस्याओं, नए प्रश्नों तथा विषयों की ओर भी संकेत करता है जोकि शोध या सर्वेक्षण का विषय बन सकते हैं। इस दृष्टिकोण से रिपोर्ट का एक उद्देश्य अनुसंधान के नए क्षेत्रों से हमें परिचित करवाकर ज्ञान के विस्तार की निरंतरता को बनाए रखना है।

3. अनुसंधान के परिणामों को दूसरों के सूचनार्थ प्रस्तुत करना (To Present the Result of the Investigation for other's Information)—शोधकर्ता के लिए अपने अनुसंधान के परिणामों को प्रदर्शित करना कई कारणों से आवश्यक हो जाता है। **प्रथमत:** शोध-कार्य से प्राप्त निष्कर्षों या परिणामों को संबंधित लोगों अथवा शोध में रुचि रखने वाले व्यक्तियों के सामने प्रगट करना अनुसंधानकर्ता का कर्तव्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, यदि अनुसंधान का विषय सार्वजनिक महत्त्व का है तो परिणामों से लोगों को अवगत कराना आवश्यक हो जाता है। **द्वितीयत:** यदि सर्वेक्षण की रिपोर्ट के आधार पर ही कोई सरकारी अथवा गैर सरकारी कार्यवाही होनी है तो भी यह रिपोर्ट तैयार न होने तक रुकी रहती है। **तृतीयत:** कभी-कभी सरकार किसी विशेष विषय पर सर्वेक्षण इसलिए करवाती है कि उससे संबंधित कोई योजना उसे बनानी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करनी जरूरी हो जाती है। **चतुर्थत:** जिन लोगों ने सर्वेक्षण-कार्य में अपना धन, परामर्श, सहायता व समय देकर सहयोग प्रदान किया है, उन सभी के मन में सर्वेक्षण के परिणामों को जानने की स्वाभाविक इच्छा होती है। उनकी संतुष्टि के लिए भी रिपोर्ट को तैयार किया जाता है। इसके अतिरिक्त, जब अनुसंधान-कार्य किसी डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए किया जाता है तो एक उद्देश्य की पूर्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि रिपोर्ट प्रस्तुत न की जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार की जाती है। अन्त में, प्राय: सर्वेक्षण द्वारा प्राप्त नवीन तथ्य इतने रोचक व रुचिकर प्रतीत होते हैं कि स्वयं अनुसंधानकर्ता उनके परिणामों को अन्य लोगों को भी दिखाने व आत्मगौरव प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। अनुसंधान की एक व्यवस्थित रिपोर्ट तैयार हो जाने से उपरोक्त सभी छह उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

4. विषयों में अंतर्निहित वास्तविक स्थिति को समझाना (To Explain the Actual Conditions Involved)—रिपोर्ट का उद्देश्य केवल अनुसंधान के निष्कर्षों या परिणामों को व्यक्त करना ही नहीं अपितु उन्हें इस व्यवस्थित व वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करना है कि अध्ययन-विषय के विभिन्न पक्षों की वास्तविकताएँ स्वत: ही प्रगट हो जाएँ और उस रिपोर्ट को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति उनमें अंतर्निहित वास्तविक स्थिति तथा अंत:संबंधों को स्पष्ट रूप में समझ सके। सर्वेक्षण या शोध की सार्थकता विषय को केवल स्वयं समझ लेने में नहीं अपितु दूसरों को भी समझाने में है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट इस ढंग से तैयार की जाती है कि विषय में रुचि रखने वाले सभी व्यक्ति उसे पढ़कर लाभ उठा सकें तथा अनुसंधान से प्राप्त नवीन तथ्यों व उनके सामाजिक परिणामों को समझ सकें।

5. वैधता की जाँच (Test of Validity)—जब तक शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट को तैयार नहीं किया जाएगा, तब तक इस बात की जाँच नहीं की जा सकती है कि वह अध्ययन प्रामाणिक व प्रयोगसिद्ध है अथवा नहीं। रिपोर्ट की जाँच करके ही यह बताया जाता है कि अनुसंधान में शुद्ध तथा यथार्थ सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं अथवा केवल अनुमान और संदेहात्मक सूचना ही अध्ययन का आधार है। रिपोर्ट में वर्णित तथ्य व निष्कर्ष सार्वजनिक रूप में प्रकाशित एक विषय बन जाता है (यदि रिपोर्ट को सरकार के द्वारा गुप्त न रखा जाए)। अत: यदि किसी को भी अध्ययन की वैधता के संबंध में संदेह होता है तो वह स्वयं फिर से अनुसंधान कर उसके निष्कर्षों की परीक्षा व पुनर्परीक्षा कर सकता है। इस प्रकार की परीक्षा व पुनर्परीक्षा से या तो पहले वाले अध्ययन की वैधता सिद्ध होती है अथवा उसके विज्ञान की प्रतिष्ठा बढ़ती है। इसलिए यह कहा जाता है कि परीक्षा व पुनर्परीक्षा के योग्य होना वैज्ञानिक अध्ययन का सबसे उल्लेखनीय गुण है। अत: इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी रिपोर्ट तैयार करना आवश्यक हो जाता है।

नोट

30.3 रिपोर्ट तैयार करने की समस्याएँ (Problems of Preparing the Report)

सर्वश्री गूड तथा हॉट (Good and Hatt) ने उचित ही लिखा है कि "स्पष्टत: यह प्रतीत होता है कि एक रिपोर्ट को लिखना एक सरल कार्य ही होगा क्योंकि यह तो केवल मात्र पूछे गए प्रश्नों, प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त प्रविधियों तथा अंतिम रूप से विकसित उत्तरों का एक विवरण मात्र है। वास्तव में, यह काम शायद ही सरल हो।" दूसरें शब्दों में, शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट तैयार करना उतना सरल कार्य नहीं है जितना कि ऊपरी तौर पर हम उसे समझते हैं। वास्तविक रूप में जब शोधकर्ता लिखने बैठता है तो उसे एकाधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं–

1. भाषा की समस्या (Problem of Language)–रिपोर्ट को तैयार करने में सबसे बड़ी समस्या भाषा की समस्या है। यह समस्या इसलिए उत्पन्न होती है कि यदि भाषा को अत्यंत सरल बना दिया जाए तो रिपोर्ट का स्तर गिर जाता है और उसमें एक ओछापन-सा दिखाई पड़ने लगता है। पर यदि उस रिपोर्ट में वैज्ञानिक शब्दों का अत्यधिक प्रयोग करके रिपोर्ट के स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है तो रिपोर्ट अधिकांश लोगों के लिए अत्यधिक क्लिष्ट तथा पारिभाषिक हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में समस्या यह जान पड़ती है कि किस भाषा में रिपोर्ट को प्रस्तुत किया जाए क्योंकि साधारण बोलचाल की भाषा रिपोर्ट के स्तर को गिरा देती है जबकि पारिभाषिक भाषा उसे लोकप्रिय होने से रोकती है। वास्तविक तथ्य यह है कि शोध या सर्वेक्षण की संपूर्ण प्रक्रिया है, जिसमें कि रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण भी सम्मिलित है, स्वयं ही एक टेक्निकल प्रक्रिया है इसलिए उसे एक निर्धारित सीमा के बाद सरल नहीं बनाया जा सकता। यह नहीं हो सकता है कि रिपोर्ट में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग न किया जाए और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हुए रिपोर्ट को क्लिष्ट होने से पूर्णतया रोकना भी असंभव है। इतना ही नहीं, रिपोर्ट को लिखते समय भाषा संबंधी एक और समस्या इस रूप में प्रगट होती है कि रिपोर्ट में ऐसे किसी भी शब्द या वाक्य का प्रयोग न किया जाए जिससे कि अर्थ दो या संदेहजनक हों। ऐसा होने पर रिपोर्ट के किन्हीं पक्षों के संबंध में गलत धारणा पनपने की संभावना होती है। पर संपूर्ण अध्ययन में, भाषा के संबंध में इतना अधिक सचेत रहना संभव नहीं होता है और इसीलिए भाषा की समस्या किसी-न-किसी रूप में बनी ही रहती है।

2. पारिभाषिक शब्दों की समस्या (Problems of Technical Words)–प्राकृतिक विज्ञानों में पारिभाषिक शब्दों को विकसित करने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई है और इन विज्ञानों में इसलिए ऐसे विशेष शब्दों तथा वाक्यों की प्रचुरता है जिनका कि अर्थ बिना किसी अपवाद के सभी के लिए और सभी स्थानों पर एकसमान ही होता है या समझा जाता है। परंतु सामाजिक विज्ञानों में यह कमी अत्यधिक अनुभव की जाती है क्योंकि सामाजिक विज्ञानों में प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दावली का लगाव प्रत्येक लेखक को बहुत अधिक खटकता है। इतना ही नहीं, पारिभाषिक शब्दावली संबंधी सैद्धांतिक मतभेद भी सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में कम उल्लेखनीय विषय नहीं है और अलग-अलग लेखक इस शब्दावली के प्रति किसी विशिष्ट आग्रह अथवा दुराग्रह से अपने को दूर रखने में शायद ही सफल हो सकें। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है–रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण भी एक टेक्निकल विषय है और प्रामाणिक पारिभाषिक शब्दावली के बिना इसका काम नहीं चल सकता, इसलिए समाज-विज्ञानों में इन्हीं शब्दावली की कमी एक बहुत बड़ी कमी बन जाती है जिसके कारण रिपोर्ट में कही हुई बातें संदेहास्पद तथा दो अर्थ वाली बन जाती हैं जबकि शोधकर्ता का वास्तविक उद्देश्य ऐसा करना नहीं होता है।

सामाजिक विज्ञानों में जब तक पारिभाषिक शब्दावली का पर्याप्त विकास नहीं हो जाएगा तब तक इससे संबंधित समस्या रिपोर्ट को तैयार करने में बनी ही रहेगी।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

1. रिपोर्ट को तैयार करने में सबसे बड़ी समस्या .... की समस्या है।
2. प्राकृतिक विज्ञानों में पारिभाषिक शब्दों को विकसित करने की दिशा में .... प्रगति हुई है।

नोट

3. रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण भी एक टेकनिकल विषय और प्रामाणिक पारिभाषिक ·············· के बिना इसका काम नहीं चल सकता।

3. जनता के ज्ञान के स्तर की समस्या (Problem of Intellectual level of General Mass)—रिपोर्ट को लिखते समय जनता के ज्ञान के स्तर से संबंधित एक और समस्या उत्पन्न हो जाती है, विशेषकर उस अवस्था में जबकि देश में शिक्षित लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। अक्सर यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि शोध या सर्वेक्षण-कार्य एक गंभीर विषय है इसलिए सर्वेक्षण-रिपोर्ट आम जनता के लिए नहीं होती है। इस तर्क को बहुत-से विद्वान अस्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि कोई भी वैज्ञानिक खोज, चाहे वह प्राकृतिक दुनिया से संबंधित हो अथवा सामाजिक दुनिया से, तब तक सार्थक नहीं हो सकती है जब तक उस खोज के परिणाम जन-जीवन का एक अंग नहीं बन जाते क्योंकि कभी-कभी एक साधारण व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत समालोचना या व्याख्या (Layman's interpretation) भी वैज्ञानिक के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है। कभी-कभी तो रिपोर्ट जनसाधारण के हित से संबंधित होती है और उसमें संबंधित सभी लोग रुचि लेते हैं। अत: समस्या यह होती है कि रिपोर्ट लिखने वाले को संबंधित व्यक्तियों के ज्ञान के स्तर को सर्वप्रथम जानना होता है और यह सरल काम नहीं है। पर अगर इस संबंध में कोई त्रुटि रह गई तो रिपोर्ट की सार्थकता कम हो जाती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई सर्वेक्षण श्रमिक वर्ग से संबंधित है और उसकी रिपोर्ट से श्रमिकों का हित होने की संभावना है, पर यदि उस रिपोर्ट को लिखते समय उन्हीं श्रमिकों के ज्ञान के स्तर को ध्यान में नहीं रखा गया है तो अनेक श्रमिक रिपोर्ट की वास्तविक सिफारिशों को ठीक से समझ न सकने के कारण उनसे वास्तविक लाभ नहीं उठा पायेंगे। पर ज्ञान के स्तर को ठीक-ठीक मापना स्वयं ही एक समस्या बन जाती है।

4. गंभीरता की समस्या (Problems of Seriousness)—प्रत्येक शोधकर्ता की यह आंतरिक अभिलाषा होती है कि अनुसंधान की रिपोर्ट का स्तर यथासंभव हो ताकि उच्च श्रेणी के पाठकों और विद्वानों में वह प्रख्यात हो सके। पर यदि इस अभिलाषा को वह एक संतुलित स्तर पर बनाए रखने में सफल नहीं होता तो उसकी रिपोर्ट अनावश्यक तौर पर गंभीर रूप धारण कर लेती है। अनावश्यक रूप में पारिभाषिक शब्दों से बोझिल रिपोर्ट न केवल अपनी स्वाभाविकता को खो बैठती है अपितु अत्यधिक क्लिष्ट होने के कारण अनेक तत्व अस्पष्ट बने रहते हैं। वास्तव में विचारों की गंभीरता तथा भाषा की सरलता—इन दोनों विरोधी तत्वों के बीच संतुलन स्थापित करते हुए रिपोर्ट को तैयार करना एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है।

5. अवधारणाओं की समस्या (Problem of Concepts)—तथ्ययुक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करने की एक और समस्या अवधारणाओं से संबंधित है। यदि वास्तविक रूप में देखा जाए तो समाजशास्त्रीय साहित्य में अवधारणाओं की अत्यधिक कमी है। जो कुछ भी हमें आज प्राप्त है वह वास्तव में अवधारणा नहीं बल्कि विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन है। अवधारणाओं की सहायता से संपूर्ण परिस्थिति को कुछ ही शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करना संभव होता है और इसमें संदेह व अस्पष्टता का तत्व बहुत कम होता है; पर चूँकि इस प्रकार की अवधारणाओं का पर्याप्त विकास अब भी सामाजिक विज्ञानों में नहीं हो पाया है इस कारण साधारण-से-साधारण परिस्थिति को समझने के लिए अनावश्यक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना पड़ता है जिसमें पर्याप्त समय व परिश्रम ऐसे ही नष्ट हो जाता है।

6. वस्तुनिष्ठता की समस्या (Problem of Objectivity)—रिपोर्ट को तैयार करने में यह एक उल्लेखनीय समस्या है। चूँकि अनुसंधानकर्ता उसी बृहत्तर समाज की एक इकाई है जिसके कि किसी अंग के पक्ष का वह अध्ययन कर रहा है इसलिए वह अध्ययन-विषय के संबंध में जो कुछ कहता है उसमें उसका अपना विचार, आदर्श, मूल्य और मनोवृत्ति किसी-न-किसी प्रकार से अपना कुछ-न-कुछ स्थान कर ही लेते हैं। वे घटनाओं की व्याख्या व विवरण वास्तविक तथ्यों के आधार पर पूर्णतया न देकर उसमें अपने विचारों तथा भावनाओं का भी रंग चढ़ा लेते हैं। इससे घटनाओं की वास्तविकता विकृत हो जाती है। इसके अतिरिक्त शोधकर्ता का अपना पक्षपात तथा मिथ्या झुकाव कुछ-न-कुछ उसके द्वारा प्रस्तुत उसके व्याख्या तथा विवरण को प्रभावित करता ही है और इन दोनों से पूर्णतया छुटकारा पाना बहुत ही कम शोधकर्ताओं के लिए संभव होता है। इन सब तत्वों के रिपोर्ट में प्रवेश कर जाने से वस्तुनिष्ठता की समस्या स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है।

7. **सत्य को प्रकट करने की समस्या (Problem of Expressing the Truth)**–कभी-कभी सर्वेक्षण ऐसे विषयों के संबंध में होता है जिनके संबंध में यदि सच-सच सब कुछ कहा जाए तो वह किसी एक पक्ष के हित के या सम्मान के विपरीत होता है। ऐसी दशा में रिपोर्ट में सत्य को प्रगट करने की समस्या अपने-आप उत्पन्न हो जाती है; उदाहरणार्थ, यदि सरकारी उच्च अधिकारियों में व्याप्त घूसखोरी व भ्रष्टाचार के विषय में खोज की जाए तो वास्तविक तथ्य या स्थिति मालूम हो जाने पर भी शोधकर्ता अपनी रिपोर्ट में सब कुछ सच-सच कहने से घबराता है क्योंकि उसे इन उच्च अधिकारियों द्वारा बदला लिए जाने का डर या सरकारी कार्यवाही का भय कुछ-न-कुछ रहता ही है। अत: वास्तविकता को कुछ तोड़-मरोड़कर ही वह अपनी रिपोर्ट में प्रस्तुत करता है। कभी-कभी तो स्वयं सरकार के द्वारा कराए गए शोध या सर्वेक्षण की रिपोर्ट को इसलिए गुम कर दिया जाता है कि यदि रिपोर्ट में वर्णित सत्य प्रगट हो गया तो सरकार की बदनामी होगी। इसी प्रकार अनेक स्थितियों में सत्य को वास्तविक रूप में प्रगट करने की समस्या किसी-न-किसी रूप में बनी रहती है।

30.4 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु (Contents of the Report)

रिपोर्ट की अंतर्वस्तु से तात्पर्य उन विषयों से है जिनका विवरण व व्याख्या हमें संतुलित रिपोर्ट में देखने को मिलती है। यद्यपि इस अंतर्वस्तु के संबंध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं, फिर भी कुछ ऐसे सामान्य विषयों का उल्लेख यहाँ किया जा सकता है जिन्हें कि साधारणतया सभी रिपोर्ट में अपना स्थान मिल ही जाता है।

वे विषय इस प्रकार हैं–

1. **प्रस्तावना (Introduction)**–सभी रिपोर्टों में सर्वप्रथम प्रस्तावना लिखी जाती है। प्रस्तावना वास्तव में पाठकों को विषय से परिचय करवाती है और इसमें संबंधित शोध या सर्वेक्षण के विचार का उदय, योजना, महत्त्व तथा संगठन आदि विषयों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। इसी प्रकार सर्वेक्षण करने वाली संस्था या विभाग आदि का परिचय, सर्वेक्षण का संचालन करने वाले व्यक्ति या संगठन का परिचय, कार्यकर्ताओं के चुनाव व प्रशिक्षण का विवरण, सर्वेक्षण में निरीक्षण तथा प्राप्त तथ्यों व सूचनाओं का उल्लेख भी प्रस्तावना में किया जाता है। प्रस्तावना में ही सर्वेक्षण के समय तथा व्यय आदि का भी विवरण प्रस्तुत किया जाता है। सर्वेक्षण या शोध-कार्य के दौरान उत्पन्न प्रमुख कठिनाइयों का उल्लेख तथा उसका निराकरण करने के लिए प्रयुक्त तरीकों का संक्षिप्त वर्णन भी प्रस्तावना में किया जाता है। रिपोर्ट में किस क्रम से किस विषय के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया गया है उसका भी संकेत प्रस्तावना में किया जाता है। अंत में जिन व्यक्तियों, संस्थाओं व समितियों तथा सरकारी विभागों से सर्वेक्षण-कार्य में किसी भी प्रकार की सहायता या परामर्श प्राप्त हुआ है, उनको धन्यवाद ज्ञापन करने के कर्तव्य का भी इसी प्रस्तावना के माध्यम से पालन किया जाता है।

2. **समस्या का विवरण (Description of the Problem)**–सबसे पहले रिपोर्ट में सर्वेक्षण या शोध के विषय या समस्या का परिचय दिया जाता है। समस्या की पृष्ठभूमि तथा उसके विषय में अनुसंधान की आवश्यकता का वर्णन करना रिपोर्ट के आरंभिक अंश का सर्वप्रथम भाग है। समस्या का चुनाव किन आधारों पर किया गया है और तात्कालिक परिस्थितियों में समस्या के अध्ययन में कौन-कौन से सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक लाभ की आशा है इसके विषय में भी रिपोर्ट के इस अंश में कह दिया जाता है। अध्ययन-विषय से संबंधित अन्य कोई अध्ययन हुआ है अथवा नहीं और अगर हुआ है तो प्रयुक्त अध्ययन का उससे क्या संबंध है आदि बातों का भी स्पष्टीकरण कर दिया जाता है। इस सबका उद्देश्य अध्ययन-विषय या समस्या की वास्तविक प्रकृति और सीमाओं को स्पष्ट करना होता है।

3. **सर्वेक्षण या शोध का उद्देश्य (Purpose of Study)**–सर्वेक्षण या शोध का उद्देश्य या तो ज्ञान का विस्तार करना अथवा किसी व्यावहारिक लाभ को प्राप्त करना होता है। इसलिए प्रत्येक रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख किया जाता है कि सर्वेक्षण का उद्देश्य नवीन ज्ञान को प्राप्त करना अथवा किसी विद्यमान सिद्धांत की परीक्षा करना या उस पर प्रकाश डालना अथवा कोई व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना है। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि यदि सर्वेक्षण या शोध-कार्य किसी व्यापारिक संस्था या सरकार के निर्देशानुसार आयोजित किया गया

नोट

है तो अनुसंधानकर्ता को उस संस्था या सरकार द्वारा सर्वेक्षण का उद्देश्य पहले से ही बता दिया जाता है और उसी के अनुसार सर्वेक्षण की सीमाओं को भी निर्धारित किया जाता है। पर ऐसी स्थिति में सर्वेक्षण का उद्देश्य कोई-न-कोई व्यावहारिक लाभ प्राप्त करना होता है। कुछ भी हो, सर्वेक्षण के उद्देश्यों का स्पष्ट रूप में आरंभ में ही रिपोर्ट में उल्लेख कर दिया जाता है।

4. अध्ययन क्षेत्र (Scope or Area of Study)–समस्या तथा उद्देश्य का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् अध्ययन-क्षेत्र के विषय में भी रिपोर्ट में उल्लेख किया जाता है। इसके अंतर्गत भौगोलिक प्रदेश, सामाजिक वर्ग अथवा निश्चित समुदाय का परिचय प्रस्तुत किया जाता है। यहीं पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि उस समुदाय, समूह या वर्ग के जीवन के किन पक्षों अथवा समस्या के किन पक्षों का अध्ययन किया गया है। रिपोर्ट के इसी अंश में उस समुदाय, समूह या वर्ग की प्राकृतिक, सामाजिक, जनसंख्यात्मक तथा आर्थिक विशेषताओं का परिचय देते हुए इस बात का स्पष्टीकरण किया जाता है कि अध्ययन के क्षेत्र का निर्धारण उसी रूप में क्यों किया गया है अर्थात् अध्ययन-क्षेत्र को एक निश्चित रूप में सीमित करने से किन सुविधाओं या लाभों की आशा की जाती है, इस बात का स्पष्टीकरण भी कर दिया जाता है।

5. प्रयुक्त अध्ययन पद्धतियाँ (Methods employed)–सर्वेक्षण अथवा शोध के सभी निष्कर्ष वास्तविक तथ्यों या सूचनाओं पर आधारित होते हैं। इन तथ्यों तथा सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है। रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख रहता है कि अध्ययन-विषयों से संबंधित वास्तविक तथ्यों तथा सूचनाओं को किन पद्धतियों या प्रविधियों की सहायता से एकत्रित किया गया है। रिपोर्ट लिखने वाला इस बात का भी उल्लेख कर सकता है कि अध्ययन में विषय या समस्या को किस दृष्टिकोण से देखा गया है और उस दृष्टिकोण से अमुक-अमुक पद्धति व प्रविधियाँ क्यों सबसे उपयुक्त समझी गईं। साथ ही प्राथमिक तथा द्वितीयक तथ्यों के स्रोतो को संक्षिप्त परिचय देते हुए रिपोर्ट में इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि उन स्रोतों से सूचना प्राप्त करने के लिए किन प्रविधियों को काम में लाया गया है। यदि प्रश्नावली अथवा अनुसूची का उपयोग किया गया है तो उसकी मोटी-मोटी बातें रिपोर्ट में उल्लेखित कर दी जाती हैं। यदि साक्षात्कार-प्रविधि को अपनाया गया है तो किन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए साक्षात्कार किया गया है और साक्षात्कार-निर्देशिका (Interview Guide) का उपयोग किया गया है अथवा नहीं, इन बातों का उल्लेख भी रिपोर्ट में कर दिया जाता है। उसी प्रकार यदि मापक पैमानों का उपयोग किया गया है तो उसका वर्णन भी कर दिया जाता है।

6. निदर्शन-चुनाव का तरीका (Method of Selecting Samples)–अनुसंधानकर्ता अपनी रिपोर्ट में उस प्रणाली या विधि का भी उल्लेख करता है जिसके द्वारा निदर्शनों का चुनाव प्रस्तुत अध्ययन में किया गया हो। साथ ही इस बात का भी स्पष्टीकरण किया जाता है कि विषय की प्रकृति को देखते हुए उसी प्रणाली को उपयुक्त क्यों समझा गया अर्थात् जिस निदर्शन-प्रणाली को अपनाया गया है उसे अपनाने के कारणों का भी संक्षेप में उल्लेख रिपोर्ट में किया जाता है। इसी संदर्भ में यह भी लिखा जाता है कि जितनी संख्या में निदर्शनों को चुना गया है वह संख्या संपूर्ण समुदाय का उचित प्रतिनिधित्व करने के लिए पर्याप्त है। पर यदि निदर्शनों का चुनाव न करके क्षेत्र की संपूर्ण जनसंख्या का जनगणना-पद्धति (census method) द्वारा अध्ययन किया गया है तो उसका भी उल्लेख स्पष्ट रूप से रिपोर्ट में कर दिया जाता है।

7. सर्वेक्षण का संगठन (Organisation of Survey)–सर्वेक्षण-कार्य को किस ढंग से व्यवस्थित और संगठित किया गया है इस बात का विवरण कुछ रिपोर्टों में प्रस्तावना में न देकर अलग तौर पर दिया जाता है। यदि अध्ययन-स्थल निरीक्षण पद्धति अपनाई गई है तो स्थल अथवा घटना का चुनाव कैसे किया गया, कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने के पश्चात् उनमें श्रम-विभाजन किस ढंग से किया गया, उनके कार्यों का निरीक्षण करने की क्या व्यवस्था की गई, प्रश्नावलियों को किस प्रकार एकत्रित किया गया, रोज कितने घंटे काम किया गया, एकत्रित सूचनाओं की शुद्धता की जाँच किस प्रकार की गई, तथ्यों के संपादन व संकेतीकरण (codification) की क्या व्यवस्था थी आदि बातों का स्पष्टीकरण रिपोर्ट के इस अंश में किया जाता है। इसका उद्देश्य सर्वेक्षण के संगठन के बारे में लोगों को अनुमान लगाने के मामले में सहायता करना होता है।

नोट

8. विश्लेषण तथा व्याख्या (Analysis and Interpretation)–उपरोक्त सभी बातों का उल्लेख करने के पश्चात् रिपोर्ट सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर पर आ पहुँचती है। इसी स्तर पर एकत्रित सूचनाओं तथा तथ्यों को एक व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। वर्गीकरण व सारणीयन का वास्तविक लाभ रिपोर्ट के इस अंश को तैयार करने में प्राप्त होता है क्योंकि यहीं पर प्राप्त सूचनाओं, तथ्यों तथा आँकड़ों को व्यवस्थित करके एक आकर्षक एवं सार्थक स्वरूप देकर सारणियों, चार्टों, चित्रों, रेखाचित्रों आदि के माध्यम से प्रकट किया जाता है। पर तथ्यों को व्यवस्थित ढंग से केवल प्रस्तुत ही नहीं किया जाता अपितु उनका आवश्यक विश्लेषण व वर्णनात्मक व्याख्या भी दी जाती है। तथ्यों के विश्लेषण में मुख्यत: कार्य-कारण संबंधों को स्पष्ट किया जाता है, जबकि वर्णनात्मक व्याख्या में उसके परिणामों व निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाता है। अध्ययन के परिणामों या निष्कर्षों को सदैव तथ्ययुक्त रूप में तार्किक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है और यह भी बताया जाता है कि उन निष्कर्षों या परिणामों का क्या आधार है। रिपोर्ट को और अधिक सजीव, बोधगम्य तथा सांख्यिकीय विवेचना के उपयुक्त बनाने के लिए आवश्यकतानुसार फोटो, रेखाचित्र आदि भी संलग्न कर दिये जाते हैं। यदि द्वैतीयक सामग्री का उपयोग किया गया है तो पृष्ठतल-टिप्पणियों (footnotes) की सहायता से उनके स्रोतों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है।

9. तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषता (Highlights of Data)–रिपोर्ट को अधिक रुचिकर तथा बोधगम्य बनाने के लिए विश्लेषण तथा व्याख्या के पश्चात् एक पृथक अध्याय में सर्वेक्षण या शोध में एकत्रित तथ्यों की उल्लेखनीय विशेषताओं तथा उनके आधार पर प्राप्त प्रमुख परिणामों व निष्कर्षों को एक क्रम से प्रस्तुत किया जाता है ताकि एक ही स्थान पर अध्ययन के परिणामों का निचोड़ पाठकों के लिए उपलब्ध हो। दूसरे शब्दों में, रिपोर्ट के इस अध्याय में मुख्य निष्कर्षों के सार का उल्लेख होता है जो अनुसंधान-परिणामों को संक्षेप में स्पष्ट कर देता है।

10. सुझाव (Suggestions)–यदि अनुसंधान केवल ज्ञान-प्राप्ति के उद्देश्य से नहीं किया गया है और किसी सामाजिक समस्या अथवा व्यावहारिक जीवन से संबंधित है तो रिपोर्ट के अंत में रचनात्मक सुझाव अवश्य ही दिए जाते हैं। इन सुझावों में एक समस्या को किस प्रकार व्यावहारिक ढंग से हल किया जाए, अथवा एक अवस्था-विशेष को किस रचनात्मक रूप में उन्नत किया या सुधारा जाए, इनके संबंध में सुझाव अवश्य दिए जाते हैं। किसी संख्या या सरकारी विभाग द्वारा किसी रचनात्मक या सुधारात्मक कार्य के लिये यदि सर्वेक्षण कराया गया है तब तो सुझावों को रिपोर्ट में होना नितांत आवश्यक हो जाता है। अनुसंधानकर्ता अपने सुझावों को प्रस्तुत करते हुए धरती पर स्वर्गलोक के निर्माण का सपना नहीं देखता अर्थात इस प्रकार के सुझावों को प्रस्तुत नहीं करता जो कि उपलब्ध साधनों व व्यावहारिकता से परे हों। उसका सुझाव रचनात्मक व व्यावहारिक इस अर्थ में होता है कि वह वर्तमान दशाओं में देश या एक संस्था-विशेष के लिए उपलब्ध साधनों के अंतर्गत ही किस प्रकार अधिकतम सुधार संभव है, इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है। उदाहरणार्थ, यदि वह यह सुझाव देता है कि राज्य-कर्मचारियों का महँगाई-भत्ता केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के समान कर देना चाहिए तो वह यह भी ध्यान रखता है कि वर्तमान परिस्थितियों में एक राज्य-सरकार इस अतिरिक्त व्यय-भार को उठाने में समर्थ है भी या नहीं। यदि नहीं तो किस सीमा तक महँगाई-भत्ता बढ़ाना वास्तव में व्यावहारिक होगा और कर्मचारियों के भी हितों की अधिकतम रक्षा संभव होगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सुझाव उपयोगी तथा व्यावहारिक लाभ की दृष्टि से उपयुक्त हों और साथ ही तर्क पर आधारित व रचनात्मक हों। इस बात का अधिक-से-अधिक ध्यान अनुसंधानकर्ता रखता है और उसे रखना भी चाहिए। ये सुझाव दो प्रकार के हो सकते हैं–एक तो वे सुझाव जो अध्ययन के दौरान में स्वयं सूचनादाताओं द्वारा दिए जाते हैं। ये सुझाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि एक विशेष क्षेत्र या समुदाय में काफी समय से रहने वाले लोग (सूचनादाता) सैद्धांतिक ज्ञान न रखते हुए भी भुक्तभोगी होने के कारण समस्या को व्यावहारिक दृष्टि से समझते हैं और इसलिए अपने अनुभव के आधार पर इस योग्य होते हैं कि अवस्था को उन्नत करने या सुधारने के लिये उपयोगी सुझाव दे सकें। इसीलिए ऐसे सुझावों को रिपोर्ट में अवश्य स्थान दिया जाता है। दूसरे वे सुझाव होते हैं जो कि स्वयं अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के सुझावों की उपयोगिता सर्वेक्षणकर्ता के ज्ञान, अनुभव, सूझबूझ तथा दूरदृष्टि पर निर्भर करती है।

नोट

11. संलग्न-पत्र (Appendices)–सुझावों के साथ ही मूल रिपोर्ट की इति हो जाती है। किन्तु कुछ ऐसे पत्र, प्रलेख, तालिका, चार्ट, विवरण आदि होते हैं जो कि अध्ययन की प्रामाणिकता को सिद्ध करने में सहायक होते हैं और इसीलिए उन्हें पाठकों के समक्ष रखना उचित समझा जाता है। ऐसे पत्रकों को रिपोर्ट के अंत में लगा दिया जाता है। इनमें क्षेत्रीय मानचित्र, पुस्तक-सूची (bibliography), अनुसूची, प्रश्नावली आदि अध्ययन-उपकरणों की एक-एक प्रति (copy), कुछ महत्त्वपूर्ण सारणी आदि को सम्मिलित किया जाता है।

टास्क रिपोर्ट की अंतर्वस्तु किसे कहते हैं? संक्षिप्त वर्णन करें।

30.5 एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Report)

एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के संबंध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है क्योंकि 'अच्छे'-'बुरे' की अवधारणा सबके लिए समान नहीं होती। फिर भी सर्वेक्षण की प्रक्रिया और रिपोर्ट को तैयार करना एक टेक्निकल काम होने के कारण एक अच्छी रिपोर्ट की कुछ आधारभूत विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है। वे विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. आकर्षक-एक अच्छी रिपोर्ट का ऊपरी डीलडौल स्वच्छ तथा आकर्षक होता है। सफेद रंग के अच्छे किस्म के कागज़ पर स्पष्ट तथा सुंदर ढंग से टाइप से रिपोर्ट को छपवाया जाता है। साथ ही, उसे अधिक आकर्षक बनाने के लिए आकर्षक शीर्षकों, चित्रों, फोटो आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार किया जाता है।

2. संतुलित-रिपोर्ट की भाषा अत्यधिक संतुलित होती है। पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग आवश्यकतानुसार अवश्य ही करना पड़ता है। पर इस संबंध में, जैसाकि वैज्ञानिक डॉ. श्यामचरण दुबे का सुझाव है, विषय का स्पष्टीकरण लेखक का उद्देश्य होता है और इसकी सिद्धि के लिए पारिभाषिक शब्दावली-संबंधी सैद्धांतिक मतभेदों के प्रति लेखक किसी भी प्रकार के विशिष्ट आग्रह अथवा दुराग्रह को अपनाता नहीं। साथ ही, इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि पारिभाषिक शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से रिपोर्ट कहीं इतनी बोझिल और क्लिष्ट न हो जाए कि उसे समझने के लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पड़े; दूसरी ओर, रिपोर्ट की भाषा में आलंकारिक तथा साहित्यिक शैली भी इतना उग्र रूप धारण न कर ले कि तथ्यों की वास्तविकताओं पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ जाए या तथ्यों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने से सत्यता प्रगट न हो सके। अत: भाषा तथा शैली के सौंदर्य की ओर झुककर रिपोर्ट को अतिशयोक्तिपूर्ण तथा अस्वाभाविक बना देने की प्रवृत्ति से दूर रहकर ही संतुलित भाषा में रिपोर्ट को तैयार किया जाता है।

3. बार-बार नहीं दोहराना–एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही प्रकार के तथ्यों को बार-बार दोहराया नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं। तथ्यों में तार्किक क्रम अवश्य रहता है अर्थात् स्वतंत्र रूप से समझे जाने वाले तथ्य पहले आ जाते हैं और वे तथ्य बाद में प्रदर्शित किए जाते हैं जिनको समझने के लिए दूसरे तथ्यों की आवश्यकता पड़ती है।

4. वैज्ञानिकता–एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या वैज्ञानिक तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है ताकि रिपोर्ट को पढ़कर ही लोगों को यह विश्वास हो जाए कि रिपोर्ट में जो कुछ कहा गया है वह काल्पनिक नहीं है अपितु तथ्ययुक्त तथा प्रयोग-सिद्ध है। इसके सूचनाओं के स्रोतों का उल्लेख रिपोर्ट में पृष्ठतल-टिप्पणियों आदि के रूप में प्रत्येक अध्ययन में दे दिया जाता है।

5. विश्वसनीय–एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त होते हैं। इसका तात्पर्य यही है कि रिपोर्ट में प्रत्येक निष्कर्ष को तथ्ययुक्त रूप में प्रमाण-सहित प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् उन कारणों का भी उल्लेख किया जाता है जिन पर कि वह निष्कर्ष आधारित हैं।

नोट

6. व्यावहारिकता–एक अच्छी रिपोर्ट में व्यावहारिकता का तत्व भी स्पष्ट होता है अर्थात् उच्चस्तरीय रिपोर्ट इस प्रकार की होती है कि उसे पढ़कर अधिक-से-अधिक लोग लाभ उठा सकें। इस प्रकार की रिपोर्ट से केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं अपितु कुछ व्यावहारिक लाभ भी होता है। अच्छी रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज-सुधार से संबंधित भविष्य-योजनाओं के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

7. सूचना के स्रोतों का उल्लेख–एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन-पद्धति व प्रविधियों, अध्ययन क्षेत्र, निदर्शन आदि के संबंध में स्पष्ट तथा विस्तृत विवरण होता है और साथ ही सूचना के सभी स्रोतों का उल्लेख किया जाता है। ऐसा करने का उद्देश्य यह होता है कि यदि किसी भी व्यक्ति को अध्ययन के निष्कर्षों के संबंध में संदेह हो तो वह रिपोर्ट में उल्लेखित प्रविधियों आदि की सहायता से उन निष्कर्षों की वैधता की जाँच कर सकता है।

8. सीमाओं का उल्लेख–एक अच्छी रिपोर्ट में अध्ययन में आई कठिनाइयों तथा सर्वेक्षण की सीमाओं का भी स्पष्ट रूप से उल्लेख होता है। दूसरे शब्दों में, कमियों को छिपाकर अध्ययन के पूर्णतया यथार्थ होने की डींग नहीं हाँकी जाती है। ऐसा न करने का एक और उद्देश्य होता है और वह यह है कि अध्ययन की कठिनाइयों व कमियों को ईमानदारी से स्वीकार करने पर भविष्य के अध्ययनों में अन्य सर्वेक्षणकर्ताओं द्वारा पहले ही उनके संबंध में सचेत रहने तथा उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक कदम उठाने का अवसर मिलता है।

9. सिद्धांत को विकसित करना–एक उच्चस्तरीय रिपोर्ट में महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं तथा सिद्धांत को विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है। और साथ ही अन्य अनेक ऐसी समस्याओं, विषयों तथा प्रश्नों की ओर संकेत किया जाता है जिनके विषय में और आगे शोध या सर्वेक्षण-कार्य करने की आवश्यकता है। रिपोर्ट प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक अनुसंधानकर्ता द्वारा इस प्रकार का संकेत अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

4. एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं के संबंध में .... में मतभेद हो सकता है।
5. एक अच्छी रिपोर्ट में एक ही तथ्यों को बार-बार .... नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने से रिपोर्ट को पढ़ते समय पाठक ऊब जाते हैं।
6. एक अच्छी रिपोर्ट में तथ्यों का विश्लेषण व व्याख्या .... तौर पर और सुस्पष्ट रूप में होती है।

30.6 रिपोर्ट का महत्त्व (Importance of Report)

रिपोर्ट संपूर्ण अध्ययन की सार-कथा होती है और इसलिए इसके महत्त्व को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। संक्षेप में हम भी उसका उल्लेख यहाँ कर सकते हैं–

1. ज्ञान का प्रसार करने में शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट सहायक सिद्ध होती है। रिपोर्ट में अध्ययन-विषय से संबंधित प्राप्त ज्ञान का समावेश होता है और उस रिपोर्ट को पढ़कर दूसरे लोग भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। रिपोर्ट में केवल अध्ययन-विषय के संबंध में ही नहीं अपितु अन्य संबंधित विषयों का भी संकेत रहता है जो कि ज्ञान के प्रसार में और भी सहायक होता है।
2. रिपोर्ट नए अध्ययनों के लिए आवश्यक प्राक्कल्पना का आधार बन सकती है क्योंकि सर्वेक्षण की रिपोर्ट का अध्ययन करने पर अनेक नए विचार उत्पन्न हो सकते हैं और साथ ही उन प्रश्नों या समस्याओं का भी आभास होता है जिनके संबंध में आगे शोध-कार्य किया जा सकता है।
3. रिपोर्ट से एक विषय के संबंध में हुए प्राय: सभी अध्ययन-कार्यों का परिचय प्राप्त होता है क्योंकि रिपोर्ट में पूर्व अध्ययनों का उल्लेख होता है।

नोट

4. रिपोर्ट में अनुसंधान में प्रयुक्त पद्धति व प्रविधियों का उल्लेख रहता है। इसके आधार पर भावी शोधकर्ताओं को अपने शोध-कार्य के लिए पद्धति व प्रविधियों को चुनने में मदद मिलती है और साथ ही नवीन अनुसंधान-प्रणालियों का आविष्कार भी संभव होता है।
5. रिपोर्ट सामाजिक प्रगति व समाज-सुधार की योजना का आधार बन सकती है। बहुधा सरकार आदि के द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वेक्षण करवाया जाता है और रिपोर्ट के आधार पर योजना का निर्माण किया जाता है।
6. रिपोर्ट मेहनतकश जनता के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सरकार या निजी संस्थाओं द्वारा कर्मचारियों के वेतन आदि में वृद्धि करने या उनके कार्य की दशाओं को सुधारने के लिये सर्वेक्षण करवाए जाते हैं और रिपोर्ट के आधार पर वेतन, महँगाई-भत्ता आदि में वृद्धि कर दी जाती है। जनता से संबंधित अनेक अवांछित अवस्थाओं के निराकरण के लिये भी रिपोर्ट में सुझाव दिए जाते हैं और उसी अनुसार व्याधिकीय अवस्थाओं को सुधारने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाते हैं।

क्या आप जानते हैं शोध या सर्वेक्षण-रिपोर्ट ज्ञान के प्रसार में सहायक होती है, नवीन विचारों को उभारती है, भावी शोध-कार्य का पथ प्रशस्त करती है, जन-जीवन से संबंधित अनेक व्याधिकीय (Pathological) समस्याओं के निराकरण के लिए रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत करती है तथा योजना की सिद्धि व जनता की समृद्धि का आधार बन सकती है। अनुसंधानकर्ता के समस्त ज्ञान, लगन व परिश्रम की 'रिपोर्ट' ही एक सार्थक रूप होती है।

30.7 सारांश (Summary)

- शोध प्रक्रिया के बाद एक स्थिति ऐसी आती है जब रिपोर्ट तैयार करना होता है। रिपोर्ट सर्वेक्षण का अंतिम चरण होता है।
- रिपोर्ट संपूर्ण अध्ययन का सार होता है। अनुसंधानकर्ता के संपूर्ण ज्ञान तथा परिश्रम की 'रिपोर्ट' एक सार्थक रूप होती है।
- एक अच्छी रिपोर्ट में जो भी निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे सभी प्रामाणिक, विश्वसनीय तथा वैज्ञानिक विकास के उपयुक्त होते हैं।

30.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **पैमाने की वैधता (Validity of Scale)**–किसी शोध विधि अथवा पैमाने की वैधता अथवा प्रामाणिकता से तात्पर्य मापे जाने वाले तथ्य की सही-सही माप करने की क्षमता से है। पैमाने की वैधता की जाँच के लिए तार्किक वैधता, परिचित समूह विधि, स्वतंत्र मापदंड विधि आदि का प्रयोग किया जाता है।

30.9 अभ्यास-प्रश्न (Review Questions)

1. रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य क्या हैं?
2. रिपोर्ट तैयार करने में किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?

3. एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषताओं को बताएँ।
4. रिपोर्ट के महत्त्व क्या हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer : Self Assessment)

1. भाषा	2. उल्लेखनीय
3. शब्दावली	4. विद्वानों
5. दोहराया	6. वैज्ञानिक।

30.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें
1. शिक्षा का समाजशास्त्र–तिवारी शारदा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
2. व्यावहारिक शोध की विधियाँ–डॉ. जय भगवान, फ्रेंड्स पब्लिकेशन (इंडिया)।

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in